मुक्त व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रम
पाठ्यक्रम कोड – 818

प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग विज्ञान में डिप्लोमा कार्यक्रम

2

l)kfrd fo"k;

ikÑfrd fpfdRlk

jk"Vh; eqDr fo|ky;h f'k{kk laLFkku

¼f'k{kk ea=ky;] Hkkjr ljdkj dk v/khuLFk ,d Lok;Ùk laLFkku½
,-24-25, baLVhV~;w'kuy ,fj;k] lsDVj & 62, uks,Mk -201309 ¼m-iz-½
osclkbV www.nios.ac.in, Vksy Ýh uacj 18001809393

ikÑfrd fpfdRlk ,oa ;kx foKku esa fMIyksek dk;Øe
ikÑfrd fpfdRlk ¼818½
vkHkkj

सलाहकार एवं मार्ग-दर्शन समिति

प्रोफेसर सरोज शर्मा
अध्यक्ष
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा (उत्तर प्रदेश)

श्री एस के प्रसाद
निदेशक, व्या. शिक्षा विभाग
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा (उत्तर प्रदेश)

डॉ. टी एन गिरि
संयुक्त निदेशक, व्या. शिक्षा विभाग
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा (उत्तर प्रदेश)

श्रीमती अनीता नायर
उपनिदेशक, व्या. शिक्षा विभाग
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा (उत्तर प्रदेश)

पाठ्यक्रम-पाठ्यचर्या

प्रोफेसर ईश्वर भारद्वाज
पाठ्यक्रम समिति अध्यक्ष, पूर्व विभागाध्यक्ष
योग विभाग, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखंड

डॉ. भानु प्रकाश जोशी
कार्यक्रम संयोजक, योग विभाग
उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

डॉ. सुरेश लाल बरनवाल
विभागाध्यक्ष, योग विभाग
देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार

डॉ. रामअवतार शर्मा
योग स्पेशलिस्ट, सामान्य गवर्नमेंट
हॉस्पिटल, जिला नूंह, हरियाणा

आचार्य कौशल कुमार
निदेशक
राष्ट निर्माण योग संस्थान, दिल्ली

डॉ. गोपाल जी
गेस्ट प्रोफेसर (योग)
दिल्ली यूनिवर्सिटी, दिल्ली

श्रीमती सरिता शर्मा
निदेशक
योग सरिता फाउंडेशन, दिल्ली

योगाचार्या सीमा सिंह
निदेशक, इंटीग्रल योग केंद्र
वैशाली, गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश)

डॉ. निधीश यादव
सहा. प्रोफेसर, पतंजलि योगपीठ
विश्वविद्यालय, हरिद्वार (उत्तराखंड)

डॉ. निधि गर्ग
सहा. प्रोफेसर, संस्कृति विश्वविद्यालय
मथुरा (उ.प्र.)

डॉ. स्नेहलता
एसो. प्रोफेसर, वी.वाई.डी.एस.
आयु. मेडिकल कॉलेज एवं अस्पताल
खुर्जा (उ.प्र.)

श्री आदित्य भारद्वाज
संयुक्त सचिव
अन्तर्राष्ट्रीय प्राकृतिक चिकित्सा संघ
दिल्ली

डॉ. पवन कुमार चौहान
व.का. अधिकारी (योग एवं प्रा.चि.)
व्या.शि.वि., रा.मु.वि.शि.सं., नोएडा (उ.प्र.)

लेखन टीम

डॉ. निधि गर्ग
सहा. प्रोफेसर, संस्कृति विश्वविद्यालय
मथुरा (उ.प्र.)

प्रो. स्नेहलता डोरनला
विभागाध्यक्ष, वीवाईडीएस आयुर्वेर्दिक मेडीकल
कॉलेज एण्ड हॉस्पीटल, बु. श. (उ. प्र.)

डॉ. तबस्सुम फातिमा
प्राकृतिक चिकित्सक, योग एवं प्राकृतिक
चिकित्सा केंद, थाने, मुंबई (महाराष्ट्र)

डॉ. राजेन्द्र प्रताप मलिक
प्रवक्ता, योग विभाग, एम.बी. गवर्न्मेंण्ट
पी.जी. कॉलेज, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखंड

डॉ. सत्येन्द्र मिश्रा
योग शिक्षक, योग विभाग,
लखनऊ, विश्वविद्यालय, लखनऊ

डॉ. पवन कुमार चौहान
वरिष्ठ कार्यकारी अधिकारी (योग एवं प्रा.चि.)
व्या.शि.वि., रा.मु.वि.शि.सं., नोएडा (उ.प्र.)

संपादन

प्रोफेसर ईश्वर भारद्वाज
पाठ्यक्रम समिति अध्यक्ष, पूर्व विभागाध्यक्ष,
योग विभाग, गुरुकुल काँगड़ी
विश्वविद्यालय, हरिद्वार

डॉ. रामअवतार शर्मा
योग स्पेशलिस्ट,
सामान्य गवर्नमेंट हॉस्पिटल,
जिला नूंह, हरियाणा

डॉ. भानु प्रकाश जोशी
कार्यक्रम संयोजक, योग विभाग
उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी

डॉ. मोनिका हीरा
सी. एम. ओ.,
विवेकानंद प्राकृतिक चिकित्सालय,
दिल्ली

पाठयक्रम डिजाइन, परिवर्धन एवं संयोजन

डॉ. पवन कुमार चौहान
वरिष्ठ कार्यकारी अधिकारी (योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा)
व्यावसायिक शिक्षा विभाग, राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नोएडा (उत्तर प्रदेश)

ग्राफिक्स/पिक्चर्स तथा पाठ्यक्रम विकास में विशेष सहयोग

डॉ. एस के त्यागी
विभागाध्यक्ष, योग विज्ञान विभाग
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार उत्तराखंड

डॉ. विक्रमादित्य
निदेशक
विवेकानंद हॉस्पीटल, दिल्ली

डॉ. नवदीप जोशी
संस्थापक
नवयोग प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्र
टनकपुर, उत्तराखंड

केंद्रीय योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा अनुसंधान परिषद
आयुष मंत्रालय
भारत सरकार,
दिल्ली

अध्यक्ष की कलम से ...

प्रिय शिक्षार्थियों,

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान में आपका स्वागत है!

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान (NIOS), शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार के अधीनस्थ एक शैक्षिक बोर्ड है, जो शिक्षा से वंचित प्रत्येक वर्ग को शैक्षिक व व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करता है। आज समाज को ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है, जो शिक्षित बनाने के साथ-साथ रोजगार भी उपलब्ध करा सके और देश के युवाओं को कौशल प्रदान कर, उनके कार्यक्षेत्र में सक्षम बना सके। वर्तमान समय की इस मांग को ध्यान में रखते हुए, राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान (NIOS) का यही प्रयास है कि, प्रमुख रूप से देश के युवा अपना काम-काज जारी रखते हुए मुक्त शिक्षा के माध्यम से अपनी रूचि अनुसार व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त कर सकें और व्यवसाय व रोजगार की दिशा में उन्नति कर सकें।

प्राचीनकाल से ही मानव प्रकृति के सानिध्य में रहा है, जहां उसने अपनी जीवन शैली में प्रकृति को समाहित कर स्वस्थ जीवन जीने की कला सीखी है। उसका खान-पान, पालन-पोषण, रोग-मुक्ति आदि सब कुछ प्रकृति ही करती है, जिसकी झलक, हमारी जीवन शैली और संस्कृति में दिखाई पड़ती है। किन्तु आज भौतिकवाद, भोग-विलासता, आधुनिक जीवन शैली और खान-पान की आदतों में बदलाव के कारण, जीवनशैली संबंधित विकार (जैसे-मोटापा, उच्च रक्तचाप, हृदय रोग, मधुमेह आदि) तेजी से बढ़ रहे हैं। इन सबसे बचने और स्वस्थ एवं चुस्त-दुरुस्त जीवन जीने के लिए एक बार फिर, योग एवं प्राकृतिक जीवन शैली को अपनाने की आवश्यकता महसूस की जा रही है। प्रकृति में रहकर, जहां स्वस्थ जीवन प्राप्त होता है वहीं योग, शरीर, मन व आत्मशक्ति का सर्वांगीण विकास करता है और अच्छे व्यक्तित्व का निर्माण करता है। इस दशक में योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में, जो महत्वपूर्ण कार्य हो रहा है, वह निसंदेह ही बहुत महत्वपूर्ण है।

मुझे प्रसन्नता है कि, योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा क्षेत्र के अन्तर्गत आपने राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान (NIOS) के प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग विज्ञान में डिप्लोमा पाठ्यक्रम का चुनाव किया है। यह दो वर्षीय डिप्लोमा पाठ्यक्रम है, जो स्वास्थ्य एवं चिकित्सा की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण है। इसमें छः माह की इन्टर्नशिप को भी शामिल किया गया है । पाठ्यक्रम का उद्देश्य प्रशिक्षार्थियों में प्राकृतिक चिकित्सा हेतु कौशल विकसित करना एवं सक्षम बनाना है, ताकि वे सरकारी-गैर सरकारी स्वास्थ्य व योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा संस्थानों में रोजगार प्राप्त कर सके, अथवा स्वरोजगार कर आत्म निर्भर बन सके, तथा स्वस्थ भारत का निर्माण कर सकें।

यह पाठ्यक्रम, राष्ट्रीय स्तर पर देश के विभिन्न विषय विशेषज्ञों और चिकित्सकों द्वारा विकसित किया गया है। इसका श्रेय पाठ्यक्रम समिति के अध्यक्ष प्रोफेसर ईश्वर भारद्वाज, पूर्व विभागाध्यक्ष, योग विभाग, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखंड और डॉ. पी. के. चौहान, वरिष्ठ कार्यकारी अधिकारी (योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा), राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान को जाता है, जिन्होंने डॉ. भानु जोशी, कार्यक्रम संयोजक, योग एवं प्रा. चि. विभाग, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, डॉ. सुरेश लाल बरनवाल, विभागाध्यक्ष, योग विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार, आचार्य कौशल कुमार, निदेशक, राष्ट्र निर्माण योग संस्थान, दिल्ली, डॉ. रामअवतार शर्मा, योग स्पेशलिस्ट, सामान्य अस्पताल (हरियाणा सरकार), जिला नूंह, हरियाणा, डॉ. निधीश यादव, सहा. प्रोफेसर पतंजलि विश्वविद्यालय, हरिद्वार, डॉ. सत्येन्द्र मिश्रा, योग शिक्षक, योगविभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ आदि प्रतिष्ठित विद्वानों के साथ मिलकर इस पाठ्यक्रम को विकसित किया।

इस पावन एवं मंगलकार्य में विशेष सहयोग व मार्गदर्शन के लिए मैं, प्रोफेसर ईश्वर भारद्वाज और उनकी पूरी टीम को बहुत-बहुत बधाई देती हूँ और आशा करती हूँ कि राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान (NIOS) के साथ आप इसी प्रकार अपना सहयोग बनाएं रखेंगे और अपने बहूमूल्य सुझावों से हमें अनुग्रहीत करते रहेंगे।

पाठ्यक्रम में नामांकन कराने के लिए मैं, शिक्षार्थियों को भी बधाई देती हूँ और आशा करती हूँ कि यह पाठ्यक्रम आपके लिए अत्यंत हितकर सिद्ध होगा।

मैं आपके सफल व उज्ज्वल भविष्य की कामना करती हूँ!

प्रोफेसर सरोज शर्मा
अध्यक्ष, राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नोएडा

शिक्षार्थियों के लिए दो शब्द ...

प्रिय शिक्षार्थियों,

प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग विज्ञान के इस डिप्लोमा कार्यक्रम में आपका स्वागत है!

आधुनिकता के इस भौतिक दौर में अच्छे स्वास्थ्य को बनाए रखने, रोगों से बचने और सुरक्षित इलाज की आज सभी को आवश्यकता है। लोग अपने स्वास्थ्य और फिटनेस को लेकर काफी सजग हैं। वे समझने लगे हैं कि प्रकृति के साथ योगमयी जीवन जीना आवश्यक है। जहां प्रकृति स्वस्थ जीवन प्रदान करती है वहीं योग शरीर, मन व आत्मशक्ति का सर्वांगीण विकास करता है, और अच्छे व्यक्तित्व का निर्माण करता है। यही कारण है कि लोग आज, योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा तथा अन्य प्राचीन चिकित्सा-पद्धतियों की ओर आकर्षित हो रहे हैं, जिससे समाज में प्राचीन चिकित्सा-पद्धतियों की मांग विशेषरूप से बढ़ी है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए, राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान (एनआईओएस) ने अपने अधिकृत प्रशिक्षण केन्द्रों के माध्यम से, प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग विज्ञान में डिप्लोमा कार्यक्रम की शुरूआत की है। इस दो वर्षीय डिप्लोमा कार्यक्रम में सैद्धांतिक और व्यावहारिक अर्थात प्रैक्टिकल प्रशिक्षण मिलाकर कुल 12 विषय सम्मलित हैं और छः माह की इंटर्नशिप का विशेष प्रावधान है, जिसे दो साल के प्रशिक्षण के उपरांत संबन्धित प्राकृतिक चिकित्सा के केन्द्रों, संस्थानों और अस्पतालों में पूरा करना आवश्यक होगा।

इस कार्यक्रम में आपको अध्ययन सामग्री, स्व-निर्देशक सामग्री के रूप में प्रदान की जाएगी और व्यावहारिक घटक अर्थात प्रैक्टिकल-प्रशिक्षण, एनआईओएस के मान्य प्रशिक्षण अध्ययन केंद्रों (एवीआई) पर प्रदान किया जाएगा, जहां यथोचित व्यक्तिगत संपर्क कक्षाएँ, सत्रीय कार्य, प्रैक्टीकल एवं प्रशिक्षण कक्षाएँ, इंटर्नशिप आदि का प्रावधान निर्धारित है। योजना के अनुसार, प्रथम वर्ष में आप सैद्धांतिक और व्यावहारिक (06 विषयों) का प्रशिक्षण प्राप्त करेंगे और परीक्षा में बैठेंगे। इसी प्रकार द्वितीय वर्ष में भी आप सैद्धांतिक और व्यावहारिक (06 विषयों) का प्रशिक्षण प्राप्त कर परीक्षा में बैठेंगे। तदुपरान्त किसी प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग केंद्र अथवा चिकित्सालय में 06 माह की इर्न्टनशिप को पूरा करेंगे।

शिक्षार्थियों को ध्यान में रखते हुए, पाठ्यक्रम को स्व-निर्देशित पाठ्यसामग्री के रूप में विकसित किया गया है, जिसमें यूनिट परिचय, यूनिट के उद्देश्य, शिक्षक की शैली में विषयों व उपविषयों को शिक्षक की भांति समझाते हुए, बीच-बीच में आपकी प्रगति जानने के लिए प्रश्न, आपने क्या सीखा और अंत में निबंधात्मक प्रश्नों का समावेश किया गया है।

यह पाठयसामग्री राष्ट्रीय स्तर पर विषय विशेषज्ञों की समिति द्वारा विकसित की गई है। पाठ्यक्रम विकास में विशेष सहयोगी रहे प्रोफेसर ईश्वर भारद्वाज, पूर्व विभागाध्यक्ष, योग विभाग, गुरूकुल, काँगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार, डॉ0 भानु जोशी, कार्यक्रम संयोजक, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, डॉ0 निधीश यादव, सहा0 प्रोफेसर, योग विभाग, पतंजलि विश्वविद्यालय, हरिद्वार, डा0 राजेन्द्र प्रताप मलिक, प्रवक्ता, योग विभाग, एम.बी. गवर्न्मेण्ट पी. जी. कॉलेज, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखंड, डॉ. रामअवतार शर्मा, योग स्पेशलिस्ट, सामान्य गवर्नमेंट, हॉस्पिटल, जिला नूंह, हरियाणा आदि का, मैं हृदय से आभारी हूँ, जिनके मार्गदर्शन में यह कार्यक्रम विकसित हो सका। साथ ही सीसीआरवाईएन, आयुष मंत्रालय, भारत सरकार, अन्य विश्वविद्यालयों, योग व प्राकृतिक चिकित्सा संस्थानों और टीम के अन्य सभी सदस्यों का भी मैं आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने इस पाठ्यक्रम विकास के लिए अपना महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया।

आशा करता हूँ कि यह कार्यक्रम आपको पसंद आएगा और आपके जीवन के लिए उपयोगी सिद्ध होगा। कार्यक्रम से संबन्धित, यदि कोई सुझाव है तो, आपका स्वागत है। आप नि:संकोच हमसे संपर्क कर सकते हैं या लिखकर भेज सकते हैं।

आपके सफल एवं उज्ज्वल भविष्य के लिए मैं, ढेर सारी शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ!

शुभकामनाओं सहित,

डा0 पवन कुमार चौहन, कार्यक्रम समन्वयक
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

çkÑfrd fpfdRlk ,o ;kx foKku e fMIykek ikB;Øe

ikB;Øe vkj ikB;p;k

प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में, प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग विज्ञान में डिप्लोमा एक महत्वपूर्ण पाठ्यक्रम है। यह पाठ्यक्रम, उन सभी लोगों के लिए विकसित किया गया है, जो योग और प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में रुचि रखते हैं और एक पेशेवर के रूप में, काम करने के इच्छुक हैं। प्राचीनकाल से ही मानव प्रकृति के सानिध्य में रहा है, जहां उसने अपनी जीवन शैली में प्रकृति को समाहित कर स्वस्थ जीवन जीने की कला सीखी है। आज स्वस्थ एवं चुस्त–दुरुस्त रहने के लिए, योग एवं प्राकृतिक जीवन शैली को अपनाने की आवश्यकता महसूस की जा रही है।

आधुनिक जीवन शैली के पैटर्न और खान–पान की आदतों में बदलाव के कारण जीवनशैली संबंधी रोग जैसे – मोटापा, उच्च रक्तचाप, हृदय रोग, मधुमेह आदि बीमारियां तेजी से बढ़ रही हैं। यही कारण है कि, लोग अच्छे स्वास्थ्य को बनाए रखने, रोगों से बचने और इलाज के लिए, प्राकृतिक चिकित्सा तथा अन्य वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियों की ओर तेजी से आकर्षित हो रहे हैं। अतः आज समाज में, योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा की विशेषरूप से मांग है। इस विशेष मांग को ध्यान में रखते हुए, राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान (एनआईओएस) ने अपने अधिकृत प्रशिक्षण केन्द्रों के माध्यम से इस व्यावसायिक पाठ्यक्रम की शुरूआत की है।

mís’;

पाठ्यक्रम का मुख्य उद्देश्य, योग और प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में लोगों को कुशल पेशेवर और निवारक विशेषज्ञ बनाना है। पाठ्यक्रम को पूरा करने के पश्चात, प्रशिक्षु निम्नांकित में कौशल प्राप्त करने और दक्षता हासिल करने में सक्षम होंगे –

- योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा के परिचय पर प्रकाश डालने में;
- स्वास्थ्य–जागरूकता, स्वच्छता, एवं आहार की आवश्यकता एवं महत्व का उल्लेख करने में;
- योग दर्शन एवं क्रिया विज्ञान को समझा पाने में;
- योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धांतों तथा पंचतत्वों पर प्रकाश डालने में;
- प्राकृतिक जीवन शैली की अवधारणाओं को जानने और व्यावहारिक बनाने में;
- स्वास्थ्य संवर्धन, बीमारियों की रोकथाम सहित सामान्य संक्रमण और जीवन शैली संबन्धित बीमारियों का प्रबंधन और आपातकालीन स्थितियों के दौरान नियंत्रण करने में;
- मानव शरीर रचना एवं शरीर क्रिया विज्ञान की मूलभूत जानकारी रखने में;
- योग के एकीकृत दृष्टिकोण के अनुप्रयोगों को लागू करने में;
- प्राकृतिक चिकित्सा से विभिन्न विकारों व बीमारियों की चिकित्सा प्रदान करने में;
- मानव शरीर पर योग के प्रभाव को स्पष्ट करने में।

ços'k vgZrk

- किसी भी मान्यता प्राप्त बोर्ड से न्यूनतम 12 वीं कक्षा पास (समकक्ष)

  अथवा

- वे सभी लोग, जो योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा में किसी प्रतिष्ठित संस्थान (एनआईओएस द्वारा स्वीकृत)/विश्वविद्यालय से न्यूनतम एक वर्ष का डिप्लोमा कर चुके हैं, वे पाठ्यक्रम के द्वितीय वर्ष में सीधे प्रवेश ले सकते हैं, लेकिन प्रथम वर्ष की परीक्षा द्वितीय वर्ष के साथ उत्तीर्ण करनी आवश्यक होगी।
- न्यूनतम आयु –18 वर्ष

y{; lewg

वे सभी लोग, जो योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में 'कुशल पेशेवर और निवारक विशेषज्ञ' बनने के इच्छुक हैं।

jkstxkj ds volj

कार्यक्रम पूरा करने के पश्चात प्रशिक्षु, योग संस्थानों, योग केंद्रों, स्वास्थ्य क्लबों, प्राकृतिक चिकित्सालयों तथा अन्य प्राचीन चिकित्सा पद्धति के केन्द्रों आदि में सहायक चिकित्सक अथवा समकक्ष के रूप में काम कर सकते हैं।

ikB~;Øe dh vof/k

पाठ्यक्रम की अवधि दो वर्ष छः माह इंटर्नशिप।

अध्ययन की योजनाः कुल अध्ययन घंटे = 1200 घंटे + छः माह की इंटर्नशिप

स्व–अध्ययन – 20%, सिद्धांत और प्रैक्टिकल–प्रशिक्षण – 80%

प्रथम वर्षः 10 माह × 8 दिन (एक माह में) × 6 घंटे = 480 घंटे

द्वितीय वर्षः 10 माह × 8 दिन (एक माह में) × 6 घंटे = 480 घंटे

थ्योरी व प्रैक्टिकल–प्रशिक्षण कुल संपर्क घंटे – 480 + 480 = 960 घंटे + स्व–अध्ययन – 240 घंटे

छः माह की रेग्युलर इंटर्नशिप = 6 माह × 20 दिन (एक माह में) × 6 घंटे = 720 घंटे

ikB~;Øe&ikB~;p;kZ

पाठ्यक्रम में सिद्धांत और प्रैक्टिकल–प्रशिक्षण सहित कुल 12 विषय शामिल हैं। अध्ययन सामग्री स्व–निर्देशक सामग्री के रूप में प्रदान की जाएगी और व्यावहारिक घटक अर्थात् प्रैक्टिकल–प्रशिक्षण एनआईओएस के

मान्य प्रशिक्षण अध्ययन केंद्रों (एवीआई) पर प्रदान किया जाएगा।

iFke o"k d fo"k;			
Ø-l-	l)kfUrd	Ø-l-	ik;kfxd
01	योग का आधारभूत ज्ञान	04	योग अभ्यास (प्रायोगिक)
02	प्राकृतिक चिकित्सा का आधारभूत ज्ञान	05	प्राकृतिक चिकित्सा का व्यावहारिक प्रशिक्षण (प्रायोगिक)
03	मानव शरीर रचना, क्रिया विज्ञान और योग के प्रभाव	06	मानव शरीर रचना, क्रिया विज्ञान और योग के प्रभाव (प्रायोगिक)
f}rh; o"k d fo"k;			
01	यौगिक चिकित्सा	04	यौगिक चिकित्सा (प्रायोगिक)
02	प्राकृतिक चिकित्सा	05	प्राकृतिक चिकित्सा (प्रायोगिक)
03	अन्य प्राचीन प्राकृतिक चिकित्सा पद्धतियाँ	06	अन्य प्राचीन प्राकृतिक चिकित्सा पद्धतियाँ (प्रायोगिक)
*किसी प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र पर छः माह की इंटर्नशिप के दौरान अनुसंधान संबन्धित परियोजना पर कार्य			

*çf'k{k bVuf'ki d nkjku vuql/kku lcfU/kr ifj;kstuk ij dk;l djxA ftl d vf/kdre vd 200 gkxA bldk eY;kdu ,uvkbvk,l }kjk fu;äq] ckã ijh{kd }kjk fd;k tk,xkA ftldk iek.ki= lcfU/kr ,ohvkb ¼if'k{k.k dn½ vkj ikÑfrd fpfdRlk dn d lkstU; l iklr gkxkA

foLrr ikB;p;k

iFke o"k d fo"k;

l)kfUrd fo"k; & 1 ¼ ;kx dk vk/kkjHkr Kku & 811

bdkb ¼;fuV½ & 1 ;kx ¼ ,d ifjp;

- योग, अर्थ एवं परिभाषाएं
- योग की उत्पत्ति, इतिहास एवं विकास
- प्रमुख यौगिक ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय
- योग की प्रमुख परम्पराएं
- योग की उपयोगिता एवं महत्व

bdkb ¼;fuV½ & 2 ;kx vfLrRo dh vo/kkj.kk

- वैदिक काल (वेदों) में योग का अस्तित्व

- उपनिषद काल (उपनिषद) में योग का अस्तित्व
- दर्शन काल (दर्शन) में योग का अस्तित्व
- आधुनिक काल में योग का अस्तित्व
- योग में वर्णित ईश्वर का स्वरूप

bdkb ¼;fuV½ & 3 ;kfxd thou n'ku

- संस्कृति की अवधारणा
- पुरूषार्थ
- आश्रम व्यवस्था
- विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति और मुमुक्षुत्व
- भारतीय जीवन मूल्य

bdkb ¼;fuV½ & 4 JhenHkxonxhrk d vu|lkj çe|[k ;kx ekx

- श्रीमद्भगवद्गीता में वार्णित ज्ञानयोग
- श्रीमद्भगवद्गीता के आधार पर कर्मयोग
- श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार भक्तियोग

bdkb ¼;fuV½ & 5 ikrty ;kxl=

- भारतीय परम्परा में योग के स्वरूप
- योग के महत्वपूर्ण तथा अद्वितीय ग्रंथ का परिचय तथा आधारभूत ज्ञान
- योग सूत्र के ऐतिहासिक महत्व एवं स्वरूप
- योग सूत्र के अनुसार योग की परिभाषा

bdkb ¼;fuV½ & 6 v"Vkx ;kx

- महर्षि पतंजलिकृत अष्टांग योग दर्शन की अभिव्यक्ति
- योग के आठ अंगों के क्रमिक नाम
- यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि आठ अंग
- अष्टांग योग के व्यावहारिक स्वरुप और लाभ

bdkb ¼;fuV½ & 7 gB;kx

- हठयोग का सामान्य परिचय
- हठयोग का अर्थ एवं मुख्य परिभाषाएं
- मानव शरीर में चक्र, कुण्डलिनी एवं नाड़ियों का उल्लेख
- घेरण्ड संहिता के अनुसार हठयोग के सप्तांग
- हठयोग अभ्यास के लाभ

bdkb ¼;fuV½ & 8 ;kx lkèkuk e fo?u

- योग साधना में षड्रिपु का वर्णन
- पंचक्लेश
- योग साधना में आने वाले विक्षेप
- चित्त वृत्तियों के, निरोध के उपाय

bdkb ¼;fuV½ & 9 ;kxkH;kl dju l iol&fun'k] r;kjh vkj lkoèkkfu;k

- यौगिक अभ्यास के पूर्व की जाने वाली तैयारियों एवं सावधानियाँ
- योग का आधारभूत ज्ञान यौगिक अभ्यास के लिए उपयुक्त स्थान का चुनाव
- योग अभ्यास के दौरान यौगिक परिधान और उसका महत्व
- अभ्यास के लिए योग मेट की आवश्यकता एवं महत्ता
- यौगिक अभ्यास के लिए उपयुक्त समय–सारणी
- यौगिक अभ्यास के दौरान आवश्यक सावधानियां
- यौगिक अभ्यास के दौरान अचानक होने वाली विषम परिस्थितियों को संभालना

bdkb ¼;fuV½ & 10 "kVde

- षट्कर्म अर्थ, एवं परिभाषा
- षट्कर्म के विभिन्न अंग
- शरीर पर उनका प्रभाव और इसके लाभ

bdkb ¼;fuV½ & 11 ;kfxd l{e vH;kl ¼fØ;k,½

- यौगिक सूक्ष्म क्रियाओं की आवश्यकता और उनके महत्व
- सूक्ष्म क्रियाएं करने की विधि और उनके प्रभाव
- कुछ विशेष आरामदायक व ध्यानात्मक आसन तथा विभिन्न रोगों में उनके लाभ
- यौगिक सूक्ष्म क्रियाओं से पूर्व की जाने वाली तैयारियां और सावधानियां

bdkb ¼;fuV½ & 12 ;kx vklu

- आसन, अर्थ एवं परिभाषा
- योगासनों की आवश्यकता और उनके महत्व
- आसनों के प्रकार
- सूर्य नमस्कार तथा अन्य आसनों के लाभ का विश्लेषण

bdkb ¼;fuV½ & 13 çk.kk;ke

- प्राणायाम का अभिप्राय
- प्राणायाम के प्रमुख प्रकार
- प्राणायाम के महत्व तथा लाभ

bdkb ¼;fuV½ & 14 eæk vkj cèk

- मुद्रा एवं बंध का अभिप्राय
- मुद्रा एवं बंध के प्रमुख प्रकारों का वर्णन
- मुद्रा एवं बंध के महत्व तथा लाभ

bdkb ¼;fuV½ & 15 ;kx fuæk ,o è;ku lkèkuk

- ध्यान साधना का अभिप्राय
- ध्यान साधना की विधि
- स्व–दर्शन ध्यान साधना और उसकी क्रिया विधि
- योग का आधारभूत ज्ञान, योगनिद्रा, उसकी क्रिया विधि, महत्व तथा लाभ

l)kfUrd fo"k; & 2 ¼ ikÑfrd fpfdRlk dk vk/kkjHkwr Kku & 812

bdkbZ ¼;wfuV½ & 1 çk—frd fpfdRlk% ,d ifjp;] mn~Hko ,oa bfrgkl

- प्राकृतिक चिकित्सा का अर्थ
- प्राकृतिक चिकित्सा के इतिहास एवं विकास
- प्राकृतिक चिकित्सा के मूलभूत सिद्धांत
- प्राकृतिक चिकित्सा की आवश्यकता एवं उपयोगिता
- प्राकृतिक चिकित्सा एवं स्वास्थ्य में परस्पर में संबंध

bdkbZ ¼;wfuV½ & 2 çk—frd fpfdRlk ds ewyHkwr fl)kar

- प्राकृतिक चिकित्सा के अर्थ एवं परिभाषा
- प्राकृतिक चिकित्सा के मूलभूत सिद्धांत
- प्राकृतिक चिकित्सा की विभिन्न विधियां

bdkbZ ¼;wfuV½ & 3 vkgkj ,oa vkS"k/kh; ikS/ks

- उचित आहार, पोषण और स्वास्थ्य की उपयोगिता
- आहार संबंधी कुछ अच्छी आदतों की चर्चा
- कुछ औषधीय पेड़–पौधे, उनके पोषक मूल्य और उनका उपयोग

bdkbZ ¼;wfuV½ & 4 çkFkfed mipkj

- प्राथमिक उपचार सम्बन्धित सामान्य एवं आवश्यक जानकारी
- आपात स्थिति में संकेतों और लक्षणों के सहारे, प्राथमिक उपचार प्रबंध के तरीके
- आपात स्थितियों में प्राथमिक उपचार उपलब्ध कराकर, जीवन की रक्षा
- विभिन्न परिस्थितियों को समझकर, घरेलू उपचार
- शरीर के वायटल पैरामीटर्स

bdkbZ ¼;wfuV½ & 5 lE;d LokLF;

- स्वास्थ्य तथा इसके पहलुओं को परिभाषा
- स्वास्थ्य के शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक पहलू
- अच्छे स्वास्थ्य के आधार
- अच्छे स्वास्थ्य के सूचक
- रोगों के मूलभूत कारण

bdkbZ ¼;wfuV½ & 6 vkgkj ,oa iks"k.k

- भोजन, इसकी आवश्यकता एवं महत्व
- संतुलित आहार
- आहार की उपयोगिता
- सात्विक, राजसिक एवं तामसिक आहार
- उम्र, बीमारी, समय व ऋतुओं के अनुसार आहार
- आहार औषधि के रूप में

bdkbZ ¼;wfuV½ & 7 çk—frd LoPNrk

- स्वच्छता का अर्थ

- पर्यावरण की स्वच्छता तथा खान–पान में स्वच्छता कायम करने के सही तरीके
- व्यक्तिगत स्वच्छता, पर्यावरण की स्वच्छता और खान–पान की स्वच्छता के लिए आवश्यक और अच्छी आदतें

bdkbl ¼;fuV½ & 8 vkdk'k rRo fpfdRlk

- आकाश तत्व की अवधारणा
- आकाश तत्व की प्राप्ति के साधन
- उपवास का सही अर्थ, उसकी विधियां और महत्वता

bdkbl ¼;fuV½ & 9 ok;q rRo fpfdRlk

- वायु तत्व की अवधारणा
- वायु तत्व की जीवन में उपयोगिता
- वायु तत्व की उत्पत्ति, प्रकार, कार्य व महत्त्व
- वायु सेवन और इसके साधन
- पवन स्नान का उचित काल और लाभ
- प्राणायाम
- व्यायाम और शरीर मर्दन (मालिश)

bdkbl ¼;fuV½ & 10 vfXu rRo ¼lw;Z fdj.k½ fpfdRlk

- अग्नि तत्व की अवधारणा
- अग्नि तत्व की उत्पत्ति व उसकी प्राप्ति के साधन
- आतप स्नान, उसका उचित काल व सावधानियां
- वर्ण चिकित्सा व सूर्य प्रकाश का महत्व
- इन्फ्रारेड व पराबैंगनी किरणें
- सौर मंडल व नवग्रहों के रंग व प्रकृति

bdkbl ¼;fuV½ &11 ty rRo fpfdRlk

- जल तत्व की अवधारणा
- जल तत्व की उत्पत्ति, स्थान, कार्य व स्रोतानुसार गुणधर्म
- उषापान, जलपान विधि आदि
- जल चिकित्सा के सामान्य मूलभूत सिद्धांत

bdkbl ¼;fuV½ &12 i`Foh rRo fpfdRlk ¼feêh fpfdRlk½

- पृथ्वी तत्व की अवधारणा
- पृथ्वी तत्व की उत्पत्ति व प्राप्ति के साधन
- प्राकृतिक चिकित्सा में मिट्टी की आवश्यकता व महत्व
- रोगानुसार मिट्टी का प्रयोग

l)kfUrd fo"k; & 3 % ekuo 'kjhj jpuk] fØ;k foKku vkj ;kx d i;kx & 813

bdkbl ¼;fuV½ & 1 ekuo 'kjhj lajpuk ifjp; ,oa ;kx dk çHkko

- मानव शरीर का सामान्य परिचय

- मानव शरीर की विवेचना
- ऊतक का अर्थ एवं प्रकार
- मानव शरीर के विभिन्न तंत्र
- मानव शरीर पर यौगिक क्रियाओं के प्रभाव की व्याख्या

bdkb ¼;fuV½ & 2 ekuo vfLFk r= dh l jpuk&fØ;kfofèk ,o ;kx d çHkko

- अस्थि तंत्र का सामान्य परिचय
- अस्थि तंत्र का वर्गीकरण
- अस्थि तंत्र की विवेचना
- अस्थि तंत्र का महत्व
- अस्थि तंत्र पर यौगिक क्रियाओं के प्रभाव की व्याख्या

bdkb ¼;fuV½ & 3 i'kh; r= dh l jpuk&fØ;kfofèk ,o ;kx d çHkko

- पेशीय तंत्र का सामान्य परिचय
- पेशीय तंत्र की विवेचना
- पेशीय तंत्र का वर्गीकरण
- पेशीय तंत्र का महत्व
- पेशीय तंत्र पर यौगिक क्रियाओं के प्रभाव

bdkb ¼;fuV½ & 4 KkufUæ; r= dh l jpuk&fØ;kfofèk ,o ;kx d çHkko

- ज्ञानेन्द्रिय तंत्र का सामान्य परिचय
- ज्ञानेन्द्रिय तंत्र की विवेचना
- पांचों ज्ञानेन्द्रियों की संरचना एवं कार्य
- ज्ञानेन्द्रिय तंत्र का महत्व
- ज्ञानेन्द्रिय तंत्र पर यौगिक क्रियाओं के प्रभाव की व्याख्या

bdkb ¼;fuV½ & 5 ikpu r= dh l jpuk&fØ;kfofèk ,o ;kx d çHkko

- पाचन तंत्र का सामान्य परिचय
- पाचन तंत्र की व्याख्या
- पाचन तंत्र की संरचना एवं क्रियाविधि
- पाचन तंत्र का महत्व
- पाचन तंत्र पर यौगिक क्रियाओं के प्रभाव की व्याख्या

bdkb ¼;fuV½ & 6 'olu r= dh l jpuk&fØ;kfofèk ,o ;kx d çHkko

- श्वसन तंत्र का सामान्य परिचय
- श्वसन तंत्र की व्याख्या
- श्वसन तंत्र की संरचना एवं क्रियाविधि का वर्णन
- श्वसन तंत्र का महत्व
- श्वसन तंत्र पर यौगिक क्रियाओं के प्रभाव की व्याख्या

bdkb ¼;fuV½ & 7 mRl tu r= dh l jpuk&fØ;kfofèk ,o ;kx d çHkko

- उत्सर्जन तंत्र का सामान्य परिचय
- उत्सर्जन तंत्र की व्याख्या
- उत्सर्जन तंत्र की संरचना एवं क्रियाविधि
- उत्सर्जन तंत्र का महत्व

- उत्सर्जन तंत्र पर यौगिक क्रियाओं के प्रभाव की व्याख्या

bdkbl ¼;fuV½ & 8 jä ifjlpj.k r= dh lljpuk&fØ;kfofèk ,o;kx d çHkko

- रक्त परिसंचरण तंत्र का सामान्य परिचय
- रक्त परिसंचरण तंत्र की व्याख्या
- रक्त परिसंचरण तंत्र की संरचना एवं क्रियाविधि
- रक्त परिसंचरण तंत्र का महत्व
- रक्त परिसंचरण तंत्र पर यौगिक क्रियाओं के प्रभाव की व्याख्या

bdkbl ¼;fuV½ & 9 vUr%lkoh r= dh lljpuk&fØ;kfofèk ,o ;kx d çHkko

- अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का सामान्य परिचय
- अन्तःस्रावी तंत्रा की व्याख्या
- अन्तःस्रावी ग्रन्थियों से उत्पन्न हार्मोन्स के कार्य
- अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का महत्व
- अन्तःस्रावी ग्रन्थियों पर यौगिक क्रियाओं के प्रभाव की व्याख्या

bdkbl ¼;fuV½ & 10 çfrj{kk r= ,o çtuu r= dh lljpuk&fØ;kfofèk ,o ;kx d iHkko

- प्रतिरक्षा तंत्र का सामान्य परिचय
- प्रतिरक्षा तंत्र की व्याख्या
- प्रतिरक्षा तंत्र के अंगों का वर्णन
- प्रतिरक्षा तंत्र का महत्व
- प्रजनन तंत्र का संक्षिप्त परिचय
- प्रतिरक्षा तंत्र पर यौगिक क्रियाओं के प्रभाव की व्याख्या
- प्रजनन तंत्र पर यौगिक क्रियाओं के प्रभाव की व्याख्या

bdkbl ¼;fuV½ & 11 rf=dk r= dh lljpuk&fØ;kfofèk ,o ;kx d çHkko

- तंत्रिका तंत्र का सामान्य परिचय
- तंत्रिका तंत्र की व्याख्या
- तंत्रिका तंत्र का वर्गीकरण
- तंत्रिका तंत्र का महत्व पर प्रकाश
- तंत्रिका तंत्र पर यौगिक क्रियाओं के प्रभाव की व्याख्या

fo"k; & 4 % ;kx vH;kl ¼ik;kfxd½ & 814

fo"k; & 5 % ikÑfrd fpfdRlk dk 0;kogkfjd if'k{k.k ¼ik;kfxd½ & 815

fo"k; & 6 % ekuo 'kjhj jpuk] fØ;k foKku vkj ;kx d iHkko ¼ik;kfxd½ & 816

f}rh; o"k d fo"k;

l)kUrd fo"k; & 1 % ;kfxd vH;kl & 817

bdkbl ¼;fuV½ & 1 ifl) ;kfx;k dk ;kx e ;kxnku

- योग के क्षेत्र में महान योगियों के जीवनदर्शन एवं योगदान

bdkb ¼;fuV½ & 2 ;kx fØ;k foKku ¼fQft;kykth½ ,o ipdk'k dh vo/kkj.kk

- योग क्रिया विज्ञान (यौगिक फिजियोलॉजी)
- पंचकोश का अर्थ एवं वर्गीकरण
- भारतीय आध्यात्मिक और दार्शनिक परम्परा में पंचकोश का वर्णन
- मानव जीवन में पंचकोश का महत्त्व

bdkb ¼;fuV½ & 3 ;kfxd LokLF; icU/ku

- यौगिक स्वास्थ्य प्रबंधन का सामान्य परिचय
- बाल्यावस्था का यौगिक प्रबन्धन
- किशोरावस्था का यौगिक प्रबन्धन
- युवावस्था का यौगिक प्रबन्धन
- प्रौढ़ावस्था का यौगिक प्रबन्धन
- वृद्धावस्था का यौगिक प्रबन्धन
- खिलाड़ियों के लिए यौगिक प्रबन्धन
- सुरक्षाबलों के लिए यौगिक प्रबन्धन
- फिटनेस के लिए यौगिक प्रबन्धन
- पर्यटकों के लिए यौगिक प्रबन्धन

bdkb ¼;fuV½ & 4 ruko ¼LVªl½ e ;kfxd icU/ku

- तनाव का सामान्य परिचय
- मानसिक तनाव का अर्थ एवं परिभाषा
- छात्रों में तनाव प्रबन्धन
- सामान्यजनों में मानसिक तनाव का यौगिक प्रबन्धन
- कॉर्पोरेट एवं सेवा सेक्टर में मानसिक तनाव का यौगिक प्रबन्धन

bdkb ¼;fuV½ & 5 efgykvk d fy, ;kfxd icU/ku

- महिला स्वास्थ्य का सामान्य परिचय
- मासिक धर्म की समस्या में यौगिक प्रबन्धन
- गर्भावस्था एवं प्रसवोत्तर के दौरान यौगिक प्रबन्धन
- रजोनिवृत्ति के दौरान यौगिक प्रबन्धन

bdkb ¼;fuV½ & 6 'olu ,o ân; ¼dkfMZ;koLdyj½ lEcU/kh jkx ,o ;kfxd fpfdRlk

- श्वसन तंत्र के प्रमुख रोग
- श्वसन तंत्र के प्रमुख रोगों की यौगिक चिकित्सा
- हृदय से सम्बन्धित प्रमुख रोग
- हृदय रोगों की यौगिक चिकित्सा

bdkb ¼;fuV½ & 7 ikpu ,o e=&ituu lEcU/kh jkx ,o ;kfxd fpfdRlk

- पाचन तंत्र के प्रमुख रोग
- पाचन तंत्र के रोगों की यौगिक चिकित्सा
- मूत्रवह तंत्र से सम्बन्धित प्रमुख रोग
- मूत्ररोगों की यौगिक चिकित्सा
- प्रजनन रोगों की यौगिक चिकित्सा

bdkbl ¼;fuV½ & 8 eLdyk&LdyVy lc/kh jkx ,o ;kfxd fpfdRlk

- पेशीय तंत्र के प्रमुख रोग
- मांसपेशियों में दर्द और जकड़न की यौगिक चिकित्सा
- अस्थि तंत्र से सम्बन्धित प्रमुख रोग
- अस्थि रोगों की यौगिक चिकित्सा

bdkbl ¼;fuV½ & 9 rf=dk rU= lEcU/kh jkx ,o ;kfxd fpfdRlk

- तंत्रिका तंत्र के प्रमुख रोग
- तंत्रिका तंत्र के रोगों की यौगिक चिकित्सा

bdkbl ¼;fuV½ & 10 ;kx ,o LokLF;

- स्वास्थ्य की अवधारणा
- स्वस्थवृत, दिनचर्या एवं रात्रिचर्या
- ऋतुचर्या

bdkbl ¼;fuV½ & 11 0;kogkfjd eukfoKku

- व्यावहारिक मनोविज्ञान का अर्थ एवं परिभाषाएँ
- व्यावहारिक मनोविज्ञान की परिभाषाएँ
- व्यावहारिक मनोविज्ञान का इतिहास एवं विकास
- व्यावहारिक मनोविज्ञान के क्षेत्र

bdkbl ¼;fuV½ & 12 0;fDrRo dh vo/kkj.kk

- व्यक्तित्व की अवधारणा
- व्यक्तित्व के निर्धारक (Determinants of Personality)

bdkbl ¼;fuV½ & 13 eukoKkfud leL;k,¡ ,o ;kfxd ic/ku

- स्वास्थ्य संबंधी मनोवैज्ञानिक समस्याएँ
- चिंता एवं अवसाद, लक्षण, कारण एवं यौगिक प्रबंधन

bdkbl ¼;fuV½ & 14 0;lu ,o eknd inkFkk dk diHkko vkj efDr

- व्यसन
- मादक पदार्थों का दुष्प्रभाव
- व्यसन मुक्ति के लिए यौगिक प्रबंधन

bdkbl ¼;fuV½ & 15 thou'kyh lEcf/kr jkx ,o mudh ;kfxd fpfdRlk

- जीवनशैली जनित रोगों का सामान्य परिचय
- हृदय रोग
- मानसिक तनाव (Stress) का सामान्य परिचय एवं लक्षण
- मधुमेह रोग (Diabetes)
- मोटापा रोग (Obesity) का सामान्य परिचय एवं लक्षण
- थायरॉयड सम्बन्धी रोगों का सामान्य परिचय एवं लक्षण
- जीवनशैली जनित रोगों की यौगिक चिकित्सा
- महत्वपूर्ण सुझाव

l¡)kfUrd fo"k; & 2 ¼ ikÑfrd fpfdRlk & 818

bdkbZ ¼;fuV½ & 1 LokLF; vkSj jksx

- स्वास्थ्य की अवधारणा
- रोग
- रोग उत्पन्न होने के मुख्य कारण
- प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्तानुसार, रोग का वर्गीकरण

bdkbZ ¼;fuV½ & 2 jksxh dh ijh{kk ¼tkap½

- रोगी का इतिवृत्त (Case History of Patient) लेने की विधि
- रोगी का इतिवृत्त लेना
- रोगी की परीक्षा (जांच) की विभिन्न विधियां

bdkbZ ¼;fuV½ & 3 fpfdRlk ,oa fofHkUu fpfdRlk i)fr;k

- चिकित्सा का अर्थ
- चिकित्सा का लक्ष्य
- चिकित्सा के विभिन्न भेद और विधियां
- चिकित्सा के परिपेक्ष्य में विभिन्न चिकित्सा पद्धतियाँ
- चिकित्सक के कर्त्तव्य
- सहायक चिकित्सक (परिचारक) के कर्त्तव्य
- रोगी एवं पारिवारिक सदस्यों के कर्त्तव्य

bdkbZ ¼;fuV½ & 4 vkdk'k rRo fpfdRlk fofHkUu fof/k;k¡ ,oa vuqç;ksx

- आकाश तत्व एवं इसकी महत्त्वता
- उपवास
- कल्प
- विश्राम
- प्रगाढ़ निद्रा
- प्रसन्नता

bdkbZ ¼;fuV½ & 5 ok;q rRo fpfdRlk] fofHkUu fofèk;k¡ ,oa vuqç;ksx

- वायु तत्व एवं इसकी महत्त्वता
- वायु तत्व चिकित्सा– परिचय, इतिहास तथा विभिन्न विधियां
- मर्दन या मालिश
- व्यायाम, अर्थ, उद्देश्य और आवश्यकता

bdkbZ ¼;fuV½ & 6 vfXu rRo fpfdRlk fofHkUu fof/k;k¡ ,oa vuqiz;ksx

- अग्नि तत्व चिकित्सा एवं महत्व
- प्रकाश विश्लेषण एवं रंग चिकित्सा
- सूर्य/धूप स्नान चिकित्सा
- सूर्य की सप्त रश्मियों द्वारा चिकित्सा

bdkbl ¼;fuV½ & 7 ty rRo fpfdRlk fofHkUu fof/k;k ,o vuç;kx

- जल तत्व चिकित्सा एवं महत्त्व
- जल चिकित्सा का अर्थ, परिभाषा और इतिहास
- जल तत्व चिकित्सा की विभिन्न विधियां एवं अनुप्रयोग
- जल चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न प्रकार की पट्टियां एवं लपेट
- सम्पूर्ण गीली चादर लपेट
- ठन्डे जल के आतंरिक प्रयोग

bdkbl ¼;fuV½ & 8 iFoh rRo fpfdRlk fofHkUu fof/k;k ,o vuç;kx

- चिकित्सीय दृष्टि में पृथ्वी तत्व एवं इसकी महत्त्वता
- मिट्टी चिकित्सा का अर्थ एवं परिभाषा
- मिट्टी के विभिन्न प्रकार तथा चिकित्सा में उपयोगिता
- पृथ्वी तत्व चिकित्सा की विभिन्न विधियां और उनके अनुप्रयोग

bdkbl ¼;fuV½ & 9 L=h jkxk e çk—frd fpfdRlk icU/ku

- महिला स्वास्थ्य – परिचय
- महिलाओं में सामान्य रोग
- सामान्य स्त्री रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा
- महिलाओं की मासिक धर्म की प्रमुख समस्याएं
- गर्भावस्था एवं प्रसवोत्तर अवस्था की समस्याएं
- रजोनिवृत्ति अवस्था की समस्याएं

bdkbl ¼;fuV½ & 10 cky jkxk e ikÑfrd fpfdRlk

- बाल रोगों का परिचय एवं कारण
- बाल रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

bdkbl ¼;fuV½ & 11 'olu ,o ân; lca/kh j¨x¨ dh ikÑfrd fpfdRlk

- श्वसन तंत्र संबंधी रोगों का सामान्य परिचय एवं कारण
- श्वसन तंत्र रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा
- हृदय सम्बन्धित प्रमुख रोगों के कारण
- हृदय रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

bdkbl ¼;fuV½ & 12 ikpu vkj mRltu o ituu r= lca/kh jkxk dh ikÑfrd fpfdRlk

- पाचन तंत्र संबधी रोगों का सामान्य परिचय एवं कारण
- पाचन तंत्र के रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा
- उत्सर्जन व–प्रजनन से सम्बन्धित प्रमुख रोगों का परिचय
- मूत्र–जनन से सम्बन्धित रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

bdkbl ¼;fuV½ & 13 eLdyk&LdyVy flLVe lca/kh jkxk dh ikÑfrd fpfdRlk

- मस्कुलो–स्केलेटल सिस्टम संबंधी रोगों का सामान्य परिचय एवं कारण
- मस्कुलोस्केलेटल तंत्र के रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

bdkbl ¼;fuV½ & 14 rf=dk rU= lEcU/kh jkxk ,o ikÑfrd fpfdRlk

- तंत्रिका तंत्र के प्रमुख रोगों का सामान्य परिचय एवं कारण
- तंत्रिका तंत्र के रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

bdkbl ¼;fuV½ & 15 thou'kyh lEcf/kr jkx ,o mudh çk—frd fpfdRlk

- जीवनशैली सम्बंधित रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

bdkbl ¼;fuV½ & 16 dkjkuk jkx l cpko] jkdFkke ,o mipkj

- कोरोना रोग का सामान्य परिचय
- कोरोना रोग से बचाव, रोकथाम एवं उपचार
- महत्वपूर्ण सुझाव

l)kfUrd fo"k; & 3 ¼ vU; ikphu ikÑfrd fpfdRlk i)fr;k & 819

bdkbl ¼;fuV½ & 1 çkphu çk—frd fpfdRlk i)fr;k dh voèkkj.kk ,o oKkfudrk

- प्राचीन प्राकृतिक चिकित्सा पद्धतियों की अवधारणा
- पारम्परिक चिकित्सा पद्धतियों के मूलभूत सिद्धांत
- पारंपरिक प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति के वैज्ञानिक पहलू
- पूरक चिकित्सा एवं आधुनिक चिकित्सा का तुलनात्मक अध्ययन

bdkbl ¼;fuV½ & 2 fofHkUu çdkj dh ijd fpfdRlk i)fr;k

- पूरक चिकित्सा एवं वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति
- विभिन्न पारम्परिक प्राकृतिक चिकित्सा पद्धतियों का विवरण
- पारम्परिक प्राकृतिक चिकित्सा पद्धतियों के लाभ, महत्व एवं सीमाएं

bdkbl ¼;fuV½ & 3 ,D;ii'kj fpfdRlk i)fr

- एक्युप्रेशर चिकित्सा का परिचय
- एक्युप्रेशर का अर्थ एवं परिभाषा
- एक्युप्रेशर चिकित्सा का इतिहास
- एक्युप्रेशर चिकित्सा पद्धति के लाभ, सीमाएं एवं सावधानियां

bdkbl ¼;fuV½ & 4 ,D;ç'kj fpfdRlk d fl)kr] fof/k o fofHkUu midj.k

- एक्युप्रेशर चिकित्सा के सिद्धांतों का परिचय
- एक्युप्रेशर चिकित्सा की विधि
- एक्युप्रेशर चिकित्सा से सबंधित उपकरण
- मानव शरीर के मुख्य एक्यु प्वाइंट्स एवं उनके कार्य

bdkbl ¼;fuV½ & 5 ,D;ii'kj fpfdRlk }kjk thou'kyh l lcf/kr jkxk dk mipkj

- सर्वाइकल स्पोंडलाइटिस
- स्लिप डिस्क
- पीठ दर्द
- सिरदर्द
- मांसपेशियों में दर्द एवं जकड़न
- घुटनों में दर्द
- तनाव (स्ट्रैस)
- उच्च रक्तचाप (हाई बीपी)

- निम्न रक्तचाप – (लो ब्लड प्रेशर)
- मधुमेह
- थायरॉइड
- मोटापा
- नेत्र संबंधी सामान्य रोग
- मोतियाबिन्द

bdkbl ¼;fuV½ & 6 ,D;i'kj fpfdRlk }kjk fofHkUu jkxk d mipkj

- पाचन संबंधी बीमारियों एवं एक्युप्रेशर चिकित्सा द्वारा उनका उपचार
- श्वसन संबंधी बीमारियां
- तंत्रिका तंत्र संबंधी बीमारियां
- मूत्रजनन विकार

bdkbl ¼;fuV½ & 7 pEcd fpfdRlk i)fr ¼eXuV Fkjih½

- चुम्बक चिकित्सा की अवधारणा
- चुम्बक चिकित्सा का इतिहास
- चुम्बक चिकित्सा के लाभ एवं उपयोगिताएं
- चुम्बक चिकित्सा के दौरान सावधानियां एवं सीमाएं

bdkbl ¼;fuV½ & 8 pEcd fpfdRlk d fl)kr

- चुम्बक चिकित्सा का सामान्य परिचय
- चुम्बकीय चिकित्सा करने की विधि एवं इसका प्रभाव
- चुम्बकीय चिकित्सा के सिद्धांत

bdkbl ¼;fuV½ & 9 pEcd fpfdRlk vkj lcf/kr midj.k

- चुम्बक चिकित्सा का संक्षिप्त परिचय
- चुम्बक चिकित्सा में उपयोग किये जाने वाले विभिन्न प्रकार के चुम्बक (मैग्नेट)
- चुम्बक चिकित्सा से संबंधित विभिन्न यंत्र उपकरण एवं अन्य साधन
- मैग्नेट थेरेपी का सही समय
- गुणों के आधार पर चुम्बक का परिचय

bdkbl ¼;fuV½ & 10 fofHkUu jkx ,o pEcd fpfdRlk

- चुम्बक चिकित्सा का उपचारात्मक पहलू
- चुम्बक चिकित्सा पद्धति से रोगों का उपचार

bdkbl ¼;fuV½ & 11 ;K fpfdRlk i)fr

- यज्ञ चिकित्सा का परिचय एवं अवधारणा
- मंत्र
- यज्ञ के प्रकार
- यज्ञ चिकित्सा की विधियां और विशेषताएं
- समिधाओं का चुनाव और उनका विशेष दहन

bdkbl ¼;fuV½ & 12 ;K fpfdRLkk }kjk jkxkipkj

- यज्ञ चिकित्सा द्वारा रोगों का उपचार
- यज्ञ चिकित्सा का महत्त्व एवं लाभ

- यज्ञ चिकित्सा की सीमाएं एवं सावधानियां
- यज्ञ में आहुति देने के समय उपयोग की जाने वाली हस्त मुद्रायें

bdkbZ ¼;fuV½ & 13 eqnzk fpfdRlk i)fr

- मुद्रा चिकित्सा विज्ञान की अवधारणा
- मुद्रा का अर्थ एवं परिभाषा
- मुद्रा विज्ञान का इतिहास
- मुद्रा विज्ञान का महत्त्व एवं लाभ
- सीमाएं और सावधानियां

bdkbZ ¼;fuV½ & 14 eqnzk fpfdRlk foKku dk fl)kar

- मुद्रा चिकित्सा विज्ञान के सिद्धांतों का परिचय
- मुद्रा चिकित्सा विज्ञान के प्रमुख सिद्धांत

bdkbZ ¼;fuV½ & 15 eqnzk fpfdRlk dh fofHkUu eqnzk,a ,oa mudh fof/k;k

- विभिन्न प्रकार की मुद्राओं का परिचय
- विभिन्न मुद्राएं एवं उनकी विधियां

bdkbZ ¼;fuV½ & 16 fpfdRlk esa mi;ksxh fofHkUu eqnzk,a ,oa muds ykHk

- मुद्राएं एवं चिकित्सा
- विभिन्न प्रकार की मुद्राएं उनके लाभ एवं उपयोगिता
- विभिन्न मुद्राओं द्वारा रोगोपचार

fo"k; & 4 ¼;kSfxd fpfdRlk ¼iz;ksfxd½ & 820

fo"k; & 5 ¼izkÑfrd fpfdRlk ¼iz;ksfxd½ & 821

fo"k; & 6 ¼vU; izkphu izkÑfrd fpfdRlk i)fr;k ¼iz;ksfxd½ & 822

---

funsZ'k dk ek/;e

निर्देश का माध्यम हिंदी और अंग्रेजी

vuqns'k ;kstuk

- स्व–निर्देशित मुद्रित सामग्री
- एवीआई / अध्ययन केन्द्रों पर सम्पर्क कक्षाओं एवं व्यावहारिक–प्रशिक्षण की सुविधा
- श्रव्य–दृश्य सामग्री

ewY;kadu vkSj çek.ku dh ;kstuk

पाठ्यक्रम के दोनों घटकों (सैद्धान्तिक और व्यावहारिक) का मूल्यांकन किया जाएगा। अंतिम परिणाम की गणना करते समय आंतरिक आंकलन और इंटर्नशिप को भी ध्यान में रखा जाएगा। आकलन, मूल्यांकन और प्रमाणन की योजना एनआईओएस द्वारा डिजाइन दिशा–निर्देशों के माध्यम से कार्यान्वित की जाएगी। एनआईओएस अपने नियमों और विनियमों के अनुसार अंतिम प्रमाणपत्र प्रदान करेगा।

Ø-l-	çkÑfrd fpfdRlk ,o ;kx foKku e fMlykek ikB;Øe	dkl dkM	vf/kd vd	le; ¼?kV e½	l=h;dk; vf/kd vd	dy vd
çFke o"k						
1	योग का आधारभूत ज्ञान (सैद्धान्तिक)	811	70	3	30	100
2	प्राकृतिक चिकित्सा का आधारभूत ज्ञान (सैद्धान्तिक)	812	70	3	30	100
3	मानव शरीर रचना, क्रिया विज्ञान और योग के प्रभाव (सैद्धान्तिक)	813	70	3	30	100
4	योग अभ्यास (प्रायोगिक)	814	70	3	30	100
5	प्राकृतिक चिकित्सा का व्यावहारिक प्रशिक्षण (प्रायोगिक)	815	70	3	30	100
6	मानव शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान (प्रायोगिक)	816	70	3	30	100
	;kx					**600**
f}rh; o"k						
1	यौगिक चिकित्सा (सैद्धान्तिक)	817	70	3	30	100
2	पंच–तत्व चिकित्सा (सैद्धान्तिक)	818	70	3	30	100
3	अन्य प्राचीन प्राकृतिक चिकित्सा पद्धतियाँ (सैद्धान्तिक)	819	70	3	30	100
4	यौगिक चिकित्सा (प्रायोगिक)	820	70	3	30	100
5	पंच–तत्व चिकित्सा (प्रायोगिक)	821	70	3	30	100
6	अन्य प्राचीन प्राकृतिक चिकित्सा पद्धतियाँ (प्रायोगिक)	822	70	3	30	100
	;kx					**600**
	इन्टर्नशिप के दौरान अनुसंधान संबन्धित परियोजना पर कार्य					200
	egk;kx ¾					**1400**

उत्तीर्णता मापदंड : परीक्षार्थी को सैद्धान्तिक, व्यावहारिक प्रशिक्षण एवं सत्रीय कार्य तीनों में 50–50 प्रतिशत अंक प्राप्त करने होंगे।

ikB;Øe 'kYd

पाठ्यक्रम का कुल शुल्क 30,000 रुपये है, जिसमें पाठ्यसामग्री, प्रक्रिया शुल्क आदि सम्मिलित है। परीक्षा में बैठने के लिए परीक्षा शुल्क एनआईओएस के नियमानुसार अलग से देय होगा। प्रवेश के दौरान अभ्यार्थी, प्रथम वर्ष में निर्धारित पाठ्यक्रम शुल्क 15,000 रुपये और द्वितीय वर्ष में 15,000 रुपये जमा करेंगे।

ukV % जो अभ्यर्थी सीधे द्वितीय वर्ष में प्रवेश लेंगे, उनके लिए यह पाठ्यक्रम शुल्क 25,000 रुपये होगा।

विषय सूची

1. स्वास्थ्य और रोग 1
2. रोगी की परीक्षा (जांच) 23
3. चिकित्सा एवं विभिन्न चिकित्सा पद्धतियां 39
4. आकाश तत्व चिकित्सा, विभिन्न विधियाँ एवं अनुप्रयोग ..,,,,,,................................. 55
5. वायु तत्व चिकित्सा, विभिन्न विधियाँ एवं अनुप्रयोग 93
6. अग्नि तत्व चिकित्सा, विभिन्न विधियाँ एवं अनुप्रयोग 117
7. जल तत्व चिकित्सा, विभिन्न विधियाँ एवं अनुप्रयोग 161
8. पृथ्वी तत्व चिकित्सा, विभिन्न विधियाँ एवं अनुप्रयोग 191
9. स्त्री रोगों में प्राकृतिक चिकित्सा प्रबन्धन 217
10. बाल रोगों में प्राकृतिक चिकित्सा 235
11. श्वसन एवं हृदय संबंधी प्रमुख रोग एवं प्राकृतिक चिकित्सा 251
12. पाचन और उत्सर्जन व जनन तंत्र संबंधी प्रमुख रोग एवं प्राकृतिक चिकित्सा...... 273
13. मस्कुलो–स्केलेटल सिस्टम संबंधी प्रमुख रोग एवं प्राकृतिक चिकित्सा................. 295
14. तंत्रिका तन्त्र सम्बन्धी प्रमुख रोग एवं प्राकृतिक चिकित्सा 311
15. जीवनशैली सम्बंधित प्रमुख रोग एवं उनकी प्राकृतिक चिकित्सा 329
16. कोरोना रोग से बचाव, रोकथाम एवं उपचार 343

fVIi.kh

1

स्वास्थ्य और रोग

प्रिय शिक्षार्थियों, पिछले सत्र में आपने प्राकृतिक चिकित्सा के इतिहास, प्रादुर्भाव, मूलभूत सिद्धांत तथा इसमें सम्मिलित चिकित्सीय तत्वों के विषय में जानकारी प्राप्त की। अब आपके मन में यह जिज्ञासा अवश्य उत्पन्न हो रही होगी कि इस सत्र में आप किन–किन विषयों पर जानकारी प्राप्त करेंगे। रोगों की चिकित्सा जानने से पहले हमें स्वास्थ्य, रोग और चिकित्सा के संबंध को समझना आवश्यक होगा। अतः इस सत्र में हम चिकित्सा को ध्यान में रखते हुए, स्वास्थ्य, रोग और चिकित्सा के विषय में पढ़ेंगे। आपको यह भी जानने की उत्सुकता अवश्य होगी कि किसी व्यक्ति को स्वस्थ या रोगग्रस्त कब कहा जा सकता है? इसके लिए यह आवश्यक है कि आप स्वास्थ्य और रोग के विषय में ठीक से जानें। इस इकाई (यूनिट) में हम स्वास्थ्य, रोग व इनके होने वाले कारणों पर प्रकाश डालेंगे, साथ ही रोगों के वर्गीकरण और चिकित्सा निर्धारण पर भी चर्चा करेंगे।

mís';

इस इकाई (यूनिट) का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- चिकित्सीय दृष्टि से स्वास्थ्य की अवधारणा पर चर्चा करने में सक्षम होंगे;
- रोग के अर्थ को समझ सकेंगे तथा विभिन्न विद्वानों व चिकित्सकों द्वारा दी गई रोग की परिभाषाओं का विश्लेषण कर सकेंगे;
- रोग उत्पन्न होने के मुख्य कारणों पर प्रकाश डाल सकेंगे;
- प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्तानुसार, रोग का वर्गीकरण कर सकेंगे।

fVIi.kh

1-1 LokLF; dh vo/kkj.kk

स्वास्थ्य की अवधारणा के विषय पर आप पिछले सत्र में विस्तार से पढ़ चुके हैं। लेकिन चिकित्सा की दृष्टि से हम, आपके साथ अब स्वास्थ्य पर चर्चा करेंगे।

LoLFk ¾ Lo$LFk vFkkZr~ Lo esa fLFkr gksuk] LokLF; dgykrk gSA

यदि कोई व्यक्ति स्वयं में स्थित है, जीवन जीने में परम सुख एवं आनंद का अनुभव करता है, तो वह स्वस्थ है।

vFkkZr~ स्वास्थ्य का अर्थ है – स्वयं में स्थित होना यानि स्वस्थ रहना।

आप जानते हैं कि, स्वस्थ रहना सबसे बड़ा सुख है और स्वस्थ तन में ही स्वस्थ मन का निवास होता है। एक पुरानी कहावत है कि – **^igyk lq[k fujksxh dk;k*A** कोई भी प्राणी इस जीवन का पूर्ण आनंद तभी तक उठा सकता है जब वह मानसिक और शारीरिक रूप से पूर्ण स्वस्थ हो। यह शरीर ही मनुष्य को चार पुरुषार्थों धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त करने के लायक बनाता है। यदि शरीर स्वस्थ नहीं है तो जीवन भार स्वरुप लगने लगता है तथा कोई भी कार्य करना असंभव प्रतीत होता है। यदि हम अपने आदि ग्रंथ की बात करें तो पता चलता है कि, स्वस्थ रहने के लिए वेदों में ईश्वर से प्रार्थना की गई है–

^i';se 'kjn% 'kre~ thoe 'kjn% 'kre~

J`.k;ke 'kjn% 'kre~ çczoke 'kjn% 'kre~

vnhuk% L;ke 'kjn% 'kre~ Hkw;'p 'kjn% 'krkr~AA

vFkkZr~ 'हम सौ वर्ष तक देखें, जिएं, सुनें, बोलें और आत्मनिर्भर रहें। (ईश्वर की कृपा से) हम सौ वर्ष से अधिक भी वैसे ही रहें।'

इसी प्रकार तैत्तिरीय उपनिषद् में भी सभी के सुखी एवं स्वस्थ रहने की प्रार्थना की गई है–

loZs HkoUrq lqf[ku%
loZs lUrq fujke;k%AA
loZs Hknzkf.k i';Urq
ek df'pr~ nq%[k HkkXHkosr~AA

अर्थात् सभी सुखी हों, सभी निरोगी रहें, सभी का जीवन मंगलमय बने और कोई भी दु:ख का भागी न बने।

अतः देखा जाये तो सभी जगह दीर्घायु के साथ–साथ रोगमुक्त अर्थात् स्वस्थ रहने की भी कामना की गई है क्योंकि स्वास्थ्य के बिना दीर्घायु भार स्वरूप है, अर्थहीन है।

LokLF; vkj jkx

fVIi.kh

आइए जानें कि हम किस व्यक्ति को स्वस्थ कहेंगे? अधिकांशतः लोगों का जवाब यही होगा कि, शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ होना और किसी रोग से ग्रसित न होना स्वास्थ्य है। लेकिन क्या यह सत्य है? आइए इसके लिए स्वास्थ्य की परिभाषाओं पर विचार करें –

1-1-1 LokLF; dh ifjHkk"kk,¡

प्रचलित चिकित्सा पद्धतियों में स्वास्थ्य की कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं है। एलोपैथी और होम्योपैथी के चिकित्सक किसी भी प्रकार के रोग के अभाव को ही स्वास्थ्य मानते हैं। किन्तु हमारे प्राचीन चिकित्सा शास्त्रों में स्वस्थ एवं स्वास्थ्य की बहुत ही सुंदर परिभाषा दी गई है।

विभिन्न प्रसिद्ध व्यक्तियों द्वारा स्वास्थ्य की परिभाषाः

i) आयुर्वेद में आचार्य सुश्रुत के अनुसार –

lenks"k% lekfXu'p le/kkrqeyfØ;%A

çlUukRefUæ;eu% LoLFk bR;fHk/kh;rsAA

अर्थात् जिसके तीनों दोष (वात, पित्त एवं कफ) समान हों, जठराग्नि सम (न अधिक तीव्र, न अति मन्द) हो, शरीर को धारण करने वाली सात धातुएं (रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र) उचित अनुपात में हों, मल–मूत्र की क्रियाएं भली प्रकार होती हों और दसों इन्द्रियां (आंख, कान, नाक, त्वचा, रसना, हाथ, पैर, जिह्वा, गुदा और उपस्थ), मन और आत्मा भी प्रसन्न हो, तो ऐसे व्यक्ति को स्वस्थ कहा जाता है।

vFkkZr~ eu"; dk çR;sd Lrj ij LoLFk gksuk gh LokLF; dh ifjHkk"kk gSA

ii) विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार–

^LokLF; fljQZ jksx ;k nqcZyrk dh vuqifLFkfr gh ugha cfYd ,d iw.kZ 'kkjhfjd] ekufld] lkekftd vkSj vk/;kfRed dq'ky {kse dh fLFkfr gSA*

(Health is a state of complete, physical, mental, spiritual and social wellbeing and not merely the absence of disease or infirmity.)

iii) डॉ. हेनरी लिंडलार के अनुसार–

LokLF; mu rRoksa ,oa 'kfä;ksa dk ,d lkekU; ,oa lefUor ¼harmonious½ dEiu ¼vibration½ gS] tks ekuo vfLrRo dks xfBr djus okys Hkkfrd] ekufld ,oa ufrd /kjkryksa ij 0;fä ls lEc) çÑfr ds fuekZ.kdkjh fl)kar ds vuq:i gSA

Health is normal and harmonious vibration of the elements and forces composing the human entity on the Physical, Mental and Moral planes of being in conformity with the constructive principle in Nature applied to the individual life.

fVIi.kh

iv) जे. एस. विलियम्स के अनुसार–

LokLF; thou dk og x.k g] tk 0;fä dk vf/kd le; rd thfor jgu rFkk lokÙke çdkj l lok d ;kX; cukrk gA

v) महात्मा गांधीजी के अनुसार–

मैं जितना ज्यादा विचार करता हूँ उतना ही ज्यादा महसूस करता हूँ कि ज्ञान के साथ हृदय से लिया हुआ रामनाम सारी बिमारियों की रामबाण दवा है। रामनाम द्वारा शारीरिक, मानसिक और नैतिक सभी व्याधियां दूर हो जाती हैं। ईश्वरीय नियम पालने से ही शरीर निरोग रह सकता है–शैतानी नियम पालने से नहीं जहाँ सच्चा आरोग्य है वहीं सच्चा सुख है और इसके लिए हमें स्वादेन्द्रिय जीभ को जीतना ही जरूरी है।

> **^^lku vkj pknh d VqdM ugh] cfYd LokLF; gh okLrfod /ku gA^^**
> **& egkRek xk/kh**

अच्छे स्वास्थ्य से बढ़कर कोई कीमती उपहार नहीं है। उन्होंने महसूस किया कि दुनिया में हर चीज का उपयोग और दुरुपयोग किया जा सकता है और यह हमारे शरीर पर भी लागू होता है। अपनी पुस्तक 'कीज टू हेल्थ' (Keys to Health) में उन्होंने लिखा है कि भोजन को कर्तव्य के रूप में लिया जाना चाहिए, यहां तक कि शरीर को बनाए रखने के लिए दवा के रूप में भी लेना चाहिए, लेकिन भोजन को स्वाद की पूर्ति भर के लिए कभी नहीं लेना चाहिए।

vi) प्लानिंग कमीशन (Planning Commission) के अनुसार–

LokLF; ,d ldkjkRed dY;k.k dh n'kk g] ftle 0;fä 'kkjhfjd rFkk ekufld {kerkvk dk lketL;i.k <x l fodkl djd thou dh i.k le)rk rFkk i.krk dk vkuUn yrk gA bldk rkRi;Z 0;fä d Hkkfrd rFkk lkekftd lEi.k i;koj.k d lek;ktu l gA

Health is a positive state of wellbeing in which harmonious development of mental and physical capacities of the individuals lead to the enjoyment of a rich and full life. It implies adjustment of the individual to his total physical and social environment.

vii) पं. श्रीराम शर्मा आचार्य के अनुसार–

LokLF; bl lalkj e dherh l dherh] lqnj l lqnj vkj cyoku l cyoku gA /kfu;k dh /kfudrk dk jgL;] lkUn;Z&'kkfy;k d lkUn;Z dk jgL; vkj egkohjk dh ohjrk dk jgL; LokLF; gA

1-1-2 LokLF; dh vko';drk

आपने स्वास्थ्य की विभिन्न मुख्य परिभाषाओं को जाना। आइए अब स्वास्थ्य की आवश्यकता पर विचार करें–

संसार के समस्त कार्य स्वास्थ्य पर ही निर्भर करते हैं। यदि मनुष्य स्वस्थ है वह तब ही सर्व सुखों का आनंद उठा सकता है, तभी उसे सभी प्रकार के भोग अच्छे लगते हैं। स्वस्थ न होने की स्थिति में ब्रह्माण्ड के सभी ऐश्वर्य, भोग, मूल्यवान वस्तु, उसे व्यर्थ प्रतीत होते हैं। अतः स्वस्थ रहना परम आवश्यक है। मनुष्य स्वस्थ रहकर हीः

- सुखद एवं बेहतर जीवन जी सकता है।
- अपनी आजीविका कमा सकता है अर्थात् धन कमा सकता है।
- अपने सामाजिक, नैतिक वैयक्तिक, पारिवारिक आदि सभी कर्तव्यों का भली–भांति निर्वाह कर सकता है।
- दूसरों का उपकार एवं कल्याण कर सकता है।
- दीर्घायु हो सकता है।
- स्वस्थ परिवार, समाज एवं राष्ट्र का निर्माण कर सकता है।

  आयुर्वेद में कहा गया है– **^/kekFkZdkeeks{kk.kkekjkX;: eyeÙkee*A**

  vFkkZr धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों की प्राप्ति में श्रेष्ठ मूल कारण आरोग्य अर्थात् निरोग होना ही है। अतः जीवन में स्वस्थ रहना बहुत आवश्यक है। अस्वस्थ शरीर से मानव जीवन के इन चार पुरुषार्थों को प्राप्त करना असंभव है। स्वस्थ तन में ही स्वस्थ मन का निवास होता है। स्वस्थ मन के द्वारा ही ब्रह्म का चिंतन कर सकते हैं तथा अंतिम पुरुषार्थ मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं।

- उपनिषदों में कहा गया है **^'kjhjek|a [kyq /keZlk/kue*A**

  vFkkZr शरीर ही सभी धर्मों (कर्तव्यों) को पूरा करने का साधन है। अतः शरीर को सेहतमंद बनाए रखना जरूरी है। इसी के होने से सभी का होना है अतः शरीर की रक्षा और उसे निरोगी रखना मनुष्य का सर्वप्रथम कर्तव्य है।

1-1-3 LokLF; d vx

यदि हम स्वास्थ्य की परिभाषा का अवलोकन करें तो ज्ञात होता है कि स्वास्थ्य के चार प्रमुख अंग हैं:

क. शारीरिक स्वास्थ्य (Physical Health)

ख. मानसिक स्वास्थ्य (Mental Health)

ग. सामाजिक स्वास्थ्य (Social Health)

घ. आध्यात्मिक स्वास्थ्य (Spiritual Health)

इनमें से पहले तीन विषय आप प्रथम वर्ष में विस्तार से पढ़ चुके हैं। इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत स्वास्थ्य के विषय में भी आप विस्तारपूर्वक पढ़ चुके हैं जोकि किसी भी व्यक्ति को स्वस्थ रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यहाँ हम आध्यात्मिक स्वास्थ्य के विषय पर चर्चा करेंगे।

vk/;kfRed LokLF;

शारीरिक, मानसिक और सामजिक रूप से स्वस्थ होते हुए भी मनुष्य यदि आध्यात्मिक रूप से स्वस्थ नहीं है तो वह मनुष्य पूर्ण रूप से स्वस्थ नहीं है, क्योंकि आध्यात्मिक स्वास्थ्य हमारी निजी मान्यताओं और मूल्यों में विश्वास को दर्शाता है। जीवन का अर्थ और उद्देश्य की तलाश करना और प्राप्त करना हमें आध्यात्मिक बनाता है। हालांकि अच्छे आध्यात्मिक स्वास्थ्य को प्राप्त करने का कोई निर्धारित तरीका नहीं है। यह हमें घर, परिवार और समाज के संस्कारों या किसी के सान्निध्य जैसे गुरु आदि से प्राप्त होता है। यह हमारे अस्तित्व की समझ के बारे में अपने अंदर गहराई से देखने का एक तरीका है। प्राचीन ऋषि–मुनियों ने आध्यात्मिक स्वास्थ्य की दृष्टि से ही सात्विक जीवन पर बल दिया। प्राकृतिक चिकित्सा का मानना है कि मन में असंतोष होने से, ईर्ष्या व द्वेष के भाव रखने से शरीर बहुत जल्दी रोगाक्रांत हो जाता है।

v"Vkn'k"k iqjk.k"k 0;kIL; opu };e~ A
ijksidkj% iq.;k; ikik; ijihMue~AA

अर्थात् अट्ठारह पुराणों में महर्षि व्यास ने दो बातें कहीं हैं – परोपकार से पुण्य मिलता है और दूसरों को पीड़ा देने से पाप।

इसका तात्पर्य यह है प्राणी मात्र के कल्याण की भावना रखना, उन्हें किसी भी प्रकार (मन, वचन और कर्म) से कष्ट न पहुँचाना आदि आध्यात्मिक स्वास्थ्य के कुछ पहलु हैं। आइये कुछ और पहलुओं को जानें:

- असीम सत्ता, प्रकृति, आत्मा व परमात्मा में विश्वास रखना।
- 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' (सभी सुखी हों) का आचरण करना।
- तन, मन एवं धन की शुद्धता रखना।
- परस्पर सहानुभूति रखना।
- संतोष रखना।
- परोपकार एवं लोक कल्याण की भावना रखना।
- कथनी एवं करनी में अन्तर न करना।
- प्रतिबद्धता और कर्त्तव्यपालन करना।
- योग एवं प्राणायाम का अभ्यास करना।
- श्रेष्ठ चरित्रवान व्यक्तित्त्व हो।
- इन्द्रियों को संयम में रखना।

LokLF; vkj jkx

- सकारात्मक व सात्विक जीवन शैली जीना।
- पुण्य कार्यों के द्वारा आत्मिक उत्थान करने वाला हो।
- अपने शरीर सहित इस भौतिक जगत की किसी भी वस्तु से मोह न रखना।
- दूसरी आत्माओं के प्रभाव में आए बिना उनसे भाईचारे का नाता रखना।
- समुचित ज्ञान की प्राप्ति की सतत इच्छा करना।
- अस्तेय का पालन करना अर्थात् चोरी न करना।
- निष्काम भाव अर्थात् आसक्तिरहित होकर अपने कर्मों को निरंतर करते रहना।

fVIi.kh

bdkbxr iz'u&1-1

1) सही अथवा गलत बताएं–

क) शारीरिक और मानसिक रूप से कोई रोग न होना ही स्वास्थ्य है। ( )

ख) स्वास्थ्य के बिना भी हम जीवन का पूर्ण आनंद उठा सकते हैं। ( )

2) विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार स्वास्थ्य की परिभाषा है–

....

....

....

....

....

3) स्वास्थ्य के चार प्रमुख अंग हैं –

....

....

....

....

....

fVIi.kh

1-2 jkx

आपने स्वास्थ्य और हमारे जीवन में इसके महत्त्व के बारे में जाना। अब मन में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि रोग क्या है और स्वस्थ न होने के क्या कारण होते हैं? आइये अब इन पर चर्चा करें –

^#trhfr jkxk* vFkkr~ #tk vFkkr~ 'kjhj ;k eu e fdlh Hkh çdkj dh gkfu okyh onuk vFkok ihMk dk jkx dgr gA vxth e jkx dk Disease dgr gA Disease 'kCn dh mRifÙk çkphu Ýkalhlh 'kCn 'Desaise' l gbl g] ftldk vFk g & ^lgtrk ;k l[k dh deh* ¼lack of ease½A

शिक्षार्थियों, क्या कभी आपने अनुभव किया है कि आप कभी–कभी अपने आपको –

- तरो–ताजा, स्फूर्तिवान, प्रसन्न–चित्त नहीं पाते हैं,
- आपके शरीर के किसी विशेष भाग या अंग में, या फिर पूरे शरीर में दर्द हो रहा होता है,
- शरीर का तापमान बढ़ जाता है,
- आप उठने, चलने फिरने या किसी काम को करने की हिम्मत नहीं जुटा पाते हैं, आदि–आदि।

उपर्युक्त संकेतों या दूसरे अन्य संकेतों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आप स्वस्थ नहीं हैं अपितु किसी ना किसी रोग से पीड़ित हो चुके हैं।

इस प्रकार हमारे शरीर में जब किसी प्रकार का कष्ट, वेदना या दुःख होता है, उस अवस्था को रोग कहते हैं अर्थात् **LokLF; dh ifjofrZr voLFkk gh jkx dgykrh gA** जैसे कि– यदि शरीर का तापमान यदि सामान्य से ज्यादा हो जाये तो इस अवस्था को ज्वर या बुखार कहते हैं।

1-2-1 jkx d i;k;

आयुर्वेद में आचार्य चरक के अनुसारः

r= 0;kf/kjke;k xn vkrad ;{ek Tojk fodkjk jkx bR;uFkkUrjeA

अर्थात् आचार्य चरक ने व्याधि, आमय, गद, आतंक, यक्ष्मा, ज्वर, विकार आदि ये सभी रोग के पर्याय बताए हैं। आइये इनमें से कुछ के अर्थों को जानें:

i) 0;kf/k& fofo/kekf/k n%[kekn/kkfr 'kjhj euflpfr 0;kf/kA

किसी भी प्रकार की वेदना, जो शरीर या मन में अनुभव हो, उसे व्याधि कहते हैं। इसी अभिप्राय से आयुर्वेद में भूख, प्यास तथा बुढ़ापे आदि को भी, जोकि स्वाभाविक स्थितियां हैं अर्थात् प्रत्येक मनुष्य इनसे अवश्य गुजरता है, उनको भी व्याधि के अंतर्गत सम्मिलित किया है क्योंकि ये भी मनुष्य को कुछ न कुछ कष्ट अवश्य देती हैं।

ii) **vke; &** आमय अर्थात् आम रस, जिसे प्राकृतिक चिकित्सा में विजातीय द्रव्य कहते हैं, प्रायः शरीर में उत्पन्न होने वाली अनेक व्याधियों का कारण होता है।

iii) **fodkj & ^fodkjk c)hfUæ;eu% 'kjhjk.kke fo—fr*** अर्थात् शरीर, बुद्धि, इन्द्रिय और मन के कार्यों में विकृति आना विकार कहलाता है। जब शरीर में रोग उत्पन्न होता है तब बुद्धि यथावत कार्य नहीं करती तो शरीर, इन्द्रिय व मन विकारग्रस्त अथवा रोगग्रस्त हो जाते हैं।

1-2-2 jkx dh ifjHkk"kk,a

कुछ विद्वानों द्वारा रोग को परिभाषित किया गया है, आईए उनके मतानुसार रोग की परिभाषाएं जानें–

i) **vkpk;Z lJqr d vuqlkj &** पंचमहाभूतों व आत्मा के संयोग से निर्मित पुरुष में जब दुखों का संयोग होता है, तब उसे व्याधि कहते हैं।

ii) **egf"kZ irtfy d vuqlkj &** 'तत्र प्रतिकूल वेदनीयम दुखं' अर्थात् मन व शरीर के प्रतिकूल किसी भी अवस्था में दुःख उत्पन्न होता है और दुःखकारक अवस्था को ही व्याधि या रोग कहते हैं। इसलिए मानसिक विकार जैसे– इच्छा, द्वेष, क्रोध, भय आदि इसमें सम्मिलित हैं।

iii) **i- Jhjke 'kekZ vkpk;Z th d vuqlkj &** रोग प्रकृति की वह क्रिया है, जिससे शरीर की सफाई होती है। शरीर से मल और रोगों के हटाने के प्रयत्न को रोग कहते हैं।

iv) **M,- gujh fyMykj d vuqlkj&** रोग उन तत्वों एवं शक्तियों का एक असामान्य या असमन्वित कम्पन है, जो मानव अस्तित्व को गठित करने वाले भौतिक, मानसिक एवं नैतिक में से किसी एक या अधिक धरातलों पर व्यक्ति से सम्बद्ध प्रकृति के विनाशकारी सिद्धांत के अनुरूप है।

v) **fofy;e gkoMZ d vuqlkj&** प्रत्येक रोग शरीर में संचित विष को सहन करने की सीमा के अतिक्रमण का दूसरा नाम है।

vi) **çk- th-lQ fLeFk d vuqlkj &** दवाओं से रोग अच्छा नहीं होता, केवल दबता है। रोग हमेशा प्रकृति अच्छा करती है।

vii) **yqbZ dqu d vuqlkj &** शरीर के भीतर विजातीय द्रव्य के जमा होने का ही नाम रोग है।

उपर्युक्त परिभाषाओं को देखने से यही ज्ञात होता है कि जब व्यक्ति प्रकृति विरुद्ध आहार–विहार अपनाता है तो उसके शरीर के अंदर विजातीय द्रव्य, जिसे विष, आम, दूषित मल भी कहते हैं, एकत्रित हो जाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप वह रोगग्रस्त हो जाता है तथा प्रकृति के नियमों का पालन करके, वह फिर से रोग मुक्त हो जाता है।

fVIi.kh

1-2-3 jkxh d s lkekU; y{k.k

जब हम अस्वस्थ महसूस करते हैं, तो शरीर में कुछ ऐसे लक्षण दिखाई देते हैं, जिससे हमें पता चलता है कि हम रोगग्रस्त हो चुके हैं। तो आइये जानते हैं कि, रोगग्रस्त व्यक्ति में कौन–कौन से लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं –

i) शरीर में ताजगी, स्फूर्ति, बल आदि की कमी हो जाती है।

ii) आलस्य अथवा नीरसता छाई रहती है, वह बेचैन रहता है।

iii) चेहरे पर थकान दिखाई देती है।

iv) रोगी की आंखें पीली या लाल या फिर सफेद दिखाई दे सकती हैं।

v) पुतलियों में सफेद या काले रंग धब्बे भी हो सकते हैं।

vi) जिह्वा सफेद, रूखी, किनारों से कटी हुई दिखाई दे सकती हैं।

vii) रोगी के नाखून अधिक सफेद/पीले या बहुत पतले या मोटे हो सकते हैं।

viii) लंबे समय से चले आ रहे रोगों या फिर कैंसर जैसे घातक रोगों में, बाल असमय सफेद होने लगते हैं, रूक्ष हो जाते हैं और झड़ने लगते हैं।

ix) इनके अतिरिक्त रोगी मानसिक तौर पर स्थिर नहीं दिखता।

bdkbZxr iz'u&1-2

1) रिक्त स्थान भरिये :

क) लुई कुने के अनुसार, शरीर के भीतर .... के जमा होने का ही नाम रोग है।

ख) विलियम हावर्ड के अनुसार, प्रत्येक रोग शरीर में संचित .... को सहन करने की सीमा के अतिक्रमण का दूसरा नाम है।

2) सही अथवा गलत बताएं:

क) रोगी व्यक्ति बहुत फुर्तीला होता है। ( )

ख) रोगी व्यक्ति के चेहरे पर बहुत तेज होता है। ( )

ग) रोगी व्यक्ति मानसिक रूप से स्थिर नहीं होता। ( )

fVIi.kh

1-3 jkx mRiUu gkus ds e[; dkj.k

एलोपैथी, जिसे आधुनिक चिकित्सा शास्त्र कहा जाता है, में अधिकतर रोगों का कारण जीवाणुओं को माना जाता है। परन्तु प्राकृतिक चिकित्सकों का सिद्धांत इस सम्बन्ध में सभी से भिन्न है। यहां रोग का कारण मूलतः विजातीय द्रव्य को ही मानते हैं, अर्थात् प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार रोगों के होने का एकमात्र कारण शरीर में विजातीय द्रव्य का इकट्ठा होना है। हमारा खान–पान, रहन–सहन, कार्य–शैली आदि सब प्रकृति विरुद्ध होता जा रहा है, जिससे विजातीय द्रव्य शरीर में उत्पन्न हो जाते हैं।

मनुष्य अपने गलत आचरण, क्रोध, लोभ–मोह, नकारात्मक चिंतन, खाने–पीने की गलत आदतों, स्वादलोलुप्ता के कारण अस्वस्थ होता है। स्वच्छंद जीवन जीने वाले, प्रकृति के नियमों पर चलने वाले पशु–पक्षियों में कोई बीमारी नहीं पाई जाती। आजकल उनमें भी जो रोग पाए जा रहे हैं वे सभी मानव प्रदत्त हैं। विभिन्न चिकित्सा शास्त्रों व विद्वानों के मत से रोग के विभिन्न कारण बताये गए हैं। आइये जानें कि रोग उत्पन्न होने के मुख्य कारण क्या है;

i½ fotkrh; æ0;

ii½ vçk—frd thou'kyh

iii½ thouh'kfä dk ºkl

iv½ oa'kkuxr

v½ vkdfLed n?kVuk ;k vk?kkr ;k ckä çgkj

vi½ feF;kipkj

vii½ jkxkRikn thok.k ;k dhVk.k vkfn

i) fotkrh; æ0;

जैसा कि विजातीय द्रव्य के नाम से ही ज्ञात होता है, जो शरीर के जाति का नहीं है, वह विजातीय द्रव्य है। शरीर के वे विकार या वस्तु जो स्वस्थ रक्त और मांस के साथ मिलकर स्वस्थ शरीर का भाग नहीं बन सकती, शरीर का पालन–पोषण नहीं कर सकती बल्कि उसके विनाश का कारण बन सकती है, उसे ही विजातीय द्रव्य या दोष कहा जाता है। अर्थात् हम कह सकते हैं कि शरीर में जो अनुपयोगी चीजें होती हैं, जैसे– मल, मूत्र, पसीना, कफ, दूषित सांस, दूषित रक्त, दूषित मांस, पीप आदि जो शरीर को विषाक्त व दूषित करते हैं, शरीर का विनाश करते हैं, शरीर के लिए अनुपयोगी है, उसे ही दोष, विकार, मल या विजातीय द्रव्य के नाम से जाना जाता है। इसे हम कई और अन्य नामों से भी जान सकते हैं यथा– रोग, मल, विकार, विष, क्लेद, संचित दुर्द्रव्य, विसदश द्रव्य (Foreign matter), दूषित पदार्थ (Morbid Matter), विकृति, बादी आदि। आयुर्वेद में विजातीय द्रव्य को दोष कहा जाता है। इस दोष को ही रोग का कारण माना गया है।

fVIi.kh

आचार्यवाग्भट्ट के अनुसार – ***nks"k ,ofg lo"kke jksx.kked dkj.kAA***

अर्थात् सब रोगों का एकमेव कारण दोष (विजातीय द्रव्य) है।

आचार्य चरक ने भी कहा है –

lo"kkeo jksxk.kk funku dfirk eyk%A

rRçdkiL; r çkä fofo/kkfgrloueAA & pjd

अर्थात् सभी रोगों का कारण कुपित (fermented) सड़ा हुआ मल या विजातीय द्रव्य (foreign matter) ही है और उसके प्रकोप का कारण विविध अहित आहार–विहार का सेवन है।

जब ये दोष किसी भी वजह से चाहे अहित आहार–विहार से या मन्दाग्नि के कारण कुपित होते हैं तो शरीर में रोग की उत्पत्ति करते हैं।

विजातीय द्रव्य के बारे में लूई कूने का कहना है कि ''विजातीय द्रव्य बिल्कुल बेकार चीज है और शरीर को उसकी आवश्यकता नहीं है। तंदुरूस्त मनुष्य पर विजातीय द्रव्य का प्रभाव नहीं पड़ता। यदि ऐसा होता तो उसमें भी उस पहलु में विजातीय द्रव्य जमा होता, जिस पहलु के बल वह सोता है। खुशी की बात तो यह है कि शरीर अपने आप ही विजातीय द्रव्य को फोड़ा–फुंसी, पसीना आदि के द्वारा बाहर निकालता रहता है। जब विजातीय द्रव्य इस प्रकार काफी निकल जाता है, तब शरीर को बड़ी शांति मिलती है। यदि विजातीय द्रव्य शरीर में जमा होते रहें तो शरीर में रोग उत्पन्न होने लगता है। विजातीय द्रव्य द्रव होता है। उसमें सड़न पैदा होती है और अधिक सड़न से उसका तापमान बढ़ेगा। विजातीय द्रव्य के कण एक दूसरे से और शरीर से रगड़ खाते हैं, इसलिए तापमान बढ़ता है, इसी को हम ज्वर कहते हैं। अर्थात् (1) जब साफ पाखाना नहीं होता, (2) जब पेशाब खुलकर नहीं होता, (3) जब पसीना नहीं आता, तब ज्वर होता है।''

जिस अंग पर विजातीय द्रव्य का प्रभाव अधिक पड़ता है, उसी नाम से उस रोग का नामकरण होता है, जैसे– उदर रोग, फेफड़ों का रोग, हृदय का रोग आदि। जहाँ यह विजातीय द्रव्य अपना स्थान बना लेता है, उसी स्थान में वह रोग उत्पन्न कर देता है और डॉक्टर लोग उसका एक नाम रख देते हैं। विजातीय द्रव्य में सड़न से कीटाणुओं की उत्पत्ति होती है। यदि प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा सड़न को रोक दिया जाए व विजातीय द्रव्य को बाहर निकाल दिया जाए तो रोग व कीटाणु दूर हो जाते हैं और व्यक्ति स्वस्थ होकर तंदुरूस्त हो जाता है।

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य के अनुसार, रोगों का मुख्य कारण शारीरिक मल जिसे विजातीय द्रव्य कहा जाता है, माना गया है। जब हम प्रकृति के नियमों के विरूद्धाचरण करके आहार–विहार दूषित बना लेते हैं और जिह्वा तथा भोगेन्द्रियों की तृप्ति के लिए आवश्यकता से अधिक भोग्य पदार्थों का प्रयोग करने लगते हैं तो हमारे शारीरिक अंगों पर अधिक भार पड़ता है जिनमें आमाशय प्रमुख हैं।

- जब आमाशय का कार्यभार बढ़ जाता है तो वह खाये हुए भोजन का रस पूर्ण रूप से निकाल नहीं पाता और अर्द्धमुक्त आहार ही हमारे मलाशय में पहुँच जाता है और वहाँ शीघ्र ही सड़ने लगता है और उसमें से गंदगी मिश्रित रस निकलकर रक्त में मिल जाता है।

- यह दूषित रक्त ही रोगों का मूल कारण है क्योंकि वह रक्तवाहिनी नसों द्वारा समस्त शरीर में संचरण करता रहता है और अपनी उस गंदगी को जगह–जगह अस्वास्थ्यकर अवस्था उत्पन्न करता है। इसके अतिरिक्त जीवकोष (सेल) हमेशा टूटते–फूटते रहते हैं। अगर वे ठीक समय से शरीर के बाहर न निकाल दिये जायें तो वे भी मल की तरह विकार उत्पन्न करते है।
- इसी प्रकार शरीर के विभिन्न अंग यकृत, गुर्दा, आमाशय, फेफड़ा आदि जो कार्य करते रहते हैं, उनकी कार्यप्रणाली से भी कार्बोनिक एसिड, यूरिक एसिड, फास्फोरिक एसिड आदि कई विषाक्त द्रव्य उत्पन्न होते हैं। इनको भी बाहर निकालना आवश्यक होता है।
- चौथे नंबर पर शरीर के दोषयुक्त अंग, खराब टांसिल, कमजोर दांत, प्रदाहयुक्त श्वासनली से भी विष उत्पन्न होते हैं। शरीर पूर्ण स्वस्थ न हो तो शरीर के भीतर रहने वाले विभिन्न प्रकार के कीटाणु भी विष के परिमाण को बढ़ाते हैं। यह समस्त विष या मल शरीर के लिए विजातीय ही है और हमारे स्वास्थ्य का आधार इसी पर है कि यह शीघ्र से शीघ्र मलद्वार, मूत्रनली, फेफड़े, चर्म आदि के द्वारा निकलता चला जाये।
- यदि ये मल मार्ग साफ व खुले रहते हैं तो आसानी से मल को निकालते रहते हैं तो किसी रोग की संभावना नहीं रहती है पर यदि किसी कारणवश इनमें कुछ खराबी आ जाती है तो ये अपना कार्य ठीक ढंग से नहीं कर सकते तो शरीर के भीतर विजातीय द्रव्य की वृद्धि होने लगती है और जब वह एक नियत सीमा को पार कर जाती है तो रोग प्रकट होने लगते हैं।

  विजातीय द्रव्य इकट्ठा होने के मुख्यतः दो कारण हैं:

  अ) बाह्य

  ब) आंतरिक

cká dkj.k & शारीरिक धर्म अथवा स्वास्थ्य सिद्धांत के विरुद्ध आचरण करना रोग का बाह्य कारण कहलाता है।

vkrfjd dkj.k & अनिष्टकारी मनोवृत्तियों जैसे लोभ, मोह, क्रोध आदि का असंगत प्रयोग तथा अहितकर चिंतन या चिंता, बेबुनियाद कल्पना, भय, अवसाद, निराशा आदि रोग के आंतरिक कारण कहलाते हैं।

सभी प्रकार के शारीरिक व मानसिक रोग इन्हीं कारणों से होते हैं। रोगों का बाह्य कारण स्थूल भाव से शरीर पर और आंतरिक कारण सूक्ष्म रूप से मन पर प्रभाव डालते हैं। शरीर में उत्पन्न हुए रोग मन पर और मन में उत्पन्न हुए रोग शरीर पर प्रभाव डालते हैं।

ii) vçk—frd thou 'kyh

रोगग्रस्त होने का सर्वप्रमुख कारण प्राकृतिक जीवनशैली का अनुसरण न करके, इसके विपरीत आचरण करना। इसके फलस्वरूप हम रोगी हो जाते हैं क्योंकि प्रकृति के नियमों के विरुद्ध जाने से शरीर में दोषों का संचय होता है और वही विजातीय द्रव्य के रूप में रोग का कारण बनते हैं। हमारे शरीर में एक जैविक घड़ी (biological clock) है जो प्रकृति के नियमानुसार चलती है। यदि हम प्रकृति के

नियमों पर नहीं चलते तो यह ठीक से काम करना बंद कर देती फलस्वरूप रोग उत्पन्न होते हैं। कुछ आदतें जो अप्राकृतिक जीवन शैली का प्रमुख हिस्सा हैंः

- आहार संबंधी बुरी आदतें जैसे समय पर न खाना या समय व्यतीत होने पर खाना, ताजे फल सब्जियों की अपेक्षा बाजार में मिलने वाले डिब्बा बंद फल–सब्जियों और जूस पर अधिक जोर देना।
- आलस्य – सुबह जल्दी उठने का आलस करना, नियमित व्यायाम न करने का आलस आदि।
- कृत्रिम पदार्थों जैसे संसाधित खाद्य पदार्थों (processed food products) को जीवन में नियमित रूप से प्रयोग करना, विभिन्न प्रकार के रसायनों से बने प्रोटीन शेक्स का प्रयोग आदि।
- मानसिक कुविचार या नकारात्मक सोच रखना।

iii) thouh 'kfä dk °kl

जीवनी शक्ति वह है जो, शरीर में रोगों के विरुद्ध लड़ती है और हमें रोगों से बचाती है।

यदि शरीर में इसकी कमी हो जाये तो शरीर जल्दी–जल्दी रोगग्रस्त होने लगता है अर्थात् शरीर में रोग उत्पन्न होते हैं। यह तो आपने अपने दैनिक जीवन में भी अनुभव किया होगा कि जिन लोगों की रोगों से लड़ने की क्षमता कम होती है वे अधिक बीमार रहते हैं। जीवनीशक्ति ह्रास के कुछ प्रमुख कारण हैंः

- अप्राकृतिक जीवन शैली
- अप्राकृतिक औषधियों का अत्यधिक या गलत प्रयोग
- शक्ति से अधिक श्रम करना
- अधिक चिंता करना या मानसिक व्याधियां

iv) o'kkuxr

ऐसे रोग, जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में स्थानांतरित होते हैं, जैसे – हीमोफिलिया (Hemophilia), थैलेसीमिया (Thalassemia), मधुमेह, मोटापा आदि। वंशानुगत रोगों का प्रमुख कारण जीन्स (genes) में गड़बड़ी है। वंशानुगत रोग भी मुख्यतः अप्राकृतिक जीवन शैली की देन है, जिनकी वजह से विजातीय द्रव्य संचित हो जाता है।

v) vkdfLed n?kVuk ;k ckáçgkj

स्वस्थ व्यक्ति भी कभी–कभी आकस्मिक दुर्घटना जैसे अकस्मात् चोट लगने, गाड़ी के दुर्घटनाग्रस्त होने, पेड़–पहाड़ या ऊंचाई आदि से गिरने, पैर फिसलने या आग की किसी घटना का शिकार होने से घायल हो जाता है तथा उसकी त्वचा, मांस, अस्थि, नाड़ियों आदि में टूटने–फूटने से वह रोग ग्रस्त हो जाता है।

vi) feF;kipkj

मिथ्योपचार का शाब्दिक अर्थ है – मिथ्या उपचार अर्थात् गलत उपचार, उपचार के गलत तरीके, अधिक मात्रा में उग्र औषधियों का, अनावश्यक सेवन आदि मिथ्योपचार के उदाहरण हैं, जिससे रोग समाप्त न होकर बढ़ता रहता है तथा भविष्य में रोगी को और अधिक परेशान करता है। मिथ्योपचार में भी प्रमुख कारण, शरीर में संचित मलों को बाहर न निकालकर, शरीर में ही दबाने की कोशिश करना है, जैसे तीव्र दस्तों में दस्त रोकने की दवाई देने से शरीर से मल बाहर नहीं आ पाता।

एक बार तो रोगी को लगता है कि वह ठीक हो गया, लेकिन यही आगे चलकर गंभीर बीमारी में बदल जाता है।

vii) jksxksRikn thok.kq

ऐसे जीवाणु जो, रोग उत्पन्न करने में सहायक होते हैं, रोगोत्पादक जीवाणु कहलाते हैं। ये जीवाणु उसी शरीर में रोग उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं जहाँ विजातीय द्रव्य इकट्ठा होने के कारण जीवनी शक्ति का ह्रास हो जाता है। किसी भी स्वस्थ शरीर में जीवाणु रोग उत्पन्न नहीं करते।

bdkbxr iz'u&1-3

1) रोग होने के कोई दो प्रमुख कारण लिखिए।

....

....

2) विजातीय द्रव्य का अर्थ है:

....

....

3) विजातीय द्रव्य शरीर में इकट्ठा होने के दो प्रमुख कारण हैं:

....

....

....

fVIi.kh

1-4 çk—frd fpfdRIk d fI)kUrkuqIkj] jkx dk oxhdj.k

अभी तक आपने स्वास्थ्य, उसके आधारभूत अंग तथा रोग एवं उसके कारणों के बारे में जानकारी प्राप्त की। अब आपके मन में विभिन्न रोगों के वर्गीकरण के बारे में जानने की उत्सुकता हो रही होगी। रोगों का वर्गीकरण किस आधार पर होता है तथा इनके भेद क्या हैं? तो आइये पहले आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति के अंतर्गत इस विषय को समझने का प्रयास करें –

d½ vkpk;Z pjd d vuqIkj jkxk d Hkn

आचार्य चरक ने आयुर्वेद में चिकित्सा की सुगमता की दृष्टि से रोगों को दो–दो के समूह में वर्गीकृत किया है;

i½ **çHkko Hkn I & साध्य एवं असाध्य**

(अ) साध्य रोग – वे रोग जो चिकित्सा करने पर ठीक हो जाते हैं।

(ब) असाध्य रोग – वे रोग जो चिकित्सा करने पर भी ठीक नहीं होते।

ii½ **vf/k"Bku Hkn I & मन एवं शरीर**

(अ) मनोरोग – रज और तम गुण की अधिकता के कारण मानसिक रोग काम, क्रोध, ईर्ष्या, तनाव आदि उत्पन्न होते हैं।

(अ) शारीरिक रोग– दोषों की विषमता (विजातीय द्रव्य के संचित होने) के कारण शरीर का आश्रय करके अनेक प्रकार के रोगों की उत्पत्ति होती है। यथा– ज्वर, कुष्ठ, कास (खांसी) आदि। यही भेद सबसे विस्तृत रूप में जाना जाता है।

[k½ LokLF; dh –f"V I jkxk d rhu Hkn

स्वास्थ्य की दृष्टि से मानव शरीर के तीन पहलु हैं – शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक। पूर्ण स्वस्थ शरीर वही है जो तन, मन और आत्मा सहित स्वस्थ और प्रसन्न है। इनमें से किसी एक की भी उपेक्षा करके, हम पूर्ण रूप से स्वस्थ नहीं रह सकते। अतः तीनों पहलुओं के अनुसार भी रोगों के तीन भेद होते हैं;

i½ **'kkjhfjd jkx &** जो व्याधियों के रूप और लक्षण के कारण अगणित और अनेक होते हैं।

ii½ **ekufId jkx &** जो व्याधियाँ मन को प्रभावित करती हैं। जैसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, तनाव, अवसाद, चिंता, आलस्य, निराशा, अहंकार, बहम, अविश्वास, बुद्धि भ्रम आदि के कारण मन का अप्रसन्न रहना।

ये व्याधियां शारीरिक व्याधियों से अधिक कष्टदायक और अनिष्टकारी होती हैं क्योंकि शारीरिक पीड़ा या शारीरिक विकृति तो मानव को दिख या पता चल जाती है परन्तु वह किसी मानसिक व्याधि से ग्रस्त

है ये न तो उसे स्वयं पता चल पाता है और न किसी अन्य व्यक्ति को क्योंकि इसमें शारीरिक व्याधियों के जैसे लक्षण दिखाई नहीं देते। जब तक मानसिक व्याधियों के बारे में पता चलता है तब तक ये भयावह रूप ले चुकी होती हैं। अधिकतर लोग मानसिक व्याधियों को गंभीरता से नहीं लेते क्योंकि उन्हें ये बीमारी न महसूस होकर उनकी आदतें या जीवन शैली का हिस्सा लगती हैं। और अधिक आश्चर्य की बात ये है कि इन मानसिक व्याधियों के उत्पन्न होने के कारण बहुत मामूली होते हैं, जिन्हें हम बेवजह अधिक बढ़ाकर अपने दिमाग में इस कदर बिठा लेते हैं कि वे कब व्याधि में परिवर्तित हो गए हमें पता ही नहीं चलता। इन कारणों का हम थोड़े से विवेक – बुद्धि प्रयोग के द्वारा आसानी से प्रतिकार कर सकते हैं। योग के आसान नियमों को व आसन–प्राणायाम को जीवन में अपनाकर हम अपने चित्त को शांत रख सकते हैं तथा मानसिक व्याधियों से छुटकारा पा सकते हैं तथा इनसे दूर रह सकते हैं।

fVIi.kh

मानसिक रोग धीरे–धीरे शरीर पर भी प्रभाव डालते हैं जिनके कारण कालांतर में शरीर रोगग्रस्त हो जाता है। उच्च रक्तचाप, मधुमेह, मोटापा आदि कुछ ऐसी ही शारीरिक व्याधियां हैं जिनमें गलत आहार–विहार के साथ–साथ मानसिक कारण भी रोग के उत्पन्न होने में प्रमुख भूमिका निभाते हैं।

iii½ **vk/;kfRed jkx &** आध्यात्मिक स्वास्थ्य के बिना शरीर और मन से स्वस्थ रहना अधूरा है। नई पीढ़ी विशेषकर युवा वर्ग में यह धारणा बन गयी है कि आध्यामिकता की ओर केवल बड़े–बूढ़े लोग या साधु–सन्यासी जिनका संसार से मोह भंग हो गया है, वही अग्रसर होते हैं। लेकिन कई शोधकर्ताओं ने पाया है कि आध्यात्मिक जीवन जीने वाले अर्थात् ईश्वर की आस्था में विश्वास रखने वाले या दिनचर्या में कुछ समय किसी भी पद्धति की पूजा के साथ ही ध्यान लगाने वाले लोग बाकि लोगों की अपेक्षा कम तनावग्रस्त व स्वस्थ होते हैं।

x½ vkpk;Z lqJqr ds vuqlkj jksxksa ds pkj Hksn

आचार्य सुश्रुत ने प्रयोजन भेद से व्याधियों का चार भागों में वर्गीकरण किया है–

i½ **vkxarqd jksx&** वे रोग जिनकी उत्पत्ति में कोई भी बाह्य कारण प्रमुख रूप से भाग लेता है, जैसे– शस्त्र आदि से कट जाना, सांप–बिच्छू आदि के द्वारा काटा जाना, आकस्मिक दुर्घटनाग्रस्त हो जाना, आग या बिजली से जल जाना, शीत या लू आदि से शरीर में उत्पन्न रोग। अनेक प्रकार के जीवाणुज तथा संक्रामक रोगों की गणना भी इसी के अंतर्गत की जा सकती है।

ii½ **'kkjhfjd jksx&** शारीरिक रोग शरीर से संबन्धित रोग हैं।

iii½ **ekufld jksx&** मानसिक रोग मन से संबन्धित रोग हैं।

iv½ **LokHkkfod jksx&** शरीर की प्रकृति या स्वभाववश होने वाले रोग हैं, जैसे – भूख, प्यास, जरा (बुढ़ापा), निद्रा आदि।

fVIi.kh

çk–frd fpfdRlk ds fl)kUrkuqlkj] jksx dk oxhZdj.k

आपने आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति के अंतर्गत रोगों के वर्गीकरण को जाना। अब हम प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्तानुसार, रोगों के वर्गीकरण का अध्ययन करेंगे। प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्तानुसार, रोग को तीन वर्ग में वर्गीकृत किया गया है:

रोग

तीव्र रोग | जीर्ण रोग | असाध्य रोग

i½ rhoz jksx

जैसाकि आप जानते ही हैं कि रोगों की अभिव्यक्ति भिन्न–भिन्न हो सकती है और ये कई कारकों पर निर्भर करती है। कुछ रोगों की अवधि कम होती है अर्थात् वे बहुत तेजी से होते हैं, उन्हें हम तीव्र रोग कहते हैं। जैसे हैजा, खांसी–जुकाम, दस्त आदि। ये रोग जितनी तेजी से आते हैं, उचित उपचार से उतनी ही जल्दी चले भी जाते हैं। इन्हें ही अंग्रेजी में Acute Disease कहते हैं।

तीव्र रोग अपना उपचार स्वयं करते हैं। जब शरीर में या उसके किसी विशेष भाग में अधिक मल एकत्र हो जाता है तो उसका निष्कासन तीव्र रोगों के रूप में होने लगता है, जो कुछ ही दिनों तक रह कर अर्थात् उस संचित मल को शरीर से बाहर निकालकर अपने आप चले जाते हैं और शरीर पहले की भांति स्वस्थ और निर्मल हो जाता है। लेकिन तीव्र रोगों के ठीक होने में वहां कठिनाई होती है जहाँ संचित मलों को बाहर निकालने से रोका जाता है अर्थात् उनकी चिकित्सा में मल को बाहर निकालने की अपेक्षा शरीर में दबाया जाता है, तब ये गंभीर रूप में शरीर से बाहर निकलते हैं।

तीव्र रोग बच्चों या जवानों को अर्थात् जिनकी जीवन–शक्ति प्रबल होती है, विशेष रूप से होते हैं। तीव्र रोग के विभिन्न लक्षण तो इस बात की सूचना देते हैं कि शरीर अपने को शुद्ध करने के लिए, रोग से निर्मूल होने के लिए क्या और कैसा प्रयत्न कर रहा है? उन लक्षणों को देखना समझना चाहिए और समुचित आहार–विहार करना चाहिए न कि उन्हें तीव्र दवाओं या शस्त्रोपचार से दबाना चाहिए। तीव्र रोगों में उपवास और पूर्ण विश्राम बड़े लाभदायक सिद्ध होते हैं।

ii½ th.kZ jksx

ऐसे रोग, जो बहुत लम्बे समय तक या जीवनपर्यंत रहते हैं, जीर्ण रोग कहलाते हैं। इन्हें ही अंग्रेजी में Chronic Disease कहते हैं, जैसे– दमा, टी.बी. आदि।

जैसा आपने जाना कि रोग प्रकृति की सूचना हैं, जिन पर ध्यान देना चाहिए। जब सूचना को ठीक–ठीक नहीं समझा जाता है और उसके कारणों को दूर करने के बजाय उन्हें दबाया जाता है तो संचित मल शरीर में धीरे–धीरे कष्ट के साथ बहुत लम्बे समय तक पड़े रहने की दशा का नाम ही जीर्ण रोग है। जब रोगों के कारणों का उपचार न करके उन्हें बार–बार दबाया जाता है तो विजातीय द्रव्य शरीर में रहकर सड़ने लगता है और जीर्ण रोगों में परिवर्तित हो जाता है। जैसे कि जुकाम को दवा से बार–बार दबा दिया जाये तो यह दमा बन सकता है।

LokLF; vkj jkx

जीर्ण रोगों से जीवनीय शक्ति का ह्रास होने लगता है। तीव्र रोगों के लक्षणों को दबाने से आरम्भ में तो सब कुछ ठीक सा प्रतीत होता है लेकिन शरीर के भीतर से निकलती हुई गन्दगी शरीर में ही रुक जाने से शरीर कमजोर हो जाता है तथा जीर्ण रोग उत्पन्न होते हैं।

जीर्ण रोगों को दूर करने के लिए निम्नांकित उपायों को अपनाने की आवश्यकता होती हैः

- fopkjk dh 'k)rk]
- mfpr vkgkj&fogkj]
- /k;]
- fu;fer thou&'kyh vkj
- viu fpfdRld ij i.k fo'okl A

rho jkx o th.k jkx e vrj

आप कैसे पहचानेंगे कि किसी रोगी को तीव्र रोग है या जीर्ण रोग :

rkfydk 1-1 rho jkx o th.k jkx e vrj

Øekd	vkèkkj	rho jkx	th.k jkx
1	आरम्भ	अचानक शुरू होते हैं और प्रकृति में गंभीर होते है।	ये धीमी गति से होते हैं और शुरुआत भी धीरे–धीरे होती है।
2	समय सीमा	इसमें रोग की अवधि कम समय की होती है और फिर वे कम हो जाते हैं। यह 3–7 दिन में या अधिकतम 10–15 दिनों में ठीक हो जाती है।	इसमें रोग लम्बी अवधि तक या जीवनपर्यंत चलने वाले होते हैं। कोई भी रोग 3 महीने से अधिक चलने पर जीर्ण व्याधि की श्रेणी में आ जाती है।
3	अन्तर्निहित कारण	जीवाणु या वायरल संक्रमण, मानसिक या शारीरिक आघात या दुर्घटना है।	आनुवंशिक कारण, अनियमित जीवन–शैली, सामाजिक या पर्यावरणीय कारक या रोगों को बार–बार दबाया जाना है।
4	निवारण	तीव्र रोगों से बचाव संभव नहीं है क्योंकि वे अचानक शुरू हो जाते हैं और कोई संकेत नहीं मिलते हैं।	जीर्ण रोगों को उचित आहार–विहार, जीवन–शैली और व्यवहार संशोधन से रोका जा सकता है।
5	दर्द विकास	दर्द विकास तेजी से होता है।	दर्द का विकास धीमा होता है।
6	चिकित्सा	उपवास व पूर्ण विश्राम	उचित चिकित्सोपचार, आहार–विहार, नियमित जीवन–शैली आदि।
	उदाहरण	बुखार, जुखाम, दस्त आदि।	जीर्ण यकृत रोग, दमा, मधुमेह आदि।

fVIi.kh

iii½ vlk/; jkx

वे रोग जिनकी चिकित्सा संभव नहीं है या चिकित्सा के उपरान्त भी ठीक नहीं हो सकते, असाध्य रोग कहलाते हैं।

ये दो प्रकार के होते हैं। एक तो वे जिसमें रोग पूर्ण रूप से नष्ट नहीं होता परन्तु चिकित्सा करने पर शांत हो जाता है। लेकिन यह बीजरूप अर्थात् जींस (genes) में किसी भी अवयव या धातु आदि में विद्यमान रहता है और अपने योग्य परिस्थिति को प्राप्त करके पुनः शरीर में आक्रमण कर देता है। ऐसे रोगों को याप्य भी कहते हैं। उदाहरण के लिए– दमा, मधुमेह, कुछ प्रकार के त्वक रोग आदि। क्योंकि उचित चिकित्सा करने पर इन रोगों का वेग शांत तो हो जाता है परन्तु पथ्य पालन न करने पर तथा परिस्थितियों के अनुकूल होने पर इनका पुनः उद्भवन हो जाता है। अंत में ये रोग पूर्ण असाध्य की अवस्था में पहुँच जाते हैं।

दूसरा वह है, जिसमें रोग उस अवस्था में पहुँच गया हो जिसकी चिकित्सा करने पर क्षणिक भी लाभ नहीं मिल सकता। उदाहरण के लिए– अंतिम अवस्था में पहुंचा कैंसर, गंभीर दिल का दौरा पड़ना आदि। ऐसी स्थिति में चिकित्सक को चाहिए कि वह रोगी के सम्बन्धियों को सम्पूर्ण स्थिति से अवश्य अवगत करा दे ताकि यश, धन आदि की हानि की सम्भावना से बचा जा सके।

jkxksa ds ykHk &

आपको यह जान कर आश्चर्य होगा कि, प्राकृतिक चिकित्सा में रोगों का होना लाभप्रद माना गया है। सर फ्रेडरिक के शब्दों में "रोग ईश्वर की एक आशीर्वादात्मक देन है, इसका स्वभाव ही रक्षा करना है। मैं जो यह कह रहा हूँ कि यदि रोग न होते तो मनुष्य जाति कभी की समाप्त हो गयी होती। अपने विषय पर बहुत कम जोर डाल पा रहा हूँ।" संसार के अधिकांश व्यक्तियों की धारणा ही नहीं अपितु विश्वास भी है कि रोग उसके मित्र नहीं शत्रु हैं। रोगों के मित्र रूप को पहचानना चाहिए। वे प्रकृति की वह सूचना हैं जिन पर हमें तुरंत ध्यान देना चाहिए। इस सूचना को शत्रु समझ कर उसे दबाने की कोशिश करने के बजाय हमें रोग के कारण को समझकर उसे दूर करने की कोशिश करनी चाहिए। जितनी शीघ्रता से हम इस चेतावनी पर ध्यान आकृष्ट कर लेंगे उतना ही शीघ्र हमारा शरीर निरोगी हो जायेगा। अतः हमें रोगों को शत्रु न समझकर मित्र मानना चाहिए और आशा करनी चाहिए कि, वे हमारे से शरीर से विजातीय द्रव्यों को जो कि हमारे गलत रहन–सहन, आहार–विहार के कारण इकट्ठा हुए हैं उन्हें बाहर कर हमें पूर्ण स्वस्थ कर देंगे और शरीर के लिए लाभदायक सिद्ध होंगे।

vkius D;k lh[kk

इस इकाई (यूनिट) में आपने सीखा कि –

- स्वास्थ्य ही शरीर का आधार है। स्वस्थ तन में ही स्वस्थ मन का निवास होता है।
- संसार के समस्त कार्य स्वास्थ्य पर ही निर्भर करते हैं। यदि मनुष्य स्वस्थ है तो ही वह सर्व सुखों का आनंद उठा सकता है। शरीर या मन में किसी भी प्रकार की वेदना उत्पन्न हो, उसे रोग कहते हैं।

LokLF; vkSj jksx

- आचार्य चरक ने व्याधि, आमय, गद, आतंक, यक्ष्मा, ज्वर, विकार आदि ये सभी रोग के पर्याय बताए हैं।
- प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार रोगों के होने का एकमात्र कारण शरीर में विजातीय द्रव्य का इकट्ठा होना है। यह विजातीय द्रव्य शरीर में अनेक कारणों से उत्पन्न हो सकता है।
- जो शरीर के जाति का नहीं है, वह विजातीय द्रव्य है। शरीर के वे विकार या वस्तु जो स्वस्थ रक्त और मांस के साथ मिलकर स्वस्थ शरीर का भाग नहीं बन सकती, शरीर का पालन–पोषण नहीं कर सकती बल्कि उसके विनाश का कारण बन सकती है, उसे ही **fotkrh; æO;** कहा जाता है।
- चिकित्सा में सुगमता के लिए, रोगों को अनेक वर्गों में वर्गीकृत किया गया है। जैसे – शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, आगंतुज, स्वाभाविक आदि।
- इनके अतिरिक्त तीव्र, जीर्ण और असाध्य की श्रेणी में भी रोगों को रखा गया है।
- जिन रोगों की अवधि कम होती है अर्थात् वे बहुत तेजी से होते हैं, उन्हें तीव्र रोग कहते हैं, जैसे – हैजा, खांसी–जुकाम, दस्तादि। इन्हें ही अंग्रेजी में Acute Disease कहते हैं।
- जो रोग बहुत लम्बे समय तक या जीवनपर्यंत रहते हैं, ऐसे रोगों को जीर्ण रोग कहते हैं। इन्हें अंग्रेजी में Chronic Disease कहते हैं, जैसे– दमा, टी.बी. आदि।
- वे रोग जिनकी चिकित्सा संभव नहीं है अर्थात् चिकित्सा के उपरान्त भी ठीक नहीं होते, असाध्य रोग कहलाते हैं।

bdkbZ dk vUr esa iz'u

1) स्वास्थ्य की परिभाषा लिखते हुए इसके विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालिए।

2) रोगों उत्पन्न होने के विभिन्न कारणों का वर्णन कीजिए।

3) विजातीय द्रव्य से आप क्या समझते हैं? विजातीय द्रव्य के शरीर में उत्पन्न होने के विभिन्न कारणों को विस्तार से समझाइए।

4) रोगों के वर्गीकरण पर विस्तार से प्रकाश डालिए।

bdkbZxr iz'uksa ds mÙkj

1-1

1) क) गलत,

   ख) गलत

fVIi.kh

2) स्वास्थ्य सिर्फ रोग या दुर्बलता की अनुपस्थिति ही नहीं बल्कि एक पूर्ण शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक कुशलक्षेम की स्थिति है।

3) शारीरिक स्वास्थ्य (Physical Health)

मानसिक स्वास्थ्य (Mental Health)

सामाजिक स्वास्थ्य (Social Health)

आध्यात्मिक स्वास्थ्य (Spiritual Health)

1-2

1) क) विजातीय द्रव्य,

ख) विष

2) क) गलत,

ख) गलत,

ग) सही

1-3

1) क) विजातीय द्रव्य,

ख) अप्राकृतिक जीवन शैली,

ग) वंशानुगत परम्परा,

घ) मिथ्योपचार

2) जो शरीर के जाति का नहीं है, वह विजातीय द्रव्य कहलाता है।

3) क) बाह्य,

ख) आतंरिक

fVIi.kh

2

रोगी की परीक्षा (जांच)

प्रिय शिक्षार्थियों, पिछली इकाई (यूनिट) में आपने स्वास्थ्य, इसके विभिन्न अंग और आवश्यकता को जाना, साथ ही आपने रोग, उनके उत्पन्न होने के कारण और उनके वर्गीकरण के बारे में भी समझा। आप यह कैसे जानेंगे कि व्यक्ति किसी रोग से पीड़ित है या नहीं। यह जानने के लिए उस रोगी के लक्षणों को, जानने व पहचानने का प्रयास करते हैं। इस इकाई (यूनिट) में विशेष रूप से हम, रोगी की जांच कैसे की जाती है, इस विषय पर चर्चा करेंगे।

mís';

इस इकाई (यूनिट) का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- रोगी का इतिवृत्त (Case History) लेने की विधि का वर्णन कर सकेंगे;
  रोगी का इतिवृत्त (Case History) लेने में सक्षम हो सकेंगे;
- रोगी की परीक्षा (जांच) करने में सक्षम हो सकेंगे।

2-1 jkxh dk bfroÙk (Case History)

jkxh dk bfroÙk mld 'kjhj e mRiUu y{k.kk ,o ?kfVr gk pdh ?kVukvk dk ,d y[kk&tk[kk gA रोगी के लक्षणों के आधार पर, हमें उसके शरीर, विशेष अंग अथवा अंग तंत्र में उत्पन्न होने वाले रोग की पहचान करने, रोग का कारण ढूंढने व उसको दूर करने में सहायता मिलती है।

80% लोगों में समुचित लिया गया इतिवृत्त एक सही निदान की दिशा प्रदान कर सकता है। शारीरिक परीक्षण से हम उस समय रोगी की शारीरिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, लेकिन शरीर में घटित

fVIi.kh

हो चुकी किसी भी अवस्था का पता नहीं लगा पाते। इसलिए एक समुचित इतिवृत्त के बिना, कई बार शारीरिक जांच के परिणाम गलत हो सकते हैं। उदाहरण के लिए आप, किसी रोगी के पैर में घाव देखने पर अनुमान लगाएँ, कि कोई चोट लगी होगी लेकिन पूछने पर पता चला कि, यह घाव तो मधुमेह के बढ़ जाने के कारण हुआ है।

2-1-1 jkxh dk bfroÙk ¼Case History½ yus dh fof/k

शिक्षार्थियों, किसी भी रोग को जानने के लिए पहले हमें रोगी का इतिवृत्त (Case History) लेना बहुत आवश्यक है। इस विषय में हमें पता होना चाहिए कि किसी रोगी के रोग संबन्धित क्या–क्या लक्षण हैं, और वे कब से हैं। रोगी की परीक्षा अर्थात् जांच का प्रयोजन यह है कि रोगी के रोग का पूर्ण रूप से ज्ञान हो जाये, जिससे उसकी उचित चिकित्सा की जा सके। इसका तात्पर्य यह है कि जब तक हम रोग एवं रोगी की अच्छी प्रकार से जांच नहीं करेंगे तब तक हम ठीक प्रकार से उसका निदान (कारण) नहीं समझ सकेंगे और ना ही ठीक प्रकार से रोगी का उपचार कर पाएंगे।

जैसा कि आपको पहले बताया जा चुका है कि चिकित्सा प्रारम्भ करने से पूर्व, रोगी का इतिवृत्त (Case History taking) लेना अत्यंत आवश्यक होता है। यह एक अद्भुत कला है जो कि चिकित्सक अपनी वर्षों की साधना तथा अनुभव के पश्चात् ही सीख पाता है। इतिवृत्त लेने से, एक अच्छा चिकित्सक रोग के कारण व उसके निदान (diagnosis) तो जान ही जाता है, जिससे उसे चिकित्सा करने में सुगमता होती है। साथ ही इससे रोगी व चिकित्सक के बीच एक अच्छा सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, जिससे रोगी का चिकित्सक में विश्वास उत्पन्न होता है। अतः रोगी का इतिवृत्त लेते समय चिकित्सक को मित्रतापूर्वक व्यवहार करना चाहिए जिससे रोगी आरामदायक स्थिति में हो तथा वह आराम से बात कर सके।

2-1-2 ,d vPNs bfroÙk esa lpukvksa dk Øe

एक अच्छे इतिवृत्त में निम्नांकित सूचनाओं का क्रम इस प्रकार से उल्लेखित होना चाहिए:

- **jkxh dk lkekU; fooj.k ¼General Biodata of the patient½ &**

  इसमें रोगी का नाम, उम्र, लिंग, पता, व्यवसाय व वैवाहिक स्थिति होनी चाहिए।

  v- uke½ रोगी से उसका नाम जानकार इतिवृत्त पत्र में अंकित कीजिए। नाम जानने से रोगी के व्यक्ति से बात करने में, कुछ पूछने में, बुलाने में, रिश्तेदारों को समझाने में आसानी होती है। साथ ही एक आत्मीयता का भाव भी आता है जो कि एक रोगी और चिकित्सक के बीच होना अत्यंत आवश्यक है।

  vk- mez½ रोगी से उसकी उम्र जानकार इतिवृत्त पत्र में अंकित कीजिए। उम्र के आधार पर रोग तथा रोग की स्थिति जानने में सहायता मिल सकती है। उदाहरण के लिए, रोगी यदि युवा है अर्थात् उसकी उम्र 20–40 वर्ष के बीच है और शरीर का गठन ठीक है तो रोग के ठीक होने की

सम्भावना अधिक होती है। यदि रोगी मध्यमावस्था या वृद्धावस्था का है तो उस अवस्था में होने वाले रोग अलग होते हैं और ठीक होने में समय लग सकता है। जैसे–रियुमेटोइड अर्थराइटिस (Rheumatoid Arthritis) अधिकतर युवा वर्ग में ही देखने को मिलता है और जोड़ों का दर्द बड़ी उम्र में ही देखा जाता है। यदि कोई युवा जोड़ों के दर्द या मधुमेह या उच्च रक्तचाप से पीड़ित मिलता है तो इसका अर्थ है कि या तो उसे आनुवंशिक रोग है या उस व्यक्ति की जीवन शैली ठीक नहीं है और न ही उसका खान–पान अच्छा है, अतः इस ओर ध्यान की आवश्यकता होती है।

b- fyax ¼ रोगी से उसका लिंग जानकार इतिवृत्त पत्र में अंकित कीजिए। जानने से यह पता चलता है कि रोगी महिला है या पुरुष। क्योंकि कुछ रोग ऐसे होते हैं जो केवल पुरुषों में होते हैं और कुछ महिलाओं में। जैसे– प्रोस्टेट ग्लैण्ड (Prostate gland) से सम्बंधित रोग पुरुषों में और मासिक स्राव से सम्बन्धित रोग महिलाओं में होते हैं।

bZ- irk ¼ इससे व्यक्ति के सामाजिक स्तर का पता चलता है कि तथा जगह से सम्बंधित रोगों का भी पता चलता है।

m- oSokfgd fLFkfr (Marital Status): वैवाहिक स्थिति भी रोगों को जानने में सहायता करती है। कई बार वैवाहिक जीवन में तालमेल न होने पर भी मानसिक रोग हो सकते हैं।

Å- lkekftd bfro`Ùk (Social History): सामाजिक इतिवृत्त से तात्पर्य रोगी के घर और कार्य स्थल पर रोगी का शारीरिक और भावनात्मक वातावरण कैसा है और उसकी आदतें और उसके जीवन के प्रति रवैये से है जो उसके इतिवृत्त का महत्वपूर्ण हिस्सा है और यह उसकी बीमारी का प्रभाव स्वयं रोगी पर तथा उसके परिवार पर जानने में अत्यंत मदद करते हैं।

- **orZeku O;kf/k dh eq[; f'kdk;rsa (Chief complaints of the present illness)**

इसके अंतर्गत रोगी की शिकायतें सिलसिलेवार क्रम से (chronological order) समयावधि सहित लिखनी चाहिए। जैसे किसी रोगी को बुखार, खांसी–जुखाम हुआ है तो कब से है और पूछेंगे की पहले क्या हुआ था बुखार या खांसी या जुखाम? जो सबसे पहले हुआ उसे शिकायतों में सर्वप्रथम कितने दिन से है लिखकर बाद में अन्य शिकायतें लिखेंगे। उदाहरणार्थः उपरोक्त में यदि किसी व्यक्ति को खांसी पहले हुई तो लिखेंगे

कास– 5 दिनों से

जुखाम– 3 दिनों से

बुखार– 1 दिन से

- **orZeku O;kf/k dk mn~Hko] vof/k vkSj fodkl (Origin, duration and progress of illness)**

प्रत्येक लक्षण का विवरण अलग से लिखना चाहिए। शुरुआत कैसे हुई धीरे– धीरे या अचानक से, प्रत्येक लक्षण की समयावधि और उसका विकास तथा सबसे अंत में उस लक्षण की वर्तमान स्थिति क्या है अवश्य लिखना चाहिए। उससे सम्बंधित लक्षण भी अवश्य पूछने चाहिए तथा लिखने चाहिए।

fVIi.kh

- **iwoZ O;kf/k dk bfroÙk (History of past illness)**

  यदि पूर्व में कोई इसी तरह के लक्षण हुए थे तो उनका विवरण होने का समय (कितने समय पहले हुए थे), समयावधि और परिणाम क्या रहा के साथ लिखना चाहिए।

  बचपन में कोई बीमारी तो नहीं हुई जैसे– खसरा (measles), काली खांसी (pertussis), कनपेड़ (mumps), इन्फ्लुएंजा, निमोनिया आदि।

  किसी को क्षय (T.B.), आंत्रिक ज्वर (Typhoid), मधुमेह, उच्च रक्तचाप, दमा, हृदय रोग, पीलिया, जोड़ों में सूजन आदि तो नहीं हुए ये भी अवश्य पूछकर लिखना चाहिए। पूर्व में कोई आघात–दुर्घटना हुई हो, चोट लगी हो, कोई ऑपरेशन हुआ हो या हॉस्पिटल में किसी बीमारी के इलाज के लिए भर्ती होना पड़ा हो या कोई खून चढ़ाया गया हो आदि भी विस्तृत रूप से अवश्य लिखना चाहिए।

bfroÙk (Case history) ysrs le; iz;ksx fd;s tkus okys 'kh"kZd

- रोगी का सामान्य विवरण नाम, उम्र, लिंग, पता वैवाहिक स्थिति सामाजिक व व्यावसायिक इतिवृत
- वर्तमान व्याधि की मुख्य शिकायत (Chief complaints)
- वर्तमान व्याधि का उद्भव अवधि और विकास (Origin, duration progress of illness)
- पूर्व व्याधि का इतिवृत (History of past illness)
- व्यक्तिगत इतिवृत (Personal history)
- व्यावसायिक इतिवृत (Occupation history)
- पारिवारिक इतिवृत (Family history)

- **O;fäxr bfroÙk (Personal history)**

  रोगी की भूख कैसी है, उसकी खान–पान की आदतें, किस प्रकार का आहार लेता है, उसका पेट साफ होता है की नहीं, कब्ज तो नहीं रहती, मूत्र सम्बन्धी आदतें, उसे नींद कैसी आती है, कितने घंटे सोता है, कोई व्यसन जैसे– तम्बाकू चबाना, शराब, धूम्रपान, कोई नशीले पदार्थ के सेवन की आदत आदि भी अवश्य पूछना चाहिए।

  भूख और वजन का कम होना किसी सक्रिय रोग की प्रक्रिया को दर्शाता है। इसी तरह किन्हीं लक्षणों के कारण समुचित नींद न आना बताता है कि उन लक्षणों पर तुरंत ध्यान देने की जरुरत है। हो सकता है व्यक्ति को कोई अंदरूनी परेशानी हो या वह अवसाद, चिंता, तनाव आदि से अत्यधिक ग्रस्त हो।

  शराब का सेवन, धूम्रपान, तम्बाकू चबाना, या किसी नशीले पदार्थ का सेवन शरीर के कई तंत्रों को प्रभावित कर सकता है और इनकी रोगी के रोग में भूमिका कितनी है ये इतिवृत्त से अच्छी तरह से तय किया जा सकता है। जैसे कि– किसी रोगी में अत्यधिक शराब का सेवन यकृत रोगों या यकृत का खराब होना (liver failure) या तीव्रजठरशोथ

(Acute gastritis) का कारण हो सकती है। युवा वर्ग में अत्यधिक धूम्रपान उच्चरक्तचाप या हृदय रोगों का कारण हो सकता है।

- **0;kolkf;d bfroÙk (Occupational History)** – व्यावसायिक इतिवृत्त भी किसी रोग को जानने में बहुत महत्वपूर्ण भाग अदा करता है। कुछ रोग व्यवसाय से ही सम्बंधित होते हैं जैसे ज्यादा तापमान पर काम करने वाले लोगों में निर्जलीकरण (dehydration), त्वचा की रूक्षता आदि की शिकायत मिलती है तथा जो लोग ज्यादातर समय एयर कंडीशन में बिताते हैं तथा बैठे रहने का कार्य होता है, उनमें भी पानी की कमी, कब्ज, एसिडिटी, तनाव आदि रोग अधिक पाए जाते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ व्यवसाय ऐसे होते हैं जिनमें रासायनिकों का प्रयोग होता है, उनके रोग अलग होते हैं। जैसे सिलिकोसिस (Silicosis) रोग (एक प्रकार का फेफड़ों का रोग) उन व्यक्तियों में अधिक होता है जो सूक्ष्म धूल वाली जगहों पर कार्य करते हैं। यथा खदानों में, मशीन से पत्थर की कटाई करने वाले मजदूर आदि।

- **ikfjokfjd bfroÙk (Family History)** – परिवार में यदि कोई व्याधि है तो उसे भी अवश्य लिखना चाहिए। जैसे– रोगी के माता–पिता मधुमेह, उच्चरक्तचाप, मोटापे आदि से पीड़ित तो नहीं है। क्योंकि अमूमन यह देखा जाता है कि जिन लोगों में मधुमेह, उच्चरक्तचाप, हृदय रोगों आदि की शिकायत होती है, उनके बच्चों को भी स्वास्थ्य की देखभाल न करने पर ये रोग बहुत जल्दी अपना शिकार बना लेते हैं। पारिवारिक इतिवृत्त लेने से हम यह अंदाजा लगा सकते हैं कि रोगी का रोग अनुवांशिक है या उसकी गलत खान–पान, या आहार–विहार की आदतों के कारण है या कोई अन्य सक्रिय रोग प्रक्रिया शरीर में चल रही है।

- **ekgokjh lc/kh bfroÙk (Menstrual History)** – स्त्रियों में माहवारी सम्बन्धी जानकारी अवश्य लेनी चाहिए जैसे कि–

  (i) प्रथम बार माहवारी कब शुरू हुई, आखिरी बार कब आई (last menstrual period - LMP) और यदि बंद हो गयी है तो कितनी उम्र में हुई।

  (ii) नियमित है या अनियमित, रक्त कितना जाता है, कितने दिन के लिए आती है आदि (सामान्य से अधिक रक्त जाना तथा 3–5 दिन से अधिक समय के लिए माहवारी का आना असामान्य हो सकता है।)

  (iii) महिला से पूछना चाहिए की मासिक धर्म आने से पहले कोई परेशानी तो नहीं होती या वह कोई गर्भ निरोधक गोली का सेवन तो नहीं कर रही।

> **efgykvk e yh tku okyh vfrfjä tkudkjh**
>
> - माहवारी संबंधी इतिवृत्त
> - प्रसूति संबंधी इतिवृत

fVIi.kh

- **çlfr lc/kh bfroÙk** (Obstetric History)

  यदि स्त्री विवाहित है तो प्रसूति सम्बंधित इतिवृत्त भी अवश्य पूछना चाहिए। जैसे कि

  (i) कितने बच्चे हैं, छोटा बच्चा कितने साल का है (इसलिए आवश्यक है कि स्त्री कहीं स्तनपान तो नहीं करा रही)

  (ii) कोई गर्भपात कराया या हुआ तो नहीं आदि।

  (iii) रोगी यदि बच्चा है तो उसके जन्म से सम्बंधित प्रश्न पूछने चाहिए। जैसे बच्चा यदि 5 साल तक का है तो उसका जन्म कितने समय में हुआ अर्थात् पूर्ण समय पर हुआ या समय से पहले, कहाँ हुआ (घर या अस्पताल), टीकाकरण की जानकारी अवश्य लेनी चाहिए।

bdkbZxr iz'u&2-1

1) सही अथवा गलत बताइए–

क) यदि रोगी का इतिवृत्त अच्छे से लिया जाए तो रोग का निदान करने में सुगमता होती है। ( )

ख) रोगी का नाम उम्र लिंग न जाने से रोग निवारण में कोई फर्क नहीं पड़ता। ( )

ग) रोगी की वैवाहिक स्थिति भी रोगों को जानने में सहायता करती है। ( )

घ) व्यक्तिगत इतिवृत से तात्पर्य रोगी की खान–पान की आदतों, नींद, जीवन शैली से होता है। ( )

ङ) परिवार में यदि कोई व्याधि है तो इसका रोगी पर कोई असर नहीं होता। ( )

च) महिलाओं में माहवारी व प्रसूति संबंधी जानकारी लेनी की आवश्यकता नहीं होती। ( )

2-2 jksxh dh ijh{kk

अभी आपने जाना कि रोग परीक्षा अर्थात् रोग का निदान किस प्रकार से किया जाता है। अब आप जानेंगे कि रोगी की परीक्षा कैसे की जाती है अर्थात् उसे देखकर आप किन–किन रोगों का अंदाजा लगा सकते हैं या आपके द्वारा किये गए रोग निदान के निर्णय में आपकी सहायता कर सकते हैं।

जैसा कि आप जानते ही हैं कि मानव शरीर पंचतत्वों से निर्मित है। इन्हीं तत्वों के संतुलन व असंतुलन के कारण ही स्वास्थ्य एवं रोग की अवस्थाएं बनती हैं। पंचतत्वों का संतुलन स्वास्थ्य तथा पंचतत्वों में कमी या वृद्धि रोग का कारण हैं। पंचतत्वों का संतुलन प्रत्येक व्यक्ति के आहार–विहार, जीवन शैली, व्यवसाय उसके सामाजिक वातावरण पर निर्भर करता है तथा यह स्वाभाविक है कि इनके कारण व्यक्तियों में विभिन्नता मिलती है। किसी भी रोग की जांच करते समय रोगी की परीक्षा करना अत्यन्त आवश्यक होता है। यदि हम रोगी की परीक्षा नहीं करेंगे तो बहुत से ऐसे कारणों को हम नहीं देख पाएंगे जो कि रोग निदान में बहुत

fVIi.kh

महत्वपूर्ण हो सकते हैं और हो सकता है उन्हें रोगी ने कभी दिखाने की, जानने की कोशिश नहीं की क्योंकि उससे उसे कोई फर्क नहीं पड़ रहा होता है जबकि वो शरीर को हानि पहुँचा रहे होते हैं। अतःरोगी की परीक्षा से रोग के निदान में सहायता मिलती है।

चूँकि प्राकृतिक चिकित्सा में रोग का एक ही कारण विजातीय द्रव्य माना जाता है अतः उसे बाहर निकालना ही उपचार होता है। अतः रोगी के परीक्षण से हमें यह ज्ञात होता है कि शरीर का कौन सा अंग विकारग्रस्त या व्याधिग्रस्त है और उसमें विजातीय द्रव्यों की सीमा क्या है? जब हमें इन बातों का ज्ञान हो जाता है तो चिकित्सा करने में सरलता होती है। रोगों की वास्तविक दशा का पता लगने से उसकी साध्यता–असाध्यता पर विचार किया जा सकता है। अतः प्राकृतिक चिकित्सा को रोग की पूरी स्थिति के विषय में जानकारी होनी चाहिए। तो आइये रोगी परीक्षा या रोग निदान की कुछ विधियों के बारे में जानते हैं।

jksxh ijh{kk

जैसाकि अभी हमने जाना कि वास्तव में रोगी परीक्षा का उद्देश्य भी रोग को ही जानना है। इसलिए रोगी परीक्षा की कई विधियाँ बताई गयीं हैं :

jksxh ijh{kk

- ¼1½ ukMh ijh{k.k
- ¼2½ ftºok ijh{k.k
- ¼3½ vk[kksa dk ijh{k.k
- ¼4½ e= ijh{k.k
- ¼5½ ey ijh{k.k
- ¼6½ jksxh dk Li'kZ djds
- ¼7½ jksxh dk Jo.k djds
- ¼8½ 'kjhj dh vk—fr ls

2-1½ ukMh ijh{k.k

नाड़ी का सम्बन्ध हृदय के साथ होता है अर्थात् जितनी बार हृदय का एक मिनट में स्पंदन होता है उतनी ही बार नाड़ी का भी स्पंदन होता है। अतः इसे हृदय गति (Heart Rate) भी कहते हैं। इसे चिकित्सक अंगुष्ठ मूल में अपनी हाथ की अँगुलियों तर्जनी, मध्यमा और अनामिका से अनुभव करता है। परीक्षा सुस्थिर एवं एकचित्त होकर करनी चाहिए। अतः धमनी द्वारा जो रक्त संचार होता है, उसकी परीक्षा हेतु नाड़ी की परीक्षा

की जाती है। नाड़ी की गति, उसके प्रकार, स्पर्शादि से रोगों के विषय में जान सकते हैं। नाड़ी परीक्षा में निम्नलिखित भावों का परीक्षण किया जाता है –

ukMh xfr ¼Pulse Rate½

सामान्यतः एक स्वस्थ व्यस्क (18 वर्ष और इससे ऊपर) का हृदय एक मिनट में 60–100 बार उसकी शारीरिक स्थिति और आयु के अनुसार स्पंदन करता है। तथापि आयु के अनुसार नाड़ी की संख्या में बदलाव होता रहता है। इसे निम्न तालिका में दर्शाया गया है।

ukMh rkfydk

Ø-l-	vk;q	ukMh dh la[;k ¼çfr feuV½
1.	भ्रूण में	110– 160 बार
2.	जन्म के बाद	130–140
3.	1 वर्ष तक	115–130
4.	1 से 2 वर्ष तक	100–115
5.	3 से 5 वर्ष तक	80–120
6.	5 से 14 वर्ष तक	80–85
7.	15 से 21 वर्ष तक	75–85
8.	22 वर्ष से 60 वर्ष तक	60–75
9.	वृद्धावस्था	55–65

प्रौढ़ अवस्था में एक स्वस्थ व्यक्ति का स्पंदन प्रति मिनट 70–75 बार तक होता है। शारीरिक गठन, खान–पान, रहन–सहन, स्त्री–पुरुष, बाल–व्यस्क आदि के अनुसार भी नाड़ी की गति घट–बढ़ सकती है। इसके अतिरिक्त भागने–दौड़ने, व्यायाम की स्थिति में यह सामान्यतः बढ़ जाती है।

- नाड़ी श्वास का अनुपात भी देखना चाहिए। प्रायः श्वास और नाड़ी का अनुपात 1:4 का होता है।
- शरीर का 1^0 (एक डिग्री) तापमान बढ़ने पर नाड़ी की गति 1^0 बढ़ जाती है। परन्तु आंत्र ज्वर (Typhoid fever) में तापमान की वृद्धि के अनुसार नाड़ी की गति नहीं बढ़ती।

ukMh xfr fxuus dh fof/k &

- नाड़ी को गिनने के लिए अपने हाथ की तीन अँगुलियों को (जैसा पहले बताया जा चुका है) रोगी के दायें या बाएँ हाथ के अंगुष्ठ मूल के नीचे रखें।

jkxh dh ijh{kk ¼tkp½

fVIi.kh

- नाड़ी गति की गिनती करने के लिए सेकेंड की सुई लगी घड़ी का उपयोग करते हैं। गिनना तभी आरम्भ करें जब सेकेंड की सुई 12 पर हो।
- नाड़ी को सदैव एक मिनट तक गिनें (या 15 सेकेंड तक गिनकर उसे चार से गुना कर दें)।
- प्रायः पुरुषों में दायें हाथ में और महिलाओं के बाएँ हाथ में नाड़ी परीक्षा की जाती है।

y;c)rk ¼Rythm½ – एक स्वस्थ व्यक्ति में नाड़ी हमेशा नियमित और लयबद्ध चलती है परन्तु दोष का प्रकोप होने पर तथा हृदय रोगों में विशेषतः अनियमित व विषम चलती है अर्थात् कभी तीव्र कभी मंद चलती है। ऐसी स्थिति को arrhythmia कहते हैं।

ukM+h dk Li'kZ

नाड़ी को स्पर्श करके भी रोगों का अनुमान लगा सकते हैं।

- नाड़ी को स्पर्श करने से यदि चिकित्सक को अपनी अँगुलियों पर अधिक दबाव देना पड़े तो नाड़ी गुरू है और उसमें अधिक शक्ति है। ज्वर, अतिसार, आमवात (गठिया) आदि रोगों में नाड़ी गुरू होती है तथा रक्तभार अधिकता (High B.P.) में नाड़ी गुरू तथा शक्तिशाली होती है।
- इसके विपरीत यदि कम दबाव से नाड़ी दब जाये तो इसे क्षीण तथा कम शक्ति वाली समझना चाहिए। इस प्रकार की नाड़ी रक्ताल्पता (anaemia), विसूचिका (cholera), हृद रोग इत्यादि में होती है।
- नाड़ी को छूने पर यदि अंगुली पर धीमी सा स्पंदन होता है तो इसे निर्बल नाड़ी समझना चाहिए। इस प्रकार की नाड़ी रोगों में जीवनी–शक्ति घट जाने पर मिलती है।
- जब सामान्य अवस्था में नाड़ी की गति यदि कम होती है, तो मंद नाड़ी कहते हैं। इस प्रकार की नाड़ी रक्तभार की कमी, मूर्च्छा अथवा सदमा आदि के समय मिलती है।

2-2½ ftºok ijh{k.k

जिह्वा परीक्षण से पाचन संस्थान के विकारों तथा वहां संचित विजातीय द्रव्यों का ज्ञान प्राप्त होता है। अतः चिकित्सक जिह्वा परीक्षण करते हैं। जिह्वा परीक्षा से निम्न ज्ञान प्राप्त होता हैः

- तीव्र ज्वर, लम्बे उपवास तथा जल की कमी होने पर जीभ पर मैल की तह जम जाती है।
- रक्त की कमी होने पर जीभ का रंग श्वेत तथा पांडुर हो जाता है और जीभ की सतह मुलायम तथा समतल हो जाती है।
- पीलिया में रोगी की जीभ कुछ पीली हो जाती है।
- हृदय के रोगों में जिनमें रक्त का संचार सुचारू रूप से नहीं हो पाता वहां जीभ का रंग कुछ नीला हो जाता है।

fVIi.kh

- पाचनशक्ति के विकारों में जीभ लाल हो जाती है तथा उस पर छोटे–छोटे दाने दिखाई पड़ते हैं।
- अजीर्ण रोगों में जीभ मोटी हो जाती है तथा उस पर सफेदी अर्थात् मलावृत दिखाई देती है।
- आमाशय के रोगों में जीभ फटी हुई होती है।
- उदर रोगों में मुंह से दुर्गन्ध आने लगती है।
- अंकुश कृमि (hookworm) यदि कोष्ठ में हों तो जिह्वा पर काले धब्बे पड़ जाते हैं।
- आन्त्रिक ज्वर (टाइफाइड बुखार) में जिह्वा किनारों पर लाल तथा बीच में मलावृत होती है।
- अर्दित रोगों में (facial paralysis) में जिह्वा मुंह से टेढ़ी निकलती है।
- शरीर में जल की कमी होने पर जीभ सूखी और रुक्ष हो जाती है।
- विटामिन बी की कमी से जीभ चिकनी हो जाती है।

2-3½ vk[kksa dk ijh{k.k

आँखों के स्वरूप में भी रोग की विभिन्न अवस्थाओं में अंतर आ जाता है। अतः आँखों को देखकर भी रोग का अनुमान लगाया जा सकता है। उदहारण के लिए :

- रक्ताल्पता में (Anemia) आँखों का रंग सफेद तथा पांडुर हो जाता है।
- पीलिया रोग में (Jaundice) आँखें पीली दिखाई देती हैं।
- बहिर्नेत्र गलगंड (Exophthalamus Goitre) में आंखें बाहर निकली हुई दिखाई देती हैं।
- रसक्षय तथा धातुक्षय (जैसे टी.बी. आदि रोग) की अवस्था में आंखें धंसी हुई प्रतीत होती हैं।
- नेत्र पलकों पर शोथ होने पर वृक्क (kidney) में सूजन का अनुमान किया जाता है। यह सूजन प्रातःकाल अधिक होती है।
- अर्दित रोग में आंखें पूर्णतः बंद नहीं होती हैं।
- विटामिन ए की कमी होने पर आँखों में शुष्कता (xerophthalamia) तथा सफेद धब्बे (bitot spot) हो जाते हैं।

2-4½ e= ijh{k.k

यूँ तो मूत्र शरीर से निकलने वाला एक मल मात्र है तथापि यह शरीर के विषय में बहुत कुछ बताता है।

jksxh dh ijh{kk ¼tkp½

कुछ रोगों का निदान मूत्र परीक्षण से ही हो पाता है जैसे मूत्र में संक्रमण आदि। तो आइये मूत्र के विषय में जानते हैं –

ek=k & साधारणतः स्वस्थ व्यक्ति प्रतिदिन 1500 सी.सी. मूत्र परित्याग करता है। शीत तथा वर्षा ऋतु में यह मात्रा बढ़ जाती है तथा ग्रीष्म ऋतु में पसीना अधिक आने के कारण मूत्र की मात्रा कम हो जाती है। सामान्यतः स्वस्थ अवस्था में व्यक्ति प्रायः दिन में 5 बार तथा रात्रि में 1 बार मूत्र का परित्याग करता है।

- मधुमेह (diabetes mellitus) तथा जीर्ण वृक्कशोथ (chronic nephritis) आदि में मूत्र की मात्रा बढ़ जाती है।
- संक्षोभ (Shock), रक्तचाप में कमी, शरीर में पानी की कमी (दस्त, हैजा आदि में) होने पर मूत्र की मात्रा कम हो जाती है।
- रात्रि में बार–बार मूत्र का परित्याग करना मधुमेह का सूचक हो सकता है।

jax & प्राकृत अवस्था में मूत्र हलके पीले रंग का होता है। रोगों के अनुसार इसके वर्ण में परिवर्तन आ जाता है :

- पीलिया रोग में मूत्र अधिक पीला हो जाता है।
- फीलपांव (filaria) में मूत्र में काइल (chyle) आने पर मूत्र दूध के सामान सफेद हो जाता है। इस अवस्था को chyluria कहते हैं।
- मूत्र में रक्त आने पर मूत्र का रंग लाल तथा हीमोग्लोबिन आने पर काला हो जाता है।

ikjnf'kZrk& प्राकृत अवस्था में मूत्र जल के सामान निर्मल होता है। मूत्र में फॉस्फेट (phosphate) तथा पूय (Pus) होने पर इसका रंग कुछ गंदला हो जाता है।

xa/k & प्राकृत मूत्र की एक विशिष्ट गंध होती है। ज्यादा उपवास करने पर या मधुमेह के अनियंत्रित होने पर मूत्र से ketones आने लगते हैं जिससे इसकी गंध सड़े फल के सामान मीठी हो जाती है।

2-5½ ey ijh{k.k

मल परीक्षण भी मूत्र परीक्षण के समान महत्वपूर्ण है। पाचन तंत्र सम्बन्धी रोगों के निदान के लिए विशेष रूप से मल अथवा पुरीष परीक्षण ही महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान कर सकता है। दस्त–पेचिस जैसे जानलेवा रोगों के निदान हेतु अथवा कारण जानने व समझाने हेतु हमें मल का ही परीक्षण करना अनिवार्य हो जाता है। मल परीक्षण के द्वारा कई महत्वपूर्ण परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं। रक्ताभाव, पेट में कीड़े,

आँतों से रक्तस्राव का पता लगाने के लिए मल परीक्षण एक प्रभावशाली तरीका है। आइये कुछ और विशेषता जानते हैं :

ek=k & इसकी मात्रा के विषय में कुछ भी निश्चित रूप से कठिन है। मनुष्य जैसा भोजन करता है उसी के अनुसार मल त्याग होता है। जैसे मनुष्य यदि मांसाहारी है तो मल त्याग अल्प और यदि शाकाहारी है तो उसमें विद्यमान अनेक तंतुओं के कारण जिनका पाचन नहीं हो पाता मात्रा अधिक हो जाती है।

o.k & प्रायः पुरीष का वर्ण खाए गए आहार पर निर्भर करता है। यथा हरे साग जैसे पालक, सरसों आदि खाने पर पुरीष का वर्ण कुछ हरे रंग या काले रंग का हो जाता है। इसी प्रकार वे खाद्य पदार्थ जिनमें लौह अंश कुछ अधिक होता है उनका सेवन करने पर पुरीष का वर्ण काला हो जाता है। ऐसी अवस्था में जहां उपरोक्त बताये गए पदार्थों के सेवन का इतिहास नहीं है तब भी कृष्ण वर्ण का मल त्याग ऊपरी आंतों से रक्तस्राव को बताता है। यदि पुरीष के साथ रक्त आता है तो वह निचली आंतों के रक्तस्राव को दर्शाता है। पीलिया रोग में पुरीष का वर्ण श्वेत हो जाता है।

x/k & सामान्यतः स्वस्थ पुरुष के मल से एक विशेष प्रकार की गंध आती है, जिसे दुर्गन्ध नहीं कहा जा सकता। कब्ज होने की स्थिति में मल के अंदर रहने से सड़ने के कारण मल से दुर्गन्ध आती है। इसी प्रकार पाचन संस्थान में संक्रमण होने पर भी दुर्गन्ध आती है।

vk—fr ,oa laxBu & प्राकृतिक मल बंधा हुआ एवं मुलायम होता है। कठिन व रुक्ष पुरीष कोष्ठबद्धता (कब्ज) का प्रतीक है और अधिक पतला मल अतिसार को सूचित करता है।

2-6½ jkxh dk Li'k djd

रोगी की परीक्षा करते हुए रोगी को स्पर्श करके देखना भी बहुत महत्वपूर्ण होता है। एक ओर जहां ये रोगी का चिकित्सक के साथ परस्पर आत्मीयता का भाव उत्पन्न करता है वहीं दूसरी ओर चिकित्सक को रोगी के विषय में निम्न भावों को बताता है :

- शरीर की शीतता या उष्णता
- गुरुता या लघुता
- मृदुता या कठोरता
- चिकनापन या रुक्षता
- सशूलता (दर्द के साथ) या निःशूलता (बिना दर्द के)
- घनता (solid जैसे की कोई गांठ आदि) या द्रवता (जैसे कई प्रकार की cysts)

शरीर का तापमान देखने के लिए जो थर्मामीटर द्वारा परीक्षा की जाती है वह भी स्पर्श परीक्षा ही है। इसी प्रकार नाड़ी परीक्षा का समावेश भी स्पर्श परीक्षा में ही करना चाहिए।

fVIi.kh

2-7½ jksxh dk Jo.k djdk

रोगी की परीक्षा में श्रवण परीक्षा भी बहुत महत्वपूर्ण होती है। इससे शरीर में उत्पन्न होने वाले प्राकृत और अप्राकृत शब्दों का ज्ञान होता है। कुछ शब्द ऐसे होते हैं जिसके लिए श्रवण तंत्र (स्टेथोस्कोप) की आवश्यकता पड़ती है। इसमें परीक्ष्य भाव हैं :

- हृदय तथा फुफ्फुस (सनदहे) के प्राकृत और अप्राकृत स्वर विशेष
- आंत्रकूजन
- संधिस्फुटन
- कंठकूजन

2-8½ 'kjhj dh vk—fr ls

मनुष्य का शरीर भौतिक तत्वों से बना है तथा प्रत्येक व्यक्ति दूसरे से भिन्न होता है। रोगी को ऊपर से नीचे तक देखने से आंखों द्वारा जिन भावों की परीक्षा होती है उसे आकृति परीक्षा कहते हैं। अन्य शब्दों में आकृति निदान वह है जिसके अंतर्गत शरीर के विभिन्न अंगों में आये बदलावों का अध्ययन कर शरीर में रोगों के कारण का पता लगाया जा सकता है। आकृति निदान को ही मुखाकृति निदान पद्धति भी कहा जाता है। आतंरिक सुख–दुःख का प्रकाशन भी रोगी के मुख पर आने वाली विभिन्न मुद्राओं द्वारा प्रकट होता है। अतः कह सकते हैं कि किसी भी मनुष्य के शरीर में घटित होने वाले बदलाव का सबसे पहले प्रभाव मुख पर दिखाई देता है। जैसे सामान्यतः स्वस्थ व्यक्ति का मुख प्रफुल्लित एवं प्रसन्न होता है किन्तु रोगी व्यक्ति का मुख विषाद युक्त होता है। गंभीर रोगों में मुखमंडल पर स्पष्टतः व्यथा के भाव अंकित होते हैं।

इसी प्रकार रोगी की आंखों का रंग पीला या लाल है, आंखों के नीचे काले घेरे, चेहरे पर मुंहासे, शरीर का रंग आदि देखकर उसके रोग का अंदाजा लगाया जा सकता है। इससे शरीर के विभिन्न अंगों की बनावट, परिचालन एवं गति सबको सावधानी से देखकर अर्थात् बाहरी आकृति को देखकर शरीर की आतंरिक दशा का ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

आइये मुख को देखकर कुछ परीक्ष्य भावों को जानें –

- चेहरे व पलकों पर सूजन – वृक्क शोथ
- चेहरे पर पीलापन – पीलिया, पांडू रोग (एनीमिया)
- होंठ, जीभ तथा नाक का नीला होना–हृदय या श्वसन तंत्र में विकार आने के कारण धमनीगत रक्त में ऑक्सीजन की कमी होना।
- हाथों की अँगुलियों के जोड़ों में विकृति – गठिया
- नाखूनों पर सफेद धब्बे – कैल्शियम की कमी

fVIi.kh

- पैर के अंगूठे में सूजन व दर्द – गठिया (Gout)
- मसूड़ों का रंग नीलेपन पर होना – हृदय रोग का सूचक

इस प्रकार आपने जाना कि रोग व रोगी परीक्षा करना क्यों आवश्यक है। आपने यह भी जाना कि जहां–जहां विजातीय द्रव्य संचित होते हैं वहीं–वहीं रोगोत्पत्ति होती है। रोग परीक्षा वास्तव में रोगी की ही परीक्षा होती है जिसमें रोगी से प्रश्न पूछकर रोग का इतिवृत्त जानने का प्रयास किया जाता है। इसी प्रकार रोगी की परीक्षा का उद्देश्य भी रोग को जानना ही है अर्थात् उसका सही–सही निदान करना है। रोगी परीक्षा के लिए कई विधियां बताई गई हैं, जिनसे रोग का निदान करने में सहायता मिलती है।

bdkbxr i'u&2-2

1) रिक्त स्थान भरिए –

क) जितनी बार हृदय का एक मिनट में स्पंदन होता है, उसे .... कहते हैं।

ख) शरीर का एक डिग्री तापमान बढ़ने पर नाडी की गति .... बढ़ जाती है।

ग) आमाशय रोगों में जीभ .... होती है।

घ) विटामिन बी की कमी से जीभ .... हो जाती है।

ङ) पीलिया में आंखें .... दिखाई देती है।

च) रात्रि में बार–2 मूत्र का परित्याग परित्याग करना .... का सूचक हो सकता है।

छ) मांसाहारी मनुष्य का मल त्याग .... होता है।

2) सही अथवा गलत बताइए –

क) रक्ताल्पता में आंखों का रंग पीला हो जाता है। ( )

ख) अर्दित रोग में जिह्वा मुंह से सीधी निकलती है। ( )

ग) ज्यादा उपवास करने या अनियंत्रित मधुमेह में मूत्र से सड़े फल के समान मीठी गंध आती है। ( )

घ) लौह अंश न लेने की स्थिति में भी कृष्ण रंग का मल त्याग ऊपरी आंतों से रक्तस्राव दर्शाता है। ( )

ङ) मसूड़ों का रंग नीला होना वृक्क रोगों का सूचक है। ( )

च) नाखूनों पर सफेद धब्बे कैल्शियम की कमी दर्शाते हैं। ( )

vkiu D;k lh[kk

इस इकाई (यूनिट) में आपने सीखा कि –

- किसी भी रोग को जानने के लिए उसके इतिहास (पिेजवतल) का जानना अत्यंत आवश्यक है।
- चिकित्सा प्रारम्भ करने से पूर्व रोगी का इतिवृत्त लेना (भ्पेजवतल जांपदह) अत्यंत आवश्यक होता है।
- इतिवृत्त में रोगी का सामान्य विवरण जैसेरोगी का नाम, उम्र, लिंग, पता, व्यवसाय व वैवाहिक स्थिति होनी चाहिए।
- रोगी से वर्तमान व्याधि की मुख्य शिकायतें, पूर्व व्याधि का इतिवृत्त, चिकित्सा इतिवृत्त, पारिवारिक इतिवृत्त व व्यक्तिगत इतिवृत्त के बारे में पूछा जाता है।
- महिला रोगी में इन सबके अतिरिक्त माहवारी सम्बन्धी और प्रसूति सम्बन्धी जानकारी भी ली जाती है।
- बच्चों में उनके जन्म तथा टीकाकरण की जानकारी प्राप्त की जाती है।
- रोगी परीक्षा की कई विधियां होती हैं जिनमें नाड़ी परीक्षण, जिह्वा परीक्षण, आँखों का परीक्षण, मूत्र परीक्षण, मल परीक्षण, रोगी का स्पर्श करके, रोगी का श्रवण करके, शरीर आकृति को देखना आदि महत्वपूर्ण हैं।

bdkbl dk vUr esa iz'u

1. इतिवृत्त को, समझाते हुए, रोगी का इतिवृत्त लेने की विधि और सूचनाओं के क्रम का वर्णन कीजिए।
2. रोगी का इतिवृत्त लेते समय रोगी के सामान्य विवरण में ली जाने वाली जानकारियों एवं उसके महत्व पर प्रकाश डालिए।
3. रोगी परीक्षा को विस्तार से समझाते हुए, किन्हीं तीन परीक्ष्य भावों का वर्णन कीजिए।

;fuVxr iz'uksa ds mÙkj

2-1

1. क) सही

   ख) गलत

fVIi.kh

ग) सही

घ) सही

ङ) गलत

च) गलत

2-2

1.

क) हृदय गति/नाड़ी गति

ख) 10

ग) फटी हुई

घ) चिकनी

ङ) पीली

च) मूत्रमेह

छ) अल्प

2. क) गलत

ख) गलत

ग) सही

घ) सही

ङ) गलत

च) सही

fVIi.kh

3

चिकित्सा एवं विभिन्न चिकित्सा पद्धतियां

प्रिय शिक्षार्थियों, पिछली इकाई (यूनिट) में आपने रोग एवं रोगी की परीक्षा की जानकारी प्राप्त की। आपने जाना कि, कैसे रोगी की परीक्षा की जाती है, वह किस व्याधि से पीड़ित हो सकता है और उनके क्या–क्या कारण हो सकते हैं? विशेष रूप से आपने, रोगी के इतिवृत्त (Case History) लेने की विधि और रोगी की परीक्षा (जांच) करना सीखा। और किसी भी व्यक्ति के रोगी होने पर, विभिन्न विधियों से उसके रोगों को दूर कर उसे स्वस्थ किया जाता है। इन विभिन्न प्रकार की विधियों को हम सामान्यतः चिकित्सा कहते हैं। इस इकाई (यूनिट) में आप चिकित्सा एवं चिकित्सा पद्धतियों के विषय में विस्तार से अध्ययन करेंगे।

mís';

इस इकाई (यूनिट) का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- चिकित्सा का अर्थ समझा सकेंगे तथा चिकित्सा की विभिन्न विधियों का वर्णन कर सकेंगे;
- निदान परिवर्जन (रोग के कारणों को हटाना) का वर्णन कर सकेंगे;
- चिकित्सा के परिपेक्ष्य में विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों – यौगिक चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा, आहार चिकित्सा आदि पर प्रकाश डाल सकेंगे;
- चिकित्सक व सहा० चिकित्सक (परिचारक) के कर्त्तव्यों की विवेचना कर सकेंगे और रोगी एवं पारिवारिक सदस्यों के दायित्वों का उल्लेख कर सकेंगे।

fVIi.kh

3-1 fpfdRlk dk vFkZ

प्रिय शिक्षार्थियों अब तक हम रोग और उनके कारणों के विषय में विस्तार से पढ़ चुके हैं। आइये अब जाने कि चिकित्सा से क्या तात्पर्य है –

fpfdRlk vFkkZr mipkj

विभिन्न शास्त्रों व चिकित्सीय पद्धतियों में चिकित्सा का अर्थ इस प्रकार समझाया गया है –

1. **jkx d s çfrdkj dju s dk s fpfdRlk dgr s gSA**
2. **fpfdRlk jkxfunkuçrhdkj & ** रोग के उत्पादक कारण को दूर करने को चिकित्सा कहते हैं।
3. **fpfdRlk rRçrhdkj%& ** रोग का प्रतिकार करना ही चिकित्सा है।
4. **;k fØ;k O;kfèkgj.kh lk fpfdRlk fux|r&** व्याधि के अपहरण की क्रिया को चिकित्सा कहते हैं।

   चिकित्सा को भेषज, अगद, व्याधिहर, साधनादि नामों से भी जाना जाता है।

3-1-1 fpfdRlk dh ifjHkk"kk

आइये अब कुछ प्रमुख विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं पर विचार करें –

चरक संहिता में आचार्य चरक ने चिकित्सा की निम्निलिखित परिभाषा दी है –

;kfHk% fØ;kfHkZtk;Ur s 'kjhj s èkkro% lek% A

lk fpfdRlk fodkjk.kka de Z rfnHk"ktka ere~ AA ¼p-l- 16@34½

जिन क्रियाओं द्वारा शरीर में दोष, धातु, मल अपने वैषम्य को छोड़कर नियत सम प्रमाण में जाएं, उसे चिकित्सा कहते हैं। एवं रोग हो जाने पर विषम बने हुए दोष एवं धातुओं को साम्यावस्था में लाने के लिए की जाने वाली क्रिया चिकित्सा कहलाती है।

आचार्य भावमिश्र द्वारा निम्नांकित परिभाषा दी गई है –

;k fØ;k O;kfèkgj.kh lk fpfdRlk fux|r s A

nk"kèkkrqeykuka ok lkE;—r~ s lo Z jkxâr AA ¼Hkko-feJ-i-[k-11½

जिस क्रिया के द्वारा रोग का नाश हो एवं शरीर के दोष, धातु एवं मल के वैषम्य को दूर कर साम्यावस्था में लाये, उसे चिकित्सा कहते हैं।

fpfdRlk ,oa fofHkUu fpfdRlk i)fr;k

इस प्रकार हम देखते हैं कि, रोगों से आक्रांत होने पर, उनसे मुक्त होने के लिये, जो उपचार किया जाता है वह **fpfdRlk** (Therapy) कहलाती है। व्यापक अर्थ में यदि समझा जाय तो **o lHkh mipkj *fpfdRlk* d vrxr vk tkr g ftul LokLF; dh j{kk gkrh g vkj jkxk dk fuokj.k gkrk gA** उपरोक्त कथनों से हम कह सकते हैं कि किसी रोग का उपचार चिकित्सा कहलाता है। अस्वस्थ्य शरीर को स्वस्थ बनाना चिकित्सा कहलाता है।

अभी हमने जाना कि रोगाक्रांत होने पर उनसे मुक्ति के उपायों को चिकित्सा कहते हैं। शिक्षार्थियों क्या कभी आपने सोचा है कि एक उत्तम चिकित्सा क्या होती है या होनी चाहिए ।

आयुर्वेद आचार्य सुश्रुत चिकित्सा को इस प्रकार परिभाषित करते हैं –

yk á\nh.k 'ke;fr ukU;a 0;kfèke djkfr pA

lk fØ;k u rq ;k 0;kfèke gjR;U;eqnhj;sr AA ¼l- l- 35@23½

जो चिकित्सा उत्पन्न हुए दोषों का तो शमन करे किन्तु किसी दूसरे रोग को उत्पन्न न करे, वही उत्तम चिकित्सा होती है। इसके विपरीत जो चिकित्सा किसी रोग को तों शांत करे किन्तु किसी अन्य रोग को उत्पन्न कर दे, वह चिकित्सा उत्तम नहीं है।

वहीं आचार्य चरक कहते हैं कि–

ç;kx% 'ke;n~ 0;kçèk ;k-U;eU;eqnhj;rA

ukls fo'k)% 'k)Lrq 'ke;sn~ |k u dki;sr AA ¼p- fu- 8@23½

जिसका प्रयोग करने पर व्याधि का शमन हो जाये और वह अन्य किसी रोग को उत्पन्न न करे वही चिकित्सा शुद्ध है। वह चिकित्सा शुद्ध नहीं है, जो एक रोग को ठीक करे और दूसरे रोग को उत्पन्न करे।

इस प्रकार शिक्षार्थियों, उत्तम चिकित्सा वही है जो दोष रहित हो अर्थात् किसी अन्य रोग को उत्पन्न न करे। अतः चिकित्सा करते हुए हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि किसी एक रोग को ठीक करते हुए अन्य कोई रोग रोगी को न होने पाए।

3-2 fpfdRlk dk y{;

चिकित्सा का लक्ष्य बाह्य तथा आन्तरिक स्तर पर बीमारियों का उन्मूलन करना होता है। सामान्यतः चिकित्सा दो स्तरों पर होती है।

1. शारीरिक चिकित्सा

2. मानसिक चिकित्सा

fVIi.kh

fVIi.kh

किसी अंग विशेष में क्षति, रोग या संक्रमण होने से उसकी कार्यक्षमता धीर–धीरे घटते हुये समाप्त हो जाती है, उस अंग विशेष को पुनः जीवित व कार्यक्षम बनाने के लिये जिस विधि का उपयोग किया जाता है, वह चिकित्सा है। शरीर के अंगों की चिकित्सा शारीरिक चिकित्सा कहलाती है तथा मानसिक स्तर पर होने वाले कष्टों के कारण (चाहे वे तनावपूर्ण दिनचर्या व परिस्थितियां हों या भावनाएं आहत हुई हों) हुए मानसिक रोगों की चिकित्सा मानसिक चिकित्सा कहलाती है।

3-3 fpfdRlk d fofHkUu Hkn vkj fof/k;k

जैसे रोग अनगिनत होते हैं, उसी प्रकार चिकित्सा के प्रकार भी अनगिनत होते हैं। किन्तु शास्त्रों में चिकित्सा के जिन प्रकारों का युक्तियुक्त ढंग से उल्लेख किया है, वे ही आधारभूत प्रकार हैं, जिनके धरातल पर अनेक तरह की चिकित्सा का प्रयोग किया जाता है। इनमें से कुछ प्रमुख हैं:

3-3-1 funku ifjotu ;k iF; lou

इसे एकविध चिकित्सा भी कह सकते हैं। शिक्षार्थियों जैसा कि आप जान ही गए हैं शरीर में रोग उत्पन्न करने में कुछ कारणों का योगदान होता है, जिन्हें हम रोगोत्पादक कारण कहते हैं। इन कारणों का परित्याग ही निदान परिवर्जन या पथ्यसेवन कहलाता है।

निदान परिवर्जन ही सबसे उत्तम चिकित्सा मानी गयी है। किसी भी रोग की चिकित्सा करते समय, उस बीमारी के उत्पादक कारणों का परित्याग करना तथा जिन कारणों से रोग उत्पन्न हुआ हो उनका त्याग करना, चिकित्सा का एक महत्वपूर्ण भेद है। निदान परिवर्जन से तात्पर्य है रोग के कारणों को हटाना अर्थात् उन सभी कारणों को हटाना जिनके कारण व्यक्ति रोगी हो जाता है।

d½ **l{kir% fØ;k;kxk funkuifjotue &** संक्षेप में जिन कारणों से रोग उत्पन्न हुआ है, उन कारणों का परित्याग करना ही चिकित्सा है। (सु.उ. 1/25)

[k½ **grkj lok fofgrk ;Fko tkrL; jkxL; HkofPpfdRlk &** रोग के अनुसार पथ्यसेवन चिकित्सा है।

x½ **iF; lfr xnkrL; fdek"kèkfu"ko.k% &** पथ्य सेवन करने वालों को औषध सेवन की आवश्यकता नहीं है। (वैद्य जीवन)

?k½ **fpfdRlk jkxfunkuçrhdkj &** रोग के उत्पादक कारण को दूर करने को चिकित्सा कहते हैं।

एक रोगी और स्वस्थ व्यक्ति को मुख्यतः निम्नांकित सिद्धांतों का पालन करना चाहिए;

- दिनचर्या, रात्रिचर्या व ऋतुचर्या का पालन करना,
- उचित आहार एवं विहार के नियमों का पालन करना,
- निरंतर योग अभ्यास करना,

fpfdRlk ,oa fofHkUu fpfdRlk i)fr;k

- प्रकृति के सान्निध्य में जीवन जीना,
- जीवन को अध्यात्मक स्तर पर जोड़ना और सकारात्मक विचार रखना,
- स्वयं को आत्मा–परमात्मा से जोड़ना ।

निदान परिवर्जन को व्यावहारिक दृष्टि से इस प्रकार समझा जा सकता है कि यदि भारी भोजन, पत्तेदार सब्जियों के खाने से अतिसार (दस्त) हुआ है तो इन भोजन का त्याग किया जाये।

3-3-2 f}foèk fpfdRlk

'khr mipkj& जब उष्णताजनक कारणों से रोग उत्पन्न होता है तो उसके शमन के लिए शीतोपचार किया जाता है।

m".k mipkj& इसके विपरीत जब शीतजनित रोग होता है, तब उष्ण उपचार किया जाता है।

3-3-3 lIrfoèk fpfdRlk

1. पाचन – आमदोषों को पचाने वाला उपचार पाचन होता है।
2. दीपन – अग्नि को प्रदीप्त करने वाला उपाय दीपन कहलाता है।
3. क्षुधा – भूखे रहना या न के बराबर खाना क्षुधा है।
4. तृषा – प्यासे रहना या बहुत थोड़ा जल पीना तृषा उपाय है।
5. व्यायाम – परिश्रम करना, घूमना– टहलना व्यायाम है।
6. आतप – धूप में रहना या आग तापना आतप या धूप सेवन है।
7. मारुत – खुले स्थान में रहना, वायु सेवन करना मारुत है।

3-3-4 n'kfoèk fpfdRlk

आचार्य चरक ने आयुर्वेद में लंघन चिकित्सा के दस भेद बताये हैं:

pr"çdkjk% l'kf)% fiikl kek#rkrik A

ikPkukU;iokl'p 0;k;ke'pfr y?kue AA ¼p- l- 22@18½

चार प्रकार की संशुद्धि (वमन, विरेचन, निरूहवस्ति, नस्य), पिपासा वायुसेवन, धूपसेवन, पाचन, उपवास और व्यायाम ये दस प्रकार के लंघन होते हैं।

fVIi.kh

bdkbZxr iz'u&3-1

1. सही अथवा गलत बताएं:

क) रोग के उत्पादक कारण को दूर करने को चिकित्सा कहते हैं। ( )

ख) अस्वस्थ्य शरीर को स्वस्थ बनाना चिकित्सा कहलाता है। ( )

ग) उत्तम चिकित्सा वही है जो दोष रहित हो अर्थात् किसी अन्य रोग को उत्पन्न न करे। ( )

घ) निदान परिवर्जन से तात्पर्य रोग के कारणों को हटाना है । ( )

ङ) पथ्य सेवन करने वालों को औषध सेवन की आवश्यकता नहीं है। ( )

3-4 fpfdRlk dh ifjHkk"kk; e fofHkUu fpfdRlk i)fr;k¡

प्राचीन काल से ही मानव स्वस्थ रहने के लिए चिकित्सा की विभिन्न विधियों को उपयोग में लाता रहा है। जैसे योग चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा, आयुर्वेद, यूनानी चिकित्सा, एक्युप्रेशर, रेकी चिकित्सा, सिद्ध चिकित्सा, मुद्रा चिकित्सा इत्यादि। आइये इनमें से कुछ मुख्य चिकित्सा पद्धतियों की चर्चा करें –

3-4-1 ;kSfxd fpfdRlk

;kx d }kjk dh tku okyh fpfdRlk dk ;kSfxd fpfdRlk dgk tkrk gSA

यौगिक चिकित्सा के नाम से ही स्पष्ट हो रहा है कि यह योग के द्वारा की जाने वाली चिकित्सा है। इसके अंतर्गत योग के निम्नलिखित अंगों से चिकित्सा की जाती है–

- षट्कर्म
- आसन
- प्राणायाम
- बन्ध
- मुद्रा
- नादानुसंधान
- ध्यान आदि

इनके विषय में आप पिछले सत्र में सैद्धान्तिक रूप से जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। और योग के व्यावहारिक पक्ष की जानकारी आप इससे पहले विषय/पेपर में प्राप्त कर चुके हैं।

3-4-2 çk—frd fpfdRlk

प्रकृति शब्द का एक पर्यायवाची 'निसर्ग' भी है। अतः इसे कुछ लोग निसर्गोपचार या नैसर्गिक उपचार भी कहते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा के अपने कुछ सामान्य सिद्धांत हैं जिन पर यह चिकित्सा पद्धति आधारित है और कार्य करती है। सर्वप्रथम इसका सिद्धांत है कि शरीर पंचभूतों से बना है। प्राकृतिक चिकित्सा शरीर के शोधन पर बल देती है और इसके अनुसार शरीर की सफाई के चार मार्ग हैं– मलमार्ग, मूत्रमार्ग, श्वासमार्ग और त्वचा। इनसे शरीर की अशुद्धि बाहर निकलती है।

शरीर में दूषित, विषाक्त एवं विजातीय पदार्थों के एकत्र होने से रोग उत्पन्न होते हैं। इन पदार्थों के एकत्र होने का मुख्य स्थान पेट है। इसलिए यदि पेट स्वस्थ है तो हम भी स्वस्थ हैं और पेट बीमार तो हम बीमार। जो भोजन हम लेते हैं उसमें 75 प्रतिशत क्षारतत्व एवं 25 प्रतिशत अम्ल तत्व होना चाहिए। यदि भोजन में 25 प्रतिशत से अधिक अम्लीय आहार लिया जाता है तो रक्त में अधिक खटाई हो जाती है, इस कारण वह दूषित हो जाता है। शरीर इस दूषित पदार्थ को पसीने एवं मूत्र द्वारा अंदर से बाहर निकालने की चेष्टा करता है। यदि दूषित पदार्थ बाहर नहीं निकलता है, तो शरीर रोग ग्रस्त हो जाता है। इस प्रकार जो आहार (भोज्य पदार्थ) पच नहीं पाता अर्थात् रस–रक्त में परिवर्तित नहीं हो पाता, वह शरीर के लिए विजातीय पदार्थ है। उसे बाहर निकाल देना चाहिए। उसका कुछ अंश भी यदि शरीर में रह जाये तो वह रक्त–संचरण के द्वारा समस्त शरीर में फैलकर दूषित विकार एवं रोग उत्पन्न करता है। प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा इन्हीं विजातीय पदार्थों को हटाकर शरीर को स्वस्थ किया जाता है।

çk—frd fpfdRlk e ipegkHkr & पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश द्वारा चिकित्सा की जाती है। बिना औषध के मिट्टी, पानी, हवा, सूर्य–प्रकाश, एनिमा, उपवास एवं फलों, सब्जियों द्वारा चिकित्सा की जाती है। आहार, ऋतुचर्या, दिनचर्या, रात्रिचर्या पर विशेष ध्यान दिया जाता है तथा प्रकृति के निकट रहने का अधिकाधिक प्रयास किया जाता है।

इन पंचतत्वों का परिणाम और क्रम ठीक रहने से ही शरीर का स्वास्थ्य बना रहता है और इनमें गड़बड़ी हो जाने से, परिणाम घट–बढ़ जाने से रोग पैदा हो जाता है। शरीर के प्रत्येक पंचतत्व के असंतुलन से कौन–कौन से रोग उत्पन्न होंगे, इसके लिए नीचे दी गई तालिका का अवलोकन कीजिए;

rkfydk 3-1 % iprRok d vlrqyu l gkus oky jkx

Øekd	ipegkHkr	jkx
1.	आकाश	मूर्च्छा, मिरगी, पागलपन, शक, घबराहट, गूँगापन, बहरापन आदि।
2.	वायु	गठिया, लकवा, दर्द, अकड़न आदि।
3.	अग्नि	फोड़े, फुंसी, हैजा, दस्त, उपदंश, दाह आदि।
4.	जल	जलोदर, पेचिश, मधुमेह, सोमदर, जुकाम, खाँसी आदि।
5.	पृथ्वी	फीलपाँव, रसौली, मेदरोग, मोटापा आदि।

fVIi.kh

यह मुख्य रूप से प्रकृति के सामान्य नियमों के पालन पर आधारित है। ipegkHkrk ls fpfdRlk dSls dh tkrh g(

rkfydk 3-2 % ipegkHkrk ls fpfdRlk

vkdk'k rRo fpfdRlk	उपवास (Fasting), विश्राम (Relaxation), मर्दन क्रिया (Massage) द्वारा आकाश तत्व इतना अधिक सूक्ष्म है कि उसका अनुभव साधारण रीति से तो नहीं बल्कि बड़े.बड़े यंत्रों द्वारा भी भली प्रकार नहीं किया जा सकता, किन्तु कार्य रूप से उसका परिचय मिलता है। आकाश तत्व, जिस प्रकार स्थूल शब्द को दूसरे स्थान तक पहुंचता है उसी प्रकार वह विचारों को भी गति प्रदान करता है।
ok;q rRo fpfdRlk	वायु सेवन, टहलना, मर्दन क्रिया (Massage) द्वारा सभी तत्वों में वायु तत्व बहुत सूक्ष्म है, इसलिए इसका प्रभाव भी शीघ्र होता है। अन्न और जल के बिना मनुष्य काफी समय तक जीवित रह सकता है परंतु वायु के बिना जीवित रहना असंभव है। जिस प्रकार इसके गुण और लाभ अधिक हैं, उसी प्रकार, इसके गलत उपयोग से हानियाँ भी अधिक होती हैं। जिस अंग की वायु विकृत हो जाती है, उसमे तुरंत ही वेदना होने लगती है अथवा वह पक्षाघात जैसी स्थिति भी हो जाती है।
vfXu rRo fpfdRlk	सूर्य चिकित्सा (Helio therapy), सूर्य रश्मि चिकित्सा (Chromotherapy) द्वारा अग्नि तत्व जीवन का उत्पादक है। संसार मे जीवाणु, पौधे, वनस्पति आदि पैदा होते हैं और वृद्धि करते हैं। उनके मूल में उष्णता रहती है। शरीर से उष्णता समाप्त होने पर जीवन का अंत हो जाता है ।
ty rRo fpfdRlk	विविध प्रकार के स्नान, एनिमा, डूश आदि द्वारा मनुष्य के शरीर में 70 प्रतिशत जल पाया जाता है। इसी कारण शरीर को जल आपूर्ति हेतु, जल की सर्वाधिक आवश्यकता होती है। जल की कमी से देह सूखने लगता है, नाड़ियाँ जकड़ती हैं, खून गाढ़ा हो जाता है तथा दाह और अनेक प्रकार के उपद्रव उत्पन्न होने लगते हैं।
iFoh rRo fpfdRlk	मृत्तिका चिकित्सा (Mud therapy) द्वारा इस चिकित्सा में विष या विकारों को खींचने की अद्भुत शक्ति पाई जाती है। शरीर के जिस अंग पर मिट्टी का लेप किया जायेगा और जिस अंग को मिट्टी में डाला जायेगा उसी का विष/विकारयुक्त अंश मिट्टी मे आ जायेगा। इसके साथ ही मिट्टी में पोषण देने की भी शक्ति है।

प्रत्येक रोग के अनुसार दी जाने वाली प्राकृतिक चिकित्सा की विस्तृत जानकारी, आप आगे पढ़ेंगे।

3-4-3 vkgkj fpfdRlk

**^iF; lsoueHkkX;eß blds vFkZ g & **आरोग्य की प्राप्ति के लिए व्यक्ति को प्रतिदिन हितकारी आहार का सेवन करना नितान्त आवश्यक है।

आहार चिकित्सा में प्रमुख सिद्धांत एक ही है कि भांति–भांति के मिश्रणों से बचा जाए। प्राकृतिक आहार ही व्यक्ति को दिया जाये। शरीर आहार से ही बनता है यह सर्वविदित तथ्य है। मन को ग्यारहवीं इन्द्रिय भी कहा गया है। अतः मन भी शरीर का ही एक भाग हुआ। आहार का स्तर जैसा भी होगा शरीरगत स्वास्थ्य एवं संतुलन भी उससे प्रभावित होगा। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए आहार को उतनी ही मात्रा में लिया जाना चाहिए जितनी मात्रा शरीर के लिए आवश्यक है। कहा भी गया है – **^vkgkj gh vk"kf/k g vkj vk"kf/k gh vkgkj gA*** अर्थात् आहार को औषधि के रूप में अर्थात् बहुत ही नापतोल कर खाना चाहिए। इस प्रकार यदि आहार को ही मात्र साध लिया जाये तो परिपूर्ण रूप से स्वस्थ बना रहा जा सकता है।

अच्छे स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए यौगिक आहार सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। अतः हमारा भोजन केवल स्वाद के लिए नहीं होना चाहिए अपितु, उसमें सभी अनिवार्य पोषक तत्व होने चाहिए। साथ ही भोजन शुद्ध एवं सात्विक होना चाहिए।

rkfydk 3-3 % jksxkuqlkj iF;kiF; vkgkj dh lwph

jksx	iF; vkgkj	viF; vkgkj
Toj	फलों में सेब, अनार आदि पचने वाले आहार	अजीर्ण करने वाले सभी आहार, मांसाहार, देर से
[kkalh	रोटी, चावल, सूप, तुलसी, अदरक या सोंठ का दूध	अधिक तैलयुक्त, खट्टे और ठंडे पदार्थ आदि
iV dh chekjh	छाछ, सूप, आसानी से पचनेवाले पदार्थ, खिचड़ी	मांसाहार, नया चावल, नया गेहूं, बाज़ार से खरीदे हुए पदार्थ आदि
Rod jksx ¼skin diseases½	हल्दी, करेला, गिलोय रस आदि का सेवन, मूंग दल का सूप, रोटी चावल, परवल, टिंडा आदि सब्जियां	दही, मांस आहार, बाज़ार से खरीदे हुए पदार्थ, अधिक मीठा, खट्टा एवं नमकीन भोजन, शराब पीना

3-4-4 vk;qosZn

आयुर्वेद विश्व की सबसे प्राचीनतम चिकित्सा पद्धति है। यह प्रणाली भारत में 5000 साल पहले उत्पन्न हुई थी। आयुर्वेद शब्द दो संस्कृत शब्दों 'आयु' जिसका अर्थ जीवन है तथा 'वेद' जिसका अर्थ 'विज्ञान' है। अतः

इसका शाब्दिक अर्थ है 'जीवन का विज्ञान'। अन्य औषधीय प्रणालियों के विपरीत, आयुर्वेद रोगों के उपचार के बजाय स्वस्थ जीवनशैली पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है। आयुर्वेद की मुख्य अवधारणा यह है कि वह उपचारित होने की प्रक्रिया को व्यक्तिगत बनाता है।

आयुर्वेद के अनुसार मानव शरीर चार मूल तत्वों से निर्मित है – दोष, धातु, मल और अग्नि। आयुर्वेद में शरीर की इन मूलभूत बातों का अत्यधिक महत्व है। इन्हें 'मूलभूत सिद्धांत' या आयुर्वेदिक उपचार के 'बुनियादी सिद्धांत' भी कहा जाता है।

3-4-5 ;ukuh fpfdRlk

यूनानी चिकित्सा पद्धति को केवल यूनानी या हिकमत के नाम से भी पुकारा जाता है। इसे "यूनानी–तिब" या केवल "यूनान" के नाम से भी जाना जाता है। यूनानी पद्धति का जन्म यूनान में माना जाता है तथा यह पद्धति भारत में मध्यकाल में आई थी। यूनानी प्रणाली के बुनियादी सिद्धांत हिप्पोक्रेट्स के प्रसिद्ध चार देहद्रवों अर्थात् रक्त, कफ, पीला पित्त और काला पित्त के सिद्धांत पर आधारित है।

3-4-6 gkE;ksiSFkh

होम्योपैथी चिकित्सा विज्ञान के जन्म दाता डॉ॰ फ्राइडरिक सैम्यूल हानेमान है। यह चिकित्सा के ***le:irk fl)kr*** पर आधारित है जिसके अनुसार औषधियाँ उन रोगों से मिलते जुलते रोग दूर कर सकती हैं, जिन्हें वे उत्पन्न कर सकती हैं। औषधि की रोगहर शक्ति उससे उत्पन्न हो सकने वाले लक्षणों पर निर्भर है। जिन्हें रोग के लक्षणों के समान किंतु उनसे प्रबल होना चाहिए। होम्योपैथी पद्धति में चिकित्सक का मुख्य कार्य रोगी द्वारा बताए गए जीवन–इतिहास एवं रोगलक्षणों को सुनकर उसी प्रकार के लक्षणों को उत्पन्न करने वाली औषधि का चुनाव करना है। रोग लक्षण एवं औषधि लक्षण में जितनी ही अधिक समानता होगी रोगी के स्वस्थ होने की संभावना भी उतनी ही अधिक रहती है।

3-4-7 pEcdh; fpfdRlk

इस अखिल ब्रह्माण्ड में चुम्बकीय शक्ति समाहित है। धरती, सूर्य और तारे ये सभी चुम्बक जैसा कार्य करते हैं। आधुनिक विज्ञान ने भी चुम्बकीय शक्ति से विभिन्न प्रकार के उपयोगी यंत्रों की रचना की है।

l)kfrd vk/kkj % हमारा शरीर मूल रूप से एक विद्युतीय संरचना है और प्रत्येक मानव के शरीर में कुछ चुम्बकीय तत्व जीवन के आरंभ से लेकर अंत तक रहते हैं। चुम्बकीय शक्ति रक्त संचार प्रणाली के माध्यम से मानव शरीर को प्रभावित करती है। नाड़ियों और नसों द्वारा रक्त शरीर के हर भाग में पहुँचता है। इस प्रकार चुम्बक हमारे शरीर के प्रत्येक हिस्से को प्रभावित करने की शक्ति रखता है। चुम्बक रक्त कणों के हीमोग्लोबिन तथा साईटोकम नामक अणुओं में निहित लौह तत्वों पर प्रभाव डालता है।

चुम्बक चिकित्सा में 100 ग्रॉस से 1500 ग्रॉस तक के शक्ति सम्पन्न चुम्बकों का प्रयोग प्रायः किया जाता है। जिसमें सिरेमिक के कम शक्ति सम्पन्न चुम्बक कोमल अंग जैसे आंख, कान, नाक, गला आदि के काम में लाये जाते हैं। धातु से बने मध्यम शक्ति सम्पन्न चुम्बक बच्चों तथा दुर्बल व्यक्तियों के लिये प्रयोग में लाये

जाते हैं। आमतौर पर प्रतिदिन रोगी को 10 मिनिट ही चुम्बक लगाना पर्याप्त है।

इसके विषय में विस्तार से आप विषय 3 में पढ़ेंगे।

3-4-8 ,D;çs'kj fpfdRlk

एक्यूप्रेशर एक लोकप्रिय पद्धति है। शरीर के दर्द वाले हिस्सों से संबंधित निश्चित बिन्दु पर दबाव देकर रोग में राहत पहुंचाना ही एक्यूप्रेशर है। यह दर्द, तनाव और दबाव से राहत देने में काफी कारगर होता है। इसमें शरीर के कुछ खास पॉइंट्स पर उंगलियों के दबाव से रक्त का प्रवाह ठीक करने का प्रयास किया जाता है। माना जाता है कि ज्यादातर प्रेशर पॉइंट्स कलाई व उंगलियों के पोर में होते हैं। सही दबाव से ब्लड सर्कुलेशन बढ़ता है और यह पूरे तंत्रिका–तंत्र को दबाव–मुक्त करते हैं, लेकिन इन पॉइंट्स की सही पहचान प्रेक्टिशनर को ही होती है।

इस चिकित्सा पद्धति के उद्भव के बारे में भ्रान्ति व्याप्त है। कुछ विद्वानों का मत है कि इस पद्धति की शुरूआत भारत वर्ष में लगभग 5 हजार वर्ष पूर्व हो गयी थी। जबकि चीनी विद्वानों का मत है कि 6000 वर्ष पूर्व इसकी शुरूआत चीन में हुई।

चित्र 3.1 : विभिन्न प्रकार की चिकित्सा पद्धतियां

fVIi.kh

3-4-9 ,D;iiDpj

एक्यूपंक्चर एक्यूप्रेशर के समान ही चिकित्सा होती है। अंतर केवल इतना है कि इसमें दबाव के लिए हाथों की उँगलियों का प्रयोग न करके सुइयों का प्रयोग किया जाता है। इनके साइड–इफेक्ट नहीं हैं।

3-4-10 fglukFkjih

हिप्नोसिस को ग्रीक शब्द हिप्नोस से लिया गया है, जिसका अर्थ होता है 'नींद'। इस थेरेपी में हिप्नोटीस्ट आमतौर पर ऐसे अभ्यास का उपयोग करता है जिससे व्यक्ति को उसके निर्देश अंतर्मन तक सुनाई पड़ें और वह उनका पालन करे। व्यक्ति की इस स्थिति को ट्रांस भी कहा जाता है। ट्रांस में इंसान हिप्नोटीस्ट के आदेशों का पालन करता है, लेकिन इसका ये अर्थ कतई नहीं है की हिप्नोटीस्ट उसके दिमाग पर नियंत्रण पा सकता है या उसकी इच्छाशक्ति के विरुद्ध कोई काम करा सकता है।

3-4-11 jdh fpfdRlk

स्पर्श द्वारा ऊर्जा का शक्तिपात ही चिकित्सा क्षेत्र में रेकी चिकित्सा पद्धति के नाम से प्रसिद्ध है। स्पर्श चिकित्सा (रेकी चिकित्सा) के प्रणेता डॉ. निकायो उसुई है। रेकी (रेकी–जापानी शब्द) एक ईश्वरीय सृष्टि प्राण ऊर्जा (जीवन शक्ति) यह सरल सुविधानजक, सस्ती और दुष्प्रभाव रहित उपचार पद्धति है। यह रोग, शोक, चिन्ता से मुक्त कर दुष्प्रवृत्तियों का समूल नाश करने में भी उपयोगी है।

3-5 fpfdRld d dÙkO;

शिक्षार्थियों अब तक हमने चिकित्सा के अर्थ, विधियों, और उनकी विभिन्न पद्धतियों के विषय में जाना। क्या आप जानते हैं कि कोई भी चिकित्सा बिना चिकित्सक, रोगी और परिचारक के अधूरी है। तथापि चिकित्सा, चिकित्सक के ऊपर ही निर्भर करती वह किस प्रकार से रोगों का निदान करता है व चिकित्सा की कल्पना करता है। इन सभी के कुछ अपने कर्त्तव्य होते हैं जिनका पालन किया जाना चिकित्सा की दृष्टि से अनिवार्य होता है अर्थात् उसके बिना चिकित्सा सफल नहीं मानी जाती है।

vkb, vc fpfdRld d dÙkO;k d fo"k; e tkur g(

जैसा कि आप जान ही गए हैं कि चिकित्सा की सफलता में चिकित्सक ही प्रथम स्थान रखता है। अर्थात् सम्पूर्ण चिकित्सा का उत्तरदायित्व चिकित्सक पर ही होता है।

- चिकित्सक का पहला कर्त्तव्य है की रोग के कारण का पता करे और चिकित्सा करते समय उस रोग के उत्पादक कारणों का परित्याग करने का आदेश दे।
- चिकित्सक को शास्त्र का सैद्धांतिक व क्रियात्मक ज्ञान होना अति आवश्यक है।

fpfdRlk ,oa fofHkUu fpfdRlk i)fr;k

- चिकित्सक रोग एवं रोगी की प्रकृति, देश, व काल के अनुसार ही उपचार करे।
- चिकित्सक को अपने चिकित्सा कार्य में दक्ष होना चाहिए।
- वह स्वस्थ पुरुष के स्वास्थ्य की रक्षा करे एवं रोगी पुरुष के रोग का प्रशमन करे।
- चिकित्सा में सफल होने के लिए रोगी की बल परीक्षा एवं रोग की बल परीक्षा करे। इसके बाद ही वे प्राथमिक, यौगिक और आहार चिकित्सा करे।
- चिकित्सक को मानसिक, वाचिक एवं कर्म से पवित्र तथा बुद्धिमान होना चाहिए।

fVIi.kh

3-6 lgk;d fpfdRld ¼ifjpkjd½ ds dÙkZO;

जिस प्रकार चिकित्सक की चिकित्सा में जितनी महत्वपूर्ण भूमिका होती है उतनी ही भूमिका एक सहायक चिकित्सक (परिचारक) की भी होती है ।

- परिचारक सभी प्रकार के उपचारों से भली–भांति परिचित होना चाहिए अर्थात् वह उपचार की सभी विधियों से परिचित होना चाहिए।
- परिचारक अपने कार्यों जैसे सेवा कार्य में निपुण एवं दक्ष होना चाहिए।
- परिचारक को सेवा कार्य के प्रति अनुराग होना चाहिए।
- परिचारक को सभी कार्यों में स्वच्छता एवं पवित्रता होना चाहिए।

ifjpkjd ds rhu eq[; dÙkZO; &

- रोगी के प्रति – रोगी के प्रति व्यवहार ऐसा होना चाहिए की वह उसे अपने परिवार का सदस्य माने, स्नेह शील रहकर रोगी का विश्वास अर्जित कर सके ।
- चिकित्सक के प्रति – आवश्यकतानुसार रोगी के बारे में चिकित्सक से सलाह लेना चाहिए।
- चिकित्सक को रोगी को स्थिति की जानकारी देना परिचारक का कर्त्तव्य है। परिचारक को रोगी को चिकित्सा सम्बधित विषयों की जानकारी प्रतिदिन देनी चाहिए।
- स्वयं के प्रति – रोग ग्रस्त के स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाली सभी बातें परिचारक पर भी लागू होती हैं तथा अपने स्वास्थ्य को बचा कर रखना चाहिए।

3-7 jksxh ,oa ikfjokfjd lnL;ksa ds dÙkZO;

- रोगी एवं पारिवारिक सदस्यों को ऐसा कोई भी काम नहीं करना चाहिए जिससे कि चिकित्सा क्रम में बाधा उत्पन्न हो सके।

fVIi.kh

- चिकित्सक एवं परिचारक के आदेश का पालन करना और उन पर विश्वास रखना चाहिए।
- समय अनुसार आहार लेना, चिकित्सा के विरुद्ध आहार का सेवन नहीं करना चाहिए।
- अपने रहने वाले स्थान जैसे कमरे को स्वच्छ रखना चाहिए।
- पारिवारिक सदस्यों को पारिवारिक समस्याएँ और परेशानियाँ रोगी के पास कभी भी नहीं पहुंचानी चाहिए।
- रोगी एवं सदस्यों को निर्देशकारित्व होना चाहिए अर्थात् चिकित्सक के आदेश का पालन करने वाला होना चाहिए।
- रोगी को निर्भीक होना चाहिए जिससे रोगी एवं सदस्य किसी भी प्रकार की चिकित्सा से डरे नहीं।

ऐसे रोगी की चिकित्सा नहीं करनी चाहिए जो चिकित्सक के निर्देशों का पालन न करता हो।

bdkbxr i'u&3-2

1. चिकित्सक के कोई चार कर्त्तव्य लिखें–

....

....

....

....

2. परिचारक के कोई चार कर्त्तव्य लिखें–

....

....

....

....

3. रोगी के चार कर्त्तव्य हैं–

....

....

....

....

vkius D;k lh[kk

इस इकाई (यूनिट) में आपने सीखा कि –

- रोग के प्रतिकार करने को चिकित्सा कहते हैं।
- वे सभी उपचार 'चिकित्सा' के अंतर्गत आ जाते हैं जिनसे स्वास्थ्य की रक्षा होती है और रोगों का निवारण होता है।
- उत्तम चिकित्सा वही है जो दोष रहित हो अर्थात् किसी अन्य रोग को उत्पन्न न करे।
- चिकित्सा का लक्ष्य बाह्य तथा आन्तरिक स्तर पर बीमारियों का उन्मूलन करना होता है। अर्थात् शारीरिक और मानसिक चिकित्सा करना।
- चिकित्सा के विभिन्न भेद और विधियों के अंतर्गत निदान परिवर्जन, उष्ण उपचार, शीतोपचार आदि के विषय में जाना।
- निदान परिवर्जन से तात्पर्य है रोग के कारणों को हटाना अर्थात् उन सभी कारणों को हटाना जिनके कारण व्यक्ति रोगी हो जाता है।
- निदान परिवर्जन ही सबसे उत्तम चिकित्सा मानी गयी है।
- चिकित्सा की विभिन्न पद्धतियों जैसे यौगिक चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा, आहार चिकित्सा, आयुर्वेद, यूनानी, चुम्बकीय चिकित्सा आदि के विषय में जाना।
- चिकित्सक, सहायक चिकित्सक (परिचारक), रोगी और पारिवारिक सदस्यों के कर्त्तव्यों के विषय में जाना।

bdkbZ dk vUr esa iz'u

1. चिकित्सा के अर्थ को बताते हुए चिकित्सा की विभिन्न विधियों का वर्णन कीजिए।
2. चिकित्सा की विभिन्न पद्धतियों का वर्णन कीजिए।
3. चिकित्सक, परिचारक, रोगी व रोगी के पारिवारिक सदस्यों के कर्त्तव्यों पर सविस्तार प्रकाश डालिए।

fVIi.kh

bdkbxr i'uk d mÙkj

3-1 **1-**

क. सही

ख. सही

ग. सही

घ. सही

ङ. सही

3-2

1-

(क) चिकित्सक को शास्त्र का सैद्धांतिक व क्रियात्मक ज्ञान होना चाहिए।

(ख) चिकित्सक रोग एवं रोगी की प्रकृति, देश, काल के अनुसार उपचार करे।

(ग) चिकित्सा कार्य में दक्ष होना चाहिए।

(घ) वह स्वस्थ पुरुष के स्वास्थ्य की रक्षा करे एवं रोगी पुरुष के रोग का प्रशमन करे।

2-

(क) परिचारक सभी प्रकार के उपचारों से भली–भांति परिचित होना चाहिए अर्थात् वह उपचार की सभी विधियों से परिचित हो।

(ख) परिचारक अपने कार्यों जैसे सेवा कार्य आदि में चतुर, निपुण एवं दक्ष हो।

(ग) परिचारक को सेवा कार्य में अनुराग हो तथा

(घ) उसके सभी कार्यों में स्वच्छता एवं पवित्रता हो।

3-

(क) रोगी को ऐसा कोई भी काम नहीं करना चाहिए जो चिकित्सा क्रम में बाधा हो ।

(ख) चिकित्सक एवं परिचारक के आदेश का पालन करना और उन पर विश्वास रखना चाहिए।

(ग) समय अनुसार आहार लेना, विरुद्ध आहार का सेवन नहीं करना चाहिए।

(घ) रोगी को निर्देशकारित्व होना चाहिए अर्थात् चिकित्सक के आदेश का पालन करने वाला होना चाहिए।

4

आकाश तत्व चिकित्सा, विभिन्न विधियाँ एवं अनुप्रयोग

शिक्षार्थियों, पिछली इकाइयों (यूनिटों) में आपने स्वास्थ्य, रोग और चिकित्सा के विषय में विस्तार से जाना। आपने रोगी का इतिवृत्त (Case History) लेना सीखा और रोगी की स्थिति के बारे में भी जाना। इस प्रकार रोगी की जांच (परीक्षा) के आधार पर आप, रोग के निदान–परिवर्जन (रोग के उत्पादक कारणों का परित्याग) को व्यवहार में लाने में सक्षम हो चुके हैं। इसके साथ ही आप यह भी निर्णय लेने में सक्षम हो चुके हैं कि, रोगी को कौन सी चिकित्सा आवश्यक है।

आप प्रथम वर्ष में प्राकृतिक चिकित्सा के मूलभूत आधार की जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। जिसमें आपने पंच महाभूतों के विषय में भी जाना। इस इकाई (यूनिट) में, आप चिकित्सीय दृष्टि से आकाश तत्व चिकित्सा को व्यवहार में लाना सीख सकेंगे।

mís';

इस इकाई (यूनिट) का अध्ययन करने के पश्चात् आप –

- चिकित्सीय दृष्टि से आकाश तत्व एवं इसकी महत्वता का वर्णन कर सकेंगे;
- आकाश तत्व से की जाने वाली चिकित्साओं का विवरण दे सकेंगे;
- उपवास एवं कल्प चिकित्सा का विस्तृत वर्णन कर सकेंगे;
- विश्राम एवं शिथिलीकरण पर प्रकाश डाल सकेंगे;
- चिकित्सा में निद्रा, मानसिक अनुशासन एवं संतुलन की उपयोगिता समझा सकेंगे।

fVIi.kh

4-1 vkdk'k rRo ,o bldh egÙork

शिक्षार्थियों, आपने विषय संख्या – 2 **Þçk—frd fpfdRlk dk vk/kkjHkr Kkuß** के अंतर्गत आकाश तत्व चिकित्सा पढ़ चुके हैं। यहाँ हम चिकित्सीय दृष्टि से आकाश तत्व को समझने का प्रयास करेंगे।

आकाश तत्व का अर्थ, **[kkyh LFkku** होता है इसे अवकाश देने वाला भी कहते हैं। आकाश के बिना मानव या अन्य प्राणियों की कल्पना नहीं की जा सकती। आकाश में ही प्राणी गति करते हैं। ठोस पदार्थों में गति करने के लिए अवकाश नहीं रहता इसी कारण वह स्थिर रहते है। जिस प्रकार पानी में मछली रहती है उसी प्रकार सभी जीव आकाश में जीवन यापन करते हैं। हमारे चारों ओर आकाश तत्व है हमारे शरीर के भीतर व शरीर के बाहर आकाश ही है।

jk"Vªfirk egkRek xk/kh th u vkdk'k rRo dk ^vkjkX; lekV^ dh lKk nh g vkj crk;k g fd Þbl'oj dk Hkkn tkuu d lekku gh vkdk'k dk igpkuuk gA bl rRo dk ftruk Hkh mi;kx fd;k tk, fd;k tk,xk mruk gh vf/kd vkjkX; çkIr gkrk gA^

जैनियों के अनुसार आकाश वह है "जो धर्म, अधर्म, जीव और पुदगल जैसे आस्तिकाय द्रव्यों को स्थान देता है। आकाश अदृश्य है। आकाश का ज्ञान अनुमान से प्राप्त होता है। विस्तार युक्त द्रव्यों के रहने के लिए स्थान चाहिए आकाश ही विस्तारित रूपों को स्थान प्रदान करता है।"

शरीर के अंदर रक्त गति करता है, असंख्य कोशिकाएं कार्य करती हैं, वायु गति करती है, इन सबको अपना कार्य संपन्न करने के लिए एवं अपने अस्तित्व के लिए आकाश तत्व की आवश्यकता होती है। इसके अभाव में इनकी कार्य एवम् स्थिति संभव नहीं होती है। आकाश तत्व एक मूल तत्व माना गया है। इस तत्व की पूर्ति करने के लिए पुराने समय में घर के मध्य में खुला आंगन रखा जाता था ताकि अन्य सभी दिशाओं में इस तत्व की आपूर्ति हो सके। आकाश तत्व का सूक्ष्म विषय शब्द है, यानी शब्द के माध्यम से ही आकाश तथा आकाश तत्व प्रधान वस्तुओं की जानकारी प्राप्त होती है। संसार में सभी प्रकार की सूचना प्रसारण तंत्रों का मुख्य आधार यही आकाश तत्व ही होता है।

आकाश शब्द का दूसरा गुण आच्छादन है अर्थात् जो हमको चारों ओर से ढक कर रखता है। इस आधार पर हम हमारे शरीर का आच्छादन करने वाली त्वचा को आकाश का प्रतिनिधि मानकर उससे संबंधित व्याधियों को आकाश तत्व द्वारा उपचारित करते हैं।

इसी प्रकार हमारे शरीर के अंदर भी सभी आंतरिक अंगों को एक रक्षा परत ने ढक रखा है। इसे पेरीटोनियम कहा जाता है। इस पेरीटोनियम के अंदर एक और रक्षा परत ने एक– एक अंग को अलग से ढक रखा है इसे अलग–अलग नामों से जाना जाता है जैसे हृदय को ढकने वाली परत पेरिकार्डियम, फेफड़ों को ढकने वाली परत प्लूरा आदि। इसके साथ ही साथ शरीर की सतह पर अनेकों छिद्र होते हैं, जैसे– रोम छिद्र, स्वेद ग्रंथियों के छिद्र जो आवश्यक पारगमन या संचरण को सुलभ बनाते हैं, तथा अप्रतिघात की स्थिति बनाए रखने में शरीर की मदद करते हैं। जब शरीर के आंतरिक अंगों के आवरण या यह शरीर के छिद्र प्रतिघात उत्पन्न करके प्रवाह को रुद्ध करते हैं तो रोग उत्पन्न होते हैं। यह सारे रोग आकाश तत्व न्यूनता जन्य है, अतः इनको आकाश तत्व चिकित्सा द्वारा उपचारित किया जा सकता है।

4-1-1 vkdk'k dk egRo

- आकाश तत्व सूर्य की सभी हानिकारक किरणों से हमारी रक्षा करता है और हम तक उन्हीं किरणों को पहुँचने देता है, जो हमारे लिए लाभदायक है। आकाश यह सब ठीक उसी तरह करता है जैसे एक पिता अपने बच्चे के लिए करता है।
- आकाश हमारे भीतर, बाहर, ऊपर, नीचे चारों ओर है। त्वचा के एक-एक छिद्र के बीच भी आकाश है। इस आकाश की खाली जगह को हमें भरने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। आकाश तत्व के स्थान खाली रहने पर ही स्वास्थ्य उत्तम होगा। उत्तम स्वास्थ्य एवं रोगों की निवृत्ति के लिए आकाश तत्व एक साधन के रूप में कार्य करता है।
- आकाश तत्व की व्याख्या करते हुए महर्षि वशिष्ठ जी लिखते हैं– आकाश नाम का व्यापक तत्व आकाश, चित्तकाश और चिदाकाश तीन रूपों में सर्वत्र व्याप्त है।
- आकाश तत्व का प्रथम गुण है – अप्रतिघात अर्थात् प्रवाह को अवरुद्ध होने से रोकना। जब शरीर के आंतरिक अंगों के आवरण या शरीर के छिद्र प्रतिघात उत्पन्न करके प्रवाह को रुद्ध करते हैं तो रोग उत्पन्न होते हैं। इस अप्रतिघात अर्थात् प्रवाह को अवरुद्ध होने से रोकने की स्थिति को बनाए रखने में शरीर की मदद करता है।
- आकाश तत्व का दूसरा गुण आच्छादन है। अर्थात् जो हमको चारों ओर से ढक कर रखता है। इस आधार पर हम हमारे शरीर का आच्छादन करने वाली त्वचा को आकाश का प्रतिनिधि मानकर उससे संबंधित व्याधियों को आकाश तत्व द्वारा उपचारित करते हैं।

bdkbZ ikB i'u& 4-1

सत्य अथवा असत्य बताइए –

i) आकाश तत्व का अर्थ खाली स्थान होता है इसे अवकाश देने वाला भी कहते हैं। ( )

ii) राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी ने आकाश तत्व को ''आरोग्य सम्राट'' की संज्ञा दी है। ( )

iii) हमारे शरीर के अंदर भी सभी आंतरिक अंगों को एक रक्षा परत ने ढक रखा है। इसे पेरीकार्डियम कहा जाता है। ( )

iv) आकाश तत्व का दूसरा गुण अप्रतिघात है। ( )

4-2 miokl

रोगों से मुक्ति पाने के लिए उपवास करने की प्रथा उतनी ही पुरानी है जितनी की स्वयं मनुष्य जाति। बाइबल, कुरान और हिंदुओं के आदि धर्म ग्रंथों में इनके अनगिनत प्रमाण मिलते हैं।

शरीर के पाचन संस्थान को स्वस्थ बनाए रखने के लिए इसको पूर्ण विश्राम देने की आवश्यकता होती है। वस्तुतः उपवास करने से ही पाचन संस्थान को विश्राम मिलता है, क्योंकि हम दिनभर कुछ न कुछ खाते रहते हैं और इस कारण से हमारा पाचन तंत्र सदैव कार्य करता रहता है। हमारे देश में उपवास का बहुत महत्व रहा है हमारे ग्रंथों में भी उपवास शारीरिक और मानसिक शुद्धि का एक साधन माना गया है। जब हम रोगग्रस्त हो जाते हैं तब हम खाद्य पदार्थ न खाकर एक तरह का उपवास ही करते हैं। इस प्रकार उपवास एक प्राकृतिक स्थिति भी है।

रोग होने पर रोग के कारण विजातीय द्रव्य को दूर करने का केवल एक प्रबल उपाय उपवास ही है। उपवास काल में शरीर की सारी जीवनी शक्ति केवल रोग को दूर करने में लग जाती है। उपवास अपने आप कोई नवीन शक्ति प्रदान करने वाली क्रिया नहीं है बल्कि उसके प्रभाव से शरीर में स्थित विष, जो अस्वस्थता का कारण है, बाहर अवश्य निकल जाता है और शरीर निरोग होकर स्वाभाविक अवस्था में आकर शक्तिशाली बन जाता है।

4-2-1 miokl vkSj vkjksX;

- सेल्सेस के अनुसार, अनाहार परमोत्तम औषधि है जो अकेले ही बिना किसी सहयोग के रोग दूर कर देता है।
- हमारे शरीर में प्रतिदिन जो क्रियाएं होती रहती हैं उनमें शरीर के अनुपयोगी और हानिकारक तत्वों को बाहर निकाल देने की एक महत्वपूर्ण क्रिया प्रत्येक क्षण संचालित होती रहती है। इस शरीर यंत्र को व्यवस्थित रूप से संचालित करने की जिम्मेदारी मुख्यतः शुद्ध रक्त पर होती है। रक्त के लाल कण नए–नए कोषों की रचना करते हैं और श्वेत कण शरीर के हानिकारक अंश को बाहर निकालने का काम करते रहते हैं। शरीर में अधिक परिमाण में संचित हुए मल व विष को बाहर निकाल देने की जोरदार कोशिश को ही रोग कहते हैं। सभी चिकित्सा पद्धतियों में अब यह माना जाने लगा है कि रोगी होने पर शरीर स्वभावतः स्वयं निरोग होने का प्रयत्न करता है। अतः उपवास द्वारा रक्त की शुद्धि होती है।
- रोगों का कारण शरीर स्थित मल को दूर करने के लिए उपवास सर्वोपरि और आवश्यक साधन है। इस कारण उपवास का अर्थ होता है शरीर की सब प्रकार की शुद्धि।
- श्री सानफोर्ड बेनेट के मतानुसार, रोगों की उपवास चिकित्सा बड़ी ही सुंदर और लाभप्रद है।
- उपवास काल में शरीर, भोजन के अभाव में, अनपचे भोजन तथा शरीर के विष या मल को धीरे–धीरे भस्म कर देता है। यही वजह है कि उपवास से रोगों में अपने आप आराम हो जाता है।
- ज्वर, संग्रहणी, पेचिश, दस्त सर्दी, खांसी, फोड़े, चेचक, आदि तीव्र रोगों में प्रारम्भ से ही उपवास करना बड़ा लाभप्रद होता है।
- बहुमूत्र, दमा, गठिया अजीर्ण, कब्ज, मोटापा आदि जीर्ण रोगों की चिकित्सा में लंबा उपवास या छोटे–छोटे कई उपवास लाभप्रद हैं।

4-2-2 miokl dh rS;kjh

- हालांकि उपवास हेतु किसी विशेष तैयारी की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि जिस प्रकार भूख लगने पर भोजन करने की कोई तैयारी नहीं की जाती, उसी प्रकार रोग ग्रस्त होने पर रोग निवारणार्थ उपवास करने के लिए किसी भी प्रकार के विचार की आवश्यकता नहीं होती, फिर भी उपवास करने के लिए कुछ तैयारी करना और सावधानी रखना आवश्यक है। उपवास करने में शरीर व मन दोनों के साथ की आवश्यकता होती है।
- उपवास करने से पहले जरूरी है कि उपवास रखने वाले व्यक्ति को उपवास के बारे में थोड़ी बहुत जानकारी दी जाए, इससे उस व्यक्ति को उपवास के दौरान ताकत और मन को काबू रखने की शक्ति प्राप्त होगी।
- लंबे उपवास को शुरू करने से पहले व्यक्ति का रक्तचाप और नाड़ी की जांच जरूर कर लेनी चाहिए।
- लंबे उपवास शुरू करने से पहले अपनी दिनचर्या में भी थोड़ा बहुत बदलाव अवश्य करना चाहिए। इसके बाद ही धीरे–धीरे लंबे उपवास रखें। ऐसा करने से उपवास के दौरान व्यक्ति को किसी तरह की परेशानी सामने नहीं आएगी।
- जीर्ण रोगों में रोगी की शारीरिक अवस्था ऐसे नहीं रहती जो आरंभ में उपवास के लिए उपयुक्त हो। जैसे क्षय रोग में रोगी की जीवनी शक्ति इतनी कमजोर हो जाती है कि उसका पुनर्निर्माण कठिन हो जाता है। ऐसे रोगी को यूं तो उपवास नहीं कराना चाहिए, अगर कराना ही हो तो 1 दिन से अधिक ना हो।
- यदि शरीर का कोई अंग बिल्कुल नष्ट हो गया हो तो वह उपवास से ठीक नहीं होगा।
- अपवाद स्वरूप कुछ रोगों को छोड़कर अधिकांश साधारण रोगों में उपवास प्रभावकारी होता है। बल्कि किन्हीं अवस्था में तो उपवास का न कराया जाना मृत्यु का कारण होता है।

4-2-3 miokl p;kZ

उपवास के दौरान निम्नलिखित बातों पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए:

1- Hkkstu

- उपवासकाल में भोजन ग्रहण नहीं करना चाहिए।
- स्वच्छ ताजा जल अवश्य पीते रहना चाहिए। पूरे दिन में 5 से 8 लीटर तक पानी पिया जा सकता है। जल थोड़ा–थोड़ा करके कई बार पीना चाहिए।
- यदि इच्छा हो तो जल में कागजी नींबू का रस मिलाया जा सकता है। ऐसा करने से शरीर की सफाई अच्छी होती है।
- उपवास काल में जल ग्रहण न करने से भारी हानि की संभावना रहती है। इसलिए उपवास काल में शरीर को भरपूर और नियमित रूप से पानी मिलना चाहिए, नहीं तो पानी की कमी से आंतों में शुष्कता आ जाती है और स्वाभाविक गति में बाधा उत्पन्न हो सकती है, साथ ही साथ उपवास

काल में पर्याप्त पानी ना पीने से शरीर के अंदर शुष्कता बढ़ जाने का डर रहता है, जो काफी कष्टकारी होता है।

2½ ,fuek

- उपवास में जितना पानी पीना आवश्यक है उतना ही एनिमा भी आवश्यक है। उपवास काल में आंतें अपना काम लगभग बंद कर देती हैं, इसलिए उन्हें अन्य उपायों से साफ करते रहना नितांत आवश्यक है।
- ऐसा सोचना मिथ्या है कि भोजन न करने के बावजूद मल कहाँ से बनेगा। आंतें कभी भी बिल्कुल खाली नहीं रहतीं। आंतों में जो स्वाभाविक क्रिया होती रहती है, उसके परिणाम स्वरूप उत्पन्न होने वाले मल को साफ करने की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए उपवास काल में प्रतिदिन कम से कम एक बार एनिमा लेते रहना आवश्यक है।
- एनिमा का पानी साधारण गर्म होना चाहिए। ठंडे पानी का एनिमा भी लिया जा सकता है।
- एनिमा के पानी में कुछ बूंदें कागजी नींबू के रस की भी मिलाना लाभप्रद रहता है।

3½ Luku

- उपवास काल में प्रतिदिन शीतल जल से स्नान करना भी आवश्यक है।
- यदि प्रति दूसरे दिन एक कटि या मेहन स्नान भी कर लिया जाए तो प्रभाव और उत्तम रहता है।
- उपवास काल में त्वचा को स्वच्छ, स्वस्थ एवं सतेज रखना बहुत आवश्यक है। इस कारण इन दिनों कभी–कभी मृदा स्नान भी उपयोगी रहता है।
- यदि उपवास लंबा होने के कारण उपवासी पूर्ण स्नान लेने में असमर्थ हो तो उसे रोज गर्म पानी से भीगे तथा निचोड़े हुए तौलिए से पूरे शरीर का शुष्क घर्षण स्नान अवश्य देना चाहिए।

4½ 0;k;ke

- उपवास काल में पूर्ण विश्राम करना ठीक नहीं है। उस वक्त सामर्थ्य अनुसार कार्य करते रहना नितांत आवश्यक है।
- उत्तम स्वास्थ्य के लिए तथा जीर्ण रोगों के लिए किए गए उपवास में अपना सामान्य दैनिक कार्य करते रहना चाहिए।
- सूक्ष्म–व्यायाम, टहलना आदि अवश्य करना चाहिए। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि उपवास काल में किए गए परिश्रम से थकान ना हो क्योंकि शक्ति घट जाने पर किया हुआ परिश्रम शरीर को लाभ के बदले हानि पहुँचा सकता है।
- उपवास काल में यदि उपवासी बिस्तर से उठ नहीं सकता तो उसे बिस्तर पर ही लेटे रहकर अपने शरीर के अंगों को संचालित करते रहना चाहिए। ध्यान रहे कि ऐसे व्यक्ति जिनके शरीर में वसा की मात्रा बहुत सीमित होती है उपवास के दौरान काफी कमजोर हो जाते हैं और उनको बिस्तर पर लेटना ही पड़ता है।

5½ vkjke

उपवास काल में व्यायाम के साथ–साथ नियमित विश्राम की भी आवश्यकता होती है। बहुत कमजोर रोगियों के लिए तो कभी–कभी पूर्ण विश्राम अनिवार्य हो जाता है। उपवास के दिनों में शरीर को जितना विश्राम दिया जाए यदि उतना ही विश्राम उपवास के बाद भी उसे दिया जाए तो उपवास से किसी अनिष्ट परिणाम की आशंका नहीं रहती। उपवासी यदि गहरी नींद ले सके तो यह अति लाभकारी रहता है।

6½ ekufld fLFkfr

उपवास काल में मानसिक स्थिति के शांत और स्थिर रहने की अत्यंत आवश्यकता होती है और यह स्थिति ईश्वर उपासना के अतिरिक्त अन्य साधनों द्वारा प्राप्त होना दुर्लभ है, इसलिए उपवास काल में अपने चित्त की शांति के लिए ईश्वर आराधना में मन लगाना चाहिए। उपवास काल विशेषज्ञ महात्मा गांधी अपनी आत्मकथा के भाग 4 अध्याय 31 में लिखते हैं कि यदि शरीर के साथ–साथ मन का उपवास ना हो तो वह दम्भपूर्ण और हानिकारक हो सकता है। उपवास काल में विषयों को रोकने और जीतने की निरंतर भावना होनी चाहिए, तभी उपवास से शुभ फल की आशा की जा सकती है। उपवास काल में सदैव प्रसन्नता युक्त रहना चाहिए। खिन्नता, चिंता, भय आदि मानसिक आवेगों को उन दिनों में अपने पास नहीं आने देना चाहिए।

7½ mipkj

उपवास काल में अस्वस्थ होने पर या अन्य किसी कारण से तो यह भयंकर स्थिति उत्पन्न कर सकता है। इस संबंध में उपवास करने वाले को यह बात समझ लेनी चाहिए कि उपवास के समय तथा उसके उपरांत बहुत दिनों तक शरीर की हालत बहुत ही नाजुक होती है अतः इन अवसरों पर औषधि आदि को प्रयोग करने से शरीर पर बुरा प्रभाव पड़ता है। उपवास काल में किसी उपद्रव के होने पर या स्थिति खराब होने पर प्राकृतिक उपचारों का ही सहारा लेना युक्तिसंगत है। उपवासी को यथासंभव खुली हवा में रहना और सोना चाहिए। प्रातःकाल खुले बदन कुछ देर तक धूप में बैठना भी चाहिए। उपवास काल में शरीर का तापमान घटने पर या शरीर के विभिन्न अंगों में रक्त संचार की प्रक्रिया धीमी होने पर प्राकृतिक मालिश लाभकारी होती है।

4-2-4 miokl rksMus dh fof/k

उपवास करने से उपवास भंग करना कठिन है। वस्तुतः उपवास तोड़ने में बहुत ही सावधानी, अधिक सतर्कता, तथा कठोर आत्म संयम की आवश्यकता होती है। उपवास के दिनों में पाचन शक्ति क्षीण होकर बहुत दुर्बल पड़ जाती है। इसलिए उपवास समाप्ति के समय बहुत सतर्कता के साथ अत्यंत हल्का भोजन, अल्प मात्रा में लिया जाना चाहिए। इसके बाद पाचन शक्ति ज्यों–ज्यों समृद्ध होने लगे त्यों–त्यों भोजन की मात्रा भी क्रमशः बढ़ानी चाहिए। इस तरह से उपवास को ठीक ढंग से तोड़कर उपवासी न केवल अवस्था परिवर्तन के खतरे से ही बच सकता है बल्कि उपवास का पूरा पूरा लाभ भी उसको मिल सकता है। यदि उपवास

तोड़ने में किसी प्रकार की गलती हुई तो उपवास का अधिकांश लाभ नष्ट हो जाता है, तथा साथ ही स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है।

एक दिन का उपवास तोड़ने के लिए पहले सब्जियों के जूस या सूप, फलों का रस, या सादी सब्जियाँ अल्प मात्रा में ले सकते हैं। इसके बाद धीरे–धीरे अन्न भोजन पर आना चाहिए। सावधानी इस बात की होनी चाहिए कि एक बार का किया हुआ भोजन जब तक पच न जाए तब तक दूसरा भोजन ग्रहण न किया जाए। कोई भी उपवास तोड़ने के बाद अपच नहीं होनी चाहिए।

दो–तीन दिनों के उपवास के बाद चौथे दिन सिर्फ तीन बार थोड़ा तरकारी का सूप या फलों का रस लें। पांचवें दिन एक बार जूस या सूप और दो बार सादी पकी सब्जियां लेना चाहिए। छठे दिन तीन बार साग भाजी या रस दार फल, सातवें दिन एक बार के भोजन में रोटी भाजी लें, और इसके बाद धीरे धीरे साधारण भोजन पर आ जाएं।

दीर्घ उपवास की दशा में तरल खाद्य जितना लंबा उपवास हो उसके तिहाई समय तक चलना चाहिए। उस हालत में भी भोजन की मात्रा तथा कितनी बार भोजन किया जाए इन बातों पर ध्यान देने की अधिक जरूरत है। तत्पश्चात प्रतिदिन या दूसरे दिन एक बार अत्यंत हल्का एवं सादा फलों या साग सब्ज़ियों का भोजन भी आरंभ किया जा सकता है। किंतु इन दिनों भी दूसरा भोजन फलों के रस का या सब्ज़ियों के सूप का ही होना चाहिए। इस तरह से समझदारी के साथ धीरे–धीरे सामान्य भोजन पर आ जाना चाहिए।

4-2-5 miokl rksM+u dk le; ¼miokl dc rksM+½

उपवास के विषय में यह प्रश्न भी बहुत महत्वपूर्ण है। परंतु उपवास शुरू करते समय यह बताना कठिन होता है कि अमुक व्यक्ति को कितने दिन का उपवास करना चाहिए और कब उसे उपवास तोड़ना चाहिए। इस बात का पता तो उपवास के अंत में प्रकृति द्वारा ही मिलता है। अर्थात् उपवास के अंत में जब उपवासी को:

1) प्राकृतिक सच्ची भूख मालूम दे और गले तथा मुख में उस भूख की संवेदना हो।
2) जब जीभ पर की सफेद मोटी परत जो उपवास काल में जम जाती है, साफ हो जाए।
3) मुंह का स्वाद जब ज्वर के समय जैसा ना रहे।
4) श्वास का स्वाद मीठा मीठा प्रतीत हो।
5) नाड़ी ठीक चलने लगे।
6) शुद्ध रक्त प्रवाह के कारण त्वचा नर्म और लचीली हो जाए।
7) शरीर का तापमान सामान्य हो जाए।
8) शरीर हल्का–फुल्का हो जाए और अंदर एक विचित्र प्रकार की स्फूर्ति का अनुभव हो तो उपवास पूरा हुआ समझना चाहिए, और तब उपवास जरूर छोड़ देना चाहिए।

4-2-6 miokl d ckn dh fLFkfr

उपवास के बाद भूख जोरों से लगती है, लेकिन उस वक्त संयम से काम ले कर अधिक नहीं खाना चाहिए। प्रत्येक ग्रास को धीरे–धीरे और चबा–चबाकर निगलने से, तथा जीभ को वश में रखने से क्षुधा पर विजय प्राप्त की जा सकती है। यदि उपवास तोड़ने के बाद कोई गलती हो जाए और उस गलती के कारण शरीर के पुनः रोगी हो जाने की संभावना हो तो उस गलती के प्रायश्चित स्वरूप दूसरा उपवास कर लेने में ही भलाई है। उपवास के बाद प्राकृतिक और शुद्ध सात्विक भोजन को अपनाना चाहिए अन्यथा उपवास का मंतव्य सिद्ध नहीं होगा। उपवास के बाद भी यदि खाने–पीने की वही पुराने तौर–तरीके काम में लाए जाएंगे जिनके कारण उपवास करना पड़ा था तो फिर उपवास करने से क्या लाभ। उपवास के बाद का समय पुरानी बुरी आदतों को छोड़ने तथा नवीन स्वास्थ्यवर्धक गुणों को ग्रहण करने के लिए उपयुक्त होता है। इस समय यदि मनुष्य चाहे तो अपने को प्रकृति के सहारे चलाकर वास्तविक स्वास्थ्य का आदर्श उपस्थित कर सकता है।

अनुभव से जाना गया है की उपवास काल में शरीर का वजन जितना घटता है और जितनी जीवनी शक्ति व्यय होती है। उपवास के बाद उसकी पूर्ति में कम से कम उससे दुगने दिन लग जाते हैं। मगर इसे नियम नहीं समझना चाहिए। कमजोर और असाध्य रोग के रोगियों के संबंध में यह अवधि बढ़ भी सकती है। उपवास यदि उपवास के नियमों के अनुकूल ठीक चलाया जाए तो वजन लगभग आधा किलो की दर से घटेगा और उपवास तोड़ने के बाद वजन बढ़ने का औसत उसका आधा होगा।

4-2-7 miokl dky dh dfBukb;k vkj mudk lek/kku

उपवास काल में कभी–कभी इतने भयंकर लक्षण देखे जाते हैं जिन से घबराकर लोग उपवास तोड़ देते हैं, और इस प्रकार चलते हुए उपवास को बीच में ही खत्म कर देने से उनकी तकलीफ और बढ़ जाती हैं। यह लक्षण निम्नलिखित हैं:

1½ ePNk ½

इसका कारण सिर में पूर्णतया रक्त का न पहुँचना होता है। इस अवस्था को दूर करने के लिए रोगी को सीधा लिटा कर उसके पैरों को कुछ ऊंचा कर देना चाहिए जिससे रक्त सिर में अधिक जा सके। ऐसी दशा में रोगी को खड़ा कभी नहीं करना चाहिए अन्यथा उसकी मृत्यु तक हो सकती है।

2½ pDdj vkuk ½

इसका कारण तथा चिकित्सा मूर्च्छा के समान ही है। परंतु लक्षण कभी–कभी सिर में रक्त की अधिकता हो जाने से भी उत्पन्न हो जाता है ऐसी दशा में रोगी के सिर को ऊंचा रखना चाहिए साथ ही उसे खुली हवा में रखकर विश्राम देना चाहिए।

3½ e= vojk/k ½

उपवास के दिनों में यदि पानी तो काफी पिलाया जाए पर मूत्राशय को खाली करने का उपाय न किया

जाए तो प्रायः मूत्र अवरोध हो जाता है। इस दशा में ठंडा मेहन स्नान या गर्म और ठंडा स्प्रे लाभकारी होता है।

4½ vfrlkj ;k nLr ½

उपवास काल में अतिसार बहुत कम होता है। पर यदि किसी को हो जाए तो उसकी अतिसार के समान ही चिकित्सा करनी चाहिए।

5½ flj nn ½

यह लक्षण प्रायः उपवास के प्रारंभ में पाया जाता है जो कुछ समय बाद अपने आप ठीक हो जाता है।

6½ ân; {k= e nn ½

उपवास काल में आमाशय में मल एकत्र होने तथा अन्य आमाशय संबंधी रोगों के कारण प्रायः हृदय क्षेत्र में दर्द होने लगता है, यह लक्षण भी धीरे–धीरे अपने आप मिट जाता है।

7½ ukMh xfr dk en gkuk ½

प्रायः यह लक्षण उत्पन्न हो जाता है जो खतरनाक नहीं होता। गर्म जल से स्नान करने तथा हल्का व्यायाम करने से यह लक्षण समाप्त हो जाता है। इसमें मालिश से भी लाभ मिलता है।

8½ ukMh xfr dk rt gkuk ½

लम्बा उपवास करते समय प्रायः यह अवस्था उत्पन्न हो जाती है जो बहुत खतरनाक होती है। इसका उपचार तुरंत करना चाहिए। डॉक्टर क्लॉग ऐसी अवस्था में ठंडे स्नान की राय देते हैं। किंतु कुछ अन्य चिकित्सकों का मानना है कि ठंडे स्नान से हृदय उत्तेजित होता है इसलिए उसे नहीं देना चाहिए। ऐसी अवस्था में गर्म स्नान की सिफारिश करते हैं। स्नान का पानी बहुत गर्म नहीं होना चाहिए अपितु शरीर के तापमान के बराबर होना चाहिए। तथा पेडू पर ठंडी पट्टी रखना, सिर को ठंडा तथा पैरों को गर्म रखना भी इसमें लाभकारी होता है। इसमें शुद्ध वायु का व्यवहार भी होना चाहिए।

9½ oeu ½

उपवास काल में वमन होना सबसे खतरनाक स्थिति है। ऐसी दशा उत्पन्न होने पर रोगी जितना गर्म पानी पी सके पिलाना चाहिए ताकि आमाशय स्थित उत्तेजक पदार्थ जल्दी से जल्दी बाहर निकल जाए। यदि ऐसा करने से लाभ न हो तो गर्म और ठंडा स्नान कराना चाहिए। यदि लाभ न हो तो थोड़ी ग्लिसरीन पानी में मिलाकर देने से उनकी वमन प्रवृत्ति अवश्य जाती रहेगी।

4-2-8 miokl d çdkj

उपवास विभिन्न प्रकार के होते हैं, इनमें से कुछ मुख्य उपवास पर संक्षिप्त प्रकाश डाला जा रहा है;

fVIi.kh

i) çkr% dkyhu miokl

rS;kjh &

प्रातः कालीन उपवास करने के लिए सर्वप्रथम उपवासी को अपने मन को तैयार करना पड़ता है। तथा उपवास के लिए संकल्प लेना होता है।

fof/k &

प्रातः कालिक उपवास सबसे सुगम उपवास है। इसमें केवल सुबह का नाश्ता छोड़ देना होता है और पूरे 24 घंटे में केवल दो बार ही भोजन करने की व्यवस्था रहती है। अंग्रेजी में इसको No Breakfast System कहते हैं।

ykHk &

प्रातः कालिक उपवास का अभ्यास करने से उपवास करने की प्रवृत्ति विकसित होती है। व्यक्ति में संकल्प शक्ति का विकास होता है तथा भोजन पर नियंत्रण स्थापित करने की स्थितियां उत्पन्न होती हैं। सामान्य तौर पर इस उपवास से शरीर हल्का एवं सक्रिय बना रहता है।

lko/kkfu;k &

उपवास के दौरान मन पर दृढ़ता से नियंत्रण रखने की आवश्यकता होती है। शुरुआत में मन बार–बार भोजन के लिए विचलित होता है, लेकिन उत्तम प्रयास से इस पर नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है। उपवास के दौरान भोजन सादा और सुपाच्य ही होना चाहिए।

ii) lk;dkyhu miokl

rS;kjh &

सायंकालीन उपवास के लिए उपवासी को सर्वप्रथम अपने मन मस्तिष्क को इस उपवास हेतु त्याग करना पड़ता है, तथा अपने मन को संकल्पित करना पड़ता है।

fof/k &

सायंकालीन उपवास को एक समय का उपवास भी कहते हैं। इसमें रात का भोजन बंद कर देना होता है। और रात और दिन में केवल एक ही भोजन करना होता है। जो लोग पुराने और जटिल रोगों के शिकार होते हैं उनको इस उपवास से बड़ा लाभ होता है। इस उपवास में जो भोजन उपयोग किया जाता है, वह स्वास्थ्यकर एवं प्राकृतिक होना आवश्यक है।

ykHk &

सायंकालीन उपवास से जीर्ण और जटिल रोगों मे लाभ मिलता है। इस उपवास से अजीर्ण कोलाइटिस, अपच, गैस्ट्राइटिस, गठिया, उदर शूल, बवासीर तथा पेशीय शिथिलता में लाभ मिलता है। व्यक्ति की कार्य

fVIi.kh

शक्ति बढ़ती है। आलस्य दूर होता है तथा मन शांत एवं प्रसन्न चित्त होता है।

lko/kkfu;k &

प्रातःकालीन उपवास के अन्तर्गत बताई गयी सावधानियाँ ही सायंकालीन उपवास के अन्तर्गत लागू होती है।

iii) ,dkgkjksiokl

r|;kjh &

एकाहारोपवास करने के लिए सर्वप्रथम उपवासी को अपने परिवेश एवम् अपने मन को व्यवस्थित करना होता है, तथा संकल्पित करना होता है। साथ ही साथ चुने गए खाद्य को भी संकलित करना होता है।

fof/k &

एकाहारोपवास में एक बार में केवल एक ही चीज खानी होती है। जैसे सुबह यदि रोटी खाएं तो शाम को केवल सब्जी। दूसरे दिन सुबह यदि एक प्रकार का कोई फल तो शाम को केवल दूध, आदि। शरीर की सामान्य समस्याओं में यह उपवास लाभ के साथ किया जा सकता है। इससे साधारण स्वास्थ्य में असाधारण उन्नति दृष्टिगोचर होती है।

ykHk –

एकाहारोपवास का उपयोग करने से दिन प्रतिदिन आने वाली सामान्य समस्याओं जैसे– एसिडिटी, पेट फूलना, डकार आना, शरीर में दर्द तथा आलस्य इत्यादि को बहुत आसानी से दूर किया जा सकता है, तथा अपनी दिनचर्या व कार्यशैली को पुष्ट किया जा सकता है।

lko/kkuh &

उपवास के दौरान कब्जियत बिल्कुल ना रहे। इस हेतु उपाय करते रहें या एनिमा का प्रयोग करें।

iv) jlksiokl

r|;kjh –

रसोपवास करने के लिए उपवासी को सर्वप्रथम अपने को मानसिक रूप से सक्षम कर लेने के उपरांत फल या रस का चयन करना होता है, तथा उसकी सहायता से उपवास शुरू किया जा सकता है।

fof/k &

रसोपवास में अन्न तथा फल आदि ठोस पदार्थ नहीं ग्रहण किए जाते हैं। केवल रसदार फलों के रस अथवा साग सब्जियों के सूप या जूस पर ही रहा जाता है। दूध लेना भी वर्जित होता है क्योंकि दूध की गिनती ठोस पदार्थ में की जाती है। इस उपवास में एनिमा लेते रहने से शरीर की सफाई अच्छी होती है।

vkdk'k rRo fpfdRlk] fofHkUu fof/k;k¡ ,oa vuqç;ksx

fVIi.kh

lko/kkuh &

उपवासी की क्षमता के अनुसार रस का चयन करना चाहिए। अगर उपवासी के शरीर में वसा पर्याप्त है तो उसे कम मीठे फलों या सब्जियों के रस या सूप पर उपवास करना लाभदायक होगा। परंतु यदि रोगी का वजन कम है तो उसको किसी मीठे फल के रस पर उपवास करना उपयोगी सिद्ध होता है।

ykHk &

रसोपवास से पाचन संबंधी समस्याएं, अवशोषण संबंधी समस्याएं, तथा कब्ज एवं उदर विकारों का शमन होता है। यकृत की विकृतियां दूर होती है, यकृत स्वस्थ होकर सामान्य प्रकार से काम करने लगता है। फलस्वरूप शरीर की नाना प्रकार की समस्याएं समाप्त होती हैं। वृक्क रसोपवास से सक्रिय होकर शरीर से अशुद्धियों को तीव्रता से दूर करने लगता है। त्वचा की स्वेद ग्रंथियां सक्रियता से कार्य करने लगती है जिससे त्वचा के नीचे जमे विष दूर होते है फलस्वरूप त्वचा स्निग्ध तथा मुलायम होती है।

lko/kkfu;k¡ &

उपवास में रस हेतु फल व सब्जियों का चयन करते समय सावधानी रखनी चाहिए। इसमें व्यक्ति की पसंद –नापसंद उसकी पाचन क्षमता शरीर की अनुकूलता तथा आर्थिक पक्ष पर अवश्य ध्यान देना चाहिए। फलों के रसों का उपयोग किसी उपवास विशेषज्ञ की निर्देशानुसार सीमित मात्रा में तथा निश्चित बार उपयोग करना चाहिए। रस में अलग से नमक या शक्कर मिलाकर उपयोग नहीं करना चाहिए।

v) Qyksiokl

r\;kjh &

फलोपवास करने के लिए उपवासी को सबसे पहले अपने मन को संकल्पित करने के पश्चात् कुछ दिन तक एकाहारोपवास तथा रसोपवास का उपयोग कर लेने से उनके शरीर में फलोपवास के लिए अनुकूलता आ जाती है। उसकी संकल्प शक्ति तीव्र होती है, तथा वह एक लंबा फल उपवास संपन्न कर सकता है।

fof/k &

कुछ दिनों तक केवल रसदार फलों अथवा शाक सब्जियों पर रहना फलोपवास कहलाता है। इस उपवास में भी कभी–कभी पेट साफ करने के लिए एनिमा लेते रहना चाहिए। इस उपवास में किसी– किसी को एक फल व एक फलाहार अनुकूल नहीं पड़ता, और पेट में समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। ऐसे व्यक्तियों को पहले दो–तीन दिनों का उपवास कर लेने के बाद इस फल उपवास का आरंभ करना चाहिए। फलोपवास काल में जो फल आसानी से पच जाएं उन्हीं को उपयोग में लाना उत्तम है। यदि फल बिल्कुल ही अनुकूल नहीं होते तो सिर्फ पकी साग–सब्जियां खाकर उपवास करना चाहिए। तात्पर्य यह कि फल उपवास में जो सब्जियां या फल अनुकूल हों उन्हीं को व्यवहार में लाना चाहिए। क्योंकि कोई भी उपवास हो उसमें अपच कदापि नहीं होने देना चाहिए।

ykHk &

फलोपवास के अभ्यास से उपवासी को पाचन संबंधी विकृतियों, गुदा से संबंधित समस्याओं जैसे बवासीर, कब्जियत, मूत्र संबंधी समस्याओं जैसे प्रोस्टेट ग्रंथि का बढ़ना, मूत्र कृच्छता, मूत्र अवरोध आदि में अत्यंत लाभ होता है। उसका पाचन संस्थान सुसंगठित होकर नई ऊर्जा के साथ अपने कार्यों को संपन्न करने में समर्थ हो जाता है। उदर की अन्य समस्याएं जैसे हाइपरएसिडिटी, कब्जियत, गैस्ट्राइटिस, पेट फूलना और कोलाइटिस इत्यादि जड़ से समाप्त होती हैं।

lko/kkuh &

फलोपवास लंबे समय तक चलने वाला उपवास है। इसमें कोष्ठबद्धता नहीं होने देना चाहिए और बीच–बीच में एनिमा का प्रयोग अनवरत करते रहना चाहिए।

vi) nqX/k miokl

rS;kjh &

दुग्ध उपवास का उपयोग करने के लिए रोगी को संकल्पित होकर देसी गाय के दूध का प्रबंध करना चाहिए। इस उपवास में जर्सी गाय या भैंस का दूध उपयुक्त नहीं रहता है।

fof/k &

दुग्ध उपवास को दुग्ध कल्प भी कहा जा सकता है। कुछ दिनों तक दिन में चार पांच बार केवल दूध पीकर ही रहना इसकी प्रक्रिया में आता है। इस उपवास में जिस दूध का उपवास किया जाए वह स्वस्थ गाय का धारोष्ण होना चाहिए।

ykHk &

दूध उपवास का उपयोग रोगी में अस्थि संबंधी, शारीरिक संगठन संबंधी, अंगों की प्राकृतिक विकृति संबंधी समस्याओं को देर करने तथा सामान्य स्वास्थ्य को संरक्षित रखने हेतु किया जाता है। दुग्ध उपवास से चेहरे की कांति बढ़ती है। शरीर की त्वचा स्निग्ध होकर चेहरे पर तेज आता है।

lko/kkfu;k &

दुग्ध उपवास में विशेष रुप से कब्जियत पर ध्यान देने की आवश्यकता होती है। दुग्ध उपवास के दौरान कब्ज होने पर बवासीर होने की संभावना ज्यादा रहती है, इसलिए इस प्रक्रिया के दौरान पेट को साफ रखने का प्रयास अवश्य किया जाना चाहिए।

vii) eV~Bkiokl

rS;kjh –

मट्ठोपवास का उपयोग करने के लिए रोगी को शारीरिक व मानसिक रूप से अपने को प्यार करने के पश्चात् देसी गाय के मट्ठे का प्रबंध करना चाहिए, क्योंकि इस उपवास में देसी गाय का मट्ठा ही उपयोगी होता है।

vkdk'k rRo fpfdRlk] fofHkUu fof/k;k¡ ,oa vuqç;ksx

fVIi.kh

fof/k &

मट्ठोपवास को मट्ठा कल्प भी कहा जा सकता है। पाचकाग्नि यदि दुर्बल हो तो दुग्ध उपवास की जगह यह उपवास करना चाहिए। उपवास में जो मट्ठा लिया जाता है वह वसा रहित होना चाहिये। मट्ठा खट्टा नहीं होना चाहिए। मट्ठोपवास से पहले यदि दो एक दिनों का पूर्ण उपवास कर लिया जाए तो अधिक लाभ होने की संभावना रहती है। यह उपवास डेढ़ से 2 महीने आसानी से चलाया जा सकता है। इससे शरीर के छोटे–मोटे रोगों का शमन तो हो ही जाता है तथा साथ ही साथ सामान्य स्वास्थ्य में भी काफी उन्नति हो जाती है। इन उपवासों में जब कभी पेट भारी मालूम दे तो एनिमा का प्रयोग अवश्य करना चाहिए।

ykHk &

मट्ठोपवास के अभ्यास से रोगी की जठराग्नि प्रदीप्त होती है। अपच, अजीर्ण जैसी समस्याओं का समाधान होता है । सामान्य स्वास्थ्य उत्तम हो जाता है। चेहरे व शरीर की कांति व आभा बढ़ती है। अस्थियां मजबूत होती हैं। सिर के बालों का स्वास्थ्य उत्तम होता है।

lko/kkfu;k¡ &

मट्ठोपवास करते समय ध्यान रहे कि मट्ठा केवल देसी गाय का एवम ताजा ही उपयोग किया जाना चाहिए। उपवास के दौरान आवश्यकतानुसार एनिमा का प्रयोग करते रहना चाहिए। उपवास के दौरान यदि कोई समस्या शरीर में आए तो उसका शमन औषधियों से न करके प्राकृतिक चिकित्सा की विधियों का ही प्रयोग करना चाहिए।

viii) lkIrkfgd miokl

rS;kjh &

अध्यात्म एवं स्वास्थ्य लाभ हेतु इस उपवास का अभ्यास करने के लिए उपवासी अपने आप को शरीर एवं मन से तैयार करना होता है।

fof/k &

पूर्णोपवास सप्ताह में केवल 1 दिन नियम पूर्वक करना साप्ताहिक उपवास कहलाता है। इससे साधारण स्वास्थ्य ठीक रहता है, और शरीर के रोगी होने की संभावना कम रहती है। साप्ताहिक उपवास दिन–दिन भर बैठ कर काम करने वाले जैसे बैंक कर्मी, कार्यालय कर्मी, शिक्षक, आदि लोगों के लिए लाभप्रद ही नहीं अपितु आवश्यक है। सामान्य कार्मिकों को भी कम से कम यह साप्ताहिक उपवास अवश्य करना चाहिए। उपवास के दिन एक दो बार एनिमा भी किया जाए तो उत्तम परिणाम प्राप्त होता है।

ykHk &

साप्ताहिक उपवास से पाचन तंत्र सुव्यवस्थित होता है। उदर संबंधी समस्याएं समाप्त होती हैं। अरुचि मिटती है। सिर दर्द, सुस्ती तथा अन्य शारीरिक और मानसिक व्याधियां अपने आप स्वतः समाप्त हो जाती हैं।

lko/kkuh &

साप्ताहिक उपवास में नियमितता का ध्यान रखना चाहिए। उपवास प्रारंभ करने के बाद अभ्यास में इसको कभी भी विस्मृत नहीं करना चाहिए। उपवास के दौरान केवल पानी या नींबू पानी का प्रयोग करना चाहिए पेट साफ रखने पर अवश्य ध्यान देना चाहिए तथा दिन में एक या दो बार एनिमा अवश्य लेना चाहिए।

ix) y?kq miokl

y?kq miokl dh fof/k

लघु उपवास की प्रक्रिया दीर्घ उपवास की भांति ही होती है। इसमें 3 दिन से लेकर 7 दिनों तक के उपवास को सम्मिलित किया जाता है।

x) Øfed miokl

rS;kjh &

क्रमिक उपवास को टूट उपवास भी कहते हैं। इस उपवास का उपयोग कष्ट साध्य रोगों के निवारण हेतु किंया जाता है। उपवास का उपयोग करने के लिए अभ्यासी को अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति के साथ उपलब्ध संसाधनों का उपयोग करते हुए इसका अभ्यास शुरू करना चाहिए।

fof/k &

टूट उपवास में 2 से 7 दिनों का पूर्ण उपवास करने के बाद कुछ दिनों तक हल्के प्राकृतिक भोजन का उपयोग करके पुनः इतने दिनों का उपवास करना होता है। उपवास और हल्के भोजन का यह क्रम तब तक चलता रहता है जब तक उद्देश्य की पूर्ति ना हो जाए। इस उपवास का प्रयोग कष्ट साध्य लोगों के लिए अत्यधिक उपयोगी साबित होता है। इस उपवास में अन्य उपवासों की ही भांति उपवास के सारे नियमों का पालन करना होता है। नियमित एनिमा लेकर कोष्ठ को शुद्ध रखना आवश्यक होता है।

ykHk &

क्रमिक उपवास का प्रयोग ऐसे कठिन रोग जो आसानी से शरीर को मुक्त नहीं करते हैं, उन के निवारणार्थ प्रयोग किया जाता है। जैसे– हृदय रोग, वृक्क के रोग, उपापचयी रोग इत्यादि।

lko/kkuh –

क्रमिक उपवास का प्रयोग करने के दौरान जब उपवास का एक सप्ताह का क्रम पूर्ण हो जाए तो सामान्य भोजन पर आने से पूर्व पहले रस आहार फल एवं सब्जी का आहार इसके बाद साधारण सुपाच्य भोजन का

उपयोग करना चाहिए। एक सप्ताह तक इस प्रक्रिया को पूरा करने के पश्चात पुनः उपवास का दूसरा क्रम प्रारंभ करना चाहिए। उपवास के दौरान कोष्ठ शुद्धि पर ध्यान देना चाहिए तथा एनिमा का आवश्यकतानुसार प्रयोग करते रहना चाहिए।

xi) nh?kZ miokl

rS;kjh &

दीर्घ उपवास वास्तव में उपवास चिकित्सा का प्रमुख उपवास है। यह उपवास लंबा चलता है। रोगी या उपवासी की इच्छा शक्ति प्रबल हो तभी वह इस उपवास को संपन्न कर पाता है। दीर्घ उपवास का अभ्यास शुरू करने से पूर्व रोगी को अपने उद्देश्य को सम्मुख रखते हुए अपने मन व शरीर को दीर्घ उपवास व उपवास के दौरान होने वाली समस्याओं के लिए मानसिक रूप से स्वयं को तैयार करके अभ्यास करना चाहिए।

fof/k &

इस उपवास में उपवास बहुत दिनों तक चलाना होता है। इसके लिए कोई निश्चित समय पहले से निर्धारित नहीं होता। इसमें 21 से लेकर 50 से 60 दिन तक भी लग सकते हैं। प्रायः यह उपवास तभी भंग किया जाता है जब स्वाभाविक भूख प्रतीत होने लगती है अथवा शरीर के सारे विजातीय द्रव्यों के पच जाने के बाद जब शरीर के अवयवों के पचने की स्थिति आने की संभावना हो जाती है। यह उपवास जब शारीरिक उद्देश्य से किया जाता है तब इसका लक्ष्य शरीर के विभिन्न भागों में एकत्र हुए विजातीय द्रव्यों के निष्कासन की ओर ही होता है और जब यह मंतव्य पूरा हो जाता है तो उपवास तोड़ दिया जाता है। इस प्रकार बिना किसी तैयारी तथा बिना उपवास कला का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किए यह उपवास नहीं करना चाहिए। अच्छा तो यह हो कि इस प्रकार के लंबे उपवास विशेषज्ञ की देखरेख में ही चलाया जाए। अन्यथा बिना पूर्ण रूप से समझे लंबे उपवासों का प्रयोग करने से कष्ट और हानि दोनों की संभावना रहती है।

ykHk &

उपवास वास्तव में आकाश तत्व चिकित्सा का प्रमुख उपादान है। शरीर के मृत्यु के अलावा सभी प्रकार के कष्टों को दूर करने की सामर्थ्य इस उपवास में है। इस उपवास से ना केवल शारीरिक रोगों या कष्टों का समाधान होता है अपितु व्यक्ति का मानसिक, चारित्रिक, आध्यात्मिक उत्थान भी होता है। उपवासी की एकाग्रता बढ़ती है। उसका शरीर के विभिन्न अंगों पर पूर्णतया नियंत्रण स्थापित हो जाता है। भावनाएं उसकी इच्छाशक्ति की अनुकूल नतमस्तक रहती हैं।

lko/kkuh &

उपवास सदैव किसी खास उद्देश्य से किया जाता है। अतः इसका उपयोग करने से पूर्व किसी उपवास विशेषज्ञ से परामर्श लेकर या उसके निर्देशन में ही किया जाना चाहिए।

fVIi.kh

4-2-9 miokl dk 'kjhj ij çHkko

i) ikpu laLFkku ij çHkko

जिस प्रकार अत्यधिक भोजन का सर्वप्रथम दुष्प्रभाव आमाशय पर दिखाई पड़ता है, उसी प्रकार उपवास का भी प्रभाव सर्वप्रथम आमाशय पर ही दिखाई पड़ता है। उपवास करने के दूसरे या तीसरे दिन बड़े जोर की भूख प्रतीत होती है जिसका कारण यह होता है कि हमारे खाने की आदत हमको उस समय सताती है जिससे बड़ी बेचैनी मालूम होती है। जब यह आंतरिक भूख सताना बंद कर देती है तब शरीर से विष का निकलना प्रारंभ होता है और यह अवस्था विष की मात्रा के अनुरूप तीन या चार दिनों तक बनी रहती है। कभी–कभी 15 दिनों तक भी रहती देखी गई है। विषों के निकलने के कारण जिह्वा गंदी, श्वास दुर्गंध युक्त, भूख बिल्कुल समाप्त हो जाती है। शरीर की स्व उपचार शक्ति इस समय कार्य कर रही होती है। विषों के कम होने के कारण इस समय रोग का जोर भी कम हो जाता है। विषों के नष्ट हो जाने के बाद पेट हल्का हो जाता है और वास्तविक भूख की प्रतीत होने लगती है, साथ ही जीभ साफ हो जाती है और शरीर हल्का प्रतीत होने लगता है। यद्यपि, शरीर में शारीरिक और मानसिक कार्य करने की शक्ति कम रहती है।

आंतों पर भी सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। आंतों में मल के सड़ने से आमवात, अतिसार, प्रवाहिका आदि रोगों में परिवर्तन होने लगता है। आंतों में नया आंत्र रस ना आने के कारण उसकी कोशिकाओं को कम कार्य करना पड़ता है, जिससे उसकी लुप्त हुई शक्तियां पुनः जागृत हो जाती हैं। आंतें मल को शुद्ध करके उसे धीरे–धीरे निकालने लगती हैं, तथा आंतों में उत्पन्न हुई वायु अवशोषित हो जाती है और आंतों में मल को अग्रसारित करने की शक्ति कम होने के कारण कुछ दिनों बाद मल अपने आप नहीं निकल पाता और उसको एनिमा द्वारा निकालना पड़ता है। जिस समय सारा मल निकल जाता है, शरीर के स्नायुओं का ह्रास होने लगता है जिसकी वजह से शरीर का भार बहुत अधिक घट जाता है।

ii) ey R;kx ij çHkko

पहले मल की मात्रा तथा उसकी नियमितता पर प्रभाव होता है। आंतों में बहुत दिन तक मल के रूके रहने से मल कमजोर हो जाता है और उसके निकालने में कठिनाई होती है। कई बार उसके निकलने से दर्द तथा रक्त स्राव होता है। इसलिए एनिमा का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। उपवास आरंभ के पहले दिन यदि साधारण भोजन किया जाएगा तो अगले दिन मल और दिनों के समान ही आएगा किंतु 2–3 दिन बाद मल आना रूक जाता है और तब यदि इसे एनिमा द्वारा न निकाला जाए तो उसके बुरे परिणाम हो सकते हैं।

iii) jDr LFkku ij çHkko

भोजन शरीर में पचकर तापमान पैदा करता है। जिस प्रकार किसी भाप इंजन में कोयले की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार शरीर को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए भोजन रूपी ईंधन की आवश्यकता होती है। भोजन हमारे शरीर में ईंधन का काम करते हुए शरीर के तापमान को स्थिर रखता है। इसलिए

vkdk'k rRo fpfdRlk] fofHkUu fof/k;k ,o vuç;kx

fVIi.kh

जब हम भोजन नहीं करते तो हमारे शरीर का तापमान कम हो जाना चाहिए किंतु आपके तापमान का आधार भोजन तब अनुपस्थित होता है। किंतु डॉक्टर बेनिडिक्ट बहुत अन्वेषणों के बाद इसके बिल्कुल विपरीत परिणाम पर पहुंचे हैं कि उपवास शुरू करने के 4 दिन बाद तक भी शरीर के तापमान में कोई अंतर नहीं आता और उसके बाद भी तापमान कभी–कभी उपवास वृद्धि के साथ बढ़ता जाता है। इस प्रकार प्रकृति के नियमों के विरुद्ध इस प्रक्रिया का होना बड़े ही आश्चर्य की बात है।

डॉक्टर मैकफेडेन कहते हैं:

> How such tracts could be if we derived our bodily heat from the food consumed as it usually taught is a mystery:

iv) ukMh ij çHkko

उपवास काल मे नाड़ी में भिन्न–भिन्न प्रकार के परिवर्तन होते देखे जाते हैं, इसलिए चिकित्सा विज्ञानी इस संबंध में अभी तक ठीक परिणाम पर नहीं पहुंच सके हैं। उपवास की कुछ अवस्थाओं में नाड़ी साधारण रहती है, किंतु कुछ अवस्थाओं में इसकी गति मंद हो जाती है, लगभग 64 व्यक्तियों में नाड़ी की गति साधारण देखी गई, 36 में कम तथा किसी–किसी व्यक्ति में यह बड़ी हुई भी पाई गई है।

v) jä ij çHkko

उपवास के समय रक्त में भिन्न–भिन्न परिवर्तन देखे गए हैं। डॉक्टर मूलर तथा सिनेटर ने परीक्षण करके देखा कि रक्त में रक्त कोशिकाओं की संख्या बढ़ जाती है। किंतु इससे भी आगे बढ़कर डॉक्टर टैजिसक ने उपवास के समय होने वाले रक्त में निम्नलिखित परिवर्तन बताएं हैं:

1 कुछ समय तक रक्त कणिकाओं की संख्या घटने के बाद बढ़नी शुरू हो जाती है।

2 उपवास की वृद्धि के साथ श्वेत रक्त कणिकाओं की संख्या कम होती जाती है।

3 एक न्यूक्लियस वाले श्वेत रक्त कणिकाओं की संख्या घट जाती है।

4 इसनोफिल तथा बहकेन्द्रकीय श्वेत रक्त कणिकाओं की संख्या बढ़ जाती है।

इनके अतिरिक्त आंतों से जो आंत्र रस रक्त में चला गया होता है, वह धीरे– धीरे शुद्धि को प्राप्त होकर मल के रूप में निकलने लगता है। इसलिए इस आंत्ररस से उत्पन्न आमवात आदि बीमारियां ठीक हो जाती हैं।

श्री एम्बोज टेलर ने 60 वर्ष की आयु में उपवास किया और वह पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गए।

आंतों में मल के होने से रक्त का दबाव बढ़ जाता है पर वह उपवास के समय आंत के साफ होने से घटने

टिप्पणी

लगता है, जिससे हृदय की अतिवृद्धि (Cardiomegaly) कम हो जाती है तथा हृदय पर एकत्रित वसा ईंधन बनकर जल जाती है। फलतः हृदयाघात का खतरा कम हो जाता है।

vi) यकृत पर प्रभाव

अधिक भोजन करने से साधारणतया यकृत की वृद्धि या अवरोध हो जाता है। उपवास में यकृत को सामान्य से अधिक काम करना पड़ता है, उसकी कोशिकायें अधिक सक्रिय हो जाती हैं, जिससे पित्त अधिक निकलता है। आंतों में स्थित मल की पूर्ण शुद्धि होने लगती है, मल का रंग मटमैला– पीला हो जाता है और उसका अवरोध दूर हो जाता है। हेमिल्टन ब्रुक ने यकृत अवरोध के लिए उपवास किया और केवल 30 दिनों में पूर्ण स्वस्थ हो गए। पित्त के अधिक निकलने के कारण ही अजीर्ण, कब्ज, दस्त आदि रोगों को उपवास द्वारा दूर किया जा सकता है।

vii) मूत्र संस्थान पर प्रभाव

आमाशय में उत्पन्न विषाक्त द्रव्य रक्त द्वारा शरीर में फैल कर बाद में वृक्कों द्वारा बाहर निकाले जाते हैं। इनमें सबसे मुख्य यूरिया होती है, यदि यह यूरिया शरीर से बाहर न निकले तो उसका भयंकर परिणाम हो सकता है। डॉक्टर एलेग्जेंडर हेग आदि तो सिर्फ यूरिया के निकालने की मात्रा से ही शरीर की शुद्धि का अनुमान लगाते हैं। जिस समय रक्त में यूरिया की मात्रा अधिक हो जाती है उस समय वृक्क को आराम मिलता है। क्योंकि उस समय नए विष द्रव्य उत्पन्न होकर शरीर में नहीं आते हैं। वृक्क यूरिया को अधिक मात्रा में उस समय तक निकालते रहते हैं जब तक कि उसकी अतिरिक्त मात्रा नहीं निकल जाती है। तत्पश्चात शनैः–शनैः यूरिया की मात्रा कम होने लगती है, जिससे मालूम पड़ता है कि अब शरीर की शक्ति क्षीण होने लगी है।

viii) मूत्र पर प्रभाव

यदि उपवास के दौरान पानी का प्रयोग ना किया जाए तो मूत्र की मात्रा साधारण तौर पर घट जाती है। पर यदि पानी का प्रयोग किया जाए तो मूत्र की मात्रा साधारण या उससे कुछ ही कम होती है। किंतु उपवास के प्रथम दिन मूत्र की मात्रा साधारण अवस्था की मात्रा के समान ही होती है। मूत्र की प्रकृति अम्लीय होती है। घनत्व 1015 से 1025 तक होता है। मूत्र में ठोस पदार्थों की मात्रा 40 ग्राम प्रतिदिन से अधिक नहीं होती।

ix) त्वचा पर प्रभाव

शरीर में त्वचा के मुख्य तीन काम हैं। शरीर की रक्षा करना, संवेदनाओं को मस्तिष्क तक पहुंचाना तथा शरीर

के विष शरीर से बाहर निकालना। फेफड़ों द्वारा जितना विष शरीर से बाहर निकलता है, उससे कम विष त्वचा द्वारा नहीं निकलता। अत्यधिक भोजन करने के परिणामस्वरूप त्वचा के नीचे वसा अधिक मात्रा में एकत्र हो जाती है तब त्वचा से पसीना निकालने वाले छिद्र प्रायः बंद हो जाते हैं। परिणामस्वरूप त्वचा द्वारा पसीने के रूप में यूरिया आदि शरीर के बाहर नहीं निकल पाते हैं। उपवास करने से त्वचा के नीचे स्थित स्वेद ग्रंथियां अपने स्वाभाविक कार्य को आरंभ कर देती हैं और उनसे पसीना निकलना प्रारम्भ हो जाता है, जिससे यूरिया आदि विष बहुत अधिक मात्रा में बाहर निकलने लगते हैं। यही वजह है कि उपवासी के पसीने से बड़ी दुर्गन्ध आती है। संचित वसा शरीर में ईंधन का काम करती है, जिससे पसीने की नलिकाएं खुल जाती हैं, पसीना खूब आने से त्वचा स्निग्ध और मुलायम हो जाती है और इस प्रकार पसीने के शरीर के अंदर रूकने से उत्पन्न होने वाली समस्याओं से मनुष्य को मुक्ति मिल जाती है।

x) Luk;q laLFkku ij çHkko

सबसे मुख्य संस्थान शरीर में स्नायु संस्थान है। इसमें किसी भी प्रकार का दोष हो जाने से शरीर में कोई ना कोई विकार उत्पन्न हो जाता है। इसी को आयुर्वेद में वात रोग के नाम से संबोधित किया गया है। और माना गया है कि वात के दूषित होने से सब रोगों की उत्पत्ति होती है। (वाग्भट्ट सूत्रस्थान 19–85) इसका पोषण रक्त द्वारा होता है। इसलिए रक्त के दूषित हो जाने पर उसका सबसे बड़ा बुरा प्रभाव मनुष्य की मानसिक शक्तियों पर पड़ता है। जिससे इनका ह्रास होने लगता है। मनुष्य मानसिक कार्यों जैसे पढ़ने–लिखने, सोचने–विचारने तथा याद रखने आदि में अपने मन को नहीं लगा सकता है। उसमें धैर्य, उत्साह आदि मानवोचित गुणों का अभाव होने लगता है। उपवास करने से रक्त शुद्ध हो जाता है, जिससे मस्तिष्क पर से विष का प्रभाव हट जाता है और उसकी मानसिक शक्तियां पुनः बलवती हो जाती हैं।

इस तरह स्नायु संस्थान संबंधी रोग भी उपवास द्वारा ठीक हो जाते हैं। कैलिफोर्निया की श्रीमती ई. एच. फर्रार ने लकवा के लिए उपवास किया और वह इसी से पूर्णतः स्वस्थ हो गई। इसी प्रकार एडोल्फ क्राइस्ट बर्नार्ड ने नयूरेसथीनिया के लिए उपवास किया और स्वस्थ हो गए। तात्पर्य यह है कि उपवास के प्रभाव से सही रोगी के शरीर से ज्यों–ज्यों पूर्व संचित विष निकलते जाते हैं त्यों–त्यों उसके नाड़ी अथवा स्नायु संस्थान के दोष मिटते जाते हैं।

xi) 'kkjhfjd otu ij çHkko

यदि कोई स्वस्थ आदमी उपवास करे तो उसके भार में 1 से 2 दिन तक कोई विशेष अंतर नहीं पड़ता है। किंतु यदि मोटा और स्वस्थ व्यक्ति उपवास करे तो दो–तीन दिन बाद उसके वजन में लगभग 2 किलो की कमी अवश्य आ जाएगी और उसके बाद प्रतिदिन आधा किलो उसका वजन कम होता जाएगा। यदि साधारण रोग में उपवास किया जाएगा तो प्रतिदिन लगभग आधा किलो वजन कम हो सकता है।

fVIi.kh

xii) 'olu laLFkku ij çHkko

उपवास काल में श्वसन संस्थान में भिन्न–भिन्न प्रकार के परिवर्तन देखे जाते हैं। किंतु जो परिवर्तन देखे जाते हैं वह लगभग सभी उपवास करने वाले व्यक्तियों में समान रूप से विद्यमान होते हैं। उपवास काल में पहले दो–तीन दिनों तक बड़ी दुर्गंध युक्त श्वास निकलती है। किंतु पांच–छह दिन बाद श्वास गंधहीन निकलने लगती है, जो शरीर के निर्मल होने की निशानी है।

bdkbZxr iz'u& 4-2

क) रोग होने पर रोग के कारण विजातीय द्रव्य को दूर करने का केवल एक प्रबल उपाय .... ही है।

ख) उपवास में जितना पानी पीना आवश्यक है उतना ही .... भी आवश्यक है।

4-3 dYi

प्रगति के मार्ग पर चलने के लिए व्यक्ति को जो तप साधना के मार्ग को तय करना पड़ता है, उसके दो ही स्वरूप हैः–

1 आंतरिक अवरोधों से पीछा छुड़ाया जाए; और

2 आत्मबल पर आश्रित अनुकूलताओं को अर्जित किया जाए।

इसी को आत्मिक पुरुषार्थ का एकमात्र और वास्तविक स्वरूप माना गया है। यात्री को एक पैर उठाना और दूसरा बढ़ाना पड़ता है। इसमें उठाने का तात्पर्य है कि कुसंस्कारों को छोड़ा जाए। इसके लिए कठोर तप किया जाना आवश्यक है। बढ़ाने का अर्थ है सत्प्रवृत्तियों को स्वभाव एवं आचरण में अंगीकृत कर लिया जाए।

उपवास एवं सुसंस्कारी अन्न से काया का शोधन होता है और मन क्षेत्र में प्रज्ञा का आलोक बढ़ता है। शरीर कल्प के यही दो आधार हैं। आत्मिक काया कल्प के लिए भी शरीर का तप के आधार पर ही परिशोधन होता है। उपवास पर आधारित आहार चिकित्सा को कायिक निरोगता का मूल आधार माना जा सकता है। इसी प्रकार इंद्रिय संयम, अर्थ संयम, और विचार संयम का अभ्यास करने से अवांछनीय दुष्ट प्रवृत्तियों से सहज ही छुटकारा मिल जाता है। मन को शांत, स्थिर और सात्विक बनाने के लिए किये गए उपवास अन्न की सात्विकता पर ध्यान देना अति आवश्यक है।

कल्प साधना वस्तुतः उपवास प्रधान है। इसका एक स्वरुप चंद्रायण साधन के रूप में देखने को मिलता है। यह क्रम पुरातन काल के साधकों के मनोबल और उनकी शारीरिक सामर्थ्य को देखकर ठीक था, पर अब बदली परिस्थितियों में जहाँ मनुष्य की जीवनी शक्ति उतनी नहीं रही, पर्यावरण के परिवर्तन उसे जल्दी–

जल्दी प्रभावित भी करते हैं, इस कारण इतनी कठोर साधना संभव नहीं है। फिर भी उपवास का महत्व और उपयोगिता कभी कम नहीं होती। आरोग्यता की दृष्टि से भी अन्य श्रमिक मजदूरों की तरह पेट को सप्ताह में एक बार छुट्टी मिलनी ही चाहिए। ऐसा ना करते रहने पर उसकी कार्य दक्षता घटती है तथा शरीर में विजातीय द्रव्य एकत्र होते चले जाते हैं। पूर्ण उपवास ना बन पड़े तो कम से कम यह संभव है कि कल्प की अवधि में आधे या कम आहार पर निर्वाह कर लिया जाए। शाकाहार, फलाहार, अन्नाहार में से किसी एक को चयन कर उसे ही निर्दिष्ट मात्रा के नित्य लेते रहने का भी कल्प साधना में प्रावधान है। भांति–भांति की समस्याओं से बचकर साधक यदि एक ही अन्न या शाक पर कल्प कर ले आहार तो शुद्धि, आंतरिक कायाकल्प तथा आरोग्य प्राप्ति के सभी प्रयोजन पूरे होते हैं।

इस साधना को एक प्रकार से आयुर्वेदिक कायाकल्प उपचार के समान समूचे व्यक्तित्व का संशोधन एवं संवर्धन करने वाली प्रक्रिया कह सकते हैं। इतने पर भी कल्प के भौतिक सिद्धांत दोनों में एक जैसे हैं। एकांत सेवन, आहार संयम तथा निर्धारित चिंतन यही आधार कल्प साधना के भी हैं।

यह कल्प साधना घर के व्यस्त वातावरण में नहीं हो सकती। उपवास पूर्वक अनुष्ठान तो आए दिन होते रहते हैं अतः यह कायाकल्प की साधना उससे आगे की साधना है। उसके लिए तदनुरूप तीर्थ जैसा पवित्र वातावरण, उपयुक्त साधन एवं कल्प के लिए मार्गदर्शन चाहिए।

4-4 foJke

आकाश तत्व के पोषण में विश्राम का भी अप्रतिम योगदान है। वास्तव में विश्राम का अभिप्राय है श्रम के बाद आराम करना। अर्थात् शरीर की थकान दूर कर के मस्तिष्क को शांत व मन को विराम देना ही विश्राम कहलाता है। विश्राम शारीरिक के साथ–साथ मानसिक भी होना चाहिए, तभी पूर्ण विश्राम का सुख प्राप्त होता है। सामान्यता जब हम आराम करते हैं तब उस समय हम विश्राम की स्थिति को भूलकर मस्तिष्क को विभिन्न प्रकार से सक्रिय रखते हैं। शरीर तो आराम कर रहा होता है, लेकिन मस्तिष्क सक्रिय तथा मन चंचल बना रहता है। यह विश्राम नहीं है विश्राम को सही प्रकार से समझने के लिए एक अबोध बालक की सोने की स्थिति को देखकर अनुमान लगाया जा सकता है। बालक किस प्रकार से देह मस्तिष्क से परे बेसुध होकर निर्द्वन्द भाव से सोता है, वास्तव में यही वास्तविक विश्राम है।

कुछ विशेष प्रकार के श्री प्रयास करके बालक के समान विश्राम करने की आदत विकसित की जा सकती है। विश्राम के निमित्त शरीर को शिथिल करना बड़ी उपलब्धि है। निसर्गोपचार में इसे आरोग्य मूलक शिथिलता या क्यूरेटिव रिलैक्सेशन कहते हैं। रोगी और निरोगी दोनों अवस्थाओं में विश्राम की महत्ता होते हुये भी यह जानना आवश्यक है कि विश्राम और आलस्य दोनों एक नहीं हैं। वास्तव में परिश्रम के उपरांत आराम करके परिश्रम में व्यय की गई ऊर्जा को पुनः प्राप्त करना ही विश्राम कहलाता है। परंतु जो आराम परिश्रम के बाद नहीं किया जाता वह मन की निष्क्रिय अवस्था को बढ़ाता है। यही आलस्य है। आलस्य शरीर व मन को निष्क्रिय करता है। जबकि विश्राम शरीर व मन को कार्य करने हेतु फुर्ती और नई शक्ति प्रदान करता है।

4-4-1 foJke dh vko';drk

परिश्रमी के लिए विश्राम उतना ही आवश्यक है जितना कि भूखे के लिए भोजन। यदि कोई मनुष्य निरंतर अबाध गति से परिश्रम करता रहे, तो कुछ ही घंटों में अत्यंत थकान का शिकार हो जाएगा तथा उसकी कार्य करने की गति शिथिल होती चली जाएगी, और एक स्थिति ऐसी आएगी कि वह कार्य करने में समर्थ ना रहे। परंतु उचित समय पर कुछ समय का विश्राम उसमें शक्ति संचय करके दुगने उत्साह और गति से कार्य संपादन का सामर्थ्य देता है। अगर हम ध्यान से अपने चारों तरफ देखें तो पाएंगे जीवधारी,पशु– पक्षी, मनुष्य को तो विश्राम आवश्यक है साथ ही साथ कल पुर्जों से चलने वाले यंत्रों जैसे इंजन इत्यादि को भी थोड़े–थोड़े अंतराल पर विश्राम देना आवश्यक है।

विश्राम के समय मनुष्य के मस्तिष्क और शरीर के सारे अवयव एवं इंद्रियां शिथिल हो जाती हैं। फलतः शरीर एवं मस्तिष्क में पुनः बल और ताजगी का अनुभव होता है। परिश्रम में व्यय जीवन शक्ति को पुनः अर्जित करने के लिए ही विश्राम आवश्यक है। हम जितने अधिक क्रियाशील होंगे उतना ही विश्राम पर भी ध्यान देना चाहिए। विश्राम तो एक औषधि है जो थकान को नष्ट करके शक्ति का संचार करती है। जीवन धारण के लिए जितनी आवश्यकता भोजन वायु व जल की है, एक परिश्रमी के लिए विश्राम की आवश्यकता इससे कम नहीं है। क्योंकि परिश्रम को धारण करने के साथ–साथ परिश्रमी के संरक्षण की भी आवश्यकता है।

यूरोपीय देशों में विकास की स्थिति भारत से अच्छी होने का कारण भी कहीं ना कहीं पर परिश्रम और विश्राम में एक अद्‌भुत संतुलन ही है। यूरोप वासी अपने टाइम टेबल का कड़ाई से पालन करते हैं। वे 8 घंटे परिश्रम, 8 घंटे विश्राम तथा बचे 8 घंटे को अपनी जिंदगी से संबंधित अन्य कार्यों में व्यतीत करते हैं। विकास की अंधी दौड़ में ज्यादा प्राप्ति के लिए लगातार 8 घंटे से अधिक परिश्रम नहीं करते तथा स्वस्थ एवं सक्रिय रहते हैं।

4-4-2 foJke }kjk jksxksa ij fu;a=.k

आज के तथाकथित सभ्य समाज में रोगियों की संख्या बहुत घट सकती है, यदि विश्राम के महत्व व तरीके को जन सामान्य में व्यापक प्रचार कर दिया जाए। हम सब जानते हैं तथा विश्व की सर्वोच्च स्वास्थ्य संस्था विश्व स्वास्थ्य संगठन भी बताता है कि 90% से अधिक व्याधियां मनो– शारीरिक होती है। अर्थात् इनकी उत्पत्ति मन के स्तर पर होती है क्योंकि मानसिक रूप से हम अहंकार, असुरक्षा, तनाव, चिंता, स्नायु दुर्बलता आदि से ग्रसित रहते हैं। यदि परिश्रम एवं विश्राम का रहस्य समझाया और इसको व्यापक किया जा सके तो हम अनेक रोगों जैसे अनिद्रा, रक्तचाप, मधुमेह, नपुंसकता, उन्माद तथा अवसाद आदि से बच सकते हैं, जो ज्यादातर उपरोक्त मानसिक कारणों से उत्पन्न होते हैं।

जिस प्रकार परिश्रम के उपरांत विश्राम आवश्यक है, उसी प्रकार कई दिनों तक परिश्रम के उपरांत एक दीर्घ विश्राम आवश्यक है। इसी तथ्य को समझकर सारी दुनिया सप्ताह में उपरांत 1 दिन का अवकाश दीर्घ विश्राम हेतु प्रदान करती है। अब तो ज्यादातर स्थानों पर इसकी आवश्यकता को समझ कर इस समय को 2 दिन का किया जा चुका है।

यह देखा गया कि शारीरिक श्रम करने वालों की अपेक्षा मानसिक श्रम करने वालों की औसत आयु अधिक होती है। जिसका कारण विश्राम के महत्व की विश्रामकारी गतिविधियों को अपनाना ही है। श्रम करते समय अपनी शारीरिक स्थिति को ध्यान में रखकर भी अतिरिक्त थकान से बचा जा सकता है। जैसे – खड़े होने में दोनों पैरों पर बराबर भार देना, बिस्तर पर लेटकर विचार ना करना, सिर झुकाकर ना सोचना, चलते समय गर्दन को झुका कर नहीं चलना आदि से बच कर अपनी थकान को कम कर श्रमकारी शक्ति को अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है।

4-4-3 foJke }kjk jksx mipkj

शरीर रोग ग्रस्त होने पर स्वभावतः विश्राम चाहता है और विश्राम से अधिक से अधिक जीवनी शक्ति का संचय करना चाहता है। जिससे वह रोग का मुकाबला कर सके। तीव्र रोगों की अपेक्षा जटिल एवं पुराने रोगों में विश्राम की आवश्यकता अधिक होती है।

रोगों से मुक्ति पाने के लिए यह आवश्यक है कि रोगी का आंतरिक व बाह्य दोनों शांत हो तथा उसे पूर्ण विश्राम प्राप्त हो। अकेली यही क्रिया अनेकों रोगों को नष्ट करने की ताकत रखती है तथा अन्य सभी रोगों के उपचार में सहायक सिद्ध होती है। जो रोगी विश्राम करने का तरीका नहीं जानते उनका रोग ज्यादा समय तक परेशान करता है। चिंतित, भय से पीड़ित, क्रुद्ध और घबराए हुए रोगी अपने रोगों से जल्दी छुटकारा नहीं पाते।

जो निरोगी लोग उचित विश्राम का अभ्यास नहीं करते प्रकृति उनको बीमार करके आराम करवाने का प्रयत्न करती है, यह प्राकृतिक नियम है। डॉक्टर विलियम वॉल्टर ने लिखा है– कि मेरे वार्ड में रहने वाले रोगी जो बरामदे में सोते हैं, उनको उसी विश्राम की अवस्था में रखकर मैं उनको विश्राम से ही रोगमुक्त करता हूँ।

एक अन्य चिकित्सक डॉक्टर हार्ड का कहना है– कि बिस्तर पर, विशेषकर खुले मैदान के स्वच्छ वातावरण में पड़े रहकर केवल आराम करने से रोग मुक्ति का कारण यह है कि विश्राम ना करने की दशा में हमारे शरीर का रक्त गुरुत्वाकर्षण के कारण हृदय के अत्यधिक चेष्ट संकुचन एवम् प्रसारण से संचालित होता है। परंतु जब हम विश्राम करते हैं तो हमारा शरीर भूमि के गुरुत्वाकर्षण से क्षैतिज (Horizontal) होने के कारण अति सूक्ष्म चेष्ठा से रक्त संचरण कर पाता है, तथा अंगों को आराम और समुचित रक्त आपूर्ति मिलती है तथा बची हुई जीवनी शक्ति रोग निवारण का कार्य करती है।

जगत की प्रत्येक बीमारी का कारण कहीं ना कहीं शरीर या शरीर के अंगों की थकान ही है। थकान में सबसे पहले तंत्रिका तंत्र शिथिल होता है फिर उससे नियंत्रित होने वाले अवयव। थकान से तंत्रिका तंत्र तथा अंगों की लय बिगड़ने के कारण विजातीय द्रव्यों का संचय होता है। नाड़ी संस्थान तथा अवयवों में इससे सामंजस्य और विकृत होता है, अंग कड़ा एवं विकृत होने लगता है, सूजन, दर्द तथा तापमान बढ़ जाता है और रोग प्रगाढ़ होता चला जाता है। अब इसका उपचार विजातीय द्रव्यों को निकालकर तथा उचित

fVIi.kh

विश्राम द्वारा किया जाता है। इस प्रकार केवल विश्राम या अन्य उपायों के साथ–साथ विश्राम का प्रयोग करके बीमारी का समापन किया जा सकता है।

4-4-4 foJke dh lk/kkj.k çfof/k;k

विश्राम के अनेकों तरीके हैं। व्यक्ति को अपनी रूचि के अनुसार तरीकों का चयन करना चाहिए। कुछ प्रविधियां निम्नलिखित हैं:

1) परिश्रम के उपरांत घर आने पर किसी उचित स्थान (तखत या चटाई) पर पीठ के बल लेटकर शरीर के सभी अंगों को बिल्कुल शिथिल छोड़कर मस्तिष्क को शिथिल बनाकर मन को शांत करते हैं, तथा अपना मानसिक केंद्रण श्वास– प्रश्वास पर रखते हुए 10–15 मिनट इसी प्रकार निश्चेष्ट विश्राम करते हैं। लेकिन इसमें सोते नहीं हैं।

2) परिश्रम के बाद कोई पसंदीदा खेल जिसमें रुचि हो खेलें या धीरे–धीरे टहलें, रुचिकर साहित्य पढ़ें या चित्रकारी, संगीत सुनना या वाद्य यंत्र बजाना इत्यादि में से रुचि अनुकूल कृत्य करें।

3) लगातार परिश्रम करने वालों को एक लंबा अवकाश लेकर भ्रमण या तीर्थाटन पर अवश्य जाना चाहिए।

4) साप्ताहिक अवकाश के समय परिवार सहित घूमने जाएं व भोजन भी बाहर ही करें।

5) डॉक्टर जयकोबसन – शारीरिक मांसपेशियों को क्रमिक शिथिलन करके स्थिर करने की क्रिया बताते हैं। जो कि हमारे शवासन का ही आंशिक रूप है इसे उन्होंने साधारण शिथिलन कहा है।

   उन्होंने दूसरा तरीका जिसमें किसी एक अंग विशेष को सक्रिय रखकर बाकी शरीर के अन्य अवयवों को शिथिल करना बताया है इसको उन्होंने "स्थानिक शिथिलन" नाम दिया है। जैसे रीढ़ सीधी रखकर बैठना।

6) शरीर की थकी हुए तंत्रिकाओं को शिथिल कर के उन्हें आराम देने की विधि डॉक्टर डेविड थिंक ने बताई है। उन्होंने लेटकर गर्दन हाथों व पैरों के नीचे छोटे मुलायम तकिया रखकर शरीर के एक– एक अंग को क्रम से शिथिल करना बताया है। इनकी प्रक्रिया में अंगों की चेतना कम होने एवं भारी होने की अनुभूत को विशेष ध्यान में रखा गया है। कुछ समय इस में रुकने के बाद उन अंगों को पुनः सक्रिय बनाया जाता है। अभ्यास परिपक्व हो जाने पर इसका अभ्यास कहीं भी और कभी भी कर सकते हैं।

7) योगिक शिथिलीकरण: योगिक शिथिलीकरण हेतु योग विज्ञान में अनेकों विधियों को बताया गया है। इसमें कुछ विधियां जैसे शवासन, मकरासन, योग– निद्रा बहुत उपयोगी एवम् प्रचलित हैं। जन सामान्य इनका उपयोग करते हैं। योग विज्ञान में इनको अलग से सिखाया जाता है इसका विस्तार से अध्ययन योग प्रश्न पत्र में बताया गया है।

4-5 ixk<+ funk

यदि हम केवल काम करते रहें और नींद ना लें तो एक समय ऐसा आएगा जब हमारा शरीर और मस्तिष्क दोनों काम करने के योग्य नहीं रहेंगे, तब हम या तो पागल हो जाएंगे या मृत्यु को प्राप्त हो जाएंगे। निद्रा के गुणों के विषय में आयुर्वेद का कथन हैः–

fuæk rr lfork dky /kkr; lkE;erfUærkeA
ifj"V o.kZ cykRlkge cfgnhfIre djksfr fgAA

अर्थात् दिन में व्यर्थ शयन न करके जो रात्रि के दूसरे प्रहर में निद्रा आरंभ कर रात्रि के चौथे पहर में 4:00 बजे तक उठ जाते हैं, उनके शरीर की सब धातुएं साम्यावस्था में रहती हैं, और उन्हें किसी प्रकार का आलस नहीं रहता है। उनका शरीर पुष्ट होता है, सौंदर्य निखरता है, उत्साह बढ़ता है, और उनकी जठराग्नि प्रदीप्त होकर खूब भूख लगती है।

इसी संबंध में एक पाश्चात्य वैज्ञानिक का निम्नलिखित मत है। वह कहता है :–

"They can do most who sleep best"

अर्थात् वे बहुत कुछ कर सकते हैं, जो खूब अच्छी तरह से सोना जानते हैं।

प्रगाढ़ निद्रा वह नींद है जिसमें एक जीवित प्राणी शव के समान निश्चेष्ट होकर संपूर्ण रूप से विश्राम करता है। एक नवजात स्वस्थ शिशु की नींद, प्रगाढ़ नींद कही जा सकती है। सपनों से भरी नींद को गाढ़ी नींद नहीं माना जाता। गाढ़ी नींद में शरीर के अंग प्रत्यंग को आराम मिलता है और व्यय हुई शक्ति पुनः प्राप्त होती है। इस समय श्वास की गति धीमी हो जाती है और नाड़ियाँ धीरे–धीरे चलने लगती हैं और मस्तिष्क में रक्त की मात्रा कम हो जाती है। गाढ़ी नींद में सोने वाले की स्पर्श एवं श्रवण शक्तियों का लोप हो जाता है। नींद खुलने पर ऐसे व्यक्ति की सर्वप्रथम श्रवण शक्ति लौटती है तत्पश्चात् स्पर्श शक्ति, आंखें सबसे बाद में खुलती हैं। जिसको अपने मन अथवा चित्त पर नियंत्रण होता है वह कहीं भी, किसी व्यवस्था में, एकाग्र चित्त होकर गाढ़ी नींद ले सकता है। जैसे वृद्धावस्था में महात्मा गांधी जी जब चाहते थे आंखें बंद करके तथा अपने मन को शांत करके गाढ़ी और मीठी नींद ले लेते थे। स्मरण रखना चाहिए कि 3 घंटे की गाढ़ी नींद 8 घंटे की हल्की व सपने वाली नींद से कहीं अधिक उपयोगी है। नेपोलियन बोनापार्ट दिन–रात में केवल 3 घंटे सोया करता था और फिर भी आजीवन निरोगी रहा। इसका रहस्य यही है कि जब वह बिस्तर पर जाता तो केवल सोने के लिए ही जाता था, और क्षण मात्र में ही उसे गाढ़ी नींद आ जाती थी।

4-5-1 çxk<+ funk çkIr djus ds mik;

1) अच्छी नींद लाने के लिए प्रतिदिन निश्चित समय पर कुछ व्यायाम करते रहना चाहिए।

2) परिश्रमी मनुष्य को सदैव गहरी नींद आती है, पर आलसी व्यक्ति बिस्तर पर पड़े– पड़े करवटें बदलते रहते हैं और उन्हें नींद नहीं आती है।

3) सोने जाने से पहले मस्तिष्क को विचारें और सांसारिक बातों से शून्य कर देना चाहिए। सदैव प्रसन्न रहने की आदत डालने से यह काम आसानी से हो सकता है।

4) सूर्यास्त के पहले ही रात का भोजन कर लेना चाहिए ताकि नींद आने तक पाचन का कार्य पूर्ण हो जाए। ऐसा नियम रखने से गाढ़ी नींद ना आने की शिकायत कभी नहीं होती। बिल्कुल खाली पेट तथा ज्यादा भरे पेट दोनों अवस्थाओं में नींद नहीं आती।

5) रात को गहरी नींद लाने के लिए मल– मूत्र से निवृत्त होकर शीतल जल से गुप्त इंद्रियों, हाथ– पैरों तथा चेहरे को धो कर ही बिस्तर पर जाना चाहिए।

6) सोने का स्थान स्वच्छ और हवादार होना चाहिए। बिस्तर भी साफ सुथरा होना चाहिए पर उसका अधिक मुलायम होना ठीक नहीं है। निर्जन स्थान और अंधेरे में सोने से नींद अच्छी आती है।

7) सोते समय मनुष्य किस स्थिति में सोता है, नींद पर इसका भी प्रभाव पड़ता है। वैसे तो जिस करवट अधिक सुख मिले उसी करवट सोने से नींद अच्छी आती है पर प्रायः पीठ के चित्त लेटने से गाढ़ी नींद नहीं आती और स्वप्न अधिक दिखाई देते हैं। छाती पर हाथों को रखकर उत्तान सोना तो बिल्कुल भी ठीक नहीं है। पीठ के बल सोने से शरीर की क्रियाएं ठीक–ठीक नहीं हो पाती रक्त का संचारण मंद गति से होने लगता है और शरीर साधारणतया कमजोर पड़ जाता है। पीठ के बल सोना पृष्ठ शूल, मिर्गी, नजला तथा कई अन्य प्रकार के रोगों को निमंत्रण देता है।

बाईं करवट सरल रेखा में लेटना सर्वोत्तम है। इससे श्वास नली सीधी रहती है और शरीर में प्राण वायु का संचार आराम से होता रहता है।

8) चारपाई पर लेट कर किसी व्यक्ति द्वारा अपने सिर के बालों पर धीरे–धीरे कंघी करने से नींद गहरी और जल्दी आती है। इंग्लैंड के प्रसिद्ध लॉर्ड रोजबरी को अनिद्रा की शिकायत थी, एक डॉक्टर ने उनका इसी विधि से इलाज किया और उन्हें गहरी नींद आने लगी।

9) सोते समय मन को एकाग्र करने से नींद जल्दी आती है और प्रगाढ़ होती है। इसके लिए किसी से किस्से कहानी कहला कर सुनना, कोई किताब पढ़ना जो जरा कठिन विषय की हो, गिनती गिनना या मीठे स्वर वाला संगीत सुनना ठीक रहता है। छोटे बच्चों को अपनी मां की लोरी पर तुरंत मीठी नींद आ जाती है उसका यही रहस्य है।

10) सोने से पहले कमरे के बरामदे या आंगन में उस वक्त तक टहलते रहना चाहिए जब तक कि थकावट महसूस ना होने लगे। उस वक्त मस्तिष्क में किसी प्रकार के विचारों को स्थान नहीं देना चाहिए। थकावट का अहसास होते ही बिस्तर पर लेट कर सो जाना चाहिए शीघ्र ही गहरी नींद आ जाएगी।

11) बिस्तर पर लेट कर और सफलतापूर्वक गहरी सांस लेकर उसे धीरे–धीरे बाहर निकाल देना चाहिए। इस प्रकार कई बार करने से व्यक्ति गहरी नींद में शीघ्र सो जाता है। अथवा सोते समय सोहम मंत्र का जब कुछ देर तक करना चाहिए इससे शीघ्र ही नींद आ जाती है। श्वास को अंदर ले जाते समय

'सो' और श्वास बाहर निकालते समय 'हम' मानसिक उच्चारण करना चाहिए।

12) वृद्ध व्यक्तियों को 24 घंटे में केवल एक बार भोजन करने से उन्हें अच्छी और गहरी नींद आ जाती है।

13) सोने से पूर्व दोनों हाथों, पैरों को 5–10 मिनट तक सहने योग्य उष्ण जल में डालकर रखा जाए तो मस्तिष्क में एकत्रित अतिरिक्त रक्त पांव की ओर आ जाएगा, इस तरह से मस्तिष्क शीतल हो जाएगा और पांव गर्म हो जाएंगे जिससे अच्छी नींद स्वाभाविक रूप से आ जाती है।

14) ठंडे पानी से स्नान करने के बाद गर्म कपड़े पहनने या लपेटकर सोने से भी प्रगाढ़ निद्रा आती है। मगर साधारण दशा में बिना कपड़ों के सोना सर्वोत्तम है। यदि यह ना हो सके तो सोते समय अत्यंत अल्प और हल्के कपड़े पहनना चाहिए।

15) मस्तिष्क की ओर रक्त का प्रवाह अधिक रहने से अच्छी नींद नहीं आती इसलिए सोते समय सिर के नीचे तकिया रखने का प्रचलन है। सोते समय सिर ऊँचा और बाकी शरीर को नीचा रखना चाहिए।

16) चारपाई के पैरों के नीचे तीन–तीन वर्ग इंच रबर के टुकड़े रखने से नींद अच्छी आती है।

17) विभिन्न धातुओं के तारों में विभिन्न रंग की कांच के मानकों को पिरोकर सोते समय पहनने से उसमें विद्युत प्रवाह उत्पन्न होकर नींद अच्छी आती है। तीन–चार लड़ियों की माला धारण करनी चाहिए।

18) क्रोध, घृणा, प्रेम, चिंता, अधिक भोजन, अधिक परिश्रम, रोग, भय, चाय, तंबाकू, कॉफी, मसाला, शोरगुल, तथा सोने के कमरे में रोशनी ये अच्छी नींद के शत्रु हैं इनसे बचना चाहिए।

19) नींद लाने के लिए किसी औषधि का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

4-5-2 Ikus dh vof/k

साधारणतः प्रत्येक मनुष्य के लिए 6 से 8 घंटे की अटूट निद्रा पर्याप्त है। किंतु वास्तव में जिस प्रकार प्रत्येक प्राणी के लिए भोजन की मात्रा निर्धारित नहीं की जा सकती उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति के लिए नींद का समय निर्धारित करना भी आसान काम नहीं है। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि एक मनुष्य अपनी नींद कुछ ही घंटों में पूरी कर लेता है जबकि दूसरे की नींद जल्दी नहीं पूरी होती। एक विद्वान का कहना है कि सूर्यास्त होने से सूर्योदय तक सोने के सिद्धांत को ही प्राकृतिक समझना चाहिए। इस नियम का पालन करने से स्वास्थ्य और सौंदर्य में आश्चर्यजनक परिवर्तन होता है।

एक नवजात शिशु प्राकृतिक रूप से प्रौढ़ व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक सोता है, क्योंकि उसकी शारीरिक वृद्धि के लिए जीवनी शक्ति को शांत रूप से कार्य करने की अधिक आवश्यकता होती है। वृद्ध व्यक्तियों, रोगियों, प्रसूताओं तथा दुर्बल व्यक्तियों को अन्य सामान्य व्यक्तियों के अपेक्षा अधिक नींद की आवश्यकता होती है। स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा अधिक समय सोना चाहिए। गर्भिणी स्त्रियों को भी अधिक सोना चाहिए।

4-5-3 lksus dk LFkku ,oa fcLrj

सोने के स्थान में हमारी आयु का लगभग 2/3 भाग व्यतीत होता है। इसलिए उसका स्वच्छ तथा हवादार होना अत्यंत आवश्यक है। यदि वह स्थान कोई कमरा हो तो उसको काफी बड़ा होना चाहिए तथा उसमें शुद्ध वायु एवं प्रकाश आने के लिए खिड़कियां एवं रोशनदान अवश्य होने चाहिए। सोने का कमरा सामान से भरा नहीं होना चाहिए। सोते समय कमरे के दरवाजों और खिड़कियों को बंद करके सोना भारी भूल है, ऐसा करने से उस कमरे में प्राण वायु की कमी तथा प्राणघातक वायु अधिकता हो जाती है, जिससे सवेरे नींद से उठने पर मनुष्य अपने को जीवनी शक्ति से भरपूर पाने के बजाय उत्साह हीन अनुभव करता है।

सोते समय मनुष्य का मस्तक किस दिशा की ओर होना चाहिए इसके लिए भी शास्त्रीय विधान है। मार्कंडेय स्मृति में उल्लेख है कि रात्रि को पूर्व तथा दक्षिण की ओर मस्तक करके सोने से धन तथा आयु की वृद्धि होती है। पश्चिम की ओर मस्तक करके सोने से व्यक्ति चिंता ग्रसित होता है तथा उत्तर दिशा की तरफ सिर करके सोने से प्राण तत्व का क्षय होता है। इसलिए दक्षिण पैर और उत्तर सिर करके कभी नहीं सोना चाहिए।

कोमल बिस्तर जैसे अत्यधिक मुलायम गद्दे तथा तकियों पर सोना स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक है विशेषकर शिशुओं और बालकों के लिए जिनका शरीर बढ़ रहा होता है। जिनकी नसों–नाड़ियों और मांसपेशियों का संगठन हो रहा होता है, जिनके सीने का प्रसार अभी पूरा नहीं हुआ है तथा जिनका मेरुदंड सुदृढ़ और पूर्ण विकसित नहीं हुआ है। समतल और कड़े बिस्तर जैसे– चौकी, भूमि, आदि पर सोने से मेरुदंड सीधा रहता है और पेट तथा छाती के अंगों को समुचित रूप से कार्य करने का अवसर मिलता है। साथ ही श्वास शुद्ध और गंभीर चलती है।

4-5-4 lksus dk le;

प्रकृति तो हमें सूर्योदय से सूर्यास्त तक काम करने तथा सूर्यास्त के सूर्योदय तक सोने का ही निर्देश देती है परंतु व्यावहारिक दृष्टि से शाम को 9:00 बजे सो जाना और सवेरे 4:00 बजे उठ जाना सर्वोत्तम है। इस संबंध में अंग्रेजी की एक कहावत है – **"Early to bed and early to rise, makes a man healthy wealthy and wise"** जो बिल्कुल ठीक है। गर्मियों के दिनों में 15 से 20 मिनट की झपकी ले लेना आवश्यक होता है पर उससे अधिक सोना हानिकारक क्योंकि दिन में सोना शरीर में शिथिलता उत्पन्न करता है, पाचन क्रिया को दूषित करता है, तथा शरीर को रोगी बनाता है। मध्य रात्रि अर्थात् रात के 12:00 बजे के पूर्व गहरी नींद ले लेना बहुत लाभदायक होता है क्योंकि विकारों को पैदा करने वाला, स्वप्न जंजाल उत्पन्न करने वाला तथा चित्त में क्षोभ उत्पन्न करने वाला विशेषकर मध्य रात्रि के बाद का ही समय होता है। शास्त्रों में जो ब्रह्म मुहूर्त में उठने का आदेश है उसका यही रहस्य है। प्रातः जल्दी उठने से आयु में वृद्धि होती है, दृष्टि तीव्र होती है, बुद्धि विकसित होती है तथा धन, यश और अच्छे स्वास्थ्य एवं सौंदर्य की प्राप्ति होती है।

4-5-5 uhn vkj Lolu

उत्तम या मध्यम स्वप्नों के फलों का विचार ना करके यहाँ पर हम केवल स्वास्थ्य से स्वप्नों का क्या संबंध है इस पर चिंतन करेंगे। यह अक्सर देखा जाता है कि अधिक सपने उन्हीं लोगों को दिखाई पड़ते हैं जिन्हें गहरी नींद नहीं आती, इससे पता चलता है कि अधिक सपने देखना रोग की निशानी है। इसी प्रकार बार–बार एक ही दृश्य को स्वप्न में देखना, शरीर में किसी गुप्त रोग की उपस्थिति का सूचक है। डॉक्टरों ने स्वप्न के विषय में अन्वेषण करके पता लगाया है कि भिन्न–भिन्न प्रकार के रोगों से पीड़ित व्यक्ति प्रायः निश्चित प्रकार के स्वप्न ही देखते हैं। उदाहरणार्थ यकृत के रोगी को हवा में उड़ने का स्वप्न देखना स्वाभाविक है, और हृदय के रोगी को स्वप्न में अक्सर भीषण एवं भयानक दृश्य दिखाई देते हैं। निश्चित रूप से यह कहना तो मुश्किल है कि मनुष्य के सभी स्वप्न रोग सूचक होते हैं, किंतु लगभग एक प्रकार का दृश्य जो बार–बार दिखाई पड़े तो यह उचित होगा कि ऐसे स्वप्न की उपेक्षा न करके स्वास्थ्य की परीक्षा करा ली जाए।

हम किस प्रकार का भोजन करते हैं इस बातों का भी प्रभाव हमारे स्वपनों पर पड़ता है। मांस– मछली खाने वाले व्यक्ति अक्सर रेगिस्तान आदि में प्यास से तड़पने का दृश्य स्वप्न में देखते हैं। इसी प्रकार अत्यधिक भोजन करने वालों को अक्सर बुरे सपने दिखाई देते हैं। यह भी देखा गया है कि परिश्रमी व्यक्ति प्रायः कम स्वप्न देखते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि शारीरिक परिश्रम या व्यायाम स्वप्नों से मुक्त होने का एक उत्तम उपाय है।

4-5-6 fuæk rFkk jkx mipkj

विश्राम या शिथिलीकरण की भांति निद्रा भी आकाश तत्व चिकित्सा के अंतर्गत रोग निवारण का एक साधन है। रोगों में प्रायः यह कोशिश की जाती है कि किसी प्रकार से रोगी को नींद आ जाए, और जिस रोगी को अच्छी नींद आने लगती है उसका रोग बहुत जल्द ठीक हो जाता है।

डॉक्टर मेंनेन्दर का कथन है की निद्रा में अनेक आरोग्यदायक गुण हैं। लगभग सभी रोगों में रोगियों की नींद की प्राकृतिक चिकित्सा करनी चाहिए।

नींद से शरीर का मल निकलता है, अनावश्यक गर्मी दूर होती है तथा शरीर पुष्ट होता है। निद्रावस्था में श्वास जागृत अवस्था की अपेक्षा अधिक शांत और गहरी होती है जिसकी वजह से फेफड़ों के द्वारा मल और विष निष्कासन की क्रिया तीव्र होती है। रोगावस्था में रोग का कारण विष (विजातीय द्रव्य) सोते समय बहुत कुछ निकल जाता है। रोगी के शरीर में जितना अधिक विष होगा उतनी ही अधिक नींद उसके लिए आवश्यक होगी। जहाँ शरीर के विषाक्त होने पर 8 से 10 घंटे सोना आवश्यक होता है वहीं साधारण स्थिति में स्वस्थ व्यक्तियों के लिए 5 घंटे ही सोना पर्याप्त है।

निद्रा अंगों की क्षति पूर्ति करती है तथा वह नाड़ियों की कार्यविधि में भी सुधार लाती है। निद्रा आहार से अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि रोगी को आहार कि बिल्कुल आवश्यकता नहीं होती पर नींद उसके लिए केवल आवश्यक ही नहीं अपितु उसके लिए औषधि है।

विषाक्त शरीर वाले अधिक समय तक सोना नहीं टाल सकते पर जिनका शरीर स्वच्छ और स्वस्थ है वे कई दिनों तक बिना सोए रह सकते हैं। इस तरह निद्रा विषाक्त शरीर वालों के लिए मल निष्कासन का एक प्रभावशाली साधन है।

bdkbZ xr iz'u&4-3

सही / गलत बताइए –

क) जो निरोगी लोग उचित विश्राम का अभ्यास नहीं करते प्रकृति उनको बीमार करके आराम करवाने का प्रयत्न करती है। ( )

ख) वे बहुत कुछ कर सकते हैं, जो खूब अच्छी तरह से सोना जानते हैं। ( )

ग) दायीं करवट सरल रेखा में लेटना सर्वोत्तम है। ( )

4-6 izlUurk

यह सत्य है कि प्रसन्नता और अप्रसन्नता बहुत कुछ स्वयं पर निर्भर करती है। जब हमारे चिंतन में प्रसन्नता होती है तो हम प्रसन्न होते हैं, और जब हमारे चिंतन में कुंठा या चिंता होती है तो उस समय हम अप्रसन्न होते हैं। व्यक्ति जैसा अपने विषय में सोचता है, वह वैसा ही बन जाता है। प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपने विचारों का प्रतिरूप होता है। वह अपने को जैसा भी बनाना चाहता है वैसा जरूर बन जाता है। यह बात भी दृढ़ता से कही जा सकती है कि संसार में विषाद का कारण संसार की वस्तुओं में आसक्ति एवम् हमारी कभी न पूरी होने वाली अभिलाषाएं ही हैं।

हम दैवी शक्तियां चाहते हैं और तलाश में रहते हैं झूठे सांसारिक आनंद के। बस यहीं पर प्रसन्नता एवं सांसारिक आनंद दोनों को एक ही वस्तु समझने में हम भारी भूल करते हैं। ऐसा व्यक्ति जो संसार में प्रसन्नता चाहता है, उसे चाहिए कि वह सांसारिक वस्तुओं में अपना मन ना लगाएं, केवल अपने काम से काम रखें, यही अनासक्ति योग है। अपने को संसार से अलग रखकर मस्त रहना चाहिए, ठीक उसी प्रकार जैसे जल, कमल पत्र पर रहकर प्रसन्नता पूर्वक मस्ती से इधर–उधर घूमता है और सदैव आनंदित दिखता है।

4-6-1 çlUurk çkfIr ds lk/ku

प्रसन्नता प्राप्ति के विभिन्न साधन निम्न प्रकार हैं:

1½ f[kyf[kyk dj gluk

अंग्रेजी में एक कहावत है ''एक सेब रोज खाओ और डॉक्टर को दूर भगाओ' इसमें इंग्लैंड के ही एक दूसरे

प्रसिद्ध डॉक्टर ने इस प्रकार संशोधन किया ''एक बार रोज खिल–खिलाकर हंसो और बीमारी पास न आने दो''। इस चिकित्सक का यह कहना है कि बालकों को फुर्तीला और निरोग रखने के लिए उनका हंसते रहना आवश्यक है। यदि बालकों के शिक्षक, जिनसे उनका साथ बहुत रहता है, यदि क्रोधी मिजाज वाले होते हैं तो बालक अवश्य अस्वस्थ दिखाई देते है।

हंसने के विषय में एक यह भी प्रसिद्ध है 'हंसो और तंदुरूस्त हो जाओ'। हंसने से आदमी हृष्ट–पुष्ट हो जाता है, ऐसा भी देखा जाता है कि मोटा व्यक्ति अधिकतर हंसमुख होता है। इस कथन में अतिशयोक्ति भले ही हो पर यह सत्य है, कि खिलखिला कर हंसने से भूख दुगुनी हो जाती है। जो लोग हंसमुख होते हैं उन्हें कब्ज बहुत कम होता है, कारण हंसने से पेट की मांसपेशियां जागृत होकर कर्मशील हो जाती हैं इससे पाचक रस उचित मात्रा में उत्पन्न होने लगता है शरीर में खून का संचार भी तीव्र होता है।

हंसना एक प्रकार का सुख कर व्यायाम है। इस क्रिया से मुंह, गर्दन, छाती एवम उदर के बहुत से स्नायुओं को एक साथ भाग लेना पड़ता है, जिससे वह सफल, सुखद एवं क्रियाशील बनते हैं। मस्तिष्क की तंत्रिकाओं तथा मुंह और उदर की मांसपेशियों, नसों एवम नाड़ियों के लिए हंसना सबसे अच्छा अभ्यास है। हंसमुख व्यक्ति के गाल गोल, सुंदर और चमकीले होते हैं। चेहरा प्रसन्नतायुक्त रहता है। जिन्हें हंसने की आदत होती है, उनके फेफड़े के रोग कम होते हैं, क्योंकि हंसने से फेफड़ों की अच्छी कसरत होती है।

2½ eqLdjkuk

मुस्कुराना हास्य का छोटा स्वरूप है। मुस्कुराता हुआ चेहरा सभी को पसंद आता है। मुस्कान से स्वयं को प्रसन्नता प्राप्त होती है। साथ ही साथ उस मुस्कुराहट को देखने वालों का भी चित्त बिना प्रसन्न हुए नहीं रह पाता। बड़ी से बड़ी तकलीफ का सामना करना हो तो हंसते – मुस्कुराते उसका सामना करने की कोशिश करनी चाहिए। स्काउट्स को हर मुश्किल में मुस्कुराते रहने की शिक्षा इसी वजह से दी जाती है। रोगी को देखना हो तो उसके पास में मुस्कान के साथ जाना चाहिए और मुस्कुराते हुए ही उससे बात करनी चाहिए। आप उसका आधा कष्ट ऐसे ही दूर कर देंगे। रस्किन ने एक जगह लिखा है – मृदुल स्वभाव, ओष्ठों की हल्की मुस्कान और कुछ स्नेह भरे शब्द किसी को इतना सुख दे सकते हैं जिसे लाखों रूपयों पर भी खरीदा नहीं जा सकता। इससे अपना कुछ खर्च नहीं होता पर इससे दूसरों की जीवन में आनंद की ज्योति जगमगाने लगती है। ऐसा सौदा दुर्लभ है।

3½ xquxqukuk

प्रसन्नता का तीसरा साधन गुनगुनाना है। मुंह से सीटी बजाना, अथवा किसी गीत की प्रिय कड़ी को निम्न स्वर में धीमे–धीमे मौज से बार–बार दोहराना गुनगुनाना कहलाता है। इससे हृदय को काफी शांति प्राप्त होती है।

fVIi.kh

4½ xkuk

गायन प्रसन्नता का माना हुआ साधन है। पर इसका यह मतलब नहीं कि प्रसन्नता प्राप्ति के लिए सब लोग अपना काम छोड़कर गायक बन जाए, बल्कि जो भी अच्छा गाना आता हो उसी को कभी–कभी मन से मस्त होकर गाने से प्रसन्नता की यथेष्ठ उपलब्धि होती है।

5½ euksjatu

हंसी–मजाक तथा आमोद–प्रमोद सभी मनोरंजन के साधन हैं। जीवन में मनोरंजन का अभाव मनुष्य की शारीरिक और मानसिक शक्तियों को कुंठित कर देता है। इसलिए अपने अवकाश के कुछ क्षण हमें मनोरंजन करने वाले कार्यों में अवश्य लगाने चाहिए। काम चाहे कितना ही प्रिय क्यों ना हो उससे लगातार करते रहने पर उससे थकान आना स्वाभाविक है। मन बहलाने वाला कोई अन्य काम उस थकान या तनाव को दूर करने की पूरी क्षमता रखता है। नया उत्साह लाता है और नए विचारों के लिए मार्ग प्रस्तुत करता है।

euksjatu ls jksxksipkj& स्वस्थ व्यक्तियों की अपेक्षा रोगियों को मनोरंजन के साधनों की ज्यादा आवश्यकता होती है। यदि ये साधन उन्हें प्राप्त न कराए जाए तो सारे दिन वे केवल अपनी बीमारियों के संबंध में ही सोच कर घुलते और घबराते रहेंगे, जिससे वे स्वस्थ होने के बजाय परिस्थिति को और भी गंभीर बना लेंगे। उत्तम चिकित्सक इस बात की हमेशा कोशिश करता है कि रोगी अपनी बीमारी के संबंध में ज्यादा सोच–विचार ना करें, लेकिन यह तभी हो सकता है जब उसका मन मनोरंजन के साधनों द्वारा बहुलता रहे। बीमारी की हालत में रोगियों के लिए सांत्वना, आशा, मनोरंजन आदि की सामग्री जुटा कर हम उनके रोगों के कष्ट बहुत कुछ कम कर सकते हैं।

6½ lnkpkj

सत्पुरुषों के आचरण को सदाचार कहा जाता है। तन और मन दोनों की पवित्रता सदाचार का दूसरा नाम है। सदाचार विश्वात्मा के उन प्रधान धर्मों में से एक है जिसके समुचित अनुसरण में मानव जीवन अबाध गति से प्रवाहित होता रहता है। श्रीमद्भगवद्गीता में सभी मनुष्यों के लिए धर्म के 30 लक्षण लिखे गए हैं। उन 30 लक्षणों वाले धर्म को पालन करने का नाम ही सदाचार है। सदाचार, सदविचार का व्यवहारिक स्वरूप है। सदविचार का बीजारोपण मानसिक शुचिता के क्षेत्र में होता है, और वह क्षेत्र सदाचार तैयार करता है। सदाचार आत्मा की शाश्वत शांति का सच्चा मार्ग है, संसार में मानव समाज में प्रतिष्ठा पाने का उपाय है, तथा एक शब्द द्वारा विश्व को प्रभावित कर देने वाली शक्ति है। भगवान कृष्ण की मुरली की धुन पर सारा ब्रजमंडल खिल उठता था। यह सदाचार की ही महिमा थी। सदाचार प्रत्येक जाति, प्रत्येक समाज, प्रत्येक राष्ट्र तथा प्रत्येक व्यक्ति के शाश्वत सुख एवं शांति का मूल है।

सदाचार की भाषा मौन होती है। वह नाद करता हुआ भी शांत और मूक दृष्टिगोचर होता है। एक सदाचारी सारे विश्व को अपने साथ एकत्रित कर सकता है। वह सच्चे परमानंद का रसास्वादन करता है। मनुष्य के लिए सदाचार ही उच्च आदर्श होना चाहिए। कारण सदाचार से मनुष्य देवत्व को प्राप्त हो जाता है और

आचरण से गिरा हुआ प्राणी संसार में सबसे अधिक पतित गिना जाता है। कहा भी गया है :–

‘आचारेण हतोहतः‘‘। तथा

"If wealth is lost nothing is lost, if health is lost something is lost, but if character is lost everything is lost-"

अर्थात् यदि धन गया तो कुछ भी नहीं गया। यदि स्वास्थ्य गया तो कुछ गया। पर यदि आचरण चला गया तो सभी कुछ चला गया।

एक निर्धन सदाचारी चक्रवर्ती सम्राट से कहीं बढ़कर है। एक अशिक्षित सदाचारी अशिक्षित होता हुआ भी दिग्गज विद्वानों और पंडितों से कहीं बढ़ कर है। सदाचारी की आत्मा विश्व और ब्रह्मांड के साथ आत्मसात हो जाती है। उसमें निरंतर विश्व बंधुत्व और बसुधैव कुटुंबकम के शब्द गुंजायमान होते रहते हैं। उसका सुख–दुख, शोक और शांति विश्व के दुख–सुख, शोक और शांति के साथ होती है।

महर्षि चरक ने सदाचार के सिद्धांतों पर विशेष रूप से विचार किया है। मनुष्य की शारीरिक उन्नति का स्रोत इन्हीं तत्वों में निहित है। समस्त प्राचीन भारत में आचार के नियमों की सहायता से प्रचार होता था और सभी वर्गों के लोग धार्मिक उत्साह के साथ उसका पूर्णतया पालन करते थे। पुरोहित घर–घर में उनका प्रचार करते थे और न्यायाधीश सामाजिक या स्वास्थ्य संबंधी साधारण नियमों को भंग करने वाले अपराधियों को दंड देता था। क्योंकि ऐसा कृत्य अधर्म था, जिसके लिए इतना कठोर दंड होता था कि आधुनिक समय में हमारे लिए यह बात असंगत सी प्रतीत होती है कि किसी सामान्य जगह पर थूकने या लघुशंका करने सरीखे मामूली अपराध को इतना महत्वपूर्ण माना जाए। धर्म और सदाचार के इस कठिन अनुशासन का ही अद्भुत परिणाम था कि हमारा प्राचीन भारत संसार भर में पवित्र राष्ट्र था और सभ्यता में सभी देशों का शिरोमणि था।

7½ ekufld vuq'kklu ,o lrqyu

हम सब जानते हैं कि मन की शक्ति अपार होती है। यही मन की शक्ति मनुष्य के बुरे और अच्छे स्वास्थ्य का भी कारण होती है। अतः रोग की अवस्था में रोगी की मनो भावना जैसी होती है उसी के अनुसार उसका रोग दूर होता है या और गंभीर हो जाता है। मृत्यु भी तभी आती है जब मनुष्य का मन उसके स्वागत के लिए तैयार होता है। मृत्यु, रोग या उत्तम स्वास्थ्य किसी भी चीज की इच्छा करने पर उसे प्राप्त करने का उपयुक्त वातावरण अपने आप उत्पन्न हो जाता है। यह एक प्राकृतिक नियम है। मन एक गुप्त शक्ति का केंद्र है जिसका अधिष्ठान मस्तिष्क है। मनुष्य की उन्नति–अवनति, सुख–दुख, मंगल–अमंगल सब का कारण मन ही है।

बुरी भावनाओं का असर जल्दी अथवा देर से हमारे शरीर पर निश्चय ही पड़ता है, और शारीरिक अथवा मानसिक व्याधियों को उत्पन्न करता है। इसी प्रकार से शारीरिक रोगों का प्रभाव भी हमारे मन और मस्तिष्क पर बुरी तरह पड़ता है। रस्सी को सांप समझ कर आतंकित होने वाले और बीमार पड़ने वाले कितने ही उदाहरण प्रायः मिल जाते हैं। इसी प्रकार भूत–प्रेत के मिथ्या डर से वशीभूत होकर कितने ही व्यक्ति रोग

fVIi.kh

और मृत्यु को प्राप्त करते हुए देखे गए हैं। ये सब मन के ही खेल हैं। इनसे यह स्पष्ट होता है कि हमारे मनोभाव हमारे शरीर में रोग उत्पत्ति के बड़े कारण होते हैं, और ठीक इसके विपरीत वही एक रोगी के लिए औषधि का भी कार्य कर सकते हैं। विशुद्ध शारीरिक कारणों पर आधारित रोगों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी रोग होते हैं जिनका मूल भय, द्वेष तथा क्रोध आदि मानसिक प्रवृत्तियों में होता है। जिनका सफल उपचार मन और मस्तिष्क की मिथ्या प्रवृत्तियों को ठीक करना ही है। केवल शरीर की ही चिकित्सा ऐसे लोगों में उपयुक्त नहीं होगी क्योंकि मन आत्मा का स्वरूप है और शरीर मन का जब तक इन तीनों को एक रेखा में नहीं रखा जाएगा सच्चा आरोग्य संभव नहीं हो सकता।

vkius D;k lh[kk

इस इकाई (यूनिट) में आपने सीखा कि –

- आकाश तत्व का अर्थ खाली स्थान होता है, इसे अवकाश देने वाला भी कहते हैं।
- शरीर के पाचन संस्थान को स्वस्थ बनाए रखने के लिए इसको पूर्व विश्राम देने की आवश्यकता होती है।
- उपवास के दौरान निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है–

  1) भोजन,

  2) एनिमा,

  3) स्नान,

  4) व्यायाम,

  5) आराम,

  6) मानसिक स्थिति,

  7) उपचार।
- उपवास के प्रकार

  (i) प्रातःकालीन उपवास,

  (ii) सायंकालीन उपवास,

  (iii) एकाहरोपवास,

  (iv) रसोपवास,

  (v) दुग्ध उपवास,

(vi) फलोपवास,

(vii) मट्ठोपवास,

(viii) साप्ताहिक उपवास,

(ix) लघु उपवास,

(x) क्रमिक उपवास,

(xi) दीर्घ उपवास।

- शरीर की थकान दूर करके मस्तिष्क को शांत व मन को विराम देना ही विश्राम कहलाता है।
- प्रगाढ़ निद्रा वह नींद है जिसमें एक जीवित प्राणी शव के समान निश्चेष्ट होकर संपूर्ण रूप से विश्राम करता है। एक नवजात शिशु की नींद, प्रगाढ़ नींद कही जा सकती है।
- प्रसन्नता प्राप्ति के विभिन्न साधन –

(1) खिलखिलाकर हँसना,

(2) मुस्कुराना,

(3) गुनगुनाना,

(4) गाना,

(5) मनोरंजन

(6) सदाचार,

(7) मानसिक अनुशासन एवं संतुलन।

bdkbl dk vUr eas iz'u

1) आकाश तत्व एवं इसकी महत्वता समझाइए।

2) आकाश तत्व द्वारा की जाने वाली चिकित्साओं का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

3) उपवास क्या है? इसके द्वारा की जाने वाली चिकित्सा विधि पर प्रकाश डालिए।

4) विश्राम एवं शिथिलीकरण आकाश तत्व चिकित्सा है। इस कथन की विवेचना कीजिए।

fVIi.kh

bdkbxr i'uk d mÙkj

4-1

i) सही,

ii) सही,

iii) गलत,

iv) गलत,

4-2

क) उपवास

ख) एनिमा

4-3

क) सही

ख) सही

ग) गलत

fVIi.kh

5

वायु तत्व चिकित्सा, विभिन्न विधियाँ एवं अनुप्रयोग

शिक्षार्थियों, पिछली इकाई (यूनिट) में आपने आकाश तत्व और इसके माध्यम से की जाने वाली चिकित्सा की विभिन्न विधियों का अध्ययन किया, साथ ही आपने चिकित्सा के दौरान इनके अनुप्रयोग को सीखा। पंचतत्वों के क्रम में वायु द्वितीय आवश्यक तत्व है। जल जीवन है तो वायु प्राणियों का प्राण है, यदि क्षण भर भी हमें वायु न मिले तो हम बेचैन हो उठते हैं और यदि अधिक देर तक वायु न मिले, तो प्राणान्त हो जाता है। शरीर में जब वायु तत्व असंतुलित होता है, तो प्राणी रोगी हो जाता है। शरीर में वायु तत्व को संतुलित रखना, वायु तत्व चिकित्सा कहलाती है।

इस इकाई (यूनिट) में आप, वायु तत्व चिकित्सा, इसकी विभिन्न विधियाँ और वायु तत्व के माध्यम से रोगी की चिकित्सा आदि विषयों का अध्ययन करेंगे और इसे व्यवहार में लाना सीख सकेंगे।

mís';

इस इकाई (यूनिट) का अध्ययन करने के पश्चात् आप –

- चिकित्सीय दृष्टि से वायु तत्व एवं इसकी महत्वता का वर्णन कर सकेंगे;
- वायु तत्व चिकित्सा का परिचय और इतिहास पर प्रकाश डाल सकेंगे;
- वायु तत्व चिकित्सा की मुख्य विधियों का वर्णन कर सकेंगे;
- शरीर मर्दन या मालिश चिकित्सा में कौशल हासिल कर सकेंगे;
- वायु सेवन की मुख्य विधि – व्यायाम का उल्लेख कर सकेंगे।

fVIi.kh

5-1 ok;| rRo ,oa bldh egÙork

पंचतत्वों के क्रम में वायु द्वितीय परम आवश्यक तत्व है। प्रकृति में वायु स्वतंत्र रूप से पायी जाती है। प्रकृति के जिस भाग में वायु उपस्थित रहती है, उसे वायुमण्डल कहते हैं। वायु को 'प्राण' और 'पवन' भी कहते हैं। आयुर्वेद में वायु का एक नाम' 'विष्णुपदामृत' भी है।

जीव जगत में लगभग सभी प्राणियों के लिए वायु तत्व, परम आवश्यक तत्व है। इस तत्व की अनुपस्थिति में जीवन तत्काल समाप्त हो सकता है। मानव जीवन के लिए भी यह अति आवश्यक है। वास्तव में हम बड़ी मात्रा में वायु का अनवरत भक्षण करते रहते हैं। मनुष्य एक मिनट में 14 से 18 बार श्वास लेता है। एक बार श्वास लेने में वह, लगभग 500 मिलीलीटर वायु का भक्षण करता है। इस प्रकार पूरे दिन में उसे 1150 लीटर तक वायु की आवश्यकता होती है। श्वास लेने की प्रत्येक क्रिया का सम्बन्ध शरीर की एक सौ से अधिक मांसपेशियों से होता है। प्रतिदिन हम जितना भोजन करते हैं और जल पीते हैं उससे हज़ारों गुना वायु भक्षण करते हैं। हम श्वास द्वारा जो वायु खींचते हैं वह फेफड़ों में 15 वर्गफुट से अधिक का चक्कर लगाती है। फेफड़ों में लगभग 60 घन इंच वायु सदैव उपस्थित रहती है और 25 से 33 घन इंच वायु निःश्वास के रूप में बाहर निकल जाता है।

जो वायु श्वास द्वारा शरीर में प्रवेश करती है, उसमें नाइट्रोजन वायु शरीर के लिये अनुपयोगी होती है, वह जैसे जाती है वैसे ही लौट भी आती है। ऑक्सीजन वायु लौटकर नहीं आती। जब वह फेफड़ों में पहुँच जाती है, तो वहाँ रक्त में मिल जाती है तथा दूषित, नीले रक्त को शोधित कर स्वच्छ एवं लाल कर देती है तथा कार्बनडाइऑक्साइड, नाइट्रोजन वायु और वाष्पादि को अपने साथ लेकर फेफड़ों से बाहर निर्गत कर देती है।

वृक्षादि कार्बनडाईआक्साइड वायु का शोषण करके जीवित रहते हैं और उसके बदले में वे ऑक्सीजन उत्पन्न करते हैं। इस व्यवस्था के कारण कार्बनडाइऑक्साइड की मात्रा वायुमण्डल में बढ़कर, उसे दूषित नहीं कर पाती और दूसरी तरफ वायु मण्डल में, ऑक्सीजन की कमी भी नहीं होती।

ऑक्सीजन बड़ा उग्रदाहक तत्व है। इसका अन्य वस्तुओं से प्रचण्ड रासायनिक संयोग होता है। लोहे, तांबे आदि का जंग, मनुष्य की श्वास, वस्तुओं का क्षरित होना, आग का जलना, सभी में ऑक्सीजन की संयोजन क्रिया है। अपने जीवन में होने वाली ऑक्सीजन की कुछ संयोजन क्रिया, हम देख सकते हैं कि,

- सेब के कटे हुए स्थान का रंग बदल देना, ऑक्सीजन का ही काम है।
- जलने का अर्थ है कि, किसी वस्तु का ऑक्सीजन से संयोग।
- ऑक्सीजन की दहन क्रिया का ही प्रताप है कि नीला, दूषित रक्त क्षण मात्र में शुद्ध होकर लाल हो जाता है। इस सम्बन्ध में यहां एक बात महत्वपूर्ण है कि यदि ऑक्सीजन का सम्पर्क जल या जल वाष्प से हो जाए तो उसकी दाहक शक्ति कम हो जाती है। यही वजह है कि हमारे श्वास लेने से, श्वास में उपस्थित ऑक्सीजन हमें जलाती नहीं, अपितु जीवन प्रदान करती है। इसका कारण यह है कि श्वास के साथ विशुद्ध ऑक्सीजन हम, अन्दर नहीं ले जाते, बल्कि ऑक्सीजन के साथ, जलवाष्प एवं नाइट्रोजन भी मिली होती है जो कि प्रबल दाहक शक्ति को संदमित किये रहती है।

ok;q rRo fpfdRlk] fofHkUu fofèk;k¡ ,oa vuqç;ksx

fVIi.kh

चिकित्सीय दृष्टि से वायु बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान रखती है। ऑक्सीजन से प्रकाश और ताप – दोनों की उत्पत्ति होती है। प्राणियों के शरीर में जो ताप होता है वह ऑक्सीजन की ही देन है। जीवन क्या है? शरीर के अवयवों का वायु (ऑक्सीजन) के संयोग से ऊर्जान्वित होकर सक्रिय रहना। इसी प्राकृतिक विधि का नाम ऑक्सीडेशन है, जो जलने का केवल रूपान्तर है। इस विधि से ताप उत्पन्न होता है, जिससे शरीर का ताप यथावत् बना रहता है और जीवन नष्ट नहीं होता बल्कि कायम रहता है।

शुद्ध वायु में एक प्रकार की और परमोपयोगी वायु मिली रहती है, जिसे ओजोन (ozone) कहते हैं। यह केवल जंगल, उपवन, पहाड़ और समुद्र के किनारे की हवा में ही पाया जाता है। क्षय रोगियों की पहाड़ पर इसी ओजोन से रक्षा होती है।

वायु की शुद्धि केवल अग्निहोत्र से होती है, इसलिए हमारे पूर्वजों ने उसका विधान रखा था।

bdkbZxr iz'u&5-1

रिक्त स्थान भरिए–

क) प्रकृति के जिस भाग में वायु उपस्थित रहती है, उसे...........कहते हैं।

ख) मनुष्य एक मिनट में .... बार श्वास लेता है।

ग) फेफड़ों में लगभग .... इंच वायु सदैव उपस्थित रहती है।

घ) सेब के कटे हुए स्थान का रंग बदल देना, ... का ही काम है।

ङ) ऑक्सीजन से .... दोनों की उत्पत्ति होती है।

च) .... वायु केवल जंगल, उपवन, पहाड़ और समुद्र के किनारे की हवा में ही पाया जाता है।

5-2 ok;q rRo fpfdRlk& ifjp;] bfrgkl rFkk fofHkUu fofèk;k¡

ok;q rRo fpfdRlk ¾ ok;q ls dh tkus okyh fpfdRlk

जब शरीर के पाँच तत्वों में वायु तत्व असंतुलित हो जाता है, तो शरीर में वायु संबंधी विकार उत्पन्न हो जाते हैं और हम अस्वस्थ हो जाते हैं। वायु तत्व चिकित्सा के द्वारा, इस असंतुलित वायु तत्व का संतुलन किया जाता है, जिससे हम पुनः स्वस्थ हो जाते हैं।

çk—frd fpfdRlk esa ok;q rRo ds ekè;e ls dh tkus okyh fpfdRlk] ok;q rRo fpfdRlk dgykrh gSA

fVIi.kh

वायु तत्व चिकित्सा में वायु स्नान और वायु सेवन जिसमें विशेष रूप से योगासन, प्राणायाम, मुद्राएँ शरीर मर्दन या मालिश, व्यायाम, आदि सम्मिलित हैं।

प्राचीनकाल से ही मानव, वायु तत्व का उपयोग चिकित्सा के रूप में करता आ रहा है। हमारे ऋषि–मुनि स्वस्थ रहने के लिए, इस प्राण–वायु का सेवन विभिन्न विधियों से करते थे। वायु –चिकित्सा का उल्लेख हमारे वेद–शास्त्रों में मिलना, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। वायु – चिकित्सा सम्बन्धी अनेक ऋचायें वेदों में मिलती हैं, जैसे –

okr vk okrq Hk"ktaa 'kaHkq e;kHkqokgnq A

ç.k vk;wf"k rkfj"kr~ AA &_Xosn

अर्थात् वायु हमारे हृदयों में शान्ति पैदा करे। वह सुख देने वाला होकर हमारे पास बहता रहे। वह हमारी आयु को दीर्घ करे।

;nnks okr rs xgs ·e`rL; fufèkfgZr% rrkuks nsfg thols A &_Xosn

अर्थात्, हे वायो ! तेरे घर में जो वह अपूर्व अमृत का खजाना है, उसमें से हमारे दीर्घ जीवन के लिए थोड़ा सा भाग दे।

आज भी यह कहावत सुप्रसिद्ध है – सौ दवा, एक हवा । कहने का तात्पर्य यह है कि, मनुष्य को यदि, शुद्ध वायु मिल रही है, तो वह उसके लिए सौ दवाओं के बराबर है। यह भी कहा जाता है कि, स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा करने और उसे रोगों से बचाए रखने के लिए, उसके हवा–पानी में बदलाव होते रहना चाहिए।

ok;q fpfdRlk dh eq[; fofèk;k¡

वायु चिकित्सा की मुख्य रूप से दो विधियां हैं। आइए अब, इन विधियों को जानें;

ok;q fpfdRlk dh eq[; fofèk;k¡

- **iou ¼ok;q½ Luku**
- **ok;q lsou**

ok;| rRo fpfdRlk] fofHkUu fofèk;k ,o| vuiç;kx

5-2-1 iou & Luku ;k ok;| Luku

iou & Luku vFkkr~ ok;| e| Luku djuk

वास्तव में पवन – स्नान और वायु – सेवन एक ही चीज के दो नाम है। इसी को अंग्रजी में Air Bath या morning walk भी कहते हैं। साधारण बोल– चाल में टहलना या हवा खाना। यह एक ऐसा स्नान है, जिससे शरीर की बाहरी और भीतरी दोनों सफाई साथ – साथ होती है।

fofèk ,o| egRo %

- यह स्नान नंगे बदन अधिक उपयोगी होता है। इस हेतु ब्रह्ममुहूर्त में कम से कम वस्त्रों को धारण करके भ्रमण हेतु निकलना चाहिए तथा सूर्योदय से पूर्व भ्रमण पूर्ण कर लेना चाहिए।
- जिस प्रकार हम नाक से प्रतिक्षण श्वास लिया करते हैं, उसी प्रकार हमारी त्वचा के असंख्य छिद्रों द्वारा श्वास लेना भी अनिवार्य है।
- जिस प्रकार घर को शुद्ध और स्वच्छ रखने के लिए, घर की खिड़कियां और झरोखे खोल कर अन्दर ताजी हवा का प्रवेश होने देना आवश्यक है, उसी प्रकार इस शरीर रूपी घर में त्वचा छिद्र रूपी झरोखों से होकर ताजी वायु का प्रवेश नित्य होते रहना परमावश्यक है।
- कपड़ों से शरीर को सदैव लपेटे रहने से शरीर पीला पड़ जाता है, और रोम – कूप अकर्मण्य होकर शिथिल पड़ जाते हैं, और बहुत से तो एक दम बंद ही हो जाते हैं, जिसका फल यह होता है कि आये दिन कब्जियत, हृदय – रोग, तथा मधुमेहादि भयानक रोग सताया करते हैं।
- जब पवन स्नान करने वाला विशुद्ध वायु मण्डल में नंगे बदन उचित रीति से अवगहन करने लगता है तो वह जैसे संसार के समस्त आनन्द को पीता हो, आकाश से मूक वार्तालाप करता हो। फेफड़ों को ऑक्सीजन से जो प्रकृति माता के स्तन का अमृत ही है भरता हो ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव करता है। साल के बारहों महीने पवन स्नान सुखपूर्वक एवं आनन्दपूर्वक लिया जा सकता है। सर्दी के दिनों में टहलने या पवन – स्नान करने में जो आनन्द आता है उसका वर्णन नहीं हो सकता।

lkekU; fo'ks"krk,¡%

प्रसिद्ध विचारक श्री जूलियट सैनफोर्ड के शब्दों में –"टहलना न केवल जीवन की एक आवश्यकता है अपितु, यह एक कला है, आनन्द है, पौष्टिक तत्व है, खुशी है, प्रकृति देवी का वरदान है, और है संसार की सर्वश्रेष्ठ कसरत"।

- सरल और स्वभाविक तरीके से टहलने से शरीर के एक दो नहीं बल्कि सभी अंग सशक्त हो जाते हैं।
- टहलने से बालक, जवान एवं वृद्ध समान रूप से लाभ उठा सकते हैं।

- टहलने की कसरत से किसी का भी मन नहीं ऊबता, जब कि अन्य कसरतों को लोग कुछ दिनों तक करने के बाद अक्सर छोड़ दिया करते हैं। हम बचपन में चलना सीख कर जीवन पर्यन्त टहलते ही रहते हैं।
- टहलना आराम भी है और कसरत भी है।
- टहलने से शरीर की कसरत हो जाती है और साथ ही साथ मन को आराम भी मिलता है।
- जो लोग अन्य प्रकार की कोई कसरत नहीं कर सकते, उनके लिए टहलने की कसरत बहुत जरूरी है। इससे सिर से पांव तक की 200 मांसपेशियों की हल्की–हल्की स्वाभाविक कसरत हो जाती है।
- टहलने के समय दिल की गति एक मिनट में 72 बार से बढ़कर 82 बार हो जाती है। टहलते समय हमारी श्वास भी तेजी से चलने लगती है और अधिक ऑक्सीजन खून में पहुंच कर खून को साफ करता है। पर कसरत की अन्य पद्धतियों से हृदय पर टहलने की अपेक्षा अधिक जोर पड़ता है। इसलिए टहलना, कसरत की सर्वोत्तम पद्धति मानी गयी है।

ukV~

- पवन स्नान में एक बात महत्वपूर्ण है कि यह स्नान केवल प्राकृतिक शुद्ध वायु में करने से ही लाभकारी सिद्ध होती है।
- बिजली के पंखों आदि के कृत्रिम वायु में यह स्नान कदापि नहीं करना चाहिए क्योंकि पंखे की हवा घूमती और तीव्र होती है। ऐसी वायु, उदान वायु को विकृत कर देती है तथा व्यान वायु को रोक देता है जिससे सिर में चक्कर आने लगता है और शरीर के जोड़ों को आक्रान्त करने वाले गठिया आदि रोग हो जाते हैं।
- अशुद्ध स्थान के वायु का सेवन करने से पाचन – दोष, खांसी, फुफ्फुस प्रदाह तथा दुर्बलता आदि दोष उत्पन्न हो जाते हैं।
- टहलने के लिए बस्ती से दूर कोई ऐसा साफ – सुथरा पथ चुनना चाहिए जो प्रकृति के साम्राज्य से होकर गुजरता हो।
- एक साधारण स्वास्थ्य के मनुष्य को प्रतिदिन 6–7 किलोमीटर अवश्य टहलना चाहिए। नए टहलने वालों को पहले दिन ही अधिक नहीं टहलना चाहिये, बल्कि उन्हें रफ्तार और दूरी दोनों धीरे – धीरे बढ़ानी चाहिए। टहलने की गति 10 मिनट में एक किलोमीटर काफी है।
- कमजोर और रोगी व्यक्तियों को आरम्भ में आधा या एक किलोमीटर से अधिक कभी नहीं टहलना

चाहिए। परन्तु जैसे – जैसे जीवनी शक्ति बढ़ती जाये यह दूरी धीरे – धीरे बढ़ाते जाना चाहिए।

- टहलते समय वास्तविक आनन्द का अनुभव होना चाहिए। उस वक्त सिवा आनन्द के मस्तिष्क में और कुछ होना ही नहीं चाहिए।

- यदि प्रातःकाल खुली जगह पर नंगे बदन दौड़ा जाये या कोई हल्का व्यायाम भी नित्य किया जाये तो परम आरोग्य प्राप्त होता है। कहा भी गया है :– **ÞvkjksX; pkfi ije 0;k;keknqitk;rAß**

पाश्चात्य प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक एडोल्फ जुस्ट के प्रधान भारतीय शिष्य महात्मा गांधी जब तक जीवित रहे प्रतिदिन नंगे बदन ही वायु सेवन करते रहे।

iou & Luku vkj i'pkr~ deZ

- व्यक्ति को संतुलित प्राकृतिक भोजन पर रहकर नियमित जीवन व्यतीत करते हुए उचित विश्राम और मनोरंजन के साथ पवन स्नान करना चाहिए। प्राकृतिक भोजन से तात्पर्य आसानी से पचने वाला पुष्टिकर भोजन जैसे फल, दूध–दही, साग – सब्जी, चोकर सहित गेहूँ के आटे की मोटी रोटी, कन सहित हाथ कुटा चावल, छिल्के सहित खाई जाने वाली गाढ़ी दालें पौष्टिक खाद्य पदार्थ हैं।

- वायु स्नान से लौटने पर यदि पसीना निकला हो तो शरीर को गीले कपड़े से पोंछना चाहिए और यदि इच्छा हो तो नहा भी सकते हैं। कमजोर और रोगी यदि टहलने के बाद तुरन्त स्नान न करे तो अच्छा है।

- प्रातः काल शौच आदि से निपट कर ही टहलने निकलना चाहिए और लौटने पर यदि पुनः आवश्यकता पड़े तो शौच जरूर जाये, शौच के बाद कभी–कभी एनिमा द्वारा भी पेट साफ कर लेना चाहिए।

iou Luku ls ykHk

- पवन स्नान से शरीर की बाहरी और आंतरिक सफाई साथ – साथ होती है। इससे शरीर की त्वचा स्वस्थ, लचीली और कोमल हो जाती है।

- शरीर में जीवनी– शक्ति को बनाये रखने वाली वायु का नाम प्राण वायु है। खुले, ऊंचे और पर्वतादि स्थानों का मुक्त वातावरण प्राण वायु को बल देता है। यही कारण है कि असाध्य रोगों से पीड़ित और मरणोन्मुख रोगियों को चिकित्सक पहाड़ों पर रह कर वहाँ की स्वच्छ वायु में श्वास लेने की सलाह देते हैं। शुद्ध पवन स्नान से प्राण सशक्त होते हैं। हृदय और फेफड़ों की शक्ति जो जीवन का मूल है, पवन स्नान से ही प्राप्त की जा सकती है।

- यह स्नान जीवन शक्ति को सुदृढ़ बनाता है और शारीरिक सहन – शक्ति को बहुत अधिक बढ़ा देता है। इससे मनुष्य की शारीरिक और मानसिक – दोनों प्रकार के स्वास्थ्य की उन्नति होती है।

- पवन स्नान से दिमागी ताकत बड़ी शीघ्रता से बढ़ती है । इससे मनुष्य की मानसिक दृष्टि निर्मल और तीव्र हो जाती है और वह कहीं अधिक निश्चयात्मक और सन्तोष प्रद तरीके से गूढ़ से गूढ़ प्रश्नों का

निर्णय करने में सफलीभूत हो सकता है। महात्मा गाँधी जो अन्त समय तक इस स्नान को अपनाए हुए थे उसका यही रहस्य है।

5-2-2 ok;| lsou

वायु सेवन के विभिन्न साधन हैं; जैसे –

- **;kx vklu &** विभिन्न प्रकार के योगासनों के माध्यम से वायु का सेवन किया जाता है।
- **'okl&ç'okl dh fØ;k vkj çk.kk;ke &** श्वास–प्रश्वास की क्रिया और विभिन्न प्रकार के निर्देशित प्राणायामों के माध्यम से वायु का सेवन किया जाता है।
- **fofHkUu çdkj ds 0;k;ke &** विभिन्न प्रकार के व्यायाम जैसे – खेलना, टहलना, तैरना, साइकिल चलाना, नृत्य करना, दौड़ लगाना आदि के माध्यम से वायु का सेवन किया जाता है।
- शरीर मर्दन व मालिश के द्वारा वायु का सेवन किया जाता है।

उपर्युक्त विषय पर आप अपने प्रथम वर्ष के प्रथम विषय में यौगिक सूक्ष्म क्रियाएँ, योग आसन, प्राणायाम, मेडीटेशन आदि और द्वितीय विषय – प्राकृतिक चिकित्सा की नवमी इकाई (यूनिट) में विभिन्न प्रकार के व्यायाम जैसे – खेलना, टहलना, तैरना, साइकिल चलाना, नृत्य करना, दौड़ लगाना आदि पढ़ चुके हैं। इस इकाई (यूनिट) में शरीर मर्दन और व्यायाम की महत्वता को ध्यान में रख कर पुनरावृत्ति की जा रही है।

bdkbxr iz'u&5-2

1. वायु तत्व चिकित्सा किसे कहते हैं?

   ....

   ....

2. वायु तत्व चिकित्सा में सम्मिलित अंग हैं।

   ....

   ....

3. पवन स्नान के कोई दो लाभ लिखिए।

   ....

   ....

4. वायु सेवन के विभिन्न साधन हैं।

   ....

   ....

fVIi.kh

5-3 enZu ;k ekfy'k

मर्दन या मालिश अर्थात् शरीर या अंग का वैज्ञानिक तरीके से घर्षण। मर्दन या मालिश, वायु सेवन की उत्तम चिकित्सा है, जिसके विषय में आप पहले भी पढ़ चुके हैं। चूंकि निरोगी व बलिष्ठ बने रहने की दृष्टि से प्राकृतिक चिकित्सा में इसका बहुत महत्व है इसलिए इसका यहाँ पर एक बार पुनः अध्ययन करेंगे और इसे व्यवहार में लाने का कौशल हासिल करेंगे।

iwjs 'kjhj vFkok fdlh fo'ks"k vax dk ,d fo'ks"k fofèk ls 'kq"d ;k fLuXèk ?k"kZ.k djuk enZu ;k ekfy'k dgykrk gSA

हल्के–हल्के ठोकना, सहलाना, दबाना, चिकोटी काटना, थपथपाना, गूंथना, बेलना लुढ़काना, कंपन देना, चुटकी भरना, जोड़ों को मसलना और एक विशेष तरीके से मांसपेशियों को सूतना, आदि मालिश के ही विविध रूप हैं। शरीर के जिस हिस्से की मालिश करनी हो, उस पर मालिश का प्रयोग उस समय तक होते रहना चाहिए जब तक उस स्थान की त्वचा हल्की रक्तवर्ण न हो जाए, जो इस बात का प्रमाण है कि उस विशेष भाग में रक्त का प्रवाह मालिश के प्रभाव से भली भांति होने लगी है।

यह एक अच्छी चिकित्सा का कार्य करती है। जिस प्रकार प्राकृतिक खाद्य – पदार्थ हमारे सतत् स्वास्थ्य का पोषण भी करते हैं और अस्वस्थ दशाओं की औषधि भी हैं, उसी प्रकार मर्दन या मालिश हमारे स्वास्थ्य सौन्दर्य की वृद्धि भी करता है और कई रोगों का सफल उपचार भी है। मालिश हमारी कई प्राकृतिक आवश्यकताओं में से एक आवश्यकता है, जिसके अभाव में हमारा स्वास्थ्य, सच्चे मायनों में श्रेष्ठ नहीं रह सकता। प्रकृति हमें, प्रत्येक अंग की, किसी न किसी रूप में मालिश करने की प्रवृत्ति देती रहती है। जब हम कभी सिर में या शरीर के किसी हिस्से में चोट लग जाती है तो सर्वप्रथम हमारा हाथ ही एक अनियंत्रित शक्ति द्वारा संचालित होकर उस स्थान पर पहुँच जाता है, और उस अंग की प्रारम्भिक चिकित्सा (फर्स्ट एड) शुरू कर देता है जिसका अर्थ होता है मर्दन क्रिया का प्रतिपादन, और जिसके फलस्वरूप तकलीफ बहुत कुछ कम भी हो जाती है। यह प्रकृति का मर्दन क्रिया की उपयोगिता और श्रेष्ठता और उसके रोगोपचार सम्बन्धी गुणों की ओर मूक संकेत है।

इसी प्रकार एक फ्रेंच डाक्टर के कथन के रूप में हमारी बात का सूचक है कि "हमारा कभी – कभी जम्हाई लेना इस बात का सूचक है कि हमारे गले की नसों और मासपेशियों को मालिश की जरूरत है और जिसकी पूर्ति प्रकृति हमें जम्हाई की प्रवृत्ति दिलाकर करती है।"

इसके अतिरिक्त मर्दन – क्रिया मसाज या अंग स्पर्श नाम से रति शास्त्र का सर्वश्रेष्ठ अंग माना गया है जिसके बिना रति क्रिया, रति–क्रिया रह ही नहीं जाती।

bfrgkl

मालिश का प्रयोग किसी न किसी रूप में आदि काल से ही चला आ रहा है, किंतु उसकी चिकित्सा सम्बन्धी

गुणों का ज्ञान होने का समय अनिश्चित ही है।

- यूनान व रोम के प्राचीन इतिहास को देखने से ज्ञात होता है कि किसी समय में वहां की स्त्रियां मालिश द्वारा अपने शरीर को सुंदर बनाया करती थीं। आज भी मालिश को स्वास्थ्य और सौन्दर्य वृद्धि का प्रधान साधन समझा जाता है।

- आज भी टर्की, इटली, ईरान और अरब आदि देशों में मालिश के लिए हम्माम की प्रथा प्रचलित है, जहां शरीर के अंग–प्रत्यंग की मालिश की जाती है।

- पुराने जमाने में अफ्रीका देश के हबशियों में यह चलन था कि शादी से एक मास पूर्व वर–वधू की मालिश प्रति दिन की जाती थी। उनका विश्वास था कि इस क्रिया से शरीर में सौन्दर्य और यौवन फूट पड़ता है, जो सर्वथा सत्य है।

- मेडागास्कर (अफ्रीका) की जंगली जातियां, आज से 1000 वर्ष पूर्व रोगियों के शरीर में रक्त शुद्धि के लिए मालिश का प्रयोग किया करती थीं।

- हमारे भारतवर्ष में भी यह रिवाज पाया जाता है जिसका अर्थ भी वही है और जिसको **ßgYnh dh jLeß** कहते हैं।

- कहा जाता है कि कैप्टन कुक ने सर्वप्रथम पाश्चात्य देशों को मालिश के अलौकिक गुणों का ज्ञान कराया था। तत्पश्चात् लगभग सन् 1860 ई. में डाक्टर स्कॉट ने मर्दन क्रिया पर पेरिस नगर में एक ओजस्वी भाषण देकर चिकित्सकों का ध्यान उसकी ओर आकर्षित किया था।

- जर्मनी का एक विख्यात वैज्ञानिक सी ० जी ० डोर एक स्थान पर लिखता है कि – "शरीर की त्वचा, एक आवरण या प्राकृतिक चादर के सदृश है जिसका स्वच्छता एवं सुन्दरता के लिए मालिश धोबी के समान है, जिसका प्रयोग नितान्त आवश्यक है।"

ekfy'k dk x|.k ,oa dk;Z

- मालिश, वास्तव में मांसपेशियों का व्यायाम है। शरीर स्वस्थ, सुंदर और ओजवान बनता है।
- नित्य मर्दन से भूख खुल जाती है, नींद अच्छी आने लगती है, त्वचा कोमल, लचीली और चमकदार हो जाती है, रंग साफ हो जाता है, और ग्रन्थियों का पोषण बहुत तीव्र हो जाता है
- पूर्ण शरीर में रक्त का उचित संचार होता है।
- हड्डियाँ व मांसपेशियां मजबूत होती हैं, जोड़ लचीले हो जाते हैं।
- मालिश से थकावट दूर होती है और मांसपेशियों में गति उत्पन्न होती है।
- मालिश से उन्हें स्वतन्त्र एवं अबाधगति, और अपना कार्य सुचारु रूप से पालन करने के लिए क्षमता और शक्ति प्राप्त होती है।

- शरीर के अंदर प्राकृतिक रूप से रक्त प्रवाह होते रहने से शरीर की पाचन – क्रिया को सहायता मिलती है।
- मालिश का प्रभाव मांसपेशियों, स्नायुओं, रक्त की नालियों और त्वचा पर समान रूप से पड़ता है, जिसकी वजह से रक्त के संचार में अतिशीघ्र नव शक्ति व स्फूर्ति उत्पन्न हो जाती है।

मालिश से बढ़ कर शायद ही कोई अन्य बेहतरीन प्रयोग स्वास्थ्य मर्मज्ञों को अब तक ज्ञात हुआ हो। महात्मा गांधी इसी कारण स्वास्थ्य के सम्बन्ध में नित्य ही अनके प्रयोग करते रहते थे, वे मालिश की उपयोगिता में विश्वास करते थे और अपनी दैनन्दिनी का एक आवश्यक अंग बनाए हुए थे।

ekfy'k ls jksxksa dh fpfdRlk

मालिश से लगभग सभी रोगों का इलाज, आजकल यूरोप के देशों में निर्विघ्न हो रहा है। वहाँ, इस विषय के विशेषज्ञ लोगों ने मालिश के कई अस्पताल खोल रखे हैं, जिसमें हजारों की संख्या में रोगियों का इलाज केवल मालिश के विभिन्न वैज्ञानिक ढंगों का प्रयोग करके सफलतापूर्वक किया जाता है। उक्त देशों के कुछ शहरों में ऐसी संस्थायें स्थापित की गयी हैं जहाँ मालिश कला का व्यवहारिक ज्ञान कराया जाता है और उसकी शिक्षा दी जाती है।

हमारे यहाँ भी आयुर्वेद में मालिश पर काफी प्रकाश डाला गया है। आयुर्वेद में एक जगह आया है कि विष खाये हुओं के शरीर से विष निकालने के लिए मालिश अचूक चिकित्सा है। इसी प्रकार के भिन्न–भिन्न रोगों में मालिश का प्रयोग भिन्न–भिन्न तरीकों से शरीर के विभिन्न अंगों पर किया जाता है, जिसका प्रभाव रक्त, रगों और मांसपेशियों पर आश्चर्यजनक रूप से रोगों से छुटकारा दिला देता है। आइए, मालिश द्वारा की जाने वाली चिकित्सा को जानें;

i½ xfB;k jksx dks nwj djus esa

इस रोग में मालिश से बहुत लाभ होता है। मालिश करते समय शुद्ध सरसों का या तिल का तेल प्रयोग में लाना चाहिए। और धूप में बैठकर मालिश करनी चाहिए। मालिश में उतनी ही ताकत लगानी चाहिए जितनी रोगी आसानी से सह सके।

मालिश करते समय रीढ़ और जोड़ों पर विशेष ध्यान देना चाहिए। इन स्थानों पर दोनों ओर से हल्की – हल्की मालिश करते हुए हड्डी और जोड़ की तरफ हाथ ले जाना चाहिए। मालिश काफी देर तक होनी चाहिए जिससे रक्त में यथेष्ठ गर्मी और उसकी गति में तीव्रता उत्पन्न हो जाए।

मालिश प्रतिदिन नियमित रूप से और कुछ दिनों तक करनी चाहिए। इस बीच प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी अन्य आवश्यक नियमों का कड़ाई के साथ पालन करना नितांत आवश्यक है।

fVIi.kh

ii½ ukfHk Vyu e

यह रोग संभावनाः शक्ति से अधिक काम करने पर या कोई भारी वस्तु उठा लेने से हो जाता है। इस बीमारी में कभी – कभी दस्त भी आने लगते है। इसकी चिकित्सा भी साधारण पेट की मालिश से मर्मज्ञ कर लेते हैं।

iii½ gfì;k d tkM Bhd dju e

पेड़ पर से गिरने पर या अन्य किसी प्रकार से जब हड्डियों के जोड़ उखड़ जाते हैं तो बड़े – बड़े डाक्टर भी परेशान हो जाते हैं। ऐसे अवसरों पर हड्डी बैठाने वाले गुणियों की ही खोज होती है जो सरलता से हल्की मालिश करके ऐसा बैठा देते हैं कि जैसे हड्डियों के जोड़ कभी उखड़े ही न हों।

iv½ 'kjhj d vx&çR;kxk d nn dk nj dju e

इसके अतिरिक्त उचित मालिश द्वारा सिर का दर्द, मोच और किसी अंग की पीड़ा बड़ी सरलता से दूर की जा सकती है।

v½ ekl if'k;k e vfèkd :fèkj igpku e

मांसपेशियों में अधिक रूधिर पहुँचाने का जो गुण व शक्ति मालिश में होता है, उसके कारण बच्चों की लकवे की बीमारी में भी यह बहुत लाभकारी है।

मालिश से संकुचित घाव फैलाये जा सकते हैं। अकड़े हुए जोड़ों में गति उत्पन्न की जा सकती है, और उन जोड़ों में, जिनकी मांसपेशियों को लकवा मार गया है, या दुर्बलता है, फिर से उनकी चेष्टाओं को जागृत किया जा सकता है।

ekfy'k grq rsy dk ç;kx

- साधारण मालिश के लिए सरसों का तेल, नारियल का तेल व तिल का तेल सबसे अच्छा रहता है।
- बच्चों और कमजोर रोगियों के लिए जैतून का तेल विशेष लाभ देता है।
- अधरंग व जोड़ों का दर्द, गठिया, सायटिका आदि में लाल रंग की बोतल का तेल विशेष लाभ देता है।
- सिर दर्द में कद्दू रोगन, बादाम रोगन या हल्के नीले रंग की बोतल का तेल लाभ करता है।
- चर्म रोग पर आधा भाग नींबू का रस, आधा भाग नारियल का तेल हरे रंग की बोतल में तैयार करके रुग्ण स्थान पर लगाया जाता है।

dN è;ku j[kus ;kX; e[; fl)kUr

मालिश की विविध विधियों के विषय में आप पहले ही पढ़ चुके हैं, कुछ मुख्य बातों का ध्यान रखना आवश्यक है;

- मालिश इस ढंग से की जाए कि, रक्त का प्रवाह हृदय की ओर हो, जिससे अशुद्ध रक्त की शुद्धि का कार्य जारी रहे। उस समय हृदय से नीचे की ओर रक्त की गति को रोकना परम आवश्यक है।

- मालिश धूप में ही उत्तम प्रकार से लाभकारी हो सकती है, रोगावस्था में रोगी, जितनी धूप आसानी से सह सके, उतनी ही कड़ी धूप में उसके बदन की मालिश करनी चाहिए। यदि धूप कड़ी है तो उसके सिर को अच्छी तरह ढक देना चाहिए। उन दशाओं में जिनमें सूर्य – स्नान मना है, धूप में बैठाकर रोगी के शरीर की मालिश कदापि न करें, और मालिश के उपरान्त स्नान कर लेना या गीले कपड़े से बदन को अच्छी तरह से पोंछ लेना आवश्यक है। ऐसा करने से (नसों) में उत्तेजना और शक्ति उत्पन्न होकर मालिश का पूरा – पूरा लाभ प्राप्त होता है। सही मालिश केवल अंगो को साधारण रूप से मलना ही नहीं है, अपितु, मलते समय मलने की क्रिया में विविध तरीके से गतियां उत्पन्न करनी होती हैं।

- इसके अतिरिक्त दीर्घ मर्दन, विस्तृत रूप से हाथ घुमाकर होता है, जैसे कि पीठ, हस्त, पादादि की मालिश में किया जाता है। हस्त मर्दन, दीर्घ से अल्प विस्तृत और पास –पास हाथ घुमाकर होता है। जैसा कि स्नायुओं पर और मनकों पर किया जाता है। मंडलमर्दन, मंडलाकार हाथ घुमाकर होता है, जैसा कि पेट पर किया जाता है।

- **miyi &** मर्दन, उपलेपन क्रिया की भांति किया जाता है।

- **oy; &** मर्दन, वलयाकार हाथ घुमाकर जिस प्रकार से स्क्रू चलता है, पिंडलियों पर किया जाता है।

- **rkMu &** मर्दन क्रिया मुक्का या हथेलियों के आघात से की जाती है। यह क्रिया पृष्ठ भाग और नितम्ब की तरह मांसल भाग पर ही होती है।

- **pkyu &** मर्दन, संधि के अंदर के अवयवों के घुमाने से होती है।

- शरीर के जिस हिस्से की मालिश करनी हो, उस पर मालिश का प्रयोग उस समय तक होते रहना चाहिए जब तक उस स्थान की त्वचा हल्की रक्तवर्ण न हो जाए।

पाश्चात्य विद्वान जार्ज हीडेन का कथन है कि – सम्पूर्ण अंग की उचित मालिश से कोई भी अपने को नवजात शिशु के सदृश अनुभव कर सकता है।

lkoèkkfu;k

- पूरे शरीर की मालिश में, मालिश का आरम्भ पैर से होना आवश्यक है और प्रत्येक अंग की मालिश करते समय हाथ की गति को सदैव नीचे से ऊपर की ओर जाना चाहिए। जैसे भुजाओं की मालिश

में अंगुलियों की मालिश सर्वप्रथम कर धीरे–धीरे कंधों की ओर बढ़ना चाहिए। सिद्धान्त यह है कि मालिश की पूरी क्रियायें शरीर में होने वाले रक्त संचालन की विपरीत दशा में कदापि न की जायें।

- भोजन करने के तुरन्त बाद कभी भी मालिश नहीं करनी चाहिए। इसके लिए सबसे अच्छा समय स्नान या भोजन करने के घंटे–दो घंटे पूर्व का होता है।
- कोई भी मालिश हो, 15–20 मिनट से अधिक देर तक नहीं करनी चाहिए। पूरे शरीर की मालिश में 45 मिनट तक लगाये जा सकते हैं।
- प्रत्येक मर्दन के बाद यदि रोगी, कम से कम आधे घंटे तक कपड़ा ओढ़कर विश्राम कर ले, तो बहुत लाभ होता है।

आइए! अब शुष्क, स्निग्ध और उबटन की विधियाँ व महत्वता को जानें;

1- 'kq"d enZu ¼MkÃ ?k"kZ.k½

यह पूरे शरीर की साधारण सूखी मालिश है। इसको अंग्रजी में "Dry Friction" कहते हैं। त्वचा को स्वच्छ, सुंदर और स्वस्थ रखने के लिए अंग–प्रत्यंग की सूखी मालिश करनी चाहिए। इससे न केवल त्वचा का अपितु, सारे शरीर का व्यायाम हो जाता है, और त्वचा के लिए तो इससे अच्छा कोई व्यायाम ही नहीं है। इस क्रिया से रक्त की गति में तीव्रता उत्पन्न होकर रक्त शुद्ध और मल रहित हो जाता है।

पहलवान लोग जो व्यायाम पूर्ण कर लेने के बाद, शरीर की सूखी मालिश करवाते हैं और उससे शत–प्रतिशत लाभ उठाते हैं उसका यही रहस्य है। तेल या उबटन से जो नम मालिश की जाती है, उससे कहीं बढ़ कर यह सूखी मालिश है। किसी दूसरे से न करवा कर यदि अपने ही हाथों की जाए तो दुगना लाभ प्राप्त होता है।

fofèk%

- शुष्क घर्षण स्नान के लिए अपनी हथेली से शरीर के अंग–प्रत्यंग को सिर से पैर तक अच्छी तरह और तेजी से इतना रगड़ना कि समूचे शरीर में लालिमा आ जाए।
- जांघ और टांगों को रगड़ते समय, घुटनों को सीधा और तना रखना चाहिए, इससे रीढ़, पेट और पूरे स्नायु मंडल की हल्की कसरत हो जाएगी। इस क्रिया से रक्त अधिक से अधिक मात्रा में, शरीर के ऊपरी हिस्से की त्वचा की तरफ आकर शिराओं के फैलने में कारण बनता है, जिससे उन शिराओं की भी कसरत अनिवार्य रूप से हो जाती है। साथ ही साथ त्वचा के असंख्य रोमकूप पूर्ण रूप से खुल जाते हैं, जिसके फलस्वरूप पसीने द्वारा शरीर का मल निकलने का काम उत्तम रीति से होने लगता है।

ok;q rRo fpfdRlk] fofHkUu fofèk;k¡ ,oa vuqç;ksx

ykHk%

रक्त का प्रवाह त्वचा की ओर अधिक होने से यह स्वाभाविक है कि त्वचा निर्विकार एवं स्वस्थ हो जाए। यदि यह स्नान उचित ढंग से किया जाए तो इसका प्रभाव शरीर के ऊपरी हिस्से की त्वचा पर चमत्कारिक रूप में पड़ता है।

lkoèkkfu;k¡%

ध्यान रहे शुष्क घर्षण स्नान में तेल या इस प्रकार की किसी अन्य वस्तु का भूल से भी प्रयोग नहीं करना चाहिए और इस स्नान के बाद शुद्ध एवं ठंडे जल से स्नान करना नितान्त प्रयोजनीय है। डाक्टर हेनरी बेन्जामिन इस शुष्क घर्षण स्नान को सूखे खुरदरे तौलिए या ब्रुश से करने की सलाह देते हैं।

प्रातःकाल हल्की धूप में बैठ कर शुष्क घर्षण स्नान का अभ्यास उत्तम है। इससे शरीर स्वस्थ होने के अतिरिक्त उसे विटामिन डी की भी प्राप्ति साथ ही साथ हो जाती है जो उत्तम स्वास्थ्य के लिए उपयोगी है।

2- fLuXèk enZu ¼vkS"kèkh; rsyk }kjk½

इसे नम मालिश के नाम से भी जानते हैं। यह मालिश शुद्ध सरसों या औषधीय तेलों द्वारा की जाती है। कहते हैं किलो भर मांस वा आधा किलो घी खाने से शरीर को जो लाभ नहीं होता वह पचास ग्राम शुद्ध सरसों के तेल में शरीर में मालिश करके सुखाने से सहज ही हो जाता है। यथा –

ekalkn v"V xq.kk ?k`rkn v"V xq.kk rSy enZukr uRk Hkf{k.kkrA & vk;qosZn

fofèk%

- सर्वप्रथम तेल पैरों में मलना चाहिए;
- फिर सिर में, तत्पश्चात् अन्य अंग–प्रत्यगों पर लगाना चाहिए;
- नाभि, हाथ पैर के नखों, दोनों कानों, नासिका और नेत्रों के पपोटों पर मालिश के समय तेल का प्रयोग करना नहीं भूलना चाहिए। इससे आयु की वृद्धि होती है, अनिद्रा रोग या किसी प्रकार के रोग का आक्रमण शीघ्र नहीं होता है, बुढ़ापा विलम्ब से आता है और सौन्दर्य एवं अक्षय स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है।

कोई त्वचा की बीमारी होने से सरसों के तेल की जगह तिल, नारियल या जैतून का तेल काम में लाया जा सकता है। सिर में सरसों के तेल के बदले तिल का तेल प्रयोग कर सकते हैं। तेल की मालिश विशेषकर रोगियों के लिए अधिक उपयुक्त है। यह मालिश भी धूप में ही बैठकर कराने से अधिक लाभ करती है।

fVIi.kh

ykHk%

- तेल मर्दन से त्वचा, चिकनी, कोमल और पुष्ट हो जाती है।
- इसका सर्वश्रेष्ठ प्रभाव स्वभावतः शरीर के सभी अंगों पर पड़ता है।

उत्तम स्वास्थ एवं आयु वृद्धि के लिए तेल मर्दन के पश्चात् स्नान की उपयोगिता वाग्भट में भी स्वीकार की गई है। यथा– "तेल मर्दन के बाद स्नान करने से बुढ़ापे के लक्षण जल्दी प्रकट नहीं होते, थकावट और वायु दूर होती है, नेत्र की ज्योति, बल, निद्रा और त्वचा की कांति बढ़ती है, साथ ही अंग पुष्ट होते हैं। सिर, कान और पैरों में तेल का प्रयोग विशेष रूप से करना चाहिए।"

lkoèkkfu;k¡

- तेल मर्दन के बाद स्नान करना तो जरूरी है ही साथ ही साथ मोटी तौलिया या अंगोछे से पूरे शरीर को रगड़ – रगड़ कर उस पर चिपके हुए तेल को तनिक सा पोंछ डालना, उससे भी अधिक आवश्यक है, अन्यथा शरीर के रोम कूप तेल मिश्रित मल से भर जाने से उनके प्राकृतिक और स्वास्थ्यवर्द्धक मल निष्कासन कार्य में बाधा उपस्थित होगी और इस तरह से तेल मर्दन से लाभ के बदले स्वास्थ्य को खतरे में डालकर हानि ही उठानी पड़ेगी।
- जीर्ण कोष्ठ बद्धता (पुराना कब्ज) के रोगियों को तेल मर्दन वर्जित है।
- शास्त्रों में रविवार व पूर्णिमा और अमावस्या को तेल लगाना मना है।

3- mcVu vkj vH;ax Luku&

उबटन अर्थात् संयुक्त घर्षण और तेल स्नान। उबटन में तेल युक्त पदार्थ के मिश्रण से शरीर का तेलीय स्नान भी हो जाता है और साथ ही साथ पूरे तरीके से उसका घर्षण व मालिश भी। उबटन से शरीर को वे सभी लाभ होते हैं जो उपर्युक्त अन्य दो मालिशों के सम्बन्ध में कहे गये हैं।

पीली सरसों का उबटन उत्तम है। दोनों हल्दी, लाल चंदन, अगर और गोदुग्ध के मिश्रण से भी अच्छा उबटन बनता है। हमारे घरों में साधारणतः सरसों का तेल, बेसन और हल्दी के योग से जो उबटन बनता है, उसका चलन बहुत है। विशेषकर बच्चों के उबटन में इसी उबटन का प्रयोग होता है। तेल कफ व वायु प्रकोप को रोकता है और त्वचा को कोमलता और बल प्रदान करता है। बेसन शरीर की दुर्गन्ध और मल को काट कर त्वचा को श्याम बनाता है, और हल्दी में त्वचा के सभी रोगों को दूर कर देने की शक्ति है। कदाचित इस उबटन के इन्हीं गुणों से प्रभावित होकर हमारे पूर्वजों ने विवाह पद्धति में एक विधि हल्दी उबटन नाम को भी प्रचलित कर रखा है।

okXHkV d nlj vè;k; e fy[kk g&

"उबटन से कफ और चर्बी कम हो जाता है। उबटन के प्रयोग से स्त्रियों को तो विशेष रूप से लाभ होता

है। अर्थात् उनके शरीर की कांति, प्रसन्नता, सौभाग्य, फुर्ती और हल्कापन आदि सभी बढ़ते हैं।"

बाजारी उबटनों का प्रयोग भूल से भी न करना चाहिए। उबटन के बाद भी स्नान और त्वचा पर तेल की चिकनाई को रगड़ – रगड़ कर पोंछ डालना उत्तम स्वास्थ्य की दृष्टि से आवश्यक है।

fdu & fdu n'kkvk e ekfy'k oftr g\

- जिस समय रक्त का तापमान बढ़ा हो उस समय भी मालिश नहीं करनी चाहिए।
- इसी प्रकार मालिश के विशेषज्ञों ने किसी बड़ी बीमारी के तुरन्त उठने के बाद मालिश करने की राय नहीं दी है।

vk;|o|n dk er g&

- जिसे आम सहित दोष हों, नवीन ज्वर हो, अजीर्ण हो, जुलाब लिए हो, जिसको उल्टी आती हो और एनिमा लिया हो उसके लिए तैल की मालिश वर्जित है। क्योंकि मालिश से नवीन ज्वर और अजीर्ण के रोगियों का रोग कष्ट साध्य और कभी–कभी असाध्य हो जाता है, और शेष अन्य रोगियों को मन्दाग्नि आदि कई विकार घेर लेते हैं।

bdkbxr i'u&5-3

1. मर्दन या मालिश किसे कहते हैं?

....

....

....

2. सही या गलत बताइए–

क) हल्के–हल्के ठोकना, सहलाना, दबाना, चिकोटी काटना, थपथपाना, गूथना, बेलना और जोड़ों को मसलना आदि मालिश के ही विविध रूप हैं। ( )

ख) सिर दर्द में कद्दूरोगन, बादाम रोगन या हल्के नीले रंग की बोतल के तेल की मालिश लाभ करती है। ( )

ग) कोई भी मालिश हो, 15–20 मिनट से अधिक देर तक भी कर सकते हैं। ( )

घ) पूरे शरीर की साधारण सूखी मालिश को अंग्रजी में "Dry Friction" स्नान कहते हैं। ( )

ङ) काली सरसों का उबटन उत्तम होता है। ( )

fVIi.kh

5-4 O;k;ke] vFkZ] mís'; vkSj vko';drk

O;k;ke dk vFkZ

व्यायाम का अर्थ है – शारीरिक परिश्रम। व्यायाम से शरीर स्वस्थ, सुडौल, मजबूत और कान्ति युक्त होता है। शरीर में उचित वृद्धि होती है।

जब हम जीवकोपार्जन हेतु दैनिक कार्य करते हैं तो यह श्रम कहलाता है। लेकिन जब इसे स्वास्थ्य को ध्यान में रखकर, शरीर को बलिष्ठ बनाने, विकास करने, और निरोगी बनाने हेतु किया जाता है तो इसे व्यायाम कहा जाता है।

O;k;ke dk eq[; mís'; gS &

- शरीर को सबल, सुदृढ़, और स्वस्थ बनाना ;
- सुंदर व आकर्षित बनाना ;
- शरीर की सफाई करना ;
- शरीर के अन्दर गति उत्पन्न करना ;
- अधिकाधिक ऑक्सीजन लेकर शरीर के अशुद्ध रक्त को शुद्ध करना आदि।

मनुष्य के लिए व्यायाम बहुत आवश्यक है। महात्मा गांधी ने भी एक जगह लिखा है– **Þftl çdkj Hkk[k yxus ij rqe dkÃ dke ugÈ dj ldrs mlh çdkj ge dljr dh ,slh iôh vknr Mky yuh pkfg, fd mlds fcuk fd, ge vkSj dkÃ dke gh u dj ldsAß**

हमारा भोजन हमारे शरीर रूपी यंत्र को ईंधन पहुँचाता है और व्यायाम उसके कल–पुरजों को ठीक हालत में रखता है और उनकी देखभाल करता है । यही भोजन और व्यायाम में परस्पर सम्बन्ध है ।

व्यायाम मनुष्य का ही नहीं प्राणी मात्र का एक प्राकृतिक गुण है । बिल्ली, कुत्ते तक अपने – अपने तरीके से व्यायाम करते देखे जा सकते हैं । दूध पीता बच्चा जब पालने में पड़ा–पड़ा अपने हाथ पांव चलाता रहता है, तो व्यायाम करने का वह उसका अपना तरीका होता है।

कुछ व्यायाम बहुत अच्छे और पहले से ही प्रचलन में हैं, जो इस प्रकार हैं;

1½ Vgyuk

सभी व्यायाम विदों ने एक स्वर से टहलने को सर्वोत्तम व्यायाम माना है। इस व्यायाम से बच्चे, जवान, बूढ़े, स्त्री तथा रोगी आदि सभी समान रूप से लाभान्वित हो सकते हैं। किसी प्रकार की असुविधा या हानि की इससे सम्भावना है ही नहीं। 40 वर्ष से ऊपर अवस्था वालों के लिए तो टहलने से बढ़कर और कोई दूसरा व्यायाम अधिक लाभकारी निश्चय ही नहीं है।

2½ rSjuk

fVIi.kh

लाभ की दृष्टि से तैरना दूसरे नम्बर का व्यायाम है। यह एक पूर्ण व्यायाम है। प्रसिद्ध व्यायामाचार्य प्रो. राममूर्ति की सफलता का एक रहस्य यह भी था कि वे नित्य दो घंटे तैरने का व्यायाम करते थे। तैरने से शरीर वीर्यवान तो बनता ही है, साथ ही साथ उसका वजन भी बढ़ता है। तैरने से सीना खूब चौड़ा हो जाता है और भुजाएं तथा जाघों की मांसपेशियां पुष्ट एवं मांसल बन जाती हैं। तैरते समय शरीर की त्वचा पर शीतल जल की निरन्तर थपकियां पड़ते रहने से शरीर की गर्मी सुव्यवस्थित हो जाती है और अनावश्यक उष्णता के निकल जाने से शरीर में ताजगी और शीतलता का अनुभव होने लगता है। हाथ, पैर तथा छाती के लिए तैरना एक उच्चकोटि का व्यायाम है। शरीर की वृद्धि करनी हो, उसके अंग–प्रत्यंग में सुडौलता लाकर उन्हें स्वस्थ और पुष्ट करना हो तथा शरीर को फुर्तीला और कान्तियुक्त बनाना हो तो बहती नदी में नित्यप्रति डेढ़–दो घन्टे जरूर तैरना चाहिए।

यह वह व्यायाम है जो कमजोर को शक्तिशाली और ताकतवरों को उत्तम स्वास्थ्य और सुडौलता प्रदान करके उसे संरक्षित रखता है। यह मोटे व्यक्तियों को पतला करता है और पतले लोगों के शरीर को पुष्ट करता है। यही वह व्यायाम है जो टहलने की भांति ही पुरुष, महिला, बच्चा, बूढ़ा, जवान सबके लिए समान रूप से लाभ पहुंचाता है और जिसके करने से किसी प्रकार की हानि नहीं होती। पूरे बदन पर सरसों के तेल को अपने हाथों मालिश करके तैरना अधिक लाभकारी सिद्ध होता है। तैरना ही वह व्यायाम है जिससे व्यायाम और स्नान दोनों का लाभ साथ–साथ मिलता है।

किसी कुशल तैराक से तैरने की कला अच्छी तरह सीख लेने के बाद ही इस व्यायाम का अभ्यास करना चाहिए।

तैरना दो प्रकार का होता है – एक निष्क्रिय और दूसरा सक्रिय।

निष्क्रिय तैरना वह है जिसमें तैरने वाला हाथ पैर ढीला करके पानी पर चित लेट जाया करता है या सिर्फ पैर के सहारे खड़े होकर तैरता रहता है। सक्रिय वह है जिसमें हाथ पैर की मदद लेनी पड़ती है। निष्क्रिय तैरना, सक्रिय तैराकी सीख लेने के बाद ही सीखना चाहिए।

व्यायाम के लिए सक्रिय तैराकी ही उत्तम है इसमें सिर ऊपर उठा रहता है। दोनों हाथ एक साथ सामने बढ़ते हैं और दोनों तरफ हाथ के पंजो से पीछे की तरफ पानी काटते हुए आगे बढ़ जाता है। दोनों पैरों को मोड़ कर पेट तक ले जाना होता है। फिर पैर को फैलाते हुये पीछे की ओर फेंकना होता है। उसी प्रकार जिस प्रकार मेंढ़क करता है। इस प्रकार तैरने से पूरे शरीर का अच्छा व्यायाम हो जाता है।

3½ nMM & cBd

दंड बैठक भी एक सर्वांगपूर्ण व्यायाम है। इस सरल और परमपयोगी व्यायाम का आविष्कार करने वाला व्यायाम शास्त्र का कोई धुरन्धर विद्वान रहा होगा इसमें कोई शक नहीं। अंग्रेजी Floor dip इसी व्यायाम की नकल है। दंड से सीने, पीठ की रीढ़, हाथों और गर्दन का व्यायाम, तथा बैठक से पेट और जांघों का

व्यायाम होता है। इसके अतिरिक्त इन व्यायामों से तमाम आन्तरिक अवयव जैसे हृदय, फेफड़े, यकृत, आमाशय आदि भी स्वस्थ होकर उचित प्रकार से काम करने लगते हैं। यकृत पर तो दंड का बड़ा ही अच्छा प्रभाव पड़ता है। मेरूदण्ड और कमर का भी दंड से अति उत्तम व्यायाम हो जाता है। और यह गलत नहीं है कि ये दोनों अंग शरीर के आधार के साथ–साथ उसकी शक्ति के भी आधार हैं।

4) कुश्ती

मल्लयुद्ध या कुश्ती को भारतीय व्यायाम पद्धति में व्यायामों का सम्राट माना गया है। इसमें शरीर के सब अंग काम करते है, यहाँ तक कि मस्तिष्क भी, और दो व्यक्तियों के जोड़ तथा एक अखाड़े के योग से यह व्यायाम सम्पन्न होता है।

5) मग्दर हिलाना

इससे हाथ के पुटठों, बाजू तथा छाती का समुचित व्यायाम होता है।

मल खम्भ की कसरत, लेजिम, गदा चलाना, गोला उठाना, लाठी चलाना, जमीन खोदना, नाव चलाना, कपड़े धोना आदि ये सब भी भारतीय व्यायाम पद्धतियां हैं, जिनकी अपनी–अपनी विशेषताएँ हैं।

6) घोड़े की सवारी

यह एक उत्तम व्यायाम पद्धति है पर सिर्फ अमीरों के लिए कारण– सर्व साधारण के लिए इस व्यायाम के लिए घोड़ा रखना सम्भव नहीं है। घोड़े की सवारी करने से सवार के शरीर में एक प्रकार का कम्पन होता है जिससे रक्त स्वच्छन्द रूप से सारे शरीर में फैलता जाता है। घोड़े की सवारी में मुख्यतः जांघों का अच्छा व्यायाम हो जाता है।

7) दौड़ना

दौड़ना भी एक अच्छी कसरत है। इसे पहलवान भी क्षमता बढ़ाने का अच्छा तरीका मानते हैं। दौड़ने से पैरों के पुट्ठों की पूरी कसरत हो जाती है। श्वास – प्रश्वास के चलने में तेजी और गहराई आ जाने से फेफड़े विकार रहित होकर मजबूत बनते हैं।

8) खेलना

खुले मैदान में मनोरंजक खेल जिनसे व्यायाम के सारे लाभ अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं, बड़े महत्त्वपूर्ण होते हैं। आनन्द स्वयं एक बलदायक रसायन है। इसलिए खेल वाले व्यायाम बड़े उपयोगी सिद्ध होते हैं। कबड्डी, खोखो, आदि देशी खेल तथा बैडमिन्टन, हाकी, फुटबाल, क्रिकेट, टेनिस, बेसवाल, वॉली बाल, ड्रिल,

ok;| rRo fpfdRlk] fofHkUu fofèk;k ,o vuç;kx

जिम्नास्टिक, शिकार करना, रायफल चलाना और गोल्फ आदि विदेशी खेलों से व्यायाम के अधिकांश लाभ प्राप्त हो जाते हैं।

9½ cxhp e dke djuk

व्यायाम–विशारदों ने बगीचे के विविध प्रकार के काम जैसे पेड़ के थालों को खोदना, उन में पानी देना आदि को भी व्यायाम माना है।

10½ uR; djuk

नाचना भी एक प्रकार का एक मृदु व्यायाम है, जो अन्य नीरस तथा कर्त्तव्य–पालन के रूप में की जाने वाली कसरतों के विपरीत अपना एक विशेष महत्व रखता है। नृत्य में जो शारीरिक अंग – संचालन और दमदारी की आवश्यकता पड़ती है, वही शरीर के लिये एक अच्छे से अच्छा व्यायाम है। नृत्य व्यायाम से व्यायाम का लाभ तभी उठाया जा सकता है जब उसे नित्य क्रिया में शामिल कर लिया जाये । यदा–कदा नाचने से व्यायाम का लाभ नहीं हो सकता।

11½ xkuk

संगीत, गाना व गायन दूसरे प्रकार का मृदु व्यायाम है। इसके अभ्यासियों का फेफड़े के बहुत सुन्दर व्यायाम हो जाता है, जिससे वे रोग रहित बनते हैं। यों दौड़, कुश्ती आदि उग्र व्यायामों में श्वास की गति तेज हो जाने से फेफड़ों की कसरत हो जाती है पर गायन द्वारा जो फेफड़ों का मृदु व्यायाम देर तक होता रहता है, उसके गुण अनुपम होते हैं। उग्र व्यायामों से प्रायः फेफड़ों का व्यायाम जरूरत से ज्यादा हो जाता है जो कभी–कभी व्यायामी के असमय में ही मृत्यु का कारण होता है। पर गायन द्वारा जो फेफड़ों की हल्की–हल्की कसरत होती है, वह आवश्यकता से अधिक हो ही नहीं पाती।

डॉ. एडवर्ड पोडोलास्की न्यूयार्क के एक प्रसिद्ध चिकित्सक और गायक हैं। उनका कहना है कि गाने से रक्त संचालन बढ़ जाता है, शिराओं में नवजीवन आ जाता है तथा शरीर के विजातीय तथा विषैले पदार्थ दूर हो जाते हैं। गाने वालों में फुफ्फुस और कलेजे सम्बन्धी रोग बहुत कम पाये जाते हैं। पाश्चात्य देशों में यकृत सम्बन्धी रोगों को दूर करने के लिए संगीत से मदद ली जाने लगी है।

डॉ. वाल्टर एच. वालसे का कथन है कि, पांडु तथा यकृत सम्बन्धी शिकायतों और अपच में संगीत का व्यायाम अधिक लाभप्रद सिद्ध होता है। संगीत में पौष्टिक भोजन पचाने की विचित्र शक्ति होती है। यह बात भी सिद्ध हो चुकी है कि संगीत बच्चों के लिए विशेष रूप से क्षुधा बढ़ाने वाला होता है। एक डाक्टर का कहना है कि गाने वाले लड़कों को घोड़ों की तरह बहुत भूख लगती है और सारस पक्षी की तरह खाया हुआ भोजन सहज ही में पच जाता है। डॉ. लीक का कहना है कि संगीत के समान शरीर के प्रत्येक अंग पर अच्छा और शीघ्र प्रभाव डालने वाली संसार में कोई दूसरी चीज नहीं है।

fVIi.kh

bdkbZ xr iz'u&5-4

1. व्यायाम का अर्थ है–

....

....

2. व्यायाम के दो मुख्य उद्देश्य हैंः

....

....

3. व्यायाम के कोई चार प्रकार लिखिए–

....

....

vkius D;k lh[kk

इस इकाई (यूनिट) का अध्ययन करने के पश्चात् आपने सीखा कि –

- पंचतत्वों के क्रम में वायु द्वितीय आवश्यक तत्व है।
- जल जीवन है, तो वायु प्राणियों का प्राण है, यदि क्षण भर भी हमें वायु न मिले तो हम बेचैन हो उठते हैं और अधिक देर तक वायु न मिले, तो प्राणान्त हो जाता है।
- शरीर में जब वायु तत्व असंतुलित होता है, तो प्राणी रोगी हो जाता है। शरीर में वायु तत्व को संतुलित रखना, वायु तत्व चिकित्सा कहलाती है।
- वायु चिकित्सा की मुख्य रूप से दो विधियां हैं – वायु स्नान और वायु सेवन।
- वायु सेवन में विशेष रूप से योगासन, प्राणायाम, मुद्राएँ, शरीर मर्दन या मालिश, व्यायाम, आदि सम्मिलित हैं।
- वायु स्नान, नंगे बदन अधिक उपयोगी होता है। इस हेतु ब्रह्ममुहूर्त में कम से कम वस्त्रों को धारण करके भ्रमण हेतु निकलना चाहिए तथा सूर्योदय से पूर्व भ्रमण पूर्ण कर लेना चाहिए।
- पवन स्नान से शरीर की बाहरी और आंतरिक सफाई साथ – साथ होती है। इससे शरीर की त्वचा स्वस्थ, लचीली और कोमल हो जाती है।

ok;q rRo fpfdRlk] fofHkUu fof/k;k ,oa vuqç;ksx

- शरीर में जीवनी– शक्ति को बनाये रखने वाली वायु का नाम प्राण वायु है।
- यह स्नान जीवन शक्ति को सुदृढ़ बनाता है और शारीरिक सहन – शक्ति को बहुत अधिक बढ़ा देता है। इससे मनुष्य की शारीरिक और मानसिक – दोनों प्रकार के स्वास्थ्य की उन्नति होती है।
- पवन स्नान से दिमागी ताकत बड़ी शीघ्रता से बढ़ती है । इससे मनुष्य की मानसिक दृष्टि निर्मल और तीव्र हो जाती है।
- वायु सेवन के विभिन्न साधन हैं; जैसे –
  - योग आसन – विभिन्न प्रकार के योगासनों के माध्यम से वायु का सेवन किया जाता है।
  - श्वास–प्रश्वास की क्रिया और प्राणायाम – श्वास–प्रश्वास की क्रिया और विभिन्न प्रकार के निर्देशित प्राणायामों के माध्यम से वायु का सेवन किया जाता है।
  - विभिन्न प्रकार के व्यायाम – विभिन्न प्रकार के व्यायाम जैसे – खेलना, टहलना, तैरना, साइकिल चलाना, नृत्य करना, दौड़ लगाना आदि के माध्यम से वायु का सेवन किया जाता है।
  - शरीर मर्दन व मालिश के द्वारा वायु का सेवन किया जाता है।

bdkbZ ds vUr esa iz'u

1. वायु तत्व चिकित्सा की मुख्य विधियाँ बताते हुए पवन स्नान की विधि, महत्त्व, पश्चात् कर्म, लाभ व सावधानियाँ लिखिए।
2. मर्दन किसे कहते हैं? मर्दन का संक्षिप्त इतिहास बताते हुए मर्दन के गुण एवं इसके द्वारा की जाने वाली चिकित्सा लिखिए।
3. मालिश के मुख्य सिद्धांत बताइए तथा सावधानियों पर प्रकाश डालिए।
4. व्यायाम के अर्थ और मुख्य उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए इसके विभिन्न प्रकारों का वर्णन करिए।
5. संक्षिप्त नोट लिखिए–

   क) शुष्क मर्दन

   ख) स्निग्ध मर्दन

   ग) उबटन

   घ) तैरना

fVIi.kh

bdkbZxr iz'uksa ds mÙkj

5-1

1. क) वायुमण्डल ख) 14 से 18 ग) 60 घन
   घ) ऑक्सीजन ङ) प्रकाश और ताप च) ओजोन (ozone)

5-2

1. प्राकृतिक चिकित्सा में वायु तत्व के माध्यम से की जाने वाली चिकित्सा, वायु तत्व चिकित्सा कहलाती है।
2. वायु तत्व चिकित्सा में वायु स्नान और वायु सेवन जिसमें विशेष रूप से योगासन, प्राणायाम, मुद्राएँ शरीर मर्दन या मालिश, व्यायाम, आदि सम्मिलित हैं।
3. i) पवन स्नान से शरीर की बाहरी और आंतरिक सफाई साथ–साथ होती है।
   ii) यह स्नान जीवन शक्ति को सुदृढ़ बनाता है और शारीरिक सहन–शक्ति को बहुत अधिक बढ़ा देता है।
4. योगासन, श्वास–प्रश्वास की क्रिया, प्राणायाम, विभिन्न प्रकार के व्यायाम, शरीर मर्दन व मालिश

5-3

1. पूरे शरीर अथवा किसी विशेष अंग का एक विशेष विधि से शुष्क या स्निग्ध घर्षण करना मर्दन या मालिश कहलाता है।
2. क) सही ख) सही ग) गलत घ) सही ङ) गलत

5-4

1. व्यायाम का अर्थ है– शारीरिक परिश्रम। व्यायाम से शरीर स्वस्थ, सुडौल, मजबूत और कान्ति युक्त होता है। शरीर में उचित वृद्धि होती है।
2. i) शरीर को सबल, सुदृढ़, और स्वस्थ बनाना
   ii) शरीर को सुंदर व आकर्षित बनाना
3. टहलना, तैरना, दंड–बैठक, कुश्ती, मुग्दर हिलाना, घोड़े की सवारी, दौड़ना, गाना आदि।

6

अग्नि तत्व चिकित्सा, विभिन्न विधियाँ एवं अनुप्रयोग

पिछली इकाई (यूनिट) में हमने वायु तत्व चिकित्सा और उसकी विभिन्न विधियों के बारे पढ़ा, साथ ही उनके अनुप्रयोग के विषय में सीखा। आइए! अब अग्नि तत्व चिकित्सा के विषय में जानते हैं। **vfXu lf"V d miknku ip rRok e rhljk mi;kxh rRo gA** अग्नि को अग्नि देव मानकर उसकी पूजा–अर्चना का विधान शास्त्र रचनाकारों ने बताया है।

यह सत्य है कि जो व्यक्ति सूर्य प्रकाश का जितना ही अधिक सेवन करता है उसकी मानसिक शक्ति उतनी ही विकसित होती है। सूर्य प्रकाश के सेवन से मस्तिष्क में एक प्रकार की विद्युत– चुंबकीय शक्ति आती है जो मनुष्य को बुद्धिमान बनाती है। हमारे पूर्वज ऋषि–मुनि इसी सूर्य उपासना के द्वारा ही बुद्धिशाली बने। इससे यह तो अवश्य स्पष्ट हो जाता है कि, सूर्य सभी रोगों का नाश करने वाले हैं। प्राकृतिक रूप से सूर्य (अग्नि) द्वारा चिकित्सा कैसे की जाती है, इसके व्यावहारिक रूप का अध्ययन हम इस इकाई (यूनिट) में करेंगे।

mís';

इस इकाई (यूनिट) का अध्ययन करने के पश्चात् आप –

- अग्नि तत्व चिकित्सा एवं इसके महत्व पर प्रकाश डाल सकेंगे;
- प्रकाश विश्लेषण एवं रंग चिकित्सा का वर्णन कर सकेंगे;

fVIi.kh

- धूप स्नान चिकित्सा की विभिन्न विधियों का उल्लेख कर सकेंगे;
- सूर्य की सप्त रश्मियों द्वारा की जाने वाली चिकित्सा की मुख्य विधियों को व्यवहार में ला सकेंगे।

6-1 vfXu rRo fpfdRlk ,oa egRo

अग्नि सृष्टि के उपादान पंच तत्वों में तीसरा उपयोगी तत्व है। परंतु दृष्ट तत्वों (अग्नि, जल और पृथ्वी) में प्रमुख दृश्य तत्व अग्नि ही है। आकाश और वायु तो महतत्व (सबका आदि कारण ईश्वर) की तरह ही अदृश्य तत्व हैं। अग्नि को अग्नि देव मानकर उसकी पूजा–अर्चना का विधान शास्त्र रचनाकारों ने बताया है। ऋग्वेद के प्रथम मंत्र "अग्नि मीडे पुरोहितं" आदि में ईश्वर के प्रत्यक्ष रुप अग्नि की प्रार्थना की गई है। गायत्री मंत्र में भी जो भगवत रूप महामंत्र (मूल मंत्र) है, इस तत्व के अधिष्ठाता सूर्य की ही उपासना है। धार्मिक रुचि से हिंदू और पारसी आज भी सूर्य को देवता मानते हैं, और नियम पूर्वक उनकी पूजा करते हैं। अग्नि तत्व की प्राप्ति सूर्य से ही होती है।

सूर्य केवल प्रकाश और गर्मी नहीं देता बल्कि वह बुद्धि और दीर्घायु भी प्रदान करता है। यथा–

^^lforkuq% lforq lokZrhra lforkuks jklrkanh?kkZek;q%A^^

अर्थात् यह श्रेष्ठ प्रकाश जो विश्व को प्रकाशित कर रहा है हमें सद्बुद्धि और दीर्घायु प्रदान करें।

यह सत्य है कि जो व्यक्ति सूर्य प्रकाश का जितना ही अधिक सेवन करता है उसकी मानसिक शक्ति उतनी ही विकसित होती है। सूर्य प्रकाश के सेवन से मस्तिष्क में एक प्रकार की विद्युत– चुंबकीय शक्ति आती है जो मनुष्य को बुद्धिमान बनाती है। हमारे पूर्वज ऋषि–मुनि इसी सूर्य उपासना के द्वारा ही बुद्धिशाली बने। इस महत्व को आप निम्नांकित प्रार्थना से ही समझ सकते हैं।

ue% lw;kZ; 'kkUrk;, loZ jksx foukf'kusA
vk;qjkjksX;a ,s'o;Z nsfg nso ueksLrqrsAA

अर्थात् शांति प्रदान करने वाले, सर्व रोग नाश करने वाले, सूर्य भगवान को नमस्कार है। हे ! सूर्य देव आयु, आरोग्य और ऐश्वर्य हमें प्रदान करें। आपको नमस्कार है।

अग्नि तत्व से शेष चारों तत्व (आकाश, वायु, जल व पृथ्वी) तृप्त होते हैं। इसी से संसार में सौंदर्य है, जीवन है। इसी से फूल खिलते हैं, इसी से फल परिपक्व होते हैं, औषधियों में पृथक–पृथक गुण उत्पन्न होते हैं। इसी से समुद्र का जल बादल बनकर पृथ्वी को सिंचित करता है। इसी से हमारे सारे कल–कारखाने चलते हैं। इसी से हमारा भोजन पचता है।

सुख–दुख, पाप–पुण्य, काम–क्रोध, लोभ, मोह, प्रीति, भक्ति आदि सभी प्रवृतियां और संस्कार भी सूर्य रश्मियों के सहयोग से ही उत्पन्न होते हैं।

अग्नि तत्व के शरीर में अभाव के कारण शरीर निर्जीव हो जाता है और कमी के कारण शरीर में सुस्ती,

संकुचन, सर्दी की सूजन, वायु जनित पीड़ाएँ, पक्षाघात, गठिया, बुढ़ापे की कमजोरी, मंदाग्नि, निद्रा की अधिकता, कोष्ठ बद्धता तथा ठंडा आदि के उपद्रव प्रारंभ हो जाते हैं, और आँख, नख, जिह्वा, विष्ठा तथा पेशाब लाल, पीले या काले रंग के हो जाते हैं। मुँह का स्वाद खट्टा, कड़वा हो जाता है, स्वभाव तेज और क्रोधी हो जाता है, तथा दुबलापन, अंग–अंग में खुश्की और प्यास की अधिकता आदि रोग लग जाते है।

6-1-1 çdk'k vkj rst dk mnxe lw;Z vkj lk;Z eMy

सूर्य समस्त खगोल मंडल में सबसे अधिक प्रकाशपूर्ण एवं आकार में सबसे विशाल है। ऋग्वेद के विष्णु सूत्र के विद्वान रचयिता ने सूर्य की प्रशंसा करते हुए उनको जगत नियंता विष्णु के समकक्ष रखा है। सूर्य को अन्यत्र स्थान पर विश्वात्मा कहा गया है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार सूर्य के चारों तरफ शेष सब ग्रह परिक्रमा करते हैं, और अपनी–अपनी किरणें पृथ्वी पर प्रसारित करते हैं। पुराण में सप्त रश्मियों को जो कि सूर्य प्रकाश के ही सात रंग हैं, सप्तमुखी घोड़ा बताया गया है। ये सात रंग एकत्र होने से श्वेत रंग उत्पन्न होता है। इसी कारण सूर्य की किरणें श्वेत दिखाई देती हैं। स्वयं सूर्य का रंग पारे के समान श्वेत है। सूर्य प्रकाश या ताप की प्रभा नहीं बल्कि प्रकाश और ताप का उद्गम स्थल है, और नाना प्रकार की शक्ति उत्पन्न करता है। सूर्य रश्मि अनंत हैं परंतु मूल प्रभाव एक ही है जो शुक्ल वर्ण है, शुक्ल से सर्वप्रथम सात रंग मिश्रित प्रथम स्तर का आविर्भाव होता है। सूर्य के चारों ओर चंद्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु (परछाई मात्र) परिभ्रमण करते हैं। उपर्युक्त सभी ग्रह सूर्य के चारों तरफ घूमते हुए उससे अपने–अपने रंग प्राप्त करते हैं। जब इन ग्रहों की निजी रंगीन किरणें सीधी या तिरछी होकर और सूर्य की किरणों से टकराकर पृथ्वी पर पड़ती हैं तब सूर्य रश्मियों में इन ग्रहों की अतिरिक्त रंगीन किरणों के मिल जाने के कारण पृथ्वी या उस पर रहने वाले जीवधारियों और मनुष्य आदि पर किसी ग्रह विशेष के अतिरिक्त रंगीन किरणों की पड़ने का प्रभाव पड़ता है। सूर्य राश्मियों की पृथ्वी पर आने में जब किसी प्रकार की बाधा आती है तो संसार में नाना प्रकार की उथल–पुथल होने की संभावना उत्पन्न हो जाती है। उदाहरणार्थ सूर्य प्रकाश के भूमि पर आते समय उसकी किरणों के मार्ग में यदि मंगल ग्रह आ जाए तो पृथ्वी पर लाल किरणे आपतित होंगी परिणामतः पृथ्वी के उस भाग में रहने वाले प्राणी गर्मी से उत्पन्न होने वाले रोगों जैसे हैजा, चेचक, मूर्च्छा आदि से आक्रांत हो जाते हैं, अर्थात् महामारी फैल जाती है। इसी सिद्धांत के अनुसार जब किसी समय सूर्य की लाल किरणें अधिक परिणाम में एक ही स्थान पर एकत्र हो जाती हैं तो भूकंप आदि उत्पन्न होते हैं। और जब मिट्टी, क्षार, चारकोल, तथा धूलकण आदि के परमाणु वायु के साथ उड़ते हुए किसी अन्य ग्रह या दो विभिन्न ग्रहों के पास पहुंच जाते हैं और ये सब सूर्य की किरणों को पृथ्वी पर आने नहीं देते तो अकाल पड़ता है, अतिवृष्टि होती है, या संक्रामक रोगों को पैदा करने वाले कीटाणुओं की उत्पत्ति होती है।

चेतन या जड़ जो कुछ भी पृथ्वी पर है उन सब की शक्ति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सूर्य द्वारा ही प्राप्त होती है। जिन वस्तुओं पर सूर्य रश्मियां पड़ती हैं उन पर वे हितकर प्रभाव डालती हैं, और जिन पर नहीं पड़ती हैं उन पर अहितकर जो शाक, हरी सब्जियां धूप में उत्पन्न होती है वह अंधकार में पैदा होने वाली सब्जियों से अधिक गुणकारी होती हैं। जो गायें धूप में घूम कर चरागाहों में चरती हैं उनका दूध अधिक गुणकारी होता है।

fVIi.kh

• l;Z çdk'k

सौर ऊर्जा का प्रयोग चिकित्सा के रूप में शताब्दियों से आदिकालीन मानव करते रहे हैं। इसका प्रमाण वेदों में मिलता है। सूर्य किरणों में विभिन्न रोगाणुओं को नष्ट करने की अद्भुत क्षमता है। उपर्युक्त निष्कर्ष विभिन्न देशों में किए गए अनेक प्रयोगों से निकाले गए हैं। आज तो सूरज से प्राप्त अनंत ऊर्जा का वैज्ञानिकों ने विभिन्न रूपों में प्रयोग शुरु कर दिया है। ऊर्जा संकट को देखते हुए वैज्ञानिकों के प्रयास से भविष्य में भौतिक जीवन की सारी गतिविधियां सौर ऊर्जा से ही संचालित होंगी। चिकित्सा के रूप में सौर ऊर्जा (अग्नि तत्व) विभिन्न विधियों द्वारा काम में लाई जाती है।

प्रातः काल 8:00 बजे से पूर्व तथा सायंकाल 5:00 बजे के पश्चात् वायुमंडल तथा ओजोन की परत मोटी होती है। अधिकांश हानिकारक अल्ट्रावायलेट किरणें मोटी ओजोन परत द्वारा अवशोषित कर ली जाती हैं। यही कारण है कि प्रातः कालीन सायं काल की धूप स्वास्थ्यदायिनी होती है। तेज धूप को केले के पत्ते, पानी तथा रंगीन कांच के परतों से पार कराकर उनकी स्वास्थ्यदायिनी पराबैंगनी किरणों को स्वास्थ्य पर पड़ने देना चाहिए। इन परतों से घातक किरणें अवशोषित हो जाती हैं, या परिवर्तित हो जाती हैं। पारसी एवं भारतीय संस्कृति तथा परंपरा में सूर्य पूजन एवं अर्घ (जल) देने का वैज्ञानिक कारण यही रहा है। सूर्य की रश्मियां हमारे स्वास्थ्य एवं जीवन को निम्न तीन प्रक्रियाओं द्वारा प्रभावित करती हैं।

1) प्रकाश रासायनिक प्रतिक्रिया द्वारा (by Photochemical Reaction)

2) प्रकाश तापीय प्रभाव द्वारा (by Photo Thermal or Heating effect)

3) प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया द्वारा (by Photosynthesis)

सूर्य की अल्ट्रावायलेट विकिरण के प्रभाव से त्वचा के अंतः भाग में स्थित डाईहाइड्रोक्लोरोस्टिरोल, आर्गो स्टीरोल, कैल्शियम तथा फास्फोरस की उपस्थिति में प्रोविटामिन डी कैलसिफेरोल का संश्लेषण एवं स्राव तेजी से होता है। विटामिन डी हार्मोन का भी काम करती है। आवश्यकता अनुसार प्रोविटामिन डी कैलशिफ्रोल ही विटामिन डी में रूपांतरित हो जाता है। विटामिन डी कैल्शियम तथा फास्फोरस के कार्य अंतर संबंधित हैं। ये तीनों मिलकर अस्थियों के निर्माण एवं अन्य अनेक कार्यों को संपादित करते हैं। इनकी कमी से रिकेट्स, ओस्टियो मलेशिया, कमर की हड्डी का भंगुर होना आदि अनेक अस्थि संबंधित विकृतियां दिखती हैं।

सूर्य की अल्ट्रावायलेट किरणों के प्रभाव से पीनियल, पिट्यूटरी तथा अन्य अंतः स्रावी ग्रंथियां प्रभावित होती हैं। जिन लोगों में त्वचा की एपिडर्मिस का कार्नियम स्तर जितना अधिक मोटा होता है उनमें सूर्य किरण का दुष्प्रभाव कम देखने को मिलता है। मोटा कार्नियम स्तर हानिकारक अल्ट्रावायलेट किरणों को एपिडर्मिस के मालपिघियन स्तर तक पहुंचने नहीं देती, उन्हें अपने में अवशोषित कर लेती हैं। जिन लोगों में कार्नियम स्तर जितना मोटा होता है उनकी त्वचा उतनी ही काली होती है। काली तथा सांवले लोगों की त्वचा इसी गुण के कारण सूर्य किरणों के प्रति ज्यादा सहनशील एवं सुरक्षित रहती है। जबकि गोरे लोगों की त्वचा सूर्य किरणों के प्रति ज्यादा संवेदनशील एवं क्षीण प्रतिरोधक होती है।

vfXu rRo fpfdRlk] fofHkUu fof/k;k ,oa vuqiz;ksx

सूर्य किरण की अल्ट्रावायलेट किरणें त्वचा की रंजक कोशिकाओं को उत्तेजित कर मिलेनिन नामक रंजक काफी मात्रा में निर्मित करती हैं फलतः त्वचा का रंग गहरा होने लगता है। जिस वातावरण में सूर्य किरण पर्याप्त मात्रा में मिलती है ऐसे देश के लोग गहरे व काले रंग के होते हैं। समशीतोष्ण वातावरण के लोग गेहुएं तथा जहां सूर्य प्रकाश कम मिलता है ऐसे ठंडे प्रदेश के लोग गोरे व पीले रंग के होते हैं। ठंडे प्रदेश के गोरे लोगों में गर्म प्रदेश में रहने से त्वचा के रंग में अंतर आने लगता है। अधिक अल्ट्रावायलेट विकिरण के कारण वह किंचित गेहुएं रंग के हो जाते हैं।

fVIi.kh

bdkbxr iz'u&6-1

रिक्त स्थान भरिए–

1) अग्नि सृष्टि के उपादान पंच तत्वों में .... उपयोगी तत्व है।

2) अग्नि तत्व की प्राप्ति .... से होती है।

3) .... किरणों के द्वारा त्वचा संबंधी रोग होते हैं।

6-2 çdk'k fo'ys"k.k ,oa jax fpfdRlk

प्रकाश की किरणें आकाश में विद्युत की लहरों तरंगों द्वारा कंपन को जन्म देती है, जिसका अनुभव नेत्रों द्वारा हमारे शरीर की सूक्ष्म नाड़ियों को प्राप्त होता है। प्रकाश बाह्य रूप में भौतिक होते हुए भी सूक्ष्म ही है। प्रकाश को यदि प्रकृति का उत्साह कहा जाए तो अधिक युक्तिसंगत होगा। यदि सूर्य के प्रकाश को हम प्रिज्म के अंदर से गुजारें तो प्रकाश सात रंगों में विभाजित हो जाता है। इस विश्लेषित सप्तरंगी प्रकाश को अंग्रेजी में स्पेक्ट्रम कहा जाता है। स्पेक्ट्रम के एक सिरे पर लाल और दूसरे सिरे पर बैगनी रंग आँखों को दिखता है। स्पेक्ट्रम में सात रंग ही दिखते हैं इसका तात्पर्य यह नहीं कि सूर्य प्रकाश केवल इन्हीं सात रंगों की रश्मियों से बना है। स्पेक्ट्रम के दोनों सिरों के बाहर भी कुछ किरणें होती हैं, जिनका रंग देखने में हमारी आँखें असमर्थ होती हैं। बैंगनी सिरे से परे वाली अदृश्य किरणों को निलोत्तर किरणें या अल्ट्रावायलेट किरणें और लाल किरणों से आगे वाली अदृश्य किरणों को इंफ्रारेड किरणें या अवरक्त किरणें कहते हैं। इन दो अदृश्य किरणों के अतिरिक्त भी और कई अदृश्य किरणें होती हैं जिनमें कुछ की खोज वैज्ञानिकों ने कर ली है और बाकी पर शोध अनवरत चल रहा है।

वैज्ञानिक भाषा में अदृश्य गर्मी की किरणों को इंफ्रारेड किरण अथवा तीव्र लाल किरण या अवरक्त किरण कहते हैं। इनका प्रभाव हमारे स्वास्थ्य पर कम पड़ता है। यह किरणें पृथ्वी में बहुत दूर तक प्रवेश करती हैं और वनस्पति जगत को जीवन प्रदान करती हैं। इनका प्रभाव हमारे चर्म भाग पर भी पड़ता है। रक्त की कमी, अंगों की सूजन, संक्रामक रोग, गठिया–वात, रक्त की स्थानीय अधिकता, आदि में लाभ करती हैं। पर इन किरणों को इनके अदृश्य होने के कारण जब चाहे तब हमें यह उपलब्ध नहीं होती हैं। फिर भी कुछ कृत्रिम यंत्रों की सहायता से इन किरणों का उपयोग चिकित्सा में किया जाता है।

fVIi.kh

i) yky jax fpfdRlk

सूर्य रश्मि पुंज में 80% केवल लाल किरणें और अवरक्त किरणें होती हैं। यह गर्मी की किरणें होती हैं, जिनको हमारे त्वचीय भाग शत–प्रतिशत अवशोषित कर लेते हैं। स्नायु मंडल को उत्तेजित करना इनका विशेष कार्य है। लाल रंग के कमरे में बैठकर खाने से पाचन असामान्य हो जाता है, और पेट के अनेकों रोग उत्पन्न हो जाते हैं। लाल रंग गर्मी बढ़ाता है यही कारण है कि जाड़ों में हम लाल रंग के अस्तर के रजाइयां प्रयोग करते हैं। रक्तहीनता तथा गठिया आदि रोगों में लाल कपड़े पहनना लाभदायक होता है। जिस व्यक्ति का हृदय दुर्बल हो उसे लाल रंग के वस्त्र नहीं पहनने चाहिए। जिस व्यक्ति के पांव सदैव ठंडे रहते हों वह लाल रंग के मोजे का उपयोग लाभ के हेतु कर सकता है। यह रंग चंचलता उत्पन्न करता है, और स्वभाव में प्रखरता लाता है। परंतु गुलाबी रंग प्रेम का प्रतीक है।

- लाल रंग वायु से जोड़ों के दर्द, सर्दी के दर्द, सूजन, मोच, लकवा, शीतांग आदि स्नायु मंडल के सभी रोगों में लाभकारी है। इससे असमर्थ और विकलांग मनुष्य भी स्वस्थ हो जाते हैं।
- यह रंग विद्युत गुण वाला भी होता है।
- शरीर के निर्जीव भाग को चेतना प्रदान करने में अद्वितीय है। शरीर के किसी भाग में यदि गति ना हो तो लाल प्रकाश डालने से उस भाग में चेतना आ जाती है।
- कुछ विशेष रोगों में ही लाल किरण तप्त जल पीने के काम में आता है। इस जल को बहुत सोच समझकर उपयोग करना चाहिए। यह विशेषकर मालिश करने या शरीर के बाहरी भाग में लगाने या पट्टी देने के काम में आता है।
- यह जल एलोपैथी में प्रयुक्त आयोडीन से भी अधिक गुणकारी है। यदि भूल से यह जल पी लिया जाए तो खून के दस्त तथा उल्टी होने का भय रहता है।
- कुछ रोगों में यह अन्य रंगों के साथ मिलाकर पीने को भी दिया जाता है।

yky jax vk[kksa esa ugha iMuk pkfg,] vU;Fkk vk[kksa dks uqdlku gks ldrk gSA

- शरीर में लाल रंग की कमी से सुस्ती अधिक होती है, निद्रा अधिक सताती है, भूख घट जाती है तथा कब्ज भी रहता है। नेत्र और नाखून नीले या काले हो जाते हैं तथा मल का रंग नीला या काला हो जाता है।
- शरीर में लाल रंग की वृद्धि से त्वचा में सूजन आ जाती है और गर्मी के विकार उत्तपन्न हो जाते हैं।
- लाल रंग बढ़ाने से नीला रंग या उसका प्रभाव कम हो जाता है। सूर्य किरण चिकित्सा में पित्त का रंग लाल माना गया है।
- विषम ज्वर के आरंभ में आधा लाल–आधा गहरा नीला तप्त जल अवश्य देना चाहिए। हैजे की अवस्था में भी यह जल 15 ग्राम किंतु एक बार पिलाना आवश्यक है। असाध्य सन्निपातिक दस्त में भी लाल 2 भाग़ गहरा नीला 1 भाग मिलाकर प्रति घंटे 25 ग्राम पिलाने से अत्यधिक लाभ होता है। पेट में कीड़े

होने और दर्द होने पर लाल रंग 1 भाग गहरा नीला 4 भाग दिन में चार बार 25 ग्राम मात्रा में देना लाभदायक है।

- लाल किरण तेल की मालिश किसी रोग के कारण कड़े–पड़े हुए अंग को अथवा आंतरिक स्नायु और मांस पेशियों के कमजोर पड़ जाने पर, उत्तेजना एवं स्फूर्ति उत्पन्न करने के लिए लाभकारी है। इससे भीतरी अपने–अपने स्थान पर ठीक स्थिति में आ जाएंगे और सजीव हो जाते हैं।

ii) ukjaxh jax ,oa fpfdRlk

सूर्य के रश्मि पुंज में नारंगी रंग छठवें स्थान पर आता है। लाल रंग की भांति यह रंग भी गर्मी उत्पन्न करने वाला है। इसकी भेदन क्षमता लाल रंग के प्रकाश से कई गुना अधिक होती है। क्योंकि इसकी आवृत्ति लाल रंग से अधिक और तरंग दैर्घ्य कम होती है। पुराने रोगों में सर्वप्रथम इस रंग का उपयोग 3 दिन तक करके सबसे पहले रोगी के पेट को साफ कर लेते हैं, तत्पश्चात् उसकी वास्तविक बीमारी हेतु अन्य रंग चिकित्सा का प्रयोग करते हैं।

नारंगी रंग दमा तथा संधियों के रोगों के लिए अत्यधिक उपयोगी है।

- तांत्रिक तंत्र की बीमारियों में जैसे– लकवा, अर्धांग, ताकत ना लगना जैसी बीमारियों में सबसे उपयुक्त औषधि है।
- तिल्ली के बढ़ जाने पर, मूत्राशय और आंतों की शिथिलता, उपदंश आदि रोगों में भी नारंगी रंग से तप्त जल का उपयोग किया जाता है।

iii) ihyk jax ,oa fpfdRlk

सूर्य रश्मियों में पीले रंग का स्थान पांचवा है। जैसा कि रंग से ही स्पष्ट है यह रंग शरीर के पाचन तंत्र को सबसे ज्यादा प्रभावित करता है। इसकी रश्मियों की उपयोगिता को देखकर ही हमारी भारतीय परंपरा में वसंत ऋतु में पीला कपड़ा पहनना बताया गया है। पीले रंग का कपड़ा पहनने से हमारी तंत्रिकाएं चैतन्य एवं निरोग रहती हैं। मलावरोध, लकवा आदि शरीर से दूर रहता है। यह रंग बुद्धि, विवेक एवं ज्ञान की वृद्धि करने वाला होता है। बौद्ध धर्म में इसी दृष्टि से पीत परिधान प्रचलित है।

- यह रंग उदर, यकृत, तिल्ली, फेफड़ों तथा हृदय के रोगों में विशेष रूप से लाभदायक है।
- इससे पेट में गैस बनना, पेट फूलना, पेट में कीड़े होना, कब्जियत, अजीर्ण, कृमि रोग, गुद भ्रंश, पेट विकार आदि रोग दूर होते हैं।
- पीली किरणों से तप्त जल थोड़ा–थोड़ा कुछ दिन तक सेवन करने से लाभ होता है। अधिक मात्रा में सेवन करने से हानि की संभावना रहती है।
- अधिक मात्रा में सेवन करने से कभी–कभी तो पेट में इतनी गर्मी बढ़ जाती है कि दस्त लगने लगते हैं।

- युवकों और युवतियों पर इस जल का प्रभाव तुरंत पड़ता है।
- यह जल अधिकतर पीने के ही काम में प्रयुक्त होता है, मगर आवश्यकता पड़ने पर मालिश या अन्य रंगों के जलों के साथ मिलाकर वत्तति रखने के काम में लाया जा सकता है।

पीले रंग की कमी तथा हल्के नीले रंग की वृद्धि से शरीर में उदर रोग, गुल्म रोग, शूल, पसली का दर्द, मसूड़ों का दर्द, योनि जन्य शूल, कृमि, हृदय के रोग, फेफड़ों के रोग, कोष्ठ बद्धता, तथा शोथ उत्पन्न हो जाता है।

- इस रंग की वृद्धि से शरीर में दर्द की टीसें उठना, हृदय गति का बढ़ना, दर्द आदि उत्पन्न हो जाते हैं। इस रंग के बढ़ने से लाल और नीला रंग के जो मिश्रित कुप्रभाव होते हैं वे मिट जाते हैं।
- वात तथा कफ जनित रोगों को यह रंग शीघ्र दूर करता है।

l;! fdj.k fpfdRlk e okr dk jx ihyk ekuk x;k gA

iv) gjk jx ,o fpfdRlk

हरी किरणों का स्वभाव मध्यम है। यह रंग आँख और त्वचा के रोगों में विशेष लाभकारी है। यह रंग भूख बढ़ाने वाला है। जिस व्यक्ति को गर्मी, खुजली, या नासूर आदि चर्म रोग हों, उन्हें हरे रंग के वस्त्र पहनने चाहिए। चेचक रोग में हरा रंग बड़ा लाभकारी होता है। इस रंग के उपयोग से हाथ–पांव का फटना, दर्द, खाज, फोड़ा, गंजापन, रक्तपित्त अर्थात् छाती, नाक, मुंह, तथा गुदा द्वारा रक्त स्रावित होना, स्त्रियों का रक्त प्रदर, एवं बवासीर जैसी समस्याओं में विशेष लाभ होता है। शरीर में पकने वाले, स्रावित होने वाले, और सड़ने एवं दुर्गंध युक्त, किसी भी औषधि के अप्रभावित रहने वाले विकार निसंदेह दूर हो जाते हैं। यह रंग शीतलता प्रदान करने वाला है। तंत्रिकाओं और स्नायु मंडल को बल देता है। यह रंग कटि वा मेरुदण्ड के निचले भाग के कष्टों को खासतौर पर दूर करने वाला है। यह स्वप्नदोष को भी नष्ट करता है।

- हरी किरण तप्त जल पीने, पट्टी रखने तथा मालिश करने में और तेल, लगाने और मालिश करने के लिए प्रयुक्त होता है।
- हरे रंग की कमी और लाल रंग की वृद्धि से शरीर में फोड़ा, फुंसी, खुजली, दाद आदि त्वचा के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।
- हरा रंग बढ़ाने से लाल रंग के विकार संतुलित होते हैं।
- हरा रंग मस्तिष्क की गर्मी शांत करने और आँख के रोगों में अत्यधिक उपयोगी है।
- असमय सफेद हो रहे बालों को पुनः काला करने में समर्थ है।
- हरा तप्त तेल सिर के पिछले भाग में लगाने से स्वप्नदोष तथा धातु संबंधी रोग मिट जाते हैं।
- सिर और पांव में लगाने से नेत्र रोग नहीं होते और नींद अच्छी आती है।

- कर्ण रोगों में इस तेल को कान में डालने से लाभ होता है।

v) vklekuh jax ,oa fpfdRlk

आसमानी रंग सभी रंगों में श्रेष्ठ है। प्राणी मात्र का नैसर्गिक जीवन इसी रंग पर निर्भर करता है। यही कारण है कि समस्त पृथ्वी पर फैले हुए आकाश का रंग नीला है। इसी रंग द्वारा जीवों को जीवन की शक्ति प्राप्त होती है। यह रंग भक्ति, अनुराग, एवं प्रेम का जनक है। यह रंग जितना ही हल्का होगा उतना ही अधिक शीतलता देने वाला होता है। और जितना अधिक गहरा होगा उतनी ही उसमें उष्णता होती है।

आसमानी किरण तप्त जल सभी रोगों पर प्रयुक्त होता है और लाभकारी होता है। यदि गले में छाले हो गए हों, गला रुंध रहा हो, मवाद स्रावित हो तथा रुधिर भी स्रावित हो तो इस पानी के उपयोग से पहले तो छाले बढ़ते मालूम होते हैं परंतु इससे घबराना नहीं चाहिए उपचार चलने देना चाहिए, समस्या मूल से समाप्त हो जाती है।

- आसमानी रंग को अंग्रेजी में ब्लू या गहरा नीला कहते हैं। शरीर की सूजन में नीला और सफेद मिश्रित वस्त्र पहनना गुणकारी होता है। टोपी या पगड़ी के अंदर का स्तर नीले रंग का इसी कारण रखा जाता है। जिसकी प्रकृति गर्म हो उसको नीले रंग के वस्त्र पहनना औषधि का काम करता है।
- यह रंग शीतलता और शांतिदायक है। इसमें विद्युत चुंबकीय शक्ति होती है। यह पौष्टिक भी होता है, इसलिए कुछ कब्ज करने वाला होता है। जब शरीर का कोई भाग या समस्त शरीर गर्म हो तो उस समय इस रंग का प्रयोग करना चाहिए।
- गर्मी की अधिकता से होने वाले रोगों जैसे ज्वर, श्वास–कास, सिरदर्द, पेचिश, अतिसार, संग्रहणी, मस्तिष्क के रोग, प्रमेह, पथरी, मूत्र विकार आदि इस रंग से सरलता के साथ उपचारित हो जाते हैं।
- यह रंग पीने, पट्टी रखने दोनों के काम में आता है। जब व्यक्ति से चुपचाप बैठना मुश्किल हो जाए, कभी–कभी शरीर गर्म हो जाये साथ ही पतले दस्त भी होने लगें तो ये सारे लक्षण नीले रंग के प्रयोग से दूर हो जाते हैं।

गहरे नीले रंग की कमी और लाल रंग की वृद्धि से शरीर के जोड़ों में अकड़न, दर्द, प्रमेह, पथरी, दाह, खट्टी और कड़वी डकारें व उल्टी होने का अहसास, गर्दन जकड़ना, बाल गिरना और आँखों के रोग उत्पन्न होना प्रारम्भ हो जाता है।

नीले रंग की अधिकता से वात जन्य रोग उत्पन्न होते हैं, किंतु नीले रंग की शरीर में वृद्धि करने से अन्य चार रंगों की अधिकता से उत्पन्न होने वाले रोगों का शमन होता हैं।

- यदि इस रंग के जल से घाव धोना पड़े तो घाव धोने में इस जल का प्रयोग अधिक देर तक नहीं करना चाहिए अन्यथा घाव में पीड़ा होने लगती है।

lw;Z fdj.k fpfdRlk esa dQ dk jax uhyk ekuk x;k gSA

यदि मधुमक्खी, बिच्छु, तथा अन्य विषैले जीव डंक मार दें तो यह जल उस स्थान पर लगा देने से आराम मिल जाता है।

fVIi.kh

- आसमानी किरण तप्त तेल की मालिश कुछ दिनों तक रोज आधे घंटे तक धूप में बैठकर करने से शरीर बलिष्ठ हो जाता है तथा उसकी आकृति सुदृढ़ हो जाती है।
- आसमानी किरण तप्त जल पौष्टिक होता है, और रोग मुक्त के बाद तत्काल ताकत लाने के लिए प्रायः व्यवहार किया जाता है।

vi) uhyk jax

सूर्य रश्मि पुंज के दृश्य रंगों में प्रथम दृश्य रंग नीला ही होता है। इस रंग की आवृत्ति सबसे अधिक और तरंग धैर्य सबसे कम होने से इसकी भेदन क्षमता शरीर में सर्वाधिक होती है। यह रंग मनुष्य के तंत्रिका तंत्र को विशेष रूप से प्रभावित करता है।

- नीले रंग की कमी और लाल रंग की अधिकता से मनुष्य ज्वर, अतिसार एवं पेट की मरोड़ आदि रोगों से पीड़ित हो जाता है।
- नीली किरण तप्त तेल के व्यवहार से असमय बालों का सफेद होना, बालों का कड़ा होना, गिरना, सिर दर्द इत्यादि समस्याएं समूल नष्ट हो जाती हैं।
- यह तेल बालों को पुष्टि प्रदान कर दिमाग को शांत एवं शीतल रखता है, तथा मस्तिष्क को बल प्रदान करता है। यदि मनुष्य के शरीर का तापमान बढ़े तो इस बुखार की स्थिति में (तापमान 101 डिग्री फारेनहाइट से ऊपर) नीले रंग से तप्त पानी की पट्टी अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होती है।
- यह कीटाणु नाशक होता है।
- श्वसन पथ और पाचन पथ में होने वाले फोड़े, फुंसियों, गले के टॉन्सिल, तथा मुंह के छालों में इस पानी का कुल्ला करने से अधिक लाभ होता है
- इस नीले रंग का प्रभाव तंत्रिका तंत्र के भागों पर पड़ने के कारण तंत्रकीय उत्तेजना तथा उग्रता की स्थिति को नियंत्रित करने में अधिक उपयोगी होता है।
- अनिद्रा के रोग में बहुत लाभदायक है। अनिद्रा का सामान्य उपचार रात में सोते समय कमरे में हल्के नीले रंग का प्रकाश रखने से संभव हो जाता है।

vii) cSxuh jax fpfdRlk

बैगनी रंग की प्रकृति भी नीले और हरे रंग की भांति शीतल है। यह रंग शरीर का ताप कम करने में अत्यधिक उपयोगी है। शरीर में इसकी कमी हो जाने पर हैजा, अतिसार, प्रलाप आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। पागल कुत्ते के काटने पर, मस्तिष्क दौर्बल्य, तथा ह्रदय की धड़कन बढ़ने की स्थिति में बैगनी रंग तप्त जल अत्यधिक लाभ करता है। यह विद्युत– चुंबकीय किरणें कहलाती हैं, जिन पर पृथ्वी के सभी प्राणियों का जीवन निर्भर करता है।

fVIi.kh

viii) lQsn jax fpfdRlk

यह सात रंगों का मिश्रण है।

- सूर्य तथा सफेद किरणों का जल साधारण पानी की तरह हर समय प्रयोग किया जा सकता है।
- यह कीटाणु विहीन होता है।
- इसमें कैल्शियम और पौष्टिक तत्व भरपूर होते हैं।
- हड्डियों को मजबूती प्रदान करता है।
- बच्चों के दांत निकलने में लाभदायक प्रभाव देता है।
- टूटी हड्डी को जोड़ने में सहायक है।

ix) vYVªkok;yV ¼ijkcSaxuh½ fdj.k ,o fpfdRlk

इन किरणों को अदृश्य किरण या अष्टम किरणें भी कहते हैं। हिंदी में इन किरणों को परा बैंगनी किरणें कहा जाता है। जैसा पहले से ज्ञात है कि इस किरण का स्थान बैंगनी किरण के ठीक बाद है। इस किरण के गुण अनंत हैं।

- इसके प्रभाव से भयंकर से भयंकर रोगकारक कीटाणु नष्ट हो जाते हैं।
- यह किरण विटामिन का स्वभाविक स्रोत है।
- इस किरण में जीवन शक्ति एवं स्वास्थ्यवर्धक गुण तो अनंत हैं ही, परन्तु इसको प्राकृतिक रूप में प्राप्त करना कठिन है। कारण नमी और धूल से भरे वातावरण को पारकर यह किरण हम तक कम पहुंच पाती हैं।
- यह किरणें केवल सूर्योदय के समय ही थोड़ी मात्रा में प्राप्त की जा सकती हैं। इसी अमृत का लाभ उठाने के लिए स्वास्थ्य विशेषज्ञ सूरज निकलने से पहले उठने की सलाह देते हैं, खुले सिर, बिना वस्त्र या कम से कम वस्त्रों में प्रातः काल अमृत बेला में वायु सेवन के लिए खुले स्थान में निकल जाने का सुझाव देते हैं तथा नंगे बदन ही सूर्य के सामने खड़े होकर उसको जल अर्पण आदि धार्मिक कृत्यों की व्यवस्था देते हैं।
- खुले खेत की फसलों पर जब सुबह–सुबह पराबैंगनी किरणें पड़ती हैं; तो ये किरणें उनके द्वारा अवशोषित कर ली जाती हैं जिससे उस उपज में विटामिन की वृद्धि हो जाती है। उसी प्रकार जब ये किरणें मनुष्य के शरीर पर पड़ती हैं तो यह तत्काल त्वचा द्वारा रक्त में प्रवेश कर जाती हैं और अंदर पहुंचकर विटामिन डी की वृद्धि करती हैं, और जीवनीशक्ति बढ़ाती हैं। इससे शरीर में काफी मात्रा में लाल रक्त कण उत्पन्न होता है जिससे शरीर के रक्त की क्षमता में वृद्धि होती है।

डॉ. बर्नर मैकफेडेन के अनुसार, पराबैंगनी किरणें अपने आश्चर्यजनक गुणों के साथ ही रक्त में कैल्शियम की मात्रा बढ़ा देती हैं। इसी कारण ये काडलिवर आयल से कहीं अधिक उपयोगी हैं। यह भी सिद्ध हो चुका है कि ये किरणें, विटामिन ए के प्रभाव को अधिक शक्तिशाली बना देती हैं। विश्व के समस्त सफल प्राकृतिक चिकित्सक जिनमें डाक्टर बर्नर मैकफेडेन, बेनिडिक्ट लस्ट तथा स्टेनली लीफ आदि ने इन किरणों का प्रयोग अपने स्वास्थ्य गृहों में सफलता के साथ किया है। उनका कहना है कि किरणें श्वेत और लाल रक्त कणों, कैल्शियम, फास्फोरस, फॉस्फेट, आयोडीन और आयरन इत्यादि में अद्भुत समता पैदा करती हैं।

डॉक्टर रोलियार, स्वीटजरलैंड के प्रसिद्ध सूर्य रश्मि चिकित्सक के मतानुसार, शहरों में रहने वाले तथा अपने शरीर को वस्त्रों से पूरी तरह से ढक कर रहने वाले आधुनिक युगीन सभ्य लोगों के शरीर पर तो सूर्य की ये जीवनदायिनी किरणें कभी पड़ ही नहीं पाती, जिसका परिणाम अनेकों व्याधियों के रूप में सम्मुख है।

पराबैंगनी किरणों के रोग नाशक प्रभाव को वैज्ञानिक जगत ने एक स्वर में स्वीकार किया है। इन किरणों से त्वचा के रोग जैसे फोड़े–फुंसी, नासूर, सूखा रोग तथा जीर्ण ज्वर आदि रोग चमत्कारिक रूप से नष्ट हो जाते हैं। गहरे घावों में जहां औषधियां नहीं पहुंच सकतीं, इन किरणों को प्रवेश कराकर रोग कारक कीटाणुओं का अंत किया जा सकता है। बच्चों की हड्डियों में टेढ़ापन आने के रोग में पराबैंगनी किरणों के सेवन से बढ़कर दूसरी गुणकारी औषधि नहीं है। दुग्धपान कराने वाली माता द्वारा इन किरणों के सेवन से दूध पीते बच्चों को भी पूर्ण स्वास्थ्य लाभ करते देखा गया है। मधुमेह, हिस्टीरिया और स्त्रियों के मासिक धर्म संबंधी रोगों में भी ये किरणें लाभ करती हैं। क्षय के सभी रूपों में ये किरणें लाभ करती हैं। परंतु अदृश्य इंफ्रारेड किरणों की भांति ही इन पराबैंगनी किरणों का भी हम जब चाहे तब प्रयोग नहीं कर सकते। यंत्रों द्वारा प्राप्त पराबैंगनी किरणों का प्रयोग रोगों में इसलिए किया जाता है।

bdkbZxr iz'u&6-2

1. वैज्ञानिक भाषा में अदृश्य गर्मी की किरणों को क्या कहते हैं?

   ....

   ....

2. सूर्य के रश्मि पुंज में नारंगी रंग कौन से स्थान पर आता है?

   ....

   ....

3. कौन सा रंग आँख और त्वचा के रोगों में विशेष लाभकारी है?

....

....

4. सूर्य रश्मि पूंज के दृश्य रंगों में प्रथम दृश्य रंग कौन सा है?

....

....

6-3 l;@/ki Luku fpfdRlk

जिस सूर्य प्रकाश से संसार का तम क्षण मात्र में नष्ट हो जाता है। जिस सूर्य प्रकाश से सृष्टि के कण–कण में जीवन का, शक्ति का, सौंदर्य का और ऐश्वर्य का संचार एवं प्रकाट्य होता है तथा जिस सूर्य प्रकाश की सुनहरी किरणें सागर से ढेर सारा वारि बिंदु खींचकर अमृत वर्षा करके ग्रीष्मताप से झुलसी हुई पृथ्वी पर अपनी बरसात की माया बिखेर सकती हैं, उस सूर्य प्रकाश अथवा उसकी जीवनदायिनी रश्मियों के प्रति यदि यह कहा जाए कि वे सब कुछ नहीं कर सकती पर पृथ्वी पर रोगियों को रोगमुक्त तो कर ही सकती हैं। यह बात अलग है कि हम सृष्टि में शक्ति के सबसे बड़े पुंज सूर्य की प्रबल रोग नाशक शक्ति को रोग निवारणार्थ प्रयोग करके उससे लाभ उठाना न जानते हों पर इसका तात्पर्य यह नहीं है कि सूर्य, सूर्य प्रकाश, और सूर्य की किरणों में रोगों को दूर करने की शक्ति नहीं है। सूर्य प्रकाश संसार में जहां अनेकानेक आश्चर्यजनक कार्य करने की क्षमता रखता है वहीं उसके लिए दुसाध्य से दुसाध्य रोगों को दूर कर देना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इस कथन की पुष्टि अथर्ववेद कांड 1 सूक्त 22 मंत्र एक दो और तीन से भी होती है। जहां सूर्य किरण चिकित्सा का अच्छा विवरण दिया हुआ है।

अतः मानव की रोग निवृति के लिए सूर्य प्रकाश को ईश्वर का एक वरदान ही समझना चाहिए। प्रसिद्ध डॉक्टर रिकली के अनुसार मानव जलचर ना होकर वायु और प्रकाश का प्राणी है इसलिए वायु और प्रकाश के ऊपर जहां हमारा विकास और जीवन अवलंबित है वही उसमें हमारे रोगों को दूर करने के अनेक गुण भी विद्यमान हैं मानव कल्याण के लिए उपर्युक्त डॉक्टर ने प्रकाश को सर्वोपरि बताया है।

M,DVj fjdyh ds vuqlkj%

"Water is good, but air is better and light is best of all."

6-3-1 l;Z fdj.k fpfdRlk dh çfof/k;k

l;Z fdj.k Luku@/kwi Luku@lIr fdj.k Luku

सूर्य को सप्त– किरण या सप्त– रश्मि भी कहते हैं। पुराण में सप्त रश्मियों को जो क्रमशः बैंगनी, नीला, आसमानी, हरा, पीला, नारंगी तथा लाल होता हैं, सूर्य को सप्तमुखी घोड़ा भी बताया गया है। चूंकि उपर्युक्त

fVIi.kh

सात रंगों के एकत्र होने से ही श्वेत रंग की उत्पत्ति होती है और जिसमें सातों रंग की सूर्य किरणों के रोग नाशक गुणों का समावेश रहता है, जिनकी प्राप्ति हमें सूर्य स्नान, धूप स्नान, सप्त किरण स्नान या अंग्रेजी के sun bath से, रोगावस्था में विशेष रुप से और स्वास्थ्यावस्था में सामान्य रूप से होती है।

जाड़े के दिनों में तो सभी निर्वस्त्र धूप में बैठकर धूप स्नान का थोड़ा बहुत आनंद और लाभ प्राप्त करते हैं। किंतु रोग अवस्था में इस स्नान का सेवन वैज्ञानिक ढंग से करके ही रोगमुक्त हुआ जा सकता है। किसी भी प्रकार से धूप में घूमने या बैठने मात्र से सूर्य स्नान का वास्तविक लाभ कदापि नहीं उठाया जा सकता।

l;! Luku e! lko/kkfu;k

1) सूर्य स्नान करते समय सिर को धूप से बचाए रखना चाहिए, इसके लिए सिर को छाया में रखना चाहिए या भीगे तोलिया या हरे पत्ते जिसमें केले का पत्ता सर्वोत्तम होगा से ढक कर रखना चाहिए। धूप स्नान लेने जाने से पहले सिर, गर्दन व गले को अच्छी तरह से धो लेना भी आवश्यक है जिससे उन पर चिपके हुए धूल के कण हट जाएं तथा प्रकाश का संपर्क सीधा त्वचा से हो पाए।

2) कड़ी धूप में सूर्य स्नान लेना उचित नहीं रहता है। इसके लिए प्रातः एवं सायं कालीन की हल्की किरणें ही उत्तम होती हैं।

3) धूप स्नान का समय प्रतिदिन धीरे–धीरे बढ़ाना चाहिए। एक बार में ही अधिक देर तक धूप स्नान लेना उचित नहीं रहता। एक घंटे से अधिक देर तक धूप स्नान कभी भी नहीं लेना चाहिए, उचित समय तक धूप स्नान लेने से शरीर को अनेक प्रकार के लाभ होते हैं। किंतु जब आवश्यकता से अधिक देर तक सूर्य स्नान लिया जाएगा तो शरीर को नुकसान पहुंचता है। त्वचा काली पड़ सकती है, भूख नष्ट हो सकती है, तथा शरीर की अस्थियों में अतिरिक्त विटामिन डी एकत्रित हो सकता है। कमजोरी की अवस्था में सूर्य स्नान शीतकाल में 7 मिनट तथा गर्मियों में 3 मिनट से ही प्रारंभ करना चाहिए।

4) सूर्य स्नान लेते समय जितनी देर स्नान करना हो उसके चार भाग करके पीठ के बल, पेट के बल, दाहिनी करवट और बाईं करवट लेट कर धूप स्नान करना चाहिए, जिससे शरीर का कोई भी अंग धूप स्नान से वंचित न रह जाए।

5) सूर्य किरण स्नान लेते समय शरीर निर्वस्त्र हो तो सर्वोत्तम अन्यथा कम से कम वस्त्रों में सूर्य, किरण स्नान लेना।

6) खुले आसमान में जहां पर तेज वायु संचार हो वहां पर सूर्य स्नान करना उचित नहीं है।

7) भोजन के 2 घंटे उपरांत ही सूर्य स्नान करना चाहिए। इसी तरह सूर्य स्नान के तुरंत बाद भोजन करना भी उचित नहीं है।

8) सूर्य स्नान के बाद अच्छी तरह ठंडे जल से नहा कर या भीगी तौलिए से शरीर के प्रत्येक अंग को अच्छी तरह पोंछकर थोड़ी देर तेजी से टहलना भी आयश्यक है।

9) सूर्य स्नान के बाद शरीर में उत्साह एवं फुर्ती ना महसूस हो तो सूर्य स्नान असफल समझना चाहिए। साथ ही यदि सिर में दर्द तथा अन्य किसी प्रकार से कष्टकारी हो तो सूर्य स्नान का समय अगली बार कुछ काम कर देना चाहिए।

10) सूर्य किरण स्नान प्रतिदिन नियमित रूप से लेना चाहिए। इसमे अतंराल नहीं देना चाहिए। ऐसा करने से ही लाभ होता है।

11) जाड़ों में सूर्य स्नान के लिए भारतवर्ष में 12:00 और 2:00 के बीच तथा गर्मियों में 8:00 से 10:00 तक सुबह और फिर 3:00 से 5:00 तक शाम का समय ही उपयुक्त है। किंतु लू चलते समय यह स्नान कदापि नहीं करना चाहिए।

12) हृदय रोगियों और ज्वर वाले रोगियों को सूर्य स्नान नहीं करना चाहिए। यदि थोड़ी मात्रा में ज्वर रहता हो तो तथा फेफड़े के रोगियों में धूप स्नान किया जा सकता है। परन्तु नियम यही है कि ज्वर बने रहने की हालत में यह स्नान कदापि ना करें।

/kwi Luku ds çdkj

1½ lk/kkj.k /kwi Luku

rS;kjh

धूप स्नान का प्रयोग करने के लिए सर्वप्रथम स्नानार्थी को अपने आपको शारीरिक और मानसिक रूप से तैयार करना आवश्यक है। तत्पश्चात् धूप स्नान हेतु स्थान का चुनाव करके, जिनमें स्थान ऐसा होना चाहिए जहां पर तेज हवा के झोंके न आते हो। उपयुक्त स्थान पर किसी चटाई या रोगी बेड पर कम से कम वस्त्रों में लेट कर सूर्य स्नान करना उपयुक्त होगा। इस हेतु उसको आवश्यक परिस्थितियों को व्यवस्थित कर लेना उचित होगा।

fof/k

- धूप स्नान लेने से पूर्व स्नानार्थी को सर्वप्रथम अपने चेहरे गर्दन व गले को अच्छी प्रकार से पानी से धो लेना चाहिए तत्पश्चात् सिर्फ एक भीगे तौलिए से सिर को लपेट कर निश्चित स्थान पर लेटकर पूरे स्नान के समय को चार भागों में विभक्त करके क्रमशः बराबर समय तक पेट के बल, दायीं करवट, पीठ के बल, और बांयी करवट लेटकर लेना चाहिए।
- तत्पश्चात् उठकर उसे शीतल जल से स्नान करने के बाद तेज कदमों से टहलना भी चाहिए।
- इस अवधि में यदि पसीना आता है तो सर्वोत्तम, अगर पसीना नहीं आता है तो भी अधिक देर तक सूर्य स्नान लेकर पसीना निकालने का प्रयास नहीं करना चाहिए।

- सूर्य स्नान की अवधि धीरे– धीरे बढ़ाते रहना चाहिए।

ykHk

- साधारण सूर्य स्नान से व्यक्ति के शरीर में सतही स्तर पर रक्त संचार तीव्र होता है।
- त्वचा संबंधी विकारों का शमन होता है।
- धूप में लेटने पर त्वचा की भित्तियों में विटामिन डी का सृजन होने से अस्थियां सुदृढ़ होती हैं तथा अस्थि विकारों में अत्यधिक लाभ मिलता है।
- व्यक्ति की इच्छा शक्ति प्रबल होती है।
- दृढ़ इच्छाशक्ति तथा बड़ी हुई शारीरिक सामर्थ्य से वह अपने कार्यों में सफलता अर्जित करता है।
- तंत्रकीय संचार में वृद्धि होती है फलस्वरूप व्यक्ति अधिक सक्रिय और अधिक चेतन हो जाता है।
- शरीर में रुके हुए अनेकों प्रकार के विषाक्त पदार्थ पसीने के माध्यम से शरीर से बाहर निकल जाते हैं शरीर को नैसर्गिक रोग मुक्ति की अवस्था प्राप्त होती है। अनेकों दुसाध्य, असाध्य एवं कष्टसाध्य रोग उत्पन्न होने के पूर्व ही समाप्त हो जाते हैं।
- अनेकों मानसिक रोगों का समाधान स्वतः प्रस्तुत हो जाता है।

lko/kkfu;k

- सूर्य स्नान से संबंधित सावधानियों को पहले ही विस्तार पूर्वक प्रस्तुत किया जा चुका है।

2½ ilhuk ykus ds fy, /kwi Luku

rS;kjh

पसीना लाने के लिए धूप स्नान का उपयोग करने के लिए सर्वप्रथम रोगी को ऐसी जगह का चुनाव करना चाहिए यहाँ पर धूप की सीधी किरणें आ रही हों और वह जगह वायु के तीव्र वेग से सुरक्षित हो। इसके पश्चात् गर्म पानी पीकर धूप स्नान हेतु तैयार होना चाहिए।

fof/k

पसीना लाने के लिए धूप स्नान करने के लिए–

- सर्वप्रथम रोगी को गर्म पानी पीकर और अपने शरीर के सारे वस्त्रों को हटाकर खुली धूप में 20 से 30 मिनट तक बैठना होता है।

vfXu rRo fpfdRlk] fofHkUu fof/k;k ,oa vuqi;ksx

fVIi.kh

- लगभग आधे घंटे में ही अच्छी तरह से पसीना आना शुरू हो जाता है, किसी– किसी व्यक्ति को पसीना नहीं भी आता है तो भी उसे आधे घंटे से ज्यादा इस स्नान का उपयोग नहीं करना चाहिए।
- जिन लोगों ने इस स्नान से प्रारंभ में पसीना नहीं आता उन्हें भी इस तरह से तीन चार बार स्नान लेने पर आसानी से पसीना आने लगता है।
- स्नान के दौरान व्यक्ति के सिर को सदैव गीली तौलिया से ढक कर रखना आवश्यक है।
- साथ ही साथ बीच–बीच में थोड़ा–थोड़ा गर्म पानी पिलाते रहना भी आवश्यक है।

ykHk

- धूप स्नान से शरीर से तीव्रता से पसीना निकलने से शरीर के अनेकानेक ऐसे रोग जिनका प्रादुर्भाव शरीर में विजातीय द्रव्यों के एकत्रित होने से हुआ है बड़ी आसानी से ठीक होने लगते हैं।
- शरीर में एकत्रित सभी प्रकार के विजातीय द्रव्य आसानी से दूर हो जाते हैं तथा एक उत्कर्ष स्वास्थ्य की अनुभूत होती है।

lko/kkfu;k

इस धूप स्नान को लेते समय सिर पर ठंडे पानी से भीगा तोलिया रखना अत्यंत आवश्यक है तथा बीच–बीच में उसके ऊपर एक दो बार शीतल जल डालकर थपकी देना चाहिए।

- धूप स्नान के दौरान रोगी को बीच–बीच में थोड़ा–थोड़ा गर्म पानी पिलाते रहना चाहिए।
- धूप स्नान देते समय रोगी की शक्ति का आकलन कर लेना चाहिए, अतिशय कमजोर रोगी को इस तरह का धूप स्नान नहीं देना चाहिए और अगर देना भी पड़े तो उसमें अवधि कम कर देनी चाहिए।

3½ fjDyh dk /kwi Luku

डॉक्टर रिकली के नाम पर जो धूप स्नान लेने की विधि प्रसिद्ध है उसमें धूप का उपयोग सीधे, बिना वस्त्र के शरीर पर किया जाता है। शरीर पर कोई कपड़ा या केले आदि का पत्ता बिना रखे इस स्नान को संपन्न किया जाता है। रिकली का धूप स्नान सूर्योदय के तुरंत बाद दिया जाता है और इसमें पूरे शरीर पर एक साथ धूप नहीं पड़ने दी जाती है।

fof/k

रिकली के धूप स्नान का उपयोग करने के लिए सर्वप्रथम

- रोगी को अपने शरीर के सारे वस्त्रो को हटाकर केवल नाममात्र के वस्त्रों सहित सूर्योदय के समय इसका उपयोग करना चाहिए।

- रिकली के इस विशिष्ट धूप स्नान में रोगी के पूरे शरीर पर एक साथ धूप नहीं पड़ने दी जाती है।
- इसमें पहले दिन रोगी के दोनों पैरों की पिण्डली (Calf Muscles) को चारों तरफ धूप में सेंका जाता है, दूसरे दिन पीछे से पूरे पैर को धूप में रखा जाता है, तीसरे दिन जंघा तथा समूचे पैर को, चौथे दिन नाभि और उसके नीचे के सारे अंगों तक, पांचवें दिन से 10 दिन के भीतर गले तक सारे शरीर को धूप में रख कर सेका जाता है।
- इस तरह थोड़ा–थोड़ा करते हुए 10 दिन में जाकर रोगी के शरीर को धूप में लाया जाता है।
- रोगी को धूप में रखने के समय को भी धीरे–धीरे बढ़ाया जाता है। पहले दिन रोगी को पांच मिनट के अन्तराल पर 3–3 मिनट के हिसाब से कुल 9 मिनट तक रखना चाहिए। दूसरे दिन इसी प्रकार 5 मिनट के अन्तराल पर 3 मिनट बढ़ाकर 6–6 मिनट के हिसाब से 12 मिनट, तीसरे दिन फिर 3 मिनट बढ़ाकर 5 मिनट के अन्तराल पर 9–9 मिनट इसी प्रकार चौथे दिन 5–5 मिनट के अंतराल पर 9 मिनट की तीन आवृति या अधिक बढ़ाकर धूप स्नान लेते रहते हैं। 10 वें दिन से तीन बार आधा–आधा घंटा कर के प्रयोग करना चाहिए। इसी प्रकार 15 दिन में तीन बार यह स्नान लिया जा सकता है।
- इसके बाद रोगी को अनुकूल प्रतीत होने पर और आराम मिलते रहने पर यह स्नान दिन में चार बार दिया जा सकता है।

प्रत्येक बार धूप लेने के बाद रोगी को 5 मिनट के लिए छाया में रखना आवश्यक है। इसके बाद धूप लगे हुए स्थान विशेष को या पसीना होने पर शरीर को ठंडे या हल्के गर्म जल से भीगी तौलिया से अच्छी तरह से स्पंज कर देना चाहिए। फिर पुनः धूप लेनी चाहिए।

ykHk

- रिकली के धूप स्नान से त्वचा के रोग जैसे– एग्जिमा, कुष्ठ, खुले घाव, आदि में अत्यंत लाभकारी परिणाम प्राप्त होता है।
- इसके साथ ही अजीर्ण, क्षय रोग, बच्चों का सूखा रोग, रक्तहीनता, बच्चों की निर्बलता एवं उनमें मानसिक और शारीरिक विकास का अभाव, यकृत की समस्या से बच्चों का चिड़चिड़ापन आदि में इस स्नान से अधिक लाभ होता है।
- इस स्नान से अस्थियों का विकास तीव्र होता है, वे सशक्त बनती हैं तथा शरीर में एकत्रित अतिरिक्त जल दूर होता है। स्वाभाविक भार स्पष्ट रूप से प्राप्त होता है। अनावश्यक वजन का भी समाधान होता है।

lko/kkfu;k

- रिकली के सूर्य स्नान देते समय सबसे महत्वपूर्ण इसकी क्रमिक रूप से आगे बढ़ने की प्रक्रिया है।

- बड़ी सावधानी के साथ शरीर के छोटे–छोटे भागों को तो बस नाम देते–देते आगे बढ़ना चाहिए, और जब एक बार पूरा शरीर का स्नान पूरा हो जाए तब सीधे पूरे शरीर पर धूप स्नान दिया जाना चाहिए। ऐसा न करने पर यथोचित लाभ की प्राप्ति असंभव है।

4½ dqu dk /kwi Luku

ç;qä lkexh

कुने का धूप स्नान देने के लिए केले के पत्तों की आवश्यकता होती है इसलिए सर्वप्रथम केले के पत्तों की व्यवस्था कर लेनी चाहिए। साथ ही एक ऐसी जगह का चुनाव करना चाहिए जहाँ पर सूरज की किरणें सीधी पड़ती हो, साथ ही वह जगह वायु के झोंकों से संरक्षित रहे। इसके अलावा हरी सूती चादर तथा कटि स्नान एवं मेहन स्नान देने की व्यवस्था भी सुनिश्चित होनी चाहिए।

fof/k

कुने का सूर्य स्नान रोगी को बिना वस्त्रों के केवल कोपीन वस्त्र पहना कर दिया जाता है। इस स्थिति में रोगी को पहले से चुने गए स्थान पर लिटाकर उसके चेहरे और नाभि को सूर्य की किरणों से बचाने के लिए केले के पत्तों से ढक दिया जाता है। अगर केले के पत्ते ना मिले तो हरा गीला कपड़ा का प्रयोग किया जा सकता है। इस क्रिया से शरीर के रोम छिद्र जल्दी खुल जाते हैं। शरीर नम और गर्म हो जाता है तथा पसीना निकलने लगता है। यह स्नान आधा घंटे से डेढ़ घंटे तक चल सकता है। अगर पसीना ना निकले और थकान महसूस ना हो तो रोगी को और अधिक देर तक इस स्नान में रखा जा सकता है। धूप बहुत अधिक तेज होने पर स्नान का समय अधिक नहीं रखना चाहिए। जिन लोगों को स्नान से सिर में दर्द हो जाए या चक्कर आने लगे उन्हें आरंभ में देर तक सूर्य स्नान ना करायें। यह हालत प्रायः उन्हीं लोगों में दिखाई पड़ती है जिन्हें पसीना नहीं निकलता है या देर से निकलता है। धूप स्नान के बाद उससे ढीले पड़े हुए विजातीय तत्वों को बाहर निकालने के लिए बंद कमरे में ठंडे पानी से सिर पर तेजी से स्नान कर शरीर को सूखे तौलिये से सूखा देना चाहिए। तत्पश्चात् कटि स्नान या मेहन स्नान देना आवश्यक होता है। ऐसे व्यक्ति जिनके शरीर में जल्दी गर्मी नहीं आती है, उनको सिर ढक कर पुनः धूप में बैठ जाना चाहिए। वह चाहे तो धूप में चहल कदमी कर सकते हैं। या कोई हल्की कसरत भी कर सकते हैं। जिन लोगों का रोग भयंकर होता है या ऐसे लोग जो कोमल होते हैं उनमें शरीर जल्दी गर्म न होने की स्थिति दिखाई पड़ती है। ऐसे लोगों को चिकित्सा के आरंभ में बड़ा धूप स्नान नहीं करना चाहिए क्योंकि उनके लिए यह बहुत मुश्किल हो सकता है।

धूप स्नान से शरीर के विकारों की जड़ें कमजोर होने लगती हैं और साथ ही साथ शरीर में अत्यधिक गर्मी भी आती है। इस गर्मी को शांत करने और विकारों को मल या मूत्र के रूप में बाहर निकाल देने के लिए ही धूप स्नान के बाद ठंडे पानी का स्नान लेना आवश्यक होता है और उसके बाद शक्ति के अनुसार 7 से 15 मिनट तक कटि स्नान या मेहन स्नान आवश्यक है। अगर रोगी बहुत कमजोर है तो उसे स्नान करने के बदले गीले कपड़े से सिर और सारा बदन अच्छी तरह स्पंज कर देना चाहिए। फिर कटि स्नान लेना

चाहिए। यदि किसी कारणवश कटि स्नान करना संभव ना हो तो गीले कपड़े की ठंडी पट्टी पेडू़ के ऊपर 25 मिनट तक रखना चाहिए।

ykHk

- जीर्ण रोगों में विजातीय द्रव्यों बाहर निकालने के लिए इस स्नान से ज्यादा उपयोगी और कोई साधन नहीं है।
- शरीर के खुले मुंह वाले घाव, उभरी हुई गांठे, शरीर के अंदर जाने वाली गांठ जैसे यूटरिन फाइब्रॉयड विभिन्न प्रकार के एडिनोमा आदि, सभी जोड़ों का दर्द या आर्थराइटिस, तपेदिक, गठिया, पेशाब में एल्ब्यूमिन आदि में ऐसा काम से अधिक लाभ होता है।

lko/kkfu;k

- कुने के धूप स्नान में प्रयुक्त होने वाली सामग्रियों की व्यवस्था व स्थान का चयन सर्वप्रथम कर लेना चाहिए क्योंकि इसमें धूप स्नान के साथ ही साथ स्पंज बाथ, मेहन स्नान और कटि स्नान की आवश्यकता होती है। अगर इनकी व्यवस्था नहीं होगी तो यह स्नान अधूरा रह जाएगा।
- रोगी की स्थिति का आंकलन करके उसके सूर्य स्नान के समय को निर्धारित करना चाहिए।
- रोगी से पहले से पता कर के यह ज्ञात कर लेना चाहिए कि उसे पसीना आता है या नहीं, यदि पसीना नहीं आता है तो सूर्य स्नान से उसमें अधिक उपद्रव होंगे। उनके समाधान का उपाय पहले ही करना चाहिए।
- कुने के धूप स्नान में प्रयुक्त सारी प्रक्रिया उसी प्रकार करनी चाहिए जैसा विधि में बताई गई।
- एक बार इस स्नान से शरीर के शुद्ध हो जाने के बाद हर महीने एक बार इस स्नान का लाभ उठाया जा सकता है।

5½ xhyh pknj ds ek/;e ls lw;Z Luku

गीली चादर के माध्यम से सूर्य स्नान की प्रविधि का प्रयोग सामान्यतः ऐसे व्यक्तियों के लिए किया जाता है जिनकी त्वचा अत्यधिक संवेदनशील रहती है। ऐसे व्यक्तियों में सीधी सूर्य की किरणों में त्वचा का सीधे संपर्क होने पर उन पर काले रंग के गहरे निशान पड़ जाते हैं। किसी– किसी को जलन, खुजली या बेचैनी होने लगती है।

ç;qä lkexh

गीली चादर के माध्यम से सूर्य स्नान देने के लिए आवश्यक वस्तुओं में – दो सूती चादर, एक कंबल व ऐसा

vfXu rRo fpfdRlk] fofHkUu fof/k;k ,o vuqi;ksx

स्थान जहाँ पर सूर्य की रश्मियां तो सीधी आती हो मगर हवा के मार्ग को अवरुद्ध किया जा सके, सादा पानी और छोटी–बड़ी तौलियां।

fof/k

गीली चादर के माध्यम से सूर्य स्नान देने के लिए रोगी को निर्वस्त्र करके उसके सारे शरीर को एक सूखे कपड़े या कंबल से गले तक ढककर चटाई या बेंच पर धूप में लेटने को कहते हैं।

- थोड़ी देर बाद जब शरीर गर्म हो जाए तब सूखे कपड़े को हटाकर एक सूती चादर को ठंडे पानी में भिगोकर थोड़ा निचोड़ कर उससे कंधे से लेकर जंघाओं तक के हिस्से को ढक देते हैं।
- इसमें गीली चादर के स्थान पर केले के पत्ते भी रख सकते हैं। सिर पर भीगी तोलिया रखते हैं। चेहरे को छाया में रखते हैं। जांघों के नीचे का हिस्सा ऊपर से ढका रहना चाहिए।
- यदि चेहरा धूप में हो तो नासिका रंध्रों को श्वास लेने के लिए खुला रखते हुए चेहरे को भी ढकना आवश्यक है।
- यदि धूप तेज हो तथा रोगी को गर्मी अधिक महसूस हो रही हो तो भीगी चादर के ऊपर एक और दूसरी भीगी चादर डाल देना चाहिए।
- भीगी चादर के बार–बार सूखने पर उस पर ठंडे जल के छींटे डालकर उसे भिगोते रहना आवश्यक है।
- यह स्नान 20 से 40 मिनट तक लिया जा सकता है।

ykHk

- गीली चादर के माध्यम से धूप स्नान देने से शरीर और चादर के बीच में नम तापमान बढ़ता है, जिससे स्वेद छिद्रों के खुलने से तेजी से पसीना निकलता है।
- नमी और गर्मी दोनों के सहयोग से त्वचा की ऊपरी सतह पर जमी गंदगी भली प्रकार साफ होती है, मृत कोशिकाएं सतह से हट जाती हैं, त्वचा में उपस्थित त्वचीय विकारों का शीघ्रता से शमन होता है।
- त्वचा पर रक्त संचार बढ़ने से त्वचा की कांति बढ़ती है, और सूर्य के प्रकाश से इस संवेदनशील त्वचा को किसी प्रकार का कोई नुकसान नहीं होता।
- ऐसे व्यक्ति जिनमें में बार–बार फोड़े होने की प्रवृत्ति है, इस स्नान का उपयोग करने से उन्हें इस समस्या से सदा के लिए छुटकारा मिल जाता है।
- विजातीय द्रव्यों के त्वचा के नीचे एकत्रित होने के कारण उत्पन्न विकार जैसे पित्ती उछलना, लाल चकत्ते पड़ना, खुजली होना, तथा खुजलाने पर धारियां पड़ना आदि का समाधान इससे सरलता से प्राप्त किया जा सकता है।

fVIi.kh

lko/kkfu;k¡

गीली चादर धूप स्नान देने में ध्यान रखना चाहिए कि स्नानार्थी के शरीर का कोई भी हिस्सा सीधा सूर्य की रोशनी में खुला ना रहे। रोगी को शक्ति का सही आंकलन करके 20 से 40 मिनट के समय में से समय निर्धारित करना चाहिए।। रोगी को सूर्य स्नान देने के पूर्व पानी पिलाकर लिटाना चाहिए, बीच में भी प्यास लगने पर पानी पिया जा सकता है। सिर पर रखे तौलिये को जल से बार–बार भिगोते रहना चाहिए।

इस स्नान के पूरा होने के बाद भी रोगी को उदर या मेहन स्नान देना आवश्यक है।

6½ thouh 'kfä o/kZd lw;Z Luku

सूर्य स्नान की इस प्रविधि का प्रयोग अत्यंत निर्बल तथा अशक्त रोगियों के लिए किया जाता है।

ç;qä lkexzh

सादा पानी, छोटी–बड़ी तोलिया, सूर्य स्नान के लिए आवश्यक खुला वायु रूद्ध स्थान।

fof/k

जीवनी शक्तिवर्धक सूर्य स्नान का प्रयोग अशक्त रोगियों को सुबह और शाम दोनों समय की हल्की धूप में दिया जाता है। इस हेतु रोगी को

- साफ एवं अत्यंत हल्के कपड़े पहनाकर सूर्योदय और सूर्यास्त के समय धूप में बैठा या लिटा कर दिया जाता है। रोगी उस समय तक धूप में रहता है जब तक कि उसको काफी गर्मी ना महसूस होने लगे।
- रोगी के सिर व चेहरे को छांव में रखना चाहिए, या उस पर किसी प्रकार से छाया कर देनी चाहिए।
- इस स्नान में रोगी के शरीर से पसीना निकलने का इंतजार बिल्कुल भी नहीं करना चाहिए। शरीर के गर्म होते ही रोगी को छाया में आ जाना चाहिए और एक गीले व खुरदरे तौलिये से सारे शरीर को रगड़–रगड़ कर अच्छी तरह से स्पंज बाथ देना चाहिए ताकि त्वचा साफ और शीतल हो जाए।
- इसके बाद पुनः सूर्य स्नान दिया जा सकता है, और फिर सूर्य स्नान देना चाहिए, शरीर गर्म होने पर उसी प्रकार से शरीर को शीतल करके पुनः स्नान दिया जा सकता है। एक समय में अधिकतम दो या तीन बार तक यह प्रक्रिया दोहराई जा सकती है। कुछ दिन तक इस प्रक्रिया को करने के बाद एक बार सुबह और एक बार शाम ही सूर्य स्नान देना पर्याप्त होगा।

ykHk

- जीवनी शक्ति वर्धक सूर्य स्नान से निर्बल, अशक्त रोगियों में शक्ति का संचार होता है।
- शारीरिक सामर्थ्य बढ़ता है, शरीर के आंतरिक अंगों की सक्रियता और सामर्थ्य में आशातीत लाभ होता

है तथा उनकी क्षीण जीवनी शक्ति पुनः सुचारू रूप से वृद्धि को प्राप्त होने लगती है।

- ऐसे रोगी जिन की रोग प्रतिरोधक क्षमता अत्यंत कम हो तथा जो मौसम परिवर्तनजन्य तकलीफों से सदैव आक्रांत रहते हैं।
- सामान्य सा वातावरण बदलाव उनके लिए कोई ना कोई स्वास्थ्य समस्या उत्पन्न कर देता हो तथा खानपान में भी बहुत सामान्य सी चीजें उनके पाचन को प्रभावित कर देती हो या विकृत कर देती हो तो ऐसे रोगियों के लिए इस प्रकार का सूर्य स्नान अत्यधिक लाभकारी है।

इसके द्वारा उनकी शारीरिक शक्ति, सामर्थ्य, व रोग प्रतिरोधक क्षमता को भरपूर सुदृढ़ किया जा सकता है।

lko/kkfu;k

- शरीर अच्छी प्रकार से पर्याप्त गर्म हो जाने के बाद उसको ठंडे पानी से स्पंज बाथ देने के बाद पुनः सूर्य स्नान हेतु प्रस्तुत करना चाहिए।
- सूर्य स्नान देने से पूर्व रोगी को पानी पिलाकर प्रारम्भ करना चाहिए तथा सिर पर गीली तौलिया लगातार रखने के बजाय तौलिये से मस्तक और चेहरे को बार–बार पोंछते रहना चाहिए।
- स्नान के बीच में प्यास लगे तो पानी अवश्य पिलाना चाहिए।
- समय सीमा निर्धारित करना मुश्किल काम है लेकिन फिर भी यह स्नान 20 मिनट से लेकर अधिकतम 40 मिनट तक दिया जा सकता है।
- तेज धूप में इस स्नान का प्रयोग बिल्कुल नहीं करना चाहिए।

7½ NksVs cPpksa gsrq lw;Z Luku

अगर बच्चे में कोई विशेष समस्या ना हो तो डेढ़ माह की अवस्था के बाद छोटे बच्चों को भी धूप स्नान कराया जा सकता है। आरंभ में सूर्य स्नान का समय प्रत्येक अंग के लिए आधे मिनट से अधिक नहीं होना चाहिए। धीरे–धीरे इसे बढ़ाना चाहिए जिससे 2 सप्ताह के बाद बच्चे को 3:00 मिनट पीठ की ओर से और 3 मिनट पेट की ओर से धूप स्नान दिया जा सकता है। 1 वर्ष से अधिक उम्र के बच्चों को धूप स्नान का समय भी क्रमशः बढ़ाकर 30 मिनट तक किया जाना चाहिए। क्योंकि सूर्यताप में अत्यधिक शक्ति होती है इसलिए धूप स्नान में यदि सावधानी नहीं बरती जाए तो लाभ के बदले हानि होने की संभावना बनी रहती है।

- साधारणतः छोटे बच्चों को सिर पर भीगी तोलिया और शरीर पर भीगा सूती कपड़ा पहनाकर उचित समय तक धूप में बैठाया जा सकता है, और कपड़े के सूख जाने पर पानी की छीटें डालकर कपड़े को पुनः शीतल करके सूर्य स्नान आगे बढ़ाया जा सकता है।
- तत्पश्चात् छाया में लाकर उनके शरीर को भीगे तौलिये से अच्छी तरह से साफ करके सामान्य वस्त्र पहनाकर सूर्य स्नान पूर्ण किया जा सकता है।

ykHk

- छोटे बच्चों में सूर्य स्नान देने से उनका शारीरिक विकास, उनकी अस्थियों का समुचित विकास, उनके शरीर के अंगों के निर्मित होने और विकसित होने की प्रक्रिया सभी कुछ तीव्र की जा सकती है।
- रोगों से लड़ने की उनकी क्षमता में अत्यधिक वृद्धि की जा सकती है, जिससे उनको नाना प्रकार की बीमारियों से बचाया जा सकता है।
- बच्चों के त्वचा के रोगों तथा सिर के बाल का समुचित विकास सूर्य स्नान से होता है। इस प्रक्रिया से उनमें निसर्ग के प्रति रुचि बढ़ती है, जिससे भविष्य में उनकी स्वस्थ परंपरा विकसित होती है।

lko/kkfu;k

बच्चों को सूर्य स्नान देते समय उनके आँखों को सूर्य की सीधी रोशनी से सुरक्षित रखना चाहिए। इस हेतु सिर पर गीला तोलिया या सिर पर टोपी लगा कर सूर्य स्नान कराया जा सकता है।

8½ LFkkfud /kwi Luku

पूर्ण धूप स्नान की ही तरह स्थानीय या आंशिक धूप स्नान भी लिया जाता है। इसमें अंतर केवल इतना है कि इसमें वह भाग विशेष जिसको धूप स्नान देना है उतने हिस्से को ही खोलकर धूप में रखते हैं। स्थानिक धूप स्नान दो प्रकार से दिया जा सकता है:

A½ gjs iÙks ls LFkkfud /kwi Luku

vko';d lkexzh

- पेशेंट बेड
- केले का पत्ता
- छोटी तौलिया
- सादा पानी

fof/k

- स्थानिक सूर्य स्नान की इस विधि में जिस अंग विशेष को धूप स्नान देना है उस अंग से वस्त्रों को हटाकर ऊपर से केले के बड़े पत्ता ढक देते हैं और उस ढके हुए पत्ते सहित अंग को सूर्य के प्रकाश में रखते हुए सूर्य स्नान देते हैं।
- आवश्यक्तानुसार 15–30 मिनट तक स्नान देने के बाद उस अंग विशेष को गीले कपड़े से पोंछकर स्नान पूर्ण करते हैं।

fVIi.kh

vfXu rRo fpfdRlk] fofHkUu fof/k;k¡ ,oa vuqiz;ksx

lko/kkfu;k

- जितने भाग पर सूर्य स्नान देना है केवल उतना ही भाग वस्त्रों से मुक्त करना चाहिए।
- उस मुक्त भाग को गहरे हरे रंग के केले के पत्ते से ढक कर ही सूर्य स्नान देना चाहिए।
- सूर्य स्नान देने के दौरान रोगी को अगर प्यास लगे तो पानी अवश्य पिलाना चाहिए तथा सामान्यतया सूर्य स्नान से पूर्व पानी पिला देना चाहिए।
- यथासंभव शरीर के अन्य भागों को छाया में ही रखना चाहिए।
- स्थानिक सूर्य स्नान यदि शांत वातावरण में हो तथा एकाग्र मन से अगर लिया जा सके तो परिणाम और भी सुखद होते हैं।

B½ lh/kk LFkkfud lw;Z Luku

vko';d lkexh

- पेशंट बेड
- छोटी तौलिया
- सादा पानी

fof/k

- इस विधि में बिना केले के पत्तों को रखे रोगी के अंग विशेष को सूर्य स्नान हेतु रखते हैं।
- सूर्य स्नान की समय अवधि जो 15 मिनट से आधे घंटे की होनी चाहिए के पश्चात् सूर्य स्नान प्राप्त अंग को गीले कपड़े से भली प्रकार पोंछकर और बिना मेहन स्नान और कटि स्नान या सर्वांग शीतल स्नान दिए ही इस स्थानिक सूर्य स्नान की इस विधि को पूर्ण करते हैं।

ykHk

- इस प्रकार के स्थानिक सूर्य स्नान से सतही स्तर पर उपस्थित समस्याएं जैसे जख्म, घाव, दर्द, नासूर, कंठमाला तथा आँख के रोगों में अत्यधिक प्रभावशाली परिणाम प्राप्त होता है।

lko/kkfu;k½

- हरे पत्तों के स्थानिक धूप स्नान की सावधानियां व इसकी सावधानियां समान ही हैं।

fVIi.kh

bdkbxr i'u&6-3

सत्य / असत्य बताइये

1. डा. रिकली के अनुसार मानव जलचर न होकर वायु और प्रकाश का प्राणी है। ( )
2. भोजन के 2 घंटे उपरांत ही सूर्य स्नान करना चाहिए। ( )
3. कड़ी धूप में सूर्य स्नान लेना उचित है। ( )
4. हृदय व ज्वर रोगियों को सूर्य स्नान करना चाहिए। ( )

6-4 l;Z dh lIr jf'e;k }kjk fpfdRlk

सूर्य की दृश्य और अदृश्य दोनों प्रकार की किरणों के बारे में पहले विवरण प्रस्तुत किया जा चुका है। अब यहां पर सूर्य किरण चिकित्सा के मूल सिद्धांतों के साथ–साथ रोग निवारण के लिए सूर्य की सातों रश्मियों की विभिन्न प्रयोग विधियों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया।

सृष्टि रचना में नाना प्रकार के रंगों की उपस्थिति ना केवल सौंदर्य के अभिप्राय से ही महत्वपूर्ण है अपितु, उसका संबंध–सूत्र, सृष्टि–प्राणियों के स्वास्थ्य के साथ भी एक अति रहस्यमय एवं सूक्ष्म रीत से ग्रथित है। हमारी इस शरीर प्रणाली में अनेक रंग है और उन्हीं में से किसी एक की न्यूनता अथवा आधिक्य के कारण हम बीमार होते हैं। रंगो द्वारा रोग निवारण की इस चिकित्सा प्रणाली को ही सूर्य चिकित्सा विज्ञान या सूर्य किरण चिकित्सा कहा जाता है।

जिस प्रकार सूर्य की सातों रंगों की संयुक्त किरणें धूप के रूप में हमारे रोगों को दूर करने की सामर्थ्य रखती हैं उसी प्रकार उनमें से प्रत्येक रंग की किरण भी विभिन्न रोगों को दूर करने में बड़ी प्रभावशाली सिद्ध होती है। अतः सूर्य की किसी भी रंग की किरण की शक्ति को उसी रंग के पारदर्शक माध्यम द्वारा जल, तेल, मिश्री, ग्लिसरीन तथा वायु में अवशोषित कराकर या संपुटित कर या भावित (charge) कर उसे दवा की तरह सेवन करने से असाध्य से असाध्य रोग भी बड़ी आसानी के साथ दूर किया जा सकता है।

6-4-1 jxk }kjk tkp ,o funku

रोगावस्था में शरीर में किस तत्व की कमी या अधिकता है इसको जानने के लिए हमें सर्वप्रथम तत्वों के रंग आकार एवं स्वाद को जानना होगा जो निम्नलिखित हैः–

vfXu rRo fpfdRlk] fofHkUu fof/k;k¡ ,oa vuqi;ksx

तालिका 6.1 : पंचतत्वों का रंग, आकार व स्वाद

uke rRo	rRo dk jax	rRo dk vkdkj	rRo dk Lokn
आकाश	नीला	बूंद बूंद जैसा	कड़वा
वायु	पीला	षट्कोण सादृश्य गोल	खट्टा
जल	नीला	अर्धचंद्राकार	कसैला
पृथ्वी	पीला	चौकोर	मीठा
अग्नि	लाल	त्रिकोण	चरपरा

इसके अतिरिक्त निम्न संकेतों और परीक्षणों से भी रंगों के असंतुलन से उत्पन्न हुई विकृति का निदान किया जा सकता है।

1) हाथ के दोनों अंगूठे से कान के दोनों छिद्र, बीच की दोनों उंगलियों से नाक के नथुने, दोनों अनामिका और दोनों कनिष्ठका उंगलियों से मुंह तथा दोनों तर्जनी से दोनों आँखें बंद करने पर जिस तत्व का रंग दिखाई दे शरीर में उसी तत्व की अधिकता समझनी चाहिए।

2) किसी दर्पण पर जोर से सांस मारने पर उसकी भाप से दर्पण पर जिस तत्व का आकार बन जाए शरीर में उसी तत्व की अधिकता समझनी चाहिए।

3) मुंह में जिस समय जिस तत्व का स्वाद हो शरीर में उस समय उसी तत्व की प्रधानता समझनी चाहिए।

4) रोगी के सामने विविध प्रकार के रंगों को रखकर व अनेक रंग की वस्तुओं को दिखाकर उससे पूछा जाए कि उन रंगों में उसे कौन सा रंग विशेष प्रिय है, जो रंग उसे विशेष प्रिय हो उसी रंग की कमी उसके शरीर में समझनी चाहिए। इसके विपरीत जिस रंग को सबसे बुरा बताएं उस रंग की अधिकता।

5) उपर्युक्त विधियों के अतिरिक्त रोगी के शरीर में किस तत्व की कमी या अधिकता है इसकी पहचान रोगी की आँखों के रंग, नाखून के रंग, मूत्र के रंग तथा मल के रंग से भी होती है।

इसका तात्पर्य है कि यदि किसी रोगी में अग्नि तत्व अर्थात् लाल रंग की कमी है तो उसके नेत्र और नाखून नीले होंगे, मूत्र का रंग सफेद या नीला होगा। और यदि आकाश, वायु या जल तत्वों अर्थात् नीले रंग की कमी होगी तो आँखें गुलाबी नाखून लाल मूत्र तथा मल भी लाल या गाढ़ा पीला होगा।

रोगी की परीक्षा करते समय रोग का निदान करने के लिए यह आवश्यक है की रोग की परीक्षा उपर्युक्त सभी विधियों से करके ही किसी निश्चय पर पहुंचा जाए। केवल एक ही विधि से परीक्षा करके या केवल एक ही लक्षण को देखकर रोग का निदान कर लेना प्रायः गलत सिद्ध होता है। उदाहरणार्थ एक दुर्बल व्यक्ति जो मस्तिष्क से अधिक काम लेता है की आँखे स्वभावतः गुलाबी होंगी जिनको देखकर यह अनुमान लगा लेना कि उस व्यक्ति में अग्नि तत्व या लाल रंग की अधिकता है बिल्कुल गलत है। कारण उस कार्यात्मक अवस्था में उसकी आँखों की लाली उसकी दुर्बलता के कारण से है ना कि उसके शरीर में अग्नि तत्व या लाल रंग की अधिकता के कारण। इसी प्रकार बच्चों की प्राकृतिक नीली आँखें देखकर यह धारणा कर लेना कि उसमें लाल रंग या अग्नि तत्व की कमी है और वह रोगी हैं उपयुक्त नहीं है।

सूर्य की सप्तरशियों में तीन रंग की प्रधानता होती है– नीला, पीला और लाल। इन का प्रतिबिंब इंद्रधनुष पर हम आसानी से देख सकते हैं। सूर्य रश्मियों के चारों रंग नारंगी, हरा, आसमानी और बैंगनी उपर्युक्त 3 प्रधान रंगों के भिन्न–भिन्न अनुपात में मिलने से बनते हैं। अतः इस बात का पता लग जाने पर कि किस रोग में किस तत्व की कमी या अधिकता के कारण रोग आया है। या दूसरे शब्दों में किस रंग विशेष की कमी या अधिकता हो गई है जिसके कारण यह रोग आया है, सूर्य रश्मि चिकित्सा द्वारा उस रोगी के शरीर में उस रंग विशेष की उचित मात्रा में आपूर्ति कर देने मात्र से उसका रोग निःसंदेह दूर हो जाएगा। सूर्य किरण चिकित्सा का यही स्वर्ण सिद्धांत है।

jksxh dh ç—fr dk fu/kkZj.k

निम्नलिखित लक्षणों एवं संकेतों को देखकर रोगी की प्रकृति का निर्धारण किया जा सकता है:–

rkfydk 6-2 % y{k.kksa ds vk/kkj ij jksxh dh iz—fr dk fu/kkZj.k

	y{k.k	xehZ dh vf/kdrk ¼fiÙk ç—fr½	lnhZ dh vf/kdrk ¼dQ ç—fr½	ok;q ,oa jä fodkj ¼okr ç—fr½
1	मुंह का स्वाद	कड़वा	फीका	–
2	जीभ का रंग	लाल	सफेद मैली	चिपड़ी, जमी हुई
3	प्यास	अधिक	कम	–
4	पेशाब का रंग	बहुत पीला/लाल	सफेद	गंदा
5	पेशाब की मात्रा	कम	ज्यादा	कम
6	आँखें	लाल या पीली	पीली	गंदी
7	त्वचा	गर्म	ठंडी	सूखी/पसीने का अभाव
8	पसीना	अधिक	कम	गंदा/थोड़ा

इस तरह रोग का निदान सरलता से किया जा सकता है।

lw;Z fdj.kksa dh ç;ksx fof/k

सूर्य की रंगीन किरणों को रोगों को दूर करने के लिए हम निम्नलिखित 7 तरीकों से प्रयोग में लाते हैं।

1) सूर्य किरणों को रंगीन शीशों के बीच से गुजार कर।

2) जल में संपुटित/घनीभूत (charge) करके

3) वायु के माध्यम से

4) तेल को घनीभूत (charge) करके

5) मिश्री या दुग्ध शर्करा आदि को भावित (charge) करके

6) रंगीन किरण तप्त जल से भीगी कपड़े की पट्टी लगाकर

7) रंगीन किरण तप्त जल से सनी मिट्टी की पट्टी का प्रयोग करके

उपरोक्त में से कुछ मुख्य प्रयोग विधियों का आइये संक्षिप्त में व्यावहारिक पक्ष जानें।

1- lw;Z dh jaxhu fdj.kksa dk jaxhu 'kh'kksa ls xqtkj dj mipkjkFkZ ç;ksx

इस विधि के लिए विविध रंगों के (सूर्य के सात रंगों के अनुरूप शीशे जैसे किसी खिड़की और दरवाजे पर लगाते हैं। उसी प्रकार खिड़की और दरवाजों में उन्हें इस प्रकार बनाना चाहिए कि उन्हें अपनी आवश्यक्तानुसार बिना नुकसान हुए बदला जा सके) जब शरीर के किसी रोगग्रस्त भाग पर किसी रंग का सूर्य प्रकाश डालना हो तो उसी रंग का शीशा लेकर धूप में या धूप के नजदीक बैठकर शरीर के रोगी भाग पर शीशे को उस भाग के बिल्कुल निकट रखते हुए सूर्य की किरणों का उपचार लेना चाहिए। सूर्य की रश्मियों का स्नान हमेशा खुले शरीर पर बिना वस्त्र के करना लाभप्रद होता है।

सूर्य की रोशनी से यदि किसी विशेष रंग की किरण से समूचे शरीर को स्नान कराना हो तो इसके लिए ऐसा कमरा चाहिए जिसमें सूर्य प्रकाश प्रचुरता में आता हो तथा उसकी खिड़कियों में रंगीन शीशों को ऊपर बताई गई विधि से आवश्यकतानुसार निकालने और लगाने की व्यवस्था हो। जिस रंग के सूर्य प्रकाश से उपचार करने की आवश्यक्ता हो उसी रंग के शीशे को सूर्य के सामने वाली खिड़की पर लगाकर बाकी सभी खिड़कियों और दरवाजे इस तरह सावधानी से बंद कर देना चाहिए कि उस आवश्यक रंग के प्रकाश के अतिरिक्त किसी अन्य रंग का प्रकाश कमरे में बिल्कुल ना आए। ऐसे में रोगी को लिटाकर उसके पूरे शरीर को सूर्य के किसी भी रंगीन रश्मि से स्नान कराया जा सकता है।

- **lw;Z rIr Luku ;= ¼Thermolume½**

रंगीन सूर्य स्नान करने के लिए एक ताप– प्रकाश यंत्र भी आता है या बनाया जा सकता है। इसे अंग्रेजी

fVI.kh

में थर्मोल्यूम (Thermolume) कहते हैं। यह यंत्र बड़े बक्से की तरह होता है जिसके चारों तरफ रंगीन शीशे लगाने और बदलने की व्यवस्था होती है। इस यंत्र द्वारा रोगी के किसी अंग विशेष को भी स्नान दिया जा सकता है।

vko';d lkexzh

सूर्य प्रकाश –तप्त स्नान से स्नान देने के लिए निम्नलिखित वस्तुओं की आवश्यकता होती है।

1) सूर्य प्रकाश – तप्त स्नान यंत्र

2) शीतल जल

3) छोटी बड़ी तौलिया

4) कम्बल या मोटी सूती चादर व

fof/k

सूर्य प्रकाश–तप्त स्नान यंत्र में रोगी को उपचार देने के लिए सर्वप्रथम रोगी को पानी पिलाकर बिना वस्त्रों के यंत्र में लिटाते है फिर वांछित भाग जिस पर स्नान देना है उसको खुला रखकर बाकि शरीर को कम्बल या सूती चादर से ढक देते हैं। अब उस भाग पर वांछित रंग के शीशे को इस प्रकार व्यस्थित करते हैं कि उससे आने वाला प्रकाश केवल उसी भाग पर पड़े तत्पश्चात् रोगी के सिर को भीगे तौलिए से पोंछकर मस्तक और अग्र मस्तिष्क पर भीगी तौलिया रख देते हैं। यंत्र के ऊपर भी प्रयुक्त हिस्से को छोड़कर बाकी हिस्से को कम्बल से ढक देते हैं। रोगी को उसकी क्षमता और आवश्यक्तानुसार यह स्नान आधे घंटे से एक घंटे तक चलाया जा सकता है।

तत्पश्चात् रोगी को बाहर निकालकर भीगी तौलिया से स्पंज देकर सामान्य वस्त्र पहनने को कहते हैं।

ykHk

इस यंत्र के प्रयोग से रोगी को सूर्य ताप और सूर्य प्रकाश दोनों के लाभ साथ–साथ प्राप्त होते हैं। इस कारण शरीर मे रंगों का संतुलन होने के साथ ही तीव्रता से पसीना निकलता है जिससे शरीर का निर्विषीकरण तेजी से होता है, फलस्वरूप शरीर की भयंकर और तीव्र बीमारियों का सरल समाधान मिलने का साथ शरीर के कायाकल्प होता है। इसके सामान्य लाभ निम्नलिखित हैं –

1) शरीरगत उग्र और जीर्ण रोगों का शमन होता है।

2) शरीर के अंगों एवं ऊतकों की पुष्टि होती है।

3) शारीरिक अंगों की सक्रियता बढ़ती है। जिससे आंतरिक जैव रसायनों की उपलब्धि बढ़ती है तथा शारीरिक प्रक्रियाएं सामान्य कार्य करने लगती हैं।

4) त्वचा की समस्याएं दूर होती हैं। त्वचा को प्राकृतिक निखार मिलता है। दाग, धब्बे, झुर्रियां स्वतः दूर हो जाती है।

5) शरीर में रक्त की गुणवत्ता में तेजी से सुधार आता है। हीमोग्लोबिन तेजी से बढ़ता है।

lko/kkuh

1) सूर्य प्रकाश–ताप स्नान यंत्र में सूर्य स्नान उपचार देने में रोगी को बिठाने से पहले जल पिलाना आवश्यक है।

2) सूर्य प्रकाश स्नान देते समय ध्यान रखना चाहिए कि रोगी के शरीर का वही भाग खुला रहे जिस भाग को सूर्य स्नान देना है।

3) साथ ही साथ सूर्य प्रकाश–तप्त स्नान यंत्र के शेष हिस्सों को ढकना आवश्यक है।

4) चूंकि यह स्नान लंबा चलता है अतः इस दौरान यदि रोगी को प्यास लगे तो उसे पानी पिलाते रहना चाहिए।

5) रोगी अगर लंबा सूर्य स्नान न ले पाए तो उसकी इस स्थिति को देखते हुए इसे कम समय में भी समाप्त किया जा सकता है। धीरे–धीरे जब उसका शरीर सक्षम होता जाए तब उसका समय बढ़ाते जाना चाहिए।

6) सूर्य किरण उपचार देते समय रोगी का खाना सादा एवं सुपाच्य होना चाहिए।

7) थर्मोल्यूम का उपयोग खुले आसमान के नीचे, खुली धूप में ही करना चाहिए।

8) उच्च रक्तचाप के रोगियों को थर्मोल्यूम में उपचार ना दे कर के किसी अलग रंगीन शीशे की प्लेट से उपचार दिया जाना उचित होगा।

- **oSdfYid çdk'k fdj.k fpfdRlk**

सूर्य प्रकाश के अभाव में या अन्य किसी परिस्थिति वश वैकल्पिक रंगीन किरणों का प्रकाश डाला जाता है। यह प्रयोग बिजली के 100 वाट के बल्ब पर रंगीन प्लास्टिक या सेलोफेन पेपर को निर्धारित स्थान पर रखकर प्रयोग किया जा सकता है क्योंकि बल्ब पर लपेटने से यह जल जाएगा। इस प्रयोग में प्रकाश स्रोत को शरीर से 3 फुट दूरी पर रखना आवश्यक है ताकि उसका ताप शरीर को नुकसान न पहुंचा सके। जिस स्थान या कमरे में यह उपचार दिया जाए वहां दूसरी रोशनी नहीं होनी चाहिए। रंगीन रोशनी बिना सैलोफेन पेपर या प्लास्टिक के भी उत्पन्न की जा सकती है। इस हेतु या तो बल्ब का कांच रंगीन होना चाहिए या बल्ब पर रंगीन कांच या पेंट लगाकर उसे रंगीन बनाया गया हो।

fVIi.kh

• bÝkjM ySi ls fldkb

इंफ्रारेड लैंप से उत्पन्न लाल किरण शरीर के किसी भाग पर सिकाई देने का सबसे उत्तम साधन है। प्राकृतिक चिकित्सा में इसका उपयोग अग्नि तत्व के अंतर्गत रोग को दूर करने के लिए प्रयोग किया जाता है। इसमें एक विशेष प्रकार का बल्ब लगा होता है जिसे इंफ्रारेड लैंप कहते हैं। घर में विद्युत व्यवस्था होने पर इसे आसानी से प्रयोग किया जा सकता है।

प्रयुक्त सामग्री और तैयारीः

- पेशेंट बेड
- इंफ्रारेड लैंप
- हरी तौलिया
- सूती चादर

ç;kx fof/k

इंफ्रारेड लैंप की सिकाई देने के लिए रोगी को बेड पर लिटा कर उसके जिस भाग पर सिकाई देना है उससे वस्त्रों को हटा देते हैं। अन्य शरीर के भागों को सूती चादर से ढक देते है तथा आँखों को हरी तौलिया से ढक देते है क्योंकि इंफ्रारेड प्रकाश आँखों को नुकसान पहुंचा सकता है। लिटा के उपचार देना इसलिए आवश्यक है जिससे रोगी के शारीरिक अंगों में गति न हो। अब इस स्थिति में 5–25 मिनट तक आवश्यक्तानुसार सिकाई देते हैं।

ykHk

ऐसे लोगों में जिनमें शरीर के किसी अंग में रक्त की अधिकता हो जाती है अथवा उसमें सूजन आ जाती है तो ऐसे संक्रामक रोगों में यह सिकाई विशेष रूप से लाभदायक सिद्ध होती है।

- ये किरणें अनेक प्रकार के दर्द और सूजन, गठिया के दर्द, पेट के दर्द, स्त्रियों के मासिक धर्म की समस्या, गर्भाशय का स्थानच्युत होना तथा उस पर सूजन आ जाने की दशा में बहुत लाभकारी है।
- यकृत, अंडकोष, गुर्दे की सूजन, कमर दर्द, सर्दी– जुकाम, खांसी तथा सभी प्रकार के चर्म रोग में बहुत लाभ पहुंचाती है।
- जब ये किरणें शरीर की त्वचा द्वारा आत्मसात कर ली जाती हैं तो शरीर की कोशिकाओं को स्वास्थ लाभ मिलता है और उनको शक्ति प्राप्त होती है तथा वे शक्तिशाली बन जाती हैं।

l;l jf'evk }kjk lifVr ty vkj mldk fpfdRldh; ç;kx

सूर्य की सातों रंगीन किरणों बैंगनी, आसमानी, नीला, हरा, पीला, केसरिया और लाल रश्मियों को उन्हीं रंगों की बोतलों के माध्यम से जल में संपुटित (Charge) करके चिकित्सा के लिए प्रयोग करते हैं। अतः इस काम के लिए जो रंगीन बोतल प्रयोग की जाए उनके रंग विशुद्ध होने चाहिए। नीली बोतल जितने गहरे रंग की होगी उसमें बनाया गया जल उतना ही अधिक शांतिप्रदायक, हल्का गर्म, पुष्ट तथा कब्ज करने वाला होगा। बोतल जितने हल्के रंग की होगी उससे बना हुआ जल उतना ही शीतल प्रभाव वाला होगा। हरी बोतल जितने ही शुद्ध रंग की होगी उसके जल में उतना ही अधिक गुण होगा। इसी प्रकार पीली बोतल जितनी अधिक लालपन लिए होगी उसके जल में उतना ही अधिक गर्मी होगी, और जितना अधिक पीलापन उसमें होगा उसका जल उतना ही कम गर्मी करने वाला होगा। लाल रंग वस्तुतः काफी गर्म होता है अतः लाल रंग की बोतल जितनी अधिक सुर्ख होगी उसका जल उतना ही प्रभावकारी होगा। अगर किसी रंग की शुद्ध बोतल ना मिल सके तो सफेद बोतल पर इच्छित रंग का सैलॉफेन पेपर लपेट कर प्रयुक्त किया जा सकता है।

2- l;l fdj.kk l ty dk lEifVr ¼Charge½ dju dh fof/k

vko';d lkexh%

- जिस रंग का जल बनाना है उस रंग की कांच की बोतल
- चौकी, तिपाई, या लकड़ी का पटरा
- शुद्ध शीतल जल तथा
- खुली जगह जहां पर 7 से 8 घंटे तक अनवरत धूप आती हो।

fof/k%

जिस रंग की बोतल में जल तैयार करना हो उसे सबसे पहले अंदर और बाहर से बिल्कुल साफ कर लेना चाहिए। तत्पश्चात् शुद्ध जल कपड़े से छानकर उसमें इतना भरा जाए कि उसका एक चौथाई हिस्सा खाली रहे। अब उसी रंग के शीशे का ढक्कन या कार्क लगाकर बोतल को साफ कपड़े से खूब पोंछकर एक लकड़ी की पटिया या तिपाई पर ऐसी जगह रख देना चाहिए जहां 10:00 बजे से लेकर 5:00 बजे तक लगभग 7 घंटे लगातार धूप पड़ती रहे। 5:00 बजे शाम को जब बोतल के खाली भाग पर भाप के बिंदु छलकने लगें तब समझना चाहिए कि पानी में औषधीय गुण आ गया है। उस समय उक्त बोतल को उठाकर किसी लकड़ी की अलमारी या मेज पर रख देना चाहिए और चिकित्सा कार्य में प्रयुक्त करना चाहिए।

fVIi.kh

ç;kx ,o ykHk

यह जल पीने और मालिश करने दोनों के काम में आता है पीने की मात्रा निम्नलिखित है: –

तालिका 6.3 : सूर्य तप्त जल की आयु के अनुसार मात्रा

vk;q	ek=k
1 दिन से 1 माह तक	एक छोटा चम्मच
1 माह से 3 माह तक	2 छोटा चम्मच
तीन माह से 1 वर्ष तक	3 छोटा चम्मच
1 वर्ष से 5 वर्ष तक	4 छोटा चम्मच
5 वर्ष से 10 वर्ष तक	5 छोटा चम्मच
10 वर्ष से 15 वर्ष तक	25 ग्राम (या एक औंस)
15 वर्ष से ऊपर	50 ग्राम (2 औंस)

ध्यान दें औषधि 1 से 10 वर्ष तक दो–दो घंटे के अंतराल पर और 10 वर्ष से ऊपर तीन–तीन घंटे के अंतराल पर दी जानी चाहिए।

यह औषधीय जल 3, 4, 6, या 8 बार तक 24 घंटे में दिया जा सकता है। जो रोग की दशा और रोग के वेग पर निर्भर करता है।

सूर्य तप्त जल से भीगे कपड़े की पट्टी मामूली जल से भीगे कपड़े की पट्टी से अधिक प्रभावशाली होती है। इसी तरह से सूर्य तप्त जल से सनी गीली मिट्टी की पट्टी मामूली जल से सनी हुई मिट्टी की पट्टी से कहीं अधिक और शीघ्र लाभदायक होती है।

lko/kkfu;k

1) सूर्य तप्त जल को कभी भूलकर भी पृथ्वी पर नहीं रखना चाहिए, वरना उसका सब गुण और गर्मी पृथ्वी में समाहित हो जाएगी।
2) इसी प्रकार चंद्रमा, तारों तथा दीपक आदि का प्रकाश भी इस जल पर पड़ने से यह अपना औषधीय गुण खो देता है।
3) यह जल 6 से 8 घंटे में औषधि बन जाता है उससे पहले इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए।
4) बोतल में पानी भरते समय पानी को कपड़े से छानकर या वर्तमान समय में प्रयुक्त हो रहे वाटर फिल्टर का पानी प्रयोग करना चाहिए।
5) ध्यान रहे कि बोतल का एक चौथाई हिस्सा खाली अवश्य रहे।

कई रंग की बोतल यदि एक साथ तैयार करनी हैं तो उनको धूप में रखते समय उनके बीच में इतनी दूरी रखनी आवश्यक है कि उनकी परछाई दूसरी बोतल पर ना पड़े वरना उनमें विशिष्ट रंग के चिकित्सकीय गुण नहीं आ पाएंगे और सम्मिलित रंग के प्रकाश के गुण होने से वह चिकित्सकीय कार्य हेतु उपयोगी नहीं रह जाएगा।

सिद्धांत यह है कि किसी एक रंग के शीशे द्वारा सूर्य की केवल उसी रंग की प्रकाश रश्मि आती है और सभी रंगों की राश्मियों का अवशोषण हो जाता है तभी सूर्य तप्त जल विशुद्ध बन पाता है, और औषधि के रूप में प्रयुक्त हो पाता है।

3- l;l fdj.kk ls vkof'kr ry ls mipkj

जिस प्रकार सूर्य की रंगीन किरणों से जल को आवेशित किया जाता है ठीक उसी प्रकार सूर्यकिरणों से तेल भी आवेशित किया जा सकता है। अंतर केवल इतना है कि जल धूप में रखने पर केवल 8 घंटों में औषधि के रूप में तैयार हो जाता है, परंतु तेल व ग्लिसरीन गर्मियों में 30 से 40 दिनों में और सर्दियों में 60 दिनों में तैयार होता है। पर यह तेल रूपी औषधि 15 दिनों के बाद उपयोग की जा सकती है।

vko';d lkexh

- रंगीन बोतलें
- लकड़ी का पटरा, तिपाई या लकड़ी की मेज
- आवेशित करने हेतु प्रयुक्त होने वाला तेल

l;l fdj.kk ls vkof'kr ry r;kj djus dh fof/k

सूर्य किरणों से आवेशित तेल तैयार करने के लिए सर्वप्रथम आवश्यकतानुसार रंगीन कांच की बोतल को भली प्रकार से अंदर व बाहर साफ करके उसमें चार अंगुल खाली रखते हुए उपचारार्थ तेल को भर लेना चाहिए। तत्पश्चात् उसमें मजबूती से कार्क लगा देना चाहिए। अब इस बोतल को खुली धूप में दिन में 10:00 बजे से लेकर के 5:00 बजे तक रखना चाहिए। 5:00 बजे उस बोतल को उठाकर लकड़ी की अलमारी में बंद कर देना चाहिए। जिससे वह रात के तारों की रोशनी, अंधेरे तथा भूमि के संपर्क में आने से अनावेशित ना हो जाए। पुनः यह प्रक्रिया अगले दिन तथा 60 दिन तक दोहरानी चाहिए। 60 दिन में यह औषधि तैयार हो जाती है। मगर यदि आवश्यक हो तो 15 दिन तक तेल को भली–भांति आवेशित करके प्रयोग में लाया जा सकता है।

इस काम के लिए सामान्यतः सरसों या जैतून के तेल का प्रयोग किया जाता है किंतु वात आदि रोगों में तिल का तेल अधिक लाभप्रद होता है। ग्लिसरीन केवल नीले रंग की शीशी में तैयार की जाती है। बोतल को प्रतिदिन अच्छी तरह हिलाना चाहिए और साफ रखना चाहिए।

तैयार औषधीय तेल के चिकित्सकीय गुण को संरक्षित करने के लिए 3 महीने के अंतराल पर चार–पांच दिन धूप में बोतल रख देनी चाहिए जिससे वह पुनः औषधीय गुणों से युक्त हो जाए और जो औषधीय गुणों का क्षरण उसमें हुआ है उसकी आपूर्ति हो जाए।

fVIi.kh

I ko/kkfu;k

- बोतल पूरी भरी नहीं होनी चाहिए।
- बोतल को दिन में धूप रहते ही धूप से हटा लेना चाहिए। गलती से भी वह वहां पर रखी ना रह जाए।
- घर के अंदर बोतल को जमीन पर कभी नहीं रखना चाहिए उसको लकड़ी के बक्से या लकड़ी की अलमारी में ही रखना चाहिए।
- तैयार तेल को प्रयोग करते समय भी उसे लकड़ी पर ही रखना चाहिए।
- तेल को बोतल से निकालकर किसी पात्र में रख देने पर शीघ्र अनावेशित हो जाता है। अतः तेल को उसी रंग की बोतल में ही रखना चाहिए।
- जब तेल आवेशित हो रहा हो उस दौरान कार्क को बार–बार खोलना नहीं चाहिए।

ykHk ,o mi;kx%

- **yky jax** का तेल शरीर के जोड़ों के दर्द, वात का दर्द, स्थानिक यानी जहां पर है वहीं पर प्रयोग करना चाहिए बहुमूत्रता या पेशाब अधिक आता हो तो पेडू पर, फेफड़ों में कफ अधिक हो या पसलियों में दर्द हो तो छाती पर, स्त्रियों की मासिक रक्तस्राव की कमी हो तथा पीड़ा हो तो पेडू, पीठ या छाती पर हल्की मालिश करनी चाहिए।
- **gj jax** का तेल यकृत, प्लीहा, गुर्दे और पेट आदि के दर्द में उपयोगी है। इससे प्रभावित स्थान पर इस तेल से मालिश की जानी चाहिए।
- **uhy jax** के तेल का उपयोग शरीर के किसी अंग के जल जाने पर या जलने के बाद घाव हो जाने पर, खाज–खुजली, फोड़े–फुंसी, दाद, एग्जिमा आदि बीमारियों में लगाने से लाभ मिलता है। हर प्रकार की सूजन दूर करने में उपयोगी है। हाथ–पांव की बीमारी में दिन में दो बार मालिश करने से आशा जनक परिणाम प्राप्त होते हैं। तेज बुखार और सिर दर्द में ललाट पर लगाने से लाभ होता है। यदि बाल गिरते हों, जल्दी सफेद हो गए हो, नींद आती हो तो पूरे शरीर पर नीले रंग के तेल से मालिश करनी चाहिए। पेशाब रुक जाने पाए पुनः सामान्य करने के लिए पेडू पर हल्की मालिश करना उपयुक्त रहता है। मासिक धर्म में रक्त की अधिकता हो तो पेडू पर हल्की मालिश करने पर तुरंत लाभ होता है। जहरीले जीव जंतुओं जैसे ततैया, मधुमक्खी, तथा बिच्छू आदि के काटने पर नीले आवेशित तेल से शीघ्र लाभ होता है।
- **uhy jax** की ग्लिसरीन का उपयोग गले में किसी प्रकार के घाव, मुंह में छाले, मसूड़ों और दांतों के दर्द, दांत में पायरिया या मवाद आती हो, टॉन्सिल बढ़े हो, सेप्टिक हो तो उन स्थानों पर रूई के फाए से लगाना या पेस्टिंग करना उपयुक्त होता है और प्रभावी परिणाम देता है। यह अभ्यास दिन में दो–तीन बार करना चाहिए। कान में दर्द या कान बहने पर दो–दो बूंद आवेशित ग्लिसरीन गर्म करके डालनी चाहिए।

rkfydk 6-4 % lw;Z jf'e dh fpfdRlk ç;ksx

रोग का नाम	रंगीन जल उपचार	रंगीन तेल का उपयोग	रंगीन प्रकाश चिकित्सा	रंगीन जल की पट्टी आदि
सभी प्रकार के ज्वर	आसमानी या गहरा नीला	-	आसमानी	आसमानी (कपड़े या मिट्टी की पट्टी पेड़ू पर)
पेचिश	आसमानी	-	-	आसमानी (कपड़े या मिट्टी की पट्टी पेड़ू पर)
हैजा	आसमानी, दस्त हो जाने पर गहरा नीला	-	-	(आसमानी कपड़े या मिट्टी की पट्टी पेड़ू पर) 10-15 मिनट के अंतर पर
कैंसर	हरा	-	हरा कैंसर वाले स्थान पर	-
कुत्ता, गीदड़, सांप, बिच्छू, मधुमक्खी आदि के काटने पर	आसमानी	आसमानी	आसमानी और हरा जब सूजन हो	हरी पट्टी जब सूजन हो अन्यथा आसमानी
गठिया	नारंगी	-	दर्द की जगह पर पहले लाल 1 घंटे फिर नीला 2 घंटे	नारंगी कपड़े या मिट्टी की पट्टी पीड़ित स्थान पर
राज्यक्षमा ट्यूबरक्लोसिस	गहरा नीला	-	गहरा नीला प्रभावित भाग पर	-
सिर दर्द	गहरा नीला	आसमानी	नीला सिर पर	-
गला बैठना और छाले	गहरा नीला	-	-	आसमानी या गहरा नीला से कुल्ला करना
कुकुर खांसी	गहरा नीला	-	-	गहरा नीला (पट्टी गले पर)
सूखी खांसी	गहरा नीला	-	-	-
बलगम सहित खांसी	नारंगी	-	-	-
दमा का दौरा	नारंगी हर 10 मिनट पर	यदि श्वास सूखी हो तो लाल तेल छाती पर	-	-
दमा का दौरा जब न हो	नारंगी भोजन के बाद	-	-	-
दांत का दर्द प्रदाह के साथ खून और मवाद भी हो	गहरा नीला + हरा+ पीला (2:1:1 के अनुपात में)	-	-	गहरे नीले जल से ऊपर से सेंक और उसी की पट्टी, गहरा नीला+ हरा (1:1) अनुपात में कुल्ला 6-7 बार
दांत का दर्द बिना मसूड़े के प्रदाह के		-	-	नारंगी जल से कुल्ला 6-7 बार
बच्चों के दांत निकलने में तकलीफ	-	-	नीला	-
मोटे व्यक्तियों की कब्ज	नारंगी	-	-	-
दुबले लोगों का कब्ज	गहरा नीला	-	-	-
एसिडिटी	नारंगी	-	-	-
पेट में गैस बनना	नारंगी या गहरा नीला	-	-	-

उल्टी या मितली	आसमानी	-	-	-
पेट दर्द	नारंगी या गहरा नीला			
पीलिया	पीला + गहरा नीला (1:3 के अनुपात में)	गहरा नीला सारे शरीर पर	गहरानीला मुंह छाती पर एक घंटा प्रतिदिन	-
दस्त	आसमानी	-	-	-
दौरे का दर्द	नीला हर 10 मिनट पर	-	-	-
बादी बवासीर	नारंगी या गहरा नीला + पीला (1:1 के अनुपात में)	-	नीला मस्सों पर	नीला पट्टी मस्सों पर तथा पीले का एनिमा
खूनी बवासीर	आसमानी या हरा	-	आसमानी या हरा मस्सों पर	हरा एनिमा
मूत्र अवरुद्ध होना	-	-	-	नीला जल पट्टी या मिट्टी की पट्टी पेड़ू पर
आंख आना (conjunctivitis)				नीला चश्मा, नीला जल और नीले जल की पट्टी पेड़ू पर दिन में दो बार
कान का दर्द एवं अन्य कर्ण रोग	गहरा नीला + पीला (1:1 के अनुपात में)	हरा कान में डालना	पहले गहरा नीला 1/2घंटा तक फिर हरा एक घंटा तक	गर्म हरा + पीला जल् से कान धोना। आसमानी गर्म जल से सेंकना
फोड़ा या घाव	-	-	हरा या आसमानी	हरा + आसमानी (मिट्टी की पट्टी दिन में 4 बार ऊपर से ऊनी वस्त्र)
दाद-खाज	आसमानी	-	हरा या नीला 2 घंटे प्रतिदिन	हरे या नीले जल धोना
नकसीर	पीला + गहरा नीला + हरा (2:1:1 के अनुपात में)	-	-	पीला + हरा से नाक धोना, हरे का नस्य लेना, हरा जल की बत्ती नाक में
धड़कन (palpitation)	नीला	-	-	-
जलना, कटना, कुचलना	-	-	-	नीली पट्टी दिन में तीन बार
अवरुद्ध मासिक स्राव	नारंगी सुबह शाम	-	लाल एक घंटा प्रतिदिन	-
दर्द युक्त मासिक स्राव और अत्यधिक रक्तस्राव	दर्द के साथ हो तो नीला, अधिक रक्तस्राव हो तो पीला, मासिक धर्म चक्र से कुछ दिन पूर्व	-	नीला	अधिक खून में नीले जल की पट्टी पेड़ू पर
लकवा	पीला	-	लाल कड़ी नसों पर एक घंटा फिर नीला 2 घंटा तक	लाल कपड़ा पहनना, 2 घंटे रोज धूप में बैठना
पागलपन	आसमानी	-	नीला मुंह पर	-
पुराना जुकाम बदबुदार बलगम	नारंगी +गहरा नीला+ हरा (2:1:1 के अनुपात में)	-	-	हरा या नारंगी + हरा से बत्ती नाक में
कृमि रोग	पीला +हरा (3:1 के अनुपात में)	-	गहरा नीला सिर पर और मुंह पर	हरे का एनिमा
सिर में जूं	आसमानी	-	-	लाल+हरा (1:2 के अनुपात में) सिर पर मालिश

अजीर्ण से पेट फूलना	पीला	-	-	-
अजीर्ण से खट्टी डकार	आसमानी	-	-	-
प्राणघातक हिचकी	गहरा नीला+लाल (3:1के अनुपात में)	लाल पसलियों पर	-	-
हल्की हिचकी	आसमानी	-	-	-
मंदाग्नि (पेट साफ ना हो)	पीला+आसमानी (3:1के अनुपात में)	-	-	-
मंदाग्नि (भूख ना लगे)	गहरा नीला + पीला (3:1के अनुपात में)	-	-	-
मंदाग्नि (पेट भारी हो)	गहरा नीला	-	-	लाल (नाभि के आस-पास मालिश)
भस्मक रोग (अत्यधिक भूख लगना)	आसमानी	-	-	-
तृषा (अत्यधिक प्यास)	आसमानी+पीला (3:1के अनुपात में)	-	-	-
वायु गोला (Colic)	नारंगी + आसमानी (1:1 के अनुपात में)	-	लाल	हरा (सेंक और पट्टी)
शोथ (सूजन)	पीला+गहरा नीला (1:1 के अनुपात में)	-	आसमानी (सारे शरीर पर)	लाल (पेट तथा पांव पर मालिश)
कंठमाला	आसमानी + लाल (2:1 के अनुपात में)	-	गहरा नीला 1 घंटे तक गांठों पर	आसमानी + लाल (पट्टी गले पर)
10 प्रकार के कुष्ठरोग	आसमानी + हरा + पीला (2:1:2 के अनुपात में)	रातकोहरा+गहरा नीला (कुष्ठ भाग पर मालिश)	पीला (सारे शरीर पर15 मिनट फिर नीला 2 घंटे तक)	गहरा नीला+हरा (2:1 के अनुपात में) कुष्ठ वाले भाग पर मालिश
श्वेत कुष्ठ	पीला	आसमानी (सफेद दागों पर)	-	-
अंगुली गहुए (web of fingers) पानी से सड़ना	पीला + गहरा नीला (1:1 के अनुपात में)	हरा (तेल की पट्टी जख्म पर)	लाल 1/2 घंटे फिर हरा 2 घंटे तक	-
कंखौरी (Tumer in armpit)	आसमानी+पीला (2:1 के अनुपात में)	-	हरा (2 घंटे तक घाव पर)	आसमानी (पट्टी घाव पर और फूटने पर हरी पट्टी)
रक्त मूत्र	हरा तथा जब साफ पेशाब होने लगे तब गहरा नीला + पीला (3:1 के अनुपात में)	-	-	हरा (पट्टी पेडू पर)
मुंह के छाले	गहरा नीला + पीला + हरा (2:1:1 के अनुपात में)	-	-	गहरा नीला हरा (1:1 के अनुपात में)
तालू में फुंसी आदि	गहरा नीला + पीला + हरा + आसमानी (1:1:1:1 के अनुपात में)	-	-	जल से 3-4 बार कुल्ला करना फिर गहरा नीला + हरा (1:1 के अनुपात से कुल्ला करना)
पौरुष शक्ति का घटना	आसमानी + गहरा नीला (2:1 के अनुपात में)	सूर्य स्नान के बाद आसमानी तेल से सारे शरीर पर मालिश	इंद्रिय पर लाल आधा घंटा	पीला (गुनगुनाए एनिमा) लाल मालिश (इंद्रिय पर और कमर पर)

गर्भ की योनि से रक्तस्राव	आसमानी जब तक रक्त स्राव हो बाद में गहरा नीला और पीला (3:1 के अनुपात में)	-	गहरा नीला (मुंह और गर्दन पर)	हरा (डूश) हरे (गुनगुने पानी का फाया गुप्तांग में)
गर्भिणी का पेट दर्द	पीला और गहरा नीला (3:1 के अनुपात में) गर्म	-	-	पीला + हरा (गर्म जल से सिकाई तथा उसी की पट्टी पेड़ू पर)
4 मास में ही गर्भपात	आसमानी	-	हरा (गुप्तांग पर एक घंटा)	हरा (पट्टी 3 घंटा तक पेड़ू पर) हरा (फ़ाया गुप्तांग पर)
4 मास बाद गर्भपात	गहरा नीला	-	हरा (गुप्तांग पर एक घंटा)	हरा (पट्टी 3 घंटा तक पेड़ू पर), हरा (फ़ाया योनि पर) और यदि रक्तस्राव हो रहा हो तो कूल्हे के नीचे तकिया रखकर उपचार
महिलाओं की हिस्टीरिया अत्यधिक मासिक स्राव के कारण	गहरा नीला	आसमानी (सिर के पिछले भाग में)	आसमानी (सिर पर एक घंटा)	आसमानी (पेड़ू पर पट्टी)
हिस्टीरिया (कमया विलंबित मासिक स्राव के कारण)	नारंगी	-	-	नारंगी (पट्टी पेड़ू पर)
मिर्गी	आसमानी	-	-	आसमानी (पट्टी सिर पर) बेहोशी में मुंह पर आसमानी जल की छीटें
प्रसूति	पीला + गहरा नीला 3:1 के अनुपात में	-	पीला (मुंह को छोड़कर सारे शरीर पर) गहरा नीला (मुंह पर एक घंटा)	लाल (मालिश कमर पर) हरा + पीला (पट्टी पेड़ों पर)
बाल रोग सिर दर्द	पीला+ आसमानी शक्कर दो रत्ती 4-5 खुराक	-	हरा आधा घंटा	-
बाल रोग हृदय रोग	गहरा नीला शक्कर दो रत्ती प्रति घंटे	-	गहरा नीला छाती और मुंह पर	-
उदर रोग मल मूत्र रोकने में दिक्कत, सीने में दर्द, आँतों में आवाजें, पीठ पर कूबड़ निकलना, पेट निकलना आदि।	पीली शक्कर दो रत्ती प्रति घंटा	-	पीला	सारे शरीर पर लाल रंग की पट्टी पेट और मुंह को छोड़कर
पेड़ू के नीचे के बाल रोग जैसे मल मूत्र का एक साथ होना, डरा सा प्रतीत होना आदि।	पीला+ हरा 1रत्ती शक्कर प्रति घंटा	नाभि और गुदा पर पीला तेल	नाभि से गुदा तक पीला प्रकाश	-
बालक के मुंह से झाग आना	गहरा नीला+ हरा पानी	-	आसमानी (मुंह पर एक घंटा)	-
बालक के मुंह से लार टपकना	पीली शक्कर दो रत्ती दो 2घंटे पर	-	गहरा नीला (मुंह पर 1 घंटा)	-

vfXu rRo fpfdRlk] fofHkUu fof/k;k¡ ,oa vuqiz;kx

fVIi.kh

बालक के मुंह में तालू पर गड्ढा (दूध न पीना, कष्ट से पीना, पतला दस्त, प्यास, गर्दन लटक जाना, दूध की उल्टी)	पीली शक्कर दो रत्ती 2-2 घंटे पर	-	गहरा नीला (मुंह पर)	आसमानी पट्टी (गले पर)
बालक का अधिक रोना	पीला+गहरा नीला जल दो-दो घंटे पर	-	गहरा नीला (मुंह पर 2 घंटा)	-
बालक का बिस्तर पर पेशाब करना	हरा पानी	-	गहरा नीला (पेडू पर)	-
बालक का सूखा रोग	आसमानी+ पीला	गहरा नीला (शरीर पर)	गहरा नीला (छाती और मुंह पर एक घंटा) पीला (पेट पर)	-
बालक का दमा	पीला	-	-	-
दांत निकलना और उसके उपद्रव	गहरा नीला (माता और बच्चा दोनों को)	-	गहरा नीला (शरीर पर)	-
हब्बा सिंड्रोम	गहरा नीला	लाल सीने पर उग्र दशा में	गहरा नीला (पेट पर दो-तीन घंटा)	-
बालक का चौक कर उठ जाना	गहरा नीला पानी	-	नीला (सिर पर और मुंह पर)	-
स्तन की पीड़ा	आसमानी	-	हरा (फोड़े पर आधा घंटा)	हरा (पट्टी फोड़े पर)
उंगली के नाखून का फोड़ा	आसमानी	-	हरा (फोड़े पर आधा घंटा)	हरा (पट्टी फोड़े पर)
फेफड़े और हृदय के रोग	पीला	-	लाल (फेफड़े पर हृदय बचाकर)	-
गंजा सिर		हरा (सिर पर मालिस रात में)	नीला	हरा (सिर धोना)
स्वप्नदोष	आसमानी	आसमानी या हरे तेल से (सिर के पिछले हिस्से में मालिश)	-	-
दुबले होते जाना	पीला+ आसमानी	-	-	आसमानी+ हरी पट्टी (पेट पर)
मोटापा	नारंगी	लाल (शरीर पर)	लाल (पेट पर एक घंटा प्रतिदिन)	
उपदंश (गर्मी)	हरा+ आसमानी	हरा	-	हरा (जल की पट्टी)
सभी प्रकार के वात रोग	पीला	लाल या पीला स्थानिक	लाल या पीला स्थानिक	-
जलोदर	नारंगी	-	नारंगी	-
विवाई फटना	लाल	लाल (मालिश 15 मिनट तक दिन में चार-पांच बार गर्म पानी से धोकर)	-	-

रतौंधी व आंखों के रोग	-	-	-	दाई आंख में हल्का नारंगी या हरा तथा बाई आंख में आसमानी या हरा जल टपकाना दिन में तीन बार
हाथों पैरों में पसीना	-	आसमानी	-	-
मधुमेह	नारंगी+आसमानी (सुबह-शाम खाने के बाद और सोते समय)	-	-	-
सुजाक	गहरा नीला +नारंगी	हरा (इंद्रिय पर दिन में एक बार)	-	-
मोच	-	आसमानी	-	-
नासूर	2हरा+ 1आसमानी	हरा (मालिश धूप में)	हरा	हरा (मिट्टी की पट्टी दो बार)
एग्जिमा	आसमानी	हरा	हरा	हरा (जल से धोकर हरी ही मिट्टी की पट्टी)

bdkbxr i'u&6-4

सत्य/असत्य बताइये–

1. रंगों द्वारा रोग निवारण की चिकित्सा प्रणाली को सूर्य किरण चिकित्सा विज्ञान अथवा रंग चिकित्सा (Cromotheropy) कहते हैं। ( )
2. सूर्य किरणों का स्नान हमेशा बंद कमरे में लाभदायक है। ( )
3. सूर्य किरण उपचार देते समय रोगी का खाना सादा व सुपाच्य होना चाहिए। ( )
4. तेल व ग्लिसरीन गर्मियों में 60 दिनों में और सर्दियों में 30–40 दिनों में तैयार होता है। ( )

vkius D;k lh[kk

इस इकाई (यूनिट) में आपने सीखा कि–

- अग्नि सृष्टि के उपादान पंच तत्वों में तीसरा उपयोगी तत्व है।
- शांति प्रदान करने वाला एवं सर्व रोग नाश करने वाला सूर्य (अग्नि तत्व) है।
- प्रातः काल 8:00 बजे से पूर्व तथा सायंकाल 5:00 बजे के पश्चात् वायुमंडल तथा ओजोन की परत मोटी होती है। अधिकांश हानिकारक अल्ट्रावायलेट किरणें मोटी ओजोन परत द्वारा अवशोषित कर ली जाती हैं। यही कारण है कि प्रातः कालीन सायं काल की धूप स्वास्थ्य दायिनी होती है। तेज धूप को केले के पत्ते, पानी तथा रंगीन कांच के परतों से पार कराकर उनकी स्वास्थ्य दायिनी पराबैंगनी किरणों को स्वास्थ्य पर पड़ने देना चाहिए।

- सूर्य की अल्ट्रावायलेट किरणों के प्रभाव से पीनियल, पिट्युरी तथा अन्य अंतः स्रावी ग्रंथियां प्रभावित होती हैं। जिन लोगों में त्वचा की एपिडर्मिस का कार्नियम स्तर जितना अधिक मोटा होता है उनमें सूर्य किरण का दुष्प्रभाव कम देखने को मिलता है।
- रक्त की कमी, अंगों की सूजन, संक्रामक रोग, गठिया–वात, रक्त की स्थानीय अधिकता, आदि में लाभ करती हैं।
- लाल रंग वायु से जोड़ों के दर्द, सर्दी के दर्द, सूजन, मोच, लकवा, शीतांग आदि स्नायु मंडल के सभी रोगों में लाभकारी हैं।
- नारंगी रंग दमा तथा संधियों के रोगों के लिए अत्यधिक उपयोगी है।
  (i) तांत्रिक तंत्र की बीमारियों में जैसे– लकवा, अर्धांग, ताकत ना लगना जेसी बीमारियों में सबसे उपयुक्त औषधि है।
  (ii) तिल्ली के बढ़ जाने पर, मूत्राशय और आंतों की शिथिलता, उपदंश आदि रोगों में भी नारंगी रंग से तप्त जल का उपयोग किया जाता है।
- सूर्य रश्मियों में पीले रंग का स्थान पांचवा है। जैसा कि रंग से ही स्पष्ट है यह रंग शरीर के पाचन तंत्र को सबसे ज्यादा प्रभावित करता है। इसकी रश्मियों की उपयोगिता को देखकर ही हमारी भारतीय परंपरा में वसंत ऋतु में पीला कपड़ा पहनना बताया गया है।
- यह रंग कटि वा मेरुदण्ड के निचले भाग के कष्टों को खासतौर पर दूर करने वाला है। यह स्वप्नदोष को भी नाश करता है।
- सूर्य रश्मि पुंज के दृश्य रंगों में प्रथम दृश्य रंग नीला ही होता है। इस रंग की आवृत्ति सबसे अधिक और तरंग धैर्य सबसे कम होने से इसकी भेदन क्षमता शरीर में सर्वाधिक होती है। यह रंग मनुष्य के तंत्रिका तंत्र को विशेष रूप से प्रभावित करता है।
- बैगनी रंग की प्रकृति भी नीले और हरे रंग की भांति शीतल है। यह रंग शरीर का ताप कम करने में अत्यधिक उपयोगी है।
- इन किरणों को अदृश्य किरण या अष्टम किरणें भी कहते हैं। हिंदी में इस किरण को परा बैंगनी किरणें कहा जाता है। जैसा पहले से ज्ञात है इस किरण का स्थान बैंगनी किरण के ठीक बाद है। इस किरण के गुण अनंत हैं। इसके प्रभाव से भयंकर से भयंकर रोगकारक कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। यह किरण विटामिन का स्वभाविक स्रोत है। इस किरण में जीवन शक्ति एवं स्वास्थ्यवर्धक गुण तो अनंत हैं ही, परन्तु इसको प्राकृतिक रूप में प्राप्त करना कठिन है।
- रंगों द्वारा रोग निवारण की चिकित्सा प्रणाली को सूर्य चिकित्सा विज्ञान या सूर्य किरण चिकित्सा कहा जाता है। सूर्य की किसी भी रंग की किरण की शक्ति को उसी रंग के पारदर्शक माध्यम द्वारा जल, तेल, वायु, मिश्री आदि में अवशोषित करा कर उसे दवा की तरह असाध्य रोगों को दूर करने के लिए उपयोग में लाया जाता है।
- इसके साथ ही अग्नि तत्व चिकित्सा की विभिन्न विधियों के व्यावहारिक पक्ष को जाना।

bdkbl dk vUr esa iz'u

1) अग्नि तत्व चिकित्सा एवं इसके महत्व पर प्रकाश डालिए।

2) रंग चिकित्सा का संक्षिप्त में वर्णन कीजिए।

3) धूप स्नान चिकित्सा में मुख्य रूप से कौन–कौन सी सावधानियाँ आवश्यक हैं, समझाते हुए किसी एक विधि का वर्णन कीजिए।

4) सूर्य की सप्त रश्मियों द्वारा की जाने वाली चिकित्सा का संक्षिप्त में वर्णन कीजिए।

bdkbZxr iz'uksa ds mÙkj

6-1

1) तीसरा 2) सूर्य 3) अल्ट्रावायलेट

6-2

1) इंफ्रारेड किरण 2) छटवें 3) हरा 4) नीला

6-3

1) सत्य 2) सत्य 3) असत्य 4) असत्य

6-4

1) सत्य 2) असत्य 3) सत्य 4) असत्य

fVIi.kh

7

जल तत्व चिकित्सा, विभिन्न विधियाँ एवं अनुप्रयोग

शिक्षार्थियों, पिछली इकाई (यूनिट) में आपने अग्नि तत्व के विषय में ज्ञान प्राप्त किया। आपने जाना कि अग्नि तत्व चिकित्सा के अंतर्गत रंग चिकित्सा, सूर्य किरण, धूप स्नान आदि से रोगी की रोगानुसार चिकित्सा की जाती है। आप प्रथम वर्ष में जल तत्व के विषय में विस्तारपूर्वक पढ़ चुके हैं। जैसा कि आप जानते ही हैं कि पंचतत्व से निर्मित मानव शरीर में जल भी एक प्रधान तत्व है। जल प्रकृति के साथ–साथ मानव शरीर में भी प्रमुखता से विद्यमान रहता है। शरीर का लगभग 70% भाग जल से ही बना है। हमारे रक्त, मांस, मेद, मज्जा आदि में जो आर्द्रता या नमी होती है वह जल के ही कारण है। इस इकाई (यूनिट) में आप चिकित्सीय दृष्टि से जल तत्व सम्बन्धी चिकित्सा को व्यवहार में लाना सीखेंगे।

mís';

इस इकाई (यूनिट) का अध्ययन करने के पश्चात् आप –

- जल चिकित्सा एवं इसके महत्व को समझाने में सक्षम होंगे;
- जल चिकित्सा का अर्थ, परिभाषा और इतिहास का वर्णन कर सकेंगे;
- जल तत्व चिकित्सा की विभिन्न विधियों का वर्णन कर सकेंगे;
- जल चिकित्सा में प्रयुक्त होने वाली विभिन्न प्रकार की पट्टियों की विधि का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे;
- जल चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न प्रकार की लपेटों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे;
- जल चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न प्रकार की पट्टियों एवं लपेटों के महत्त्व का वर्णन कर सकेंगे।

fVIi.kh

7-1 t y rRo fpfdRIk ,o egÙo

प्रिय शिक्षार्थियों जैसा कि आप जल तत्व के विषय में प्रथम वर्ष में पढ़ चुके हैं कि अग्नि तत्व में विकार उत्पन्न होने पर रस तन्मात्रा होती है, जिससे जल तत्व की उत्पत्ति हुई है। जल तत्व शब्द, स्पर्श, रूप एवं रस गुण युक्त होता है। इस प्रकार पंच तत्वों में जल तत्व का अपना एक विशिष्ट स्थान है। स्थूलता के आधार पर जल तत्व दूसरा स्थूलतम तत्व है।

t y d i;k; सामान्य भाषा में पानी, पानीय, वारि, नीर, तोय, पय, अम्बु, सलिल, आप, उदक तथा अमृत आदि नामों से जाना जाता है।

यह जल तत्व पृथ्वी पर पर्याप्त मात्रा में उपस्थित है। वैज्ञानिकों के अनुसार सम्पूर्ण पृथ्वी का 70% भाग जल तत्व से परिपूर्ण है। इसी प्रकार हमारे शरीर का भी 70% भाग जल ही है। सांसारिक जीवन का आरम्भ भी जल से ही हुआ है। जल तत्व जीवधारियों के जीवन का आधार होता है। इस तत्व के बिना जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। यह जीवन के लिए उतना ही आवश्यक है जितना श्वास लेने के लिए वायु। जल तत्व के द्वारा मनुष्य विभिन्न दैनिक एवं नैमितिक कार्यों को करने में सक्षम होता है।

t y d çk—frd x.k शीतलता, सरलता, हल्कापन, स्वच्छता, व्यापकता, मेट्यता (Permeability), अस्थिरता तथा निर्गुणता इसके प्राकृतिक गुण हैं।

t y fpfdRIk dk egRo

जल हमारे जीवन में अति महत्वपूर्ण तत्व है, जो जीवन प्रदान करता है। यदि हम इसके चिकित्सीय स्वरूप पर दृष्टि डालें तो पता चलता है कि यह औषधि का कार्य करता है। साथ ही शरीर के विभिन्न भागों व अंगों में एकत्रित विजातीय द्रव्यों के निष्कासन में सहायक है।

प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत जल का सर्वाधिक उपयोग किया जाता है, जिससे विभिन्न बीमारियों को दूर कर स्वास्थ्य लाभ लिया जाता है। हमारे वेद–शास्त्रों में भी जल को औषधि की संज्ञा दी गई है।

यथा–

vkib)k m Hk"ktkjkik vHkho pkruhA

vkiI IoL; Hk"ktk LrkLrs\¥pUrq {kf=;krAA ¼vFkoZ …@‰@‡ ½

अर्थात् जल ही औषधि है, जल रोग को दूर करता है, जल सब रोगों का संहार करता है। अतएव यह जल तुम्हें भी कठिन रोग के पंजे से छुड़ा दें।

आइये जल चिकित्सा के रूप में किस प्रकार कार्य करता है, इन विशेषताओं को जानें–

1) जल ही एक ऐसा पदार्थ है, जिसका तापक्रम चिकित्सा के अनुरूप रखा जा सकता है।

2) चिकित्सा में जल का उपयोग चिकित्सा के अनुसार होता है।

3) त्वचा पर जल का प्रभाव शीघ्र पड़ता है जिससे शरीर में क्रिया–प्रतिक्रिया में तेजी आ जाती है और शरीर से विजातीय और विषाक्त पदार्थ अतिशीघ्र निष्कासित हो जाते हैं।

4) शरीर में विष पदार्थों का निर्माण होता रहता है, यह विषाक्त पदार्थ शरीर से यदि न निकाले जाऐ तो शरीर कई व्याधियों से ग्रस्त हो जाता है। अतः शरीर से पसीने, पेशाब, जुकाम आदि के रूप में विषाक्त पदार्थ बाहर निकाले जाते हैं।

5) जल ऊत्तकों द्वारा नष्ट हुई तरलता को पुनः स्थापित कर सामान्य बनाए रखता है।

6) रक्त तथा लिम्फ परिवहन तंत्र की तरलता को नियंत्रित करने का कार्य जल ही करता है।

7-2 ty fpfdRlk dk vFk] ifjHkk"kk vkj bfrgkl

ty fpfdRlk dk lkekU; vFk g ty rRo l 'kjhj dh fpfdRlk djukA

यद्यपि, सामान्य रूप से मनुष्य जल तत्व का प्रयोग पीने के रूप में, स्नान के रूप में एवं अन्य शरीर शोधक क्रियाओं के रूप में प्रतिदिन प्रातःकाल से लेकर रात्रिकाल तक करता रहता है किन्तु **tc ty rRo dk ç;kx ,d fpfdRld }kjk oKkfud fof/kulkj jkxk d mipkj d mís'; l fd;k tkrk g rc og ty fpfdRlk dgykrh gA**

अर्थात् जल तत्व से रोगों के उपचार हेतु की जाने वाली शरीर की चिकित्सा को प्राकृतिक चिकित्सा में जल चिकित्सा का नाम दिया गया है। जल चिकित्सा के अंतर्गत उषापान, एनिमा, विभिन्न प्रकार के स्नान एवं अंगों की लपेट का वर्णन आता है।

यद्यपि, जल चिकित्सा प्राचीन काल से प्रचलित चिकित्सा है। परन्तु मध्यकाल में इस चिकित्सा का प्रचलन कम हो गया था। इस चिकित्सा के पुनरुत्थान में पश्चिमी चिकित्सकों ने अपना विशेष योगदान देकर इसको समाज में पुनः प्रचलित करने में विशेष भूमिका वहन की। इस क्रम में विन्सेंज प्रिस्निज, सेबस्टियन, नीप एवं लुई कुने आदि प्राकृतिक चिकित्सकों ने जल चिकित्सा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। फादर सेबस्टियन नीप द्वारा रचित पुस्तक "My Water Cure" जल चिकित्सा की एक श्रेष्ठ पुस्तक है। इन चिकित्सकों के प्रयोगों से प्रभावित होकर भारतीय चिकित्सकों एवं विद्वानों ने जल चिकित्सा के महत्व को समझकर इसका अनुप्रयोग स्वयं पर किया।

जल तत्व शरीर शुद्धिकरण का सबसे प्रमुख एवं मूल साधन है। जल तत्व के भली–भांति प्रयोग करने से शरीर में शुद्धता एवं स्वच्छता बनी रहती है जबकि, इस तत्व के भली–भांति प्रयोग नहीं करने पर शरीर में इस तत्व का योग विषम हो जाता है तथा अनेक प्रकार के रोगों की उत्पत्ति हो जाती है। मानव शरीर में जल तत्व को सम बनाने हेतु अनेक विधियाँ प्रचलित हैं जिसमें से एक जल चिकित्सा है। प्राकृतिक चिकित्सा में जल तत्व को एक महा औषधि के रूप में प्रयोग किया जाता है। वास्तव में जल तत्व का प्रयोग करने से शरीर को एक ताजगी और स्फूर्ति प्राप्त होती है। प्रायः हम अनुभव करते हैं कि गहरी थकन होने पर

ठन्डे जल से स्नान करने पर जो ताजगी प्राप्त होती है वह ताजगी एवं स्फूर्ति संसार की किसी अन्य दवाई से प्राप्त नहीं की जा सकती। जल तत्व के इसी गुण का उपयोग प्राकृतिक चिकित्सा में किया जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा में जल तत्व का प्रयोग विभिन्न रोगों के उपचार में विशेष लाभकारी प्रभाव रखता है। प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक डॉ. लिंडलहार के अनुसार बुखार ठीक करने में अन्य औषधियों की तुलना में जल 1/10 समय लेता है। अर्थात् औषधियों के प्रयोग से यदि बुखार दस दिनों में ठीक होता है तो वहीँ जल के प्रयोग से (गीली पट्टी, चादर, एनिमा तथा अन्य प्रयोगों द्वारा) बुखार एक दिन में ठीक होता है। ऐसा प्रायः हम तेज बुखार होने की स्थिति में देखते हैं कि माथे पर ठन्डे पानी की पट्टी रखने से बुखार में तुरंत लाभ मिलता है एवं शरीर का तापक्रम सामान्य हो जाता है।

7-2-1 t y fpfdRlk dh lko/kkfu;k

जल चिकित्सा करते समय कुछ सावधानियों को ध्यान में रखना चाहिए, जो निम्नलिखित हैः

1 शरीर में कफ दोष की विकृत अवस्था में ठण्डे जल का अधिक प्रयोग रोगी पर नहीं करना चाहिए। जैसे तीव्र सर्दी, खांसी, बुखार, जुकाम आदि, जोड़ों में दर्द व सूजन, कमर दर्द आदि रोगों की तीव्र अवस्था में ठण्डे जल का प्रयोग करने से रोग और अधिक तीव्रावस्था को प्राप्त हो जाता है।

2 उच्च रक्तचाप, हृदय रोगी, मिर्गी एवं मानसिक तनाव से ग्रस्त रोगी को गर्म जल का उपचार अत्यंत सावधानीपूर्वक अथवा नहीं देना चाहिए। इन प्रकार के रोगियों में गरम जल के उपचार से हृदय गति, रक्तचाप एवं चयापचय दर असामान्य रूप से बढ़ जाती है, जिसके परिणामस्वरूप रोग की तीव्रता बढ़ जाती है और रोगी स्वयं को असहज अनुभव करने लगता है।

3 यदि गर्म जल के उपचार के तुरंत बाद ठण्डे जल का उपचार भी रोगी को देना है तो सदैव उपचार का प्रारंभ गरम जल के साथ करना चाहिए एवं ठण्डे जल से समापन करना चाहिए ताकि शरीर के रोम कूप संकुचित होकर शक्ति क्षय को रोक सकें।

4 गर्म जल के उपचार में अत्यंत सावधानी रखनी चाहिए। उपचार देने से पूर्व रोगी को एक से दो गिलास सामान्य तापक्रम का जल पिलाकर ही उपचार प्रारम्भ करना चाहिए। इसके साथ रोगी के सिर को ठण्डे जल से अच्छी तरह भिगोकर या सिर पर गीले तौलिये की पट्टी रखने के उपरान्त ही गर्म उपचार जैसे वाष्प स्नान, गरम कटि स्नान आदि देने चाहिए। यदि तौलिये की पट्टी गर्म हो जाए तो बीच–बीच में उस पर ठंडा पानी डालकर उसे ठंडा करना चाहिए, नहीं तो चक्कर आने की संभावना रहती है।

5 गर्म जल का प्रयोग गर्दन से ऊपर के भाग पर नहीं करना चाहिए। विशेष रूप से सिर एवं आँखों पर गर्म जल का प्रयोग कदापि नहीं करना चाहिए।

6 रोग की तीव्रावस्था, गंभीर जीर्ण रोग, वृद्ध रोगी, बच्चों एवं गर्भवती स्त्री पर अधिक गर्म एवं अधिक ठंडे जल का प्रयोग अत्यंत सावधानीपूर्वक करना चाहिए। इस प्रकार की अवस्था में एकदम से गरम जल या ठंडे जल का प्रयोग रोगी पर नहीं करना चाहिए।

7 ठंडे जल का शरीर पर प्रयोग करने से पूर्व शरीर को थोड़ा गरम अथवा ऊर्जावान बनाकर ही ठंडे जल का प्रयोग करना चाहिए। ठंडे जल के उपचार के उपरान्त रोगी को एकदम से आराम नहीं करना चाहिए अपितु, कुछ समय टहलना अथवा भ्रमण करना चाहिए।

8 गरम जल के उपचार के उपरान्त रोगी को कुछ समय शवासन में आराम करना चाहिए।

9 बर्फ एवं भाप के प्रयोग का प्रभाव तंत्रिकाओं पर सीधा पड़ता है अतः इनका प्रयोग अत्यंत सावधानीपूर्वक करना चाहिए।

10 रक्तस्राव की अवस्था में गरम जल का प्रयोग नहीं करना चाहिये। आंतों में घाव एवं अल्सर की अवस्था में गरम जल का आंतरिक प्रयोग जैसे कुंजल तथा एनिमा आदि नहीं करने चाहिए।

11 गरम जल का अधिक लम्बे समय तक प्रयोग करने से त्वचा की सबसे बाहरी परत को हानि पहुँचने लगती है जिससे त्वचा रुक्ष व बेजान लगने लगती है और संवेदनहीनता की अवस्था भी उत्पन्न होने लगती है। इसके साथ ही मांसपेशियों का स्वाभाविक बल (Muscle Tone) भी कम होने लगता है एवं त्वचा लटकने लगती है।

12 जल चिकित्सा सदैव खाली पेट ही देनी चाहिए तथा जल चिकित्सा के तुरंत बाद कुछ नहीं खाना चाहिए अपितु, कम से कम आधा से एक घंटे के उपरान्त ही कुछ आहार ग्रहण करना चाहिए।

13 जल चिकित्सा में स्वच्छता का विशेष ध्यान रखना चाहिए तथा साफ स्वच्छ एवं निर्मल जल का ही चिकित्सा में प्रयोग करना चाहिए।

इस प्रकार उपरोक्त सावधानियों को ध्यान में रखकर चिकित्सा करने से विभिन्न सामान्य एवं गंभीर रोगों के उपचार में जल चिकित्सा शीघ्र लाभकारी प्रभाव देती है तथा साथ ही साथ दुष्प्रभाव एवं हानियों से भी रोगी मुक्त रहता है।

bdkbZxr iz'u&7-1

1. जल चिकित्सा किसे कहते हैं?

....

....

2. जल की दो प्रमुख विशेषताएं बताईए।

....

....

fVIi.kh

3. सही या गलत बताईए।

क) फादर सेबस्टियन नीप द्वारा रचित पुस्तक My Water Cure जल चिकित्सा की एक श्रेष्ठ पुस्तक है। ( )

ख) प्राकृतिक चिकित्सा में जल तत्व को एक महाऔषधि के रूप में प्रयोग किया जाता है। ( )

ग) गर्म जल का प्रयोग गर्दन से ऊपर के भाग पर कर सकते हैं। ( )

घ) रक्तस्राव की अवस्था में गरम जल का प्रयोग करना चाहिए। ( )

7-3 tyrRo fpfdRlk dh fofHkUu fof/k;ka ,oa vuqiz;ksx

जल चिकित्सा में रोग निवारण के लिए जल का प्रयोग करने की प्रधान विधियां निम्न हैं:

1. **fpfdRlk esa ty dk cká ç;ksx &** इसमें विभिन्न प्रकार के स्नान, अंगों की लपेट, ठंडे व गर्म जल की पट्टियों का वर्णन आता है।
2. **fpfdRlk esa ty dk vkarfjd ç;ksx &** इसमें उषापान, वमन, शंख प्रक्षालन, एनिमा, जलपान आदि का वर्णन आता है।

7-3-1 ty dk cká ç;ksx dh fofHkUu fof/k;ka

जैसा कि हम पहले बता चुके हैं कि इसके अंतर्गत विभिन्न स्नान, अंगों की लपेट व गीली पट्टियों का वर्णन आता है। अतः आइये! सबसे पहले जल चिकित्सा की सबसे प्रमुख विधि स्नान का वर्णन करते हैं।

Luku dh oSKkfud fof/k

- जल चिकित्सा की मुख्य क्रिया स्नान ही है। उसी को विभिन्न रूपों और विधियों से काम में लाकर सब रोगों को ठीक किया जा सकता है।
- केवल दो–चार लोटे पानी शरीर पर डाल लेने मात्र को ही स्नान नहीं कहते। स्नान का उद्देश्य शरीर की अशुद्धता, मल, गन्दगी को दूर करना और देह को आवश्यक तरावट, पोषण पहुंचाना होता है।
- जिस प्रकार स्वस्थ जीवन के लिए प्रतिदिन भोजन और व्यायाम जितने आवश्यक हैं, उसी प्रकार दैनिक स्नान भी अत्यंत आवश्यक है।
- स्नान के लिए बहता हुआ साफ पानी सबसे अच्छा होता है। दैनिक साधारण स्नान के लिए कुएं का जल जो अधिक व्यवहार में आता है अच्छा होता है क्योंकि उसका तापमान ऋतु और समयानुसार मिलता है जो यथेष्ट सुखप्रद और लाभकारी सिद्ध होता है।
- स्नान का पानी सदैव ठंडा होना चाहिए लेकिन ऋतु के अनुसार उसका तापक्रम इतना होना चाहिए जिसे कि शरीर सहजता से सहन कर सके। अर्थात् न अधिक ठंडा और न अधिक गरम। अधिक ठंडे

ty rRo fpfdRlk] fofHkUu fof/k;k ,o vuç;kx

पानी से स्नान करने से रक्तसंचार की क्रिया में बाधा पड़ती है और अधिक गरम पानी से त्वचा के रूक्ष और असंवेदी होने का डर रहता है साथ ही भीतरी अंगों को हानि भी पहुंच सकती है।

- स्नान करते समय शरीर को खूब मलना चाहिए, जिससे मैल हट जाये और शरीर के भीतर की गरमी को उत्तेजना मिले और रक्तसंचरण ठीक ढंग से होने लगे। स्नान के बाद शरीर और बालों को सूखे तौलिये से सुखा लेना चाहिए।
- स्नान में कभी भी जल्दबाजी नहीं करनी चाहिये। समस्त अंगों को भली प्रकार रगड़ना और साफ करना भी आवश्यक है।
- भोजन करने के तुरंत बाद या पहले कोई भी स्नान नहीं करना चाहिए।
- स्नान बहुत अधिक देर तक नहीं करना चाहिए।

Luku ds ykHk

nhiu o";ek;q";e Lukuekstk cyçneA
dMey JeLon rUækr'Mnkg i|rAA
jä çlknue pkfi lofUæ; fo'kks/kueAA

अर्थात् स्नान भूख, बल, आयु और जीवनी शक्ति को बढ़ाता है। त्वक्‌रोग, मल, थकावट, पसीना और उसकी दुर्गन्ध, तन्द्रा आलस्य, प्यास, जलन तथा पाप का नाश करता है साथ ही रक्त को विशुद्ध करता है एवं सम्पूर्ण इन्द्रियों को स्वच्छ व निर्मल बना देता है।

साधारण स्नान से दो विशेष लाभ होते हैं। पहला शरीर की सफाई और दूसरा ठन्डे पानी के स्फूर्तिदायक प्रभाव से स्नायु मंडल का सशक्त बनना एवं शरीर के रक्त संचालन का ठीक होना।

आइये! अब जल चिकित्सा में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न स्नानों को जानें–

ty fpfdRlk esa ç;qä fofHkUu çdkj ds Luku%

1) कटि स्नान
2) रीढ़ स्नान
3) पाद स्नान
4) बांह स्नान
5) पूर्ण डूब स्नान
6) घर्षण मेहन स्नान
7) भाप स्नान

उपर्युक्त स्नानों को चिकित्सीय दृष्टि से तापक्रम के आधार पर निम्नांकित तीन प्रकार से दिया जाता है;

fVIi.kh

d½ lkekU; rkiØe ,o BM ty d Luku½

इस वर्ग के स्नानों में सामान्य तापमान (मानव शरीर के तापक्रम 98.4 डिग्री फारेनहाइट) अथवा इससे कुछ ठंडे जल को स्नान में प्रयुक्त किया जाता है। इस वर्ग के स्नानों से शरीर की कोशिकाओं, तंत्रिकाओं, अंगों एवं तंत्रों को बल तथा शक्ति प्राप्त होती है। अतः इसका प्रयोग अंगों की शक्ति एवं बल बढ़ाने के लिए एवं थकान को दूर करने के उद्देश्य से किया जाता है। ठंडा कटि स्नान, रीढ़ स्नान, पैर स्नान, बांह स्नान एवं सम्पूर्ण शरीर का स्नान इस वर्ग के प्रमुख स्नान हैं। इसके जल का तापक्रम 65 से 90 डिग्री फारेनहाइट तक लिया जाता है।

[k½ xel ty d Luku½

स्नान की क्रिया में जब गर्म जल का प्रयोग किया जाता है तब उसकी शोधन क्षमता और अधिक बढ़ जाती है अर्थात् इस वर्ग के स्नानों से अंगों एवं शरीर का शोधन और अच्छी प्रकार से होता है। इसके साथ– साथ गर्म जल के प्रयोग से रक्त संचार में तीव्रता उत्पन्न होती है जिससे रोगी को दर्द में आराम मिलता है। इसलिए इस वर्ग के स्नानों का प्रयोग अच्छी प्रकार शरीर का शोधन एवं तीव्र दर्द से आराम प्राप्त कराने के उद्देश्य से किया जाता है। गर्म कटि स्नान, गर्म रीढ़ स्नान, गर्म पैर स्नान, गर्म बांह स्नान एवं गर्म सम्पूर्ण शरीर का स्नान इस वर्ग के प्रमुख स्नान हैं। इस वर्ग में जल तापक्रम 95 से 105 डिग्री फारेनहाइट तक लिया जाता है।

x½ xel&BM ty d Luku½

स्नानों के अंतर्गत यह वर्ग एक विशिष्ट प्रकार का किन्तु सर्वाधिक लाभकारी एवं प्रभावशाली वर्ग है, जिसके प्रयोग से रोगी को शीघ्रातिशीघ्र लाभ प्राप्त होता है। इस प्रकार के स्नानों में ठन्डे एवं गर्म तापक्रम के जल को दो अलग–अलग पात्रों अर्थात् टबों में प्रयोग किया जाता है। इन स्नानों का प्रारम्भ सदैव गर्म जल के तापक्रम वाले टब से होता है एवं स्नान की पूर्णता अथवा समाप्ति ठंडे जल के टब से की जाती है। गर्म–ठन्डे जल के प्रभाव से रक्त–संचार बहुत तीव्रता से बढ़ता है जिसके परिणामस्वरूप रोगी को रोग विशेष रूप से दर्द से शीघ्र लाभ प्राप्त होता है। गर्म–ठंडा कटि स्नान, गर्म–ठंडा रीढ़ स्नान, गर्म–ठंडा पैर स्नान इस वर्ग के प्रमुख स्नान हैं।

इस प्रकार स्नान के तीन वर्गों का ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त आपके मन में इन स्नानों को गहराई से जानने की इच्छा और अधिक बलवती हो गयी होगी। अतः इन स्नानों को सविस्तार जानते हैं एवं विषय का प्रारम्भ जल चिकित्सा में सर्वाधिक प्रयुक्त कटि स्नान से करते हैं–

1- dfV Luku ¼du½ ¼Hip Bath½

कटि स्नान को घर्षण स्नान, पेडू नहान, उदर स्नान तथा अंग्रेजी में Friction hip bath या केवल Hip bath भी कहते हैं। इसके आविष्कारकर्ता जर्मनी के लिपजिंग नगर के निवासी डॉ. लूई कूने हैं। कुछ विद्वान इन्हें आधुनिक जल चिकित्सा के जनक के रूप में स्वीकार करते हैं। ये अपनी चिकित्सा में कटि स्नान को विशेष

महत्त्व देते हुए इसका अधिकतम प्रयोग करते थे। इस कारण कटि स्नान को कूने के हिप बाथ के नाम से भी जाना जाता है। यह जल चिकित्सा का सबसे प्रमुख स्नान है। इस स्नान को प्राकृतिक चिकित्सा में स्नानों का राजा के नाम से भी जाना जाता है।

कटि स्नान तीन प्रकार से दिया जाता है–

vko';d lkexh: कटि स्नान (Hip bath) टब, जल, पैर रखने के लिए फाइबर अथवा लकड़ी की चौकी, कम्बल आदि।

le;kof/k: 5 मिनट से प्रारम्भ करते हुए 20 मिनट तक।

i) BMk dfV Lukku

चित्र 7.1 : कटि स्नान टब

इस स्नान के लिए कटि स्नान (Hip bath) टब की आवश्यकता होती है जिसका पिछला भाग कुर्सी की तरह सहारा लेने के लिए उठा रहता है। इस टब में इतना पानी डालना चाहिए कि उसमें बैठने पर वह जांघों और नाभि तक पहुँच जाए। यदि रोगी को टब में बैठने से पूर्व ठण्ड की अनुभूति हो तो शरीर पर सूखी मालिश कर शरीर को हल्का गर्म कर तब बैठाना चाहिए। टब में बैठने के उपरान्त रोगी के दोनों पैरों को फाइबर अथवा लकड़ी की चौकी या ईंट पर रखना चाहिए। तत्पश्चात् छोटा रोयेंदार तौलिया देकर नाभि के चारों ओर, पेडू, जांघ और जनेनेन्द्रिय के आस–पास गोलाई में घर्षण अथवा मर्दन का निर्देश देते हैं। निर्धारित समय के बाद रोगी को टब से निकालकर गीले उदर प्रदेश को सूती तौलिये से अच्छी प्रकार पोंछने के उपरान्त रोगी को कुछ समय भ्रमण का निर्देश देना चाहिए।

ykHk

- कटि स्नान कब्ज रोगों में लाभकारी प्रभाव रखता है। इससे आंतों की क्रियाशीलता बढ़ती है, जिससे कब्ज रोग दूर होता है।
- अम्लपित्त, अल्सर, अजीर्ण, भूख न लगना, मधुमेह, पीलिया, आंतशोथ, ज्वर, वृक्क प्रदाह, नपुंसकता, मासिक धर्म की गड़बड़ी में, श्वेत प्रदर, बांझपन आदि रोगों में कटि स्नान लाभकारी है।

fVIi.kh

lko/kkfu;k o vU; funs'k

- कफ दोष की विकृत अवस्था, सर्दी–जुकाम, दमा, गठिया, निम्न रक्तचाप, सियाटिका दर्द एवं हृदय रोगी को ठंडा कटि स्नान नहीं देना चाहिए।
- जल को यदि अधिक ठंडा करना हो तो मिट्टी के घड़े में रखकर कर सकते हैं। बर्फ या बर्फ के जल का कदापि प्रयोग नहीं करना चाहिए।
- टब में निर्वस्त्र और एकाएक बिठाना चाहिए।
- यदि रोगी कमजोर हो और मौसम ठंडा हो तो रोगी को कम्बल आदि से ढक देना चाहिए।
- स्नान देते समय रोगी को ठंड अथवा कंपकंपी होने लगे तो रोगी के पैरों के नीचे गर्म पानी की बोतल रख देनी चाहिए।
- इस स्नान के 3–4 घंटे पहले तथा 1 घंटे बाद तक भोजन करना चाहिए।
- उपवास के दिनों में यह स्नान लेना चाहिए।

ii) xje dfV Luku

fof/k पूर्व वर्णित विधि अनुसार रोगी को स्नान दें, किन्तु गरम कटि स्नान में रोगी को स्नान से पूर्व एक से दो गिलास जल अनिवार्य रूप से पिलाकर ही स्नान दें एवं स्नान काल में रोगी के सिर पर जल से भीगा तौलिया रखें।

ykHk

- गरम कटि स्नान पुराने मल का शोधन करने में सक्षम होता है। अतः पुरानी कब्ज को दूर करने में लाभकारी होता है।
- इसके साथ ही साथ पेट के अन्य रोगों जैसे आंतों में आयी हुई सूजन, आंतों की अल्प सक्रियता, यूरेनरी ब्लैडर संबंधी समस्याओं में लाभकारी है।
- पेट दर्द में शीघ्र लाभ करता है।
- गरम कटि स्नान कमर दर्द तथा पुच्छ कशेरुका के प्रदाह में लाभकारी है।

lko/kkfu;k

- गरम कटि स्नान खाली पेट ही करना चाहिए।
- गरम कटि–स्नान ऐसी जगह पर करना चाहिए जहां ठंडी हवा के झोंके ना आ रहे हों।
- पानी और शरीर का तापमान सामान्य नहीं होना चाहिए। पानी व तापमान धीरे–धीरे बढ़ाएं और धीरे–धीरे ठंडा होने पर गरम पानी को बीच–बीच में डालते रहें ताकि पानी का उचित तापमान बना रहे।

ty rRo fpfdRlk] fofHkUu fof/k;k ,o vuç;kx

- यदि केवल गरम कटि स्नान ही लेना हो तो अंत करते समय ठंडे जल से स्नान करना चाहिए।
- पेट में घाव, अल्सर, अति अम्लता, बवासीर, अतिसार, आदि रोग में गरम कटि स्नान पूर्ण रूप से निषेध रखना चाहिए। विशेष रूप से आंतों के घाव और रक्तस्राव की अवस्था में गरम कटि स्नान नहीं देना चाहिए।

iii) xje&BaMk dfV Luku

vko';d lkexzh दो निश्चित तापक्रम के जल, दो हिप बाथ टब, पैर रखने के लिए चौकी आदि।

le;kof/k 15 मिनट से प्रारम्भ करते हुए 30 मिनट तक।

fof/k रोगी को स्नान देने से पहले एक से दो गिलास जल पिलाना चाहिए। उपरान्त सिर पर भीगा तौलिया रखकर पांच मिनट के लिए गरम जल वाले टब में बैठा देते हैं। उसके तुरंत बाद ठंडे पानी के टब में तीन मिनट के लिए बैठाते हैं। गरम एवं ठंडे जल के इस क्रम को तीन बार दोहराते हैं। स्नान को गरम जल से प्रारम्भ करते हुए ठंडे जल पर पूर्ण करते हैं।

ykHk

- गरम–ठंडा कटि स्नान उदर प्रदेश में रक्त–संचार में तेजी से वृद्धि करता है।
- इस स्नान के प्रभाव से पाचन तंत्र की क्रियाशीलता बहुत तेजी से बढ़ती है।
- इसके प्रभाव से जठराग्नि बढ़ती है एवं मधुमेह, पीलिया, यकृत विकार, पेट का मोटापा जैसे गंभीर रोगों में शीघ्र लाभ प्राप्त होता है।

  कटि स्नान यद्यपि केवल पेडू पर लिया जाता है तथापि शारीरिक स्नायुमंडल द्वारा उसका प्रभाव समस्त शरीर पर पड़ता है जिससे शरीर के प्रायः सभी रोगों में इस स्नान से लाभ पहुँचता है।

2- jh< Luku@e#nM Luku ¼Spinal Bath½

रीढ़ स्नान से रीढ़ के विभिन्न रोग आसानी से दूर होते हैं व रीढ़ स्वस्थ व शक्तिशाली बनती है। इसे अंग्रेजी में Spinal Bath कहते हैं। यह भी कटि स्नान के समान तीन प्रकार के होते हैं:

i) BaMk jh< Luku

रीढ़ स्नान के लिए विशेष प्रकार के टब में 2–3 इंच पानी भर कर उसमें रोगी को पीठ के बल लिटाते हैं। रोगी के हाथ–पैर एवं सिर जल के बाहर रहते हैं। 5 मिनट से प्रारम्भ करके 20 मिनट तक स्नान देने के बाद रोगी को टब से निकाल कर रीढ़ एवं कमर को सूती तौलिये से अच्छी प्रकार से पोंछते हैं। उसके बाद रोगी को कुछ समय भ्रमण अथवा हल्के व्यायाम का निर्देश देते हैं।

fVIi.kh

ykHk

- ठंडा रीढ़ स्नान रीढ़ के स्नायुओं एवं तंत्रिकाओं को बल प्रदान करता है। विशेष रूप से केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र पर विशेष प्रभाव डालता है।
- रीढ़ स्वस्थ व शक्तिशाली बनती है।
- शरीर में सुन्नपन, आलस्य की अधिकता, भारीपन एवं अवसाद आदि रोगों में लाभकारी प्रभाव पड़ता है।

lko/kkfu;k

- निम्न रक्तचाप, सियाटिका एवं गंभीर कमर दर्द के रोगियों को ठंडा रीढ़ स्नान नहीं देना चाहिए।

ii) xje jh< Luku

ठंडे रीढ़ स्नान में वर्णित विधि अनुसार रोगी को गरम रीढ़ स्नान देते हैं। इस स्नान के लिए पानी 100 डिग्री फे0 या शरीर के सहन करने योग्य होना चाहिए। इस स्नान से पूर्व एक से दो गिलास ठंडा पानी पिलाकर एवं सिर भिगोकर सिर पर जल से भीगा तौलिया रखकर टब में बिठाना चाहिए।

ykHk

- गरम रीढ़ स्नान रूके अथवा बाधित रक्तसंचार को तीव्र बनाता है। इसलिए कमर दर्द, स्लिप डिस्क, सर्वाइकल, गठिया, जोड़ों के दर्द तथा सियाटिका रोग में लाभकारी है।
- जुकाम, खांसी, दमा में भी लाभकारी है।

lko/kkfu;k

- उच्च रक्तचाप, मिर्गी, मानसिक तनाव एवं हृदय रोग से पीड़ित रोगियों को यह स्नान नहीं देना चाहिए।

iii) xje&BaMk jh< Luku

fof/k: रोगी को गरम–ठंडा कटि स्नान में वर्णित विधि अनुसार स्नान देना चाहिए।

ykHk%

- गरम–ठंडा रीढ़ स्नान पृष्ठ प्रदेश (कमर क्षेत्र) में रक्त–संचार बढ़ाता है।
- कमर की मांसपेशियों के दर्द में शीघ्र लाभ मिलता है।
- इस स्नान के प्रभाव से रीढ़ का स्नायु मंडल उत्तेजित एवं सक्रिय होता है। अतः स्नायु तंत्र के रोगों जैसे सुन्नपन, झनझनाहट, लकवा आदि रोगों में लाभकारी होता है।

lko/kkfu;k

- स्नायु विकृतियों की तीव्रावस्था में इस स्नान को नहीं अथवा अत्यंत सावधानीपूर्वक एवं चिकित्सक की देखरेख में देना चाहिए।

चित्र 7.2 : रीढ़ स्नान

3- ikn Luku

शिक्षार्थियों, पैर मानव शरीर का महत्वपूर्ण अंग होते हैं, जिन्हें स्वस्थ बनाने के उद्देश्य से पाद स्नान का उल्लेख किया गया है। इससे पैर रोगरहित, स्वस्थ एवं सक्रिय बनते हैं। यह भी तीन प्रकार का होता है–

i) BMk ikn Luku

पाद स्नान के लिए विशेष आकार के टब में इतना पानी भरते हैं कि रोगी के घुटनों तक के पैर जल में डूब जाए। तत्पश्चात् रोगी को स्टूल या कुर्सी पर बैठाते हैं। 5 से 20 मिनट तक रोगी को बिठाने के बाद रोगी के पैरों को टब से निकाल कर सूती तौलिये से अच्छी प्रकार से पोंछते हैं और रोगी को कुछ भ्रमण अथवा हल्के व्यायाम करने के निर्देश देते हैं।

ykHk%

- पैरों की मांसपेशियों को सक्रिय बनाता है।
- पैरों की कमजोरी, कम्पन, फुटन, जलन आदि रोगों में लाभ प्राप्त होता है।
- मानसिक तनाव दूर होता है तथा मस्तिष्क को आराम मिलता है।
- महिलाओं में अतिरिक्त रक्तस्राव होने की अवस्था में भी यह स्नान लाभकारी है।

lko/kkfu;k

- पैरों के पंजों में सूजन एवं दर्द की तीव्र अवस्था एवं सियाटिका रोगी में ठंडा पाद स्नान नहीं देना चाहिए।
- फेफड़ों में संक्रमण, प्रदाह एवं संकुचन की अवस्था में भी यह स्नान नहीं देना चाहिए।

fVIi.kh

ii) xje ikn Luku ¼Hot Foot Bath½

fof/k:

ठंडे पाद स्नान की भांति रोगी को गरम पाद स्नान देते हैं। इसमें रोगी के पैरों को सहनीय तापक्रम के गरम जल में डूबोते हैं। अब रोगी को कंबल से भली प्रकार लपेट दें जिससे बाहरी वातावरण की वायु उसके शरीर में ना लगे। उसके सिर पर गीली तौलिया रख दें बीच–बीच में टब में गरम पानी मिलाते जाएं ताकि पानी का तापक्रम स्थिर बना रहे। पाद स्नान से पूर्व ही पानी पिलाकर बैठाना चाहिए। बाद में ठंडे पानी से भिगोये तौलिये से संपूर्ण शरीर का घर्षण कर लें अथवा सशक्त मरीज ठंडे पानी से स्नान करे। गठिया आदि रोगों में पाद स्नान के गर्म पानी में **,lle lkYV** मिलाने से लाभ होता है।

ykHk

- गरम पाद स्नान से शीत प्रकृति की बीमारियों को लाभ मिलता है।
- आमतौर से पैरों में रक्त संचार बढ़ता है। पेशियों की थकान दूर होती है, उनमें सक्रियता बढ़ती है।
- उच्च रक्तचाप, दमा, पैरों के दर्द, जुकाम, खांसी, सभी प्रकार की गठिया रोग व अन्य वात व्याधियों में में लाभकारी है।
- गर्म पाद स्नान से शरीर के समस्त रोम कूप खुल जाते हैं तथा शरीर का विजातीय पदार्थ बाहर निकलता है।
- यह पाद स्नान निर्बल, रक्त अल्पता वालों, तथा औरतों के लिए रक्त संचालन की व्यवस्था को ठीक करता है।
- सिर दर्द तथा सिर में होने वाले भारीपन को दूर करने में समर्थ है।
- गरम पाद स्नान से रक्त संचार सुधरता है। इस कारण पैरों के घाव, वेरीकोज वेन, दाद, एक्जिमा, गलन तथा नसों के रोगों को दूर करने में, सुन्नपन को दूर करने में लाभप्रद है।
- गर्भाशय की समस्याओं, अनिद्रा, भय, क्रोध, तनाव, कमर, नितंब का दर्द, सुन्नपन, फेफडों व बस्ति प्रदेश के रोगों को दूर करने में काफी उपयोगी है।

lko/kkuh

- निम्न रक्तचाप तथा अत्यधिक कमजोर व्यक्तियों को गर्म पाद स्नान बहुत सावधानी के साथ देना चाहिए।
- गर्म पाद स्नान के पहले रोगी को पानी अवश्य पिला देना चाहिए।
- पाद स्नान में जब रोगी के शरीर में पसीना आने लगे तब यह स्नान पूर्ण करना चाहिए।
- पैरों में जलन, पैरों के गरम रहने एवं पैरों में अधिक पसीना आने की अवस्था में यह स्नान नहीं देना चाहिए।

iii) BMk&xje ikn Luku

fof/k: रोगी को पूर्व वर्णित ठन्डे–गरम कटि स्नान की विधि अनुसार स्नान देना चाहिए।

ykHk%

- यह पैरों में स्थित नाड़ियों के माध्यम से मस्तिष्क को प्रभावित करता है। जिससे मस्तिष्क की कार्य कुशलता एवं सक्रियता बढ़ती है एवं सर दर्द में आराम मिलता है।
- पैरों में सूजन, पैर की हड्डी में विकार एवं दर्द, पंजे में दर्द, सूजन, सुन्नपन एवं झनझनाहट आदि रोगों में इस स्नान से लाभ प्राप्त होता है।

lko/kkfu;k%

- यह उच्च रक्तचाप, मिर्गी एवं मानसिक तनाव की तीव्र अवस्था से ग्रस्त रोगी को नहीं अथवा चिकित्सक की देखरेख में अत्यंत सावधानीपूर्वक ही देना चाहिए।

चित्र 7.3 : पैर स्नान टब

4- ckg Luku

शिक्षार्थियों, पैरों को स्वस्थ रखने के उद्देश्य की भांति हाथों को स्वस्थ एवं रोग रहित रखने के लिए जल चिकित्सा में बांह स्नान का वर्णन किया जाता है। इसके भी तीन प्रकार होते हैं:

i) BMk ckg Luku%

fof/k%

बांह स्नान के लिए तैयार किये गए विशेष आकार के टब में जल भरकर रोगी को स्टूल अथवा कुर्सी पर इस प्रकार बैठाते हैं कि रोगी के दोनों हाथ जल में डूब जायें। निर्धारित समय के बाद रोगी के हाथों को टब से निकालकर सूती तौलिये से अच्छी प्रकार से पोंछकर रोगी को कुछ समय भ्रमण अथवा हल्के व्यायाम करने का निर्देश देते हैं।

ykHk

- हाथों की मांसपेशियों को स्वस्थ एवं सक्रिय बनाता है।
- कन्धों से हाथों में जाने वाली तंत्रिकाओं को बल मिलता है एवं हाथों में कम्पन, फूटन, जलन आदि रोगों में लाभप्रद है।

चित्र 7.4 : बांह स्नान टब

lko/kkfu;k¡

- हाथों में सूजन एवं दर्द की तीव्र अवस्था एवं गठिया व जोड़ों के दर्द में रोगी को ठंडा बांह स्नान नहीं देना चाहिए।

ii) xje ckg Luku

fof/k

ठंडे बांह स्नान की भांति रोगी को गरम बांह स्नान देते हैं। इसमें रोगी को सहन करने योग्य गरम जल का प्रयोग करते हैं। गरम स्नान देने से पूर्व एक–दो गिलास ठंडा पानी अनिवार्य रूप से पिलाते हैं तथा सिर को ठन्डे जल में भिगोकर (सिर पर गीला तौलिया रखकर) ही हाथों को टब में डूबाते हैं। तत्पश्चात् रोगी को कम्बल से अच्छी प्रकार से ढक देते हैं और अच्छे से पसीना आने पर अथवा समयावधि पूर्ण होने पर रोगी के हाथों को जल से बाहर निकालकर ठंडे जल से धोकर एवं सूती तौलिये से पोंछकर रोगी को आराम कराते हैं।

ykHk

- हाथों में रक्त संचार तीव्र होता है, जिससे हाथों में दर्द, सूजन एवं जकड़न में आराम मिलता है।
- हृदय एवं फेफड़ों को आराम मिलता है एवं इन अंगों से सम्बंधित रोग दूर होते हैं।
- यह स्नान सर्दी, खांसी, दमा, ब्रोंकाइटिस एवं साइनोसाइटिस में लाभकारी है।

ty rRo fpfdRlk] fofHkUu fof/k;k ,oa vuqç;ksx

lko/kkfu;k

- अल्सर, वमन एवं हृदय रोगियों को यह स्नान नहीं देना चाहिए।
- गरम बांह स्नान 15 मिनट से अधिक विशेष परिस्थितियों में नहीं देना चाहिए।

iii) xje BMk ckg Luku

fof/k: रोगी को पूर्व वर्णित ठन्डे–गरम कटि स्नान की विधि अनुसार स्नान देना चाहिए।

ykHk

- यह रक्त संचार को तेजी से बढ़ता है जिससे हाथों में दर्द, सूजन, सुन्नपन, कंपकंपाहट एवं झनझनाहट आदि रोगों में आराम मिलता है।
- कन्धों की जकड़न दूर होती है एवं फ्रोजन शोल्डर रोग में आराम मिलता है।

lko/kkfu;k

- यह उच्च रक्तचाप, मिर्गी एवं मानसिक तनाव की तीव्र अवस्था से ग्रस्त रोगी को नहीं अथवा चिकित्सक की देखरेख में अत्यंत सावधानीपूर्वक ही देना चाहिए।

5- iw.kZ Mc Luku ¼Full Immersion Bath½

इस स्नान के नाम से ही इसके स्वरुप का ज्ञान होता है। इसमें सम्पूर्ण शरीर को जल में डूबाकर स्नान किया जाता है। इसके भी तीन प्रकार हैं:

चित्र 7.5 : पूर्ण स्नान टब

i) BMk Mc Luku

fof/k%

- शरीर की लम्बाई के बराबर टब में जल भरकर रोगी को पीठ के बल इस प्रकार लिटाते हैं कि उसके

सिर के अतिरिक्त सम्पूर्ण शरीर जल में भलि–भांति डूब जाए और सिर को रबड़ आदि के तकिये के सहारे टिका देते हैं।

- निर्धारित समय के बाद रोगी को टब से निकालकर सम्पूर्ण शरीर को सूती तौलिये से पोंछकर रोगी को कुछ समय भ्रमण अथवा हल्के व्यायाम का निर्देश देते हैं।

ykHk%

- सम्पूर्ण शरीर से विषाक्त पदार्थ बाहर निकालता है एवं तंत्रिकाओं को बल मिलता है।
- शराब आदि दुर्व्यसनों से ग्रस्त रोगियों के लिए यह सर्वाधिक लाभकारी है।
- विभिन्न प्रकार के त्वचा रोग, जीर्ण उदर रोग, वृक्क से सम्बंधित विकारों एवं आमाशय से सम्बन्धी रोगों में लाभ प्रदान करता है।
- अनिद्रा में विशेष लाभकारी है।

lko/kkfu;k

- मूत्र विकारों में यह नहीं देना चाहिए।
- वृद्ध एवं कमजोर रोगियों एवं गर्भावस्था में यह नहीं देना चाहिए।

ii) xje Mc Luku

fof/k% इस स्नान को ठंडे डूब स्नान की भांति ही देते हैं। इसमें रोगी को सहन करने योग्य गरम जल के टब में लिटाते हैं।

- स्नान से पहले रोगी को एक–दो गिलास जल पिलाकर सिर पर ठन्डे जल से भीगा तौलिया रख देते हैं।
- निर्धारित समय के बाद गठिया एवं आर्थराइटिस रोगियों को यह स्नान नहीं देना चाहिए।

6- ?k"k.k egu Luku ¼Sitz Bath½

शिक्षार्थियों, इस स्नान का सीधा सम्बन्ध प्रजनन इन्द्रिय से है अतः इस स्नान को इन्द्रिय स्नान, शिश्न स्नान, घर्षण मेहन स्नान एवं सिट्ज बाथ (Sitz bath) आदि नामों से भी जाना जाता है। इसके आविष्कारकर्ता भी डॉ. लुई कूने ही हैं।

fof/k

- कटि स्नान में प्रयुक्त टब रोगी को एक लकड़ी की चौकी पर बैठाएं और उसमे इतना पानी भर लें कि वह जननेंद्रिय तक पहुँच जाये। तत्पश्चात् ठंडे जल से भरे एक जग में एक मुलायम सूती रोयेंदार तौलिया भीगाकर रोगी को दे दें।
- अब रोगी अपनी प्रजनन इन्द्रिय के अग्र भाग को सामने की तरफ खींचकर उक्त जल से भीगे कपड़े से बार–बार घर्षण कर के धोता है।

ty rRo fpfdRlk] fofHkUu fof/k;k¡ ,oa vuqç;ksx

- इस बात का ध्यान रखें कि भीतर के मूत्र निकलने के मार्ग को बिलकुल भी न रगड़ा जाये। स्त्रियाँ भी अपनी जननेंद्रियों के बाहरी भाग को इसी प्रकार धोना चाहिए।

ykHk

- शरीर के अधिकांश प्रमुख स्नायुओं का अंत, जिनका सम्बन्ध मेरुदंड और मस्तिष्क से होता है, जननेंद्रिय के अग्रभाग पर ही होता है। इस स्नान के माध्यम से इन स्नायु नाड़ियों का शोधन होने से अनेक प्रकार के मानसिक एवं तंत्रिका तंत्र से सम्बंधित रोगों का उपचार होता है। अतः इस स्नान से स्नायु मण्डल के विषाक्त तत्व बाहर निकलने से शरीर के कोने–कोने पर प्रभाव डाला जा सकता है।

lko/kkuh%

- महिलाओं को मासिक स्राव काल में यह स्नान नहीं लेना चाहिए।
- यह स्नान स्वस्थ व्यक्तियों की तुलना में रोगी व्यक्तियों को अधिक लाभप्रद है।

7- Hkki Luku ¼Steam Bath½

शिक्षार्थियों, भाप स्नान भी जल चिकित्सा का एक अत्यंत प्रमुख व विशिष्ट अंग है। आयुर्वेद में भी नाड़ी स्वेद से इसका वर्णन किया गया है।

चित्र 7.6 : भाप स्नान

fof/k

- भाप स्नान के लिए लकड़ी या फाइबर से बने एक विशेष प्रकार के स्टीम केबिन में रोगी को बिना वस्त्रों के लकड़ी के स्टूल पर बिठाएं।
- तत्पश्चात् रोगी के सिर पर ठंडा पानी का तौलिया रखिए। सिर को ठंडा रखने के लिए बीच–बीच में सिर पर पानी डालें।

fVIi.kh

- तत्पश्चात् रोगी को उसी अवस्था में भाप दीजिए।
- जब रोगी के नाक पर, माथे पर हल्की–हल्की पसीने की बूंदे दिखने लगे तो भाप स्नान बंद कर दीजिए।
- फिर रोगी को बाहर निकालकर ठंडे पानी का फव्वारा स्नान दीजिए।
- रोगी के शरीर की सामान्य अवस्था होने पर उसे शरीर को सूती तौलिये से अच्छी प्रकार से पोंछकर कपड़े पहनकर आराम करने की सलाह दीजिए।

çHkko

- भाप स्नान से शरीर के समस्त रोम कूप खुल जाते हैं, शरीर विष मुक्त होकर रोग मुक्त होता है।
- शरीर में ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ती है व साथ ही रक्त संचार तीव्र होता है।
- फेफड़े, गुर्दे एवं त्वचा के कार्य नियमित रूप से संपादित होने लगते हैं।

ykHk

- भाप स्नान वात रोगों जैसे गठिया, लकवा और जोड़ों के दर्द में अत्यधिक लाभकारी है।
- थकान दूर करने में कारगर है। शारीरिक दर्द से निवृत्ति देने वाला है।
- मधुमेह, गुर्दे संबंधी रोगों में, पीलिया, यकृत् सम्बन्धी रोगों में लाभकारी है।
- रतिज रोगों जैसे शिफलिश, सुजाक में भी उपयोगी है।
- किसी प्रकार के त्वचा रोग जैसे एग्जिमा, डर्मेटाइटिस, त्वचा में शुष्कता इत्यादि के उपचार में लाभदायक है।
- श्वास नली प्रदाह को शांत करता है ।
- अतिरिक्त वसा को कम करता है, अर्थात् मोटापा नाशक है।

I ko/kkfu;k¡

- उच्च रक्तचाप, निम्न रक्तचाप, चक्कर आना, हृदय रोगी, अधिक कमजोर रोगी, महिलाओं में मासिक स्राव के समय, गर्भावस्था, अधिक छोटे बच्चों व वृद्ध लोगों को यह नहीं देना चाहिए।
- इस बात की जांच अवश्य कर लेनी चाहिए कि कहीं से भाप तो नहीं निकल रही।
- रोगी को भाप कक्ष में ले जाते समय सावधानी से बैठाना और निकालना चाहिए।
- यदि शरीर में घबराहट, बेचैनी या चक्कर आने लगे तो भाप स्नान को तुरंत बंद कर देना चाहिए और एक गिलास पानी पिलाना चाहिए।
- भाप स्नान करने के बाद उसके शरीर में हवा का झोंका बिल्कुल न लगे भाप स्नान करने के बाद तुरंत फव्वारा स्नान लेकर ही भाप कक्ष से निकलना चाहिये।

8 LFkkuh; ok"i Luku ¼Local Steam Bath½

- किसी विशेष अंग जैसे घुटने, छाती, पेट, पीठ, कमर एवं पीठ पर वाष्प उपचार देने की क्रिया स्थानीय वाष्प स्नान कहलाती है। इसके लिए वाष्प बनाने वाले यंत्र को उसकी टोटी से नली और फव्वारा लगाकर प्रयोग किया जाता है।
- स्थानीय वाष्प लेते समय कंबल या तौलिये से स्थानीय अंग को इस प्रकार ढकना चाहिए कि केवल वही भाग खुला रहे तथा वाष्प वहीं लगे जहां उसका प्रयोग किया जा रहा है।
- स्थानीय वाष्प लेने के बाद उस स्थान पर ठंडे तौलिए से घर्षण अवश्य करना चाहिए, अथवा ठंडी पट्टी की लपेट आवश्यकतानुसार प्रयोग में लानी चाहिए।

lko/kkfu;k

- स्थानीय भाप स्नान देने से पूर्व रोगी को पानी पिला देना चाहिए।
- स्थानिक भाप स्नान देते समय दूरी का ध्यान रखना चाहिए तथा वाष्प के बीच–बीच में निकलने वाली गर्म पानी की बूंदों से बचाव हेतु नोजिल पर कोई कपड़ा या जाली अवश्य रखनी चाहिए।
- किसी खुले घाव पर या त्वचा पर आई हुई अन्य विकृतियां जिसमें चोट, उधड़ी त्वचा हो तो वहां पर स्थानिक भाप स्नान नहीं देना चाहिए।
- स्थानिक भाप देते समय उपचारक का ध्यान रोगी की चेहरे तरफ होना चाहिए, जिससे वह उसके मनोदशा को देख सके कि वह कितनी गर्मी सहन करने लायक है।

bdkbZ ikB&7-2

1. रिक्त स्थान भरें:

   क) जल चिकित्सा में .... स्नान को स्नानों का राजा कहा जाता है।

   ख) ठंडा रीढ़ स्नान विशेष रूप से .... तंत्रिका तंत्र पर विशेष लाभकारी प्रभाव रखता है।

   ग) शरीर की अतिरिक्त वसा को कम करने में .... स्नान लाभकारी है।

2) सत्य/असत्य बताइए

   1) गर्म–ठंडे जल के स्नान का प्रारम्भ सदैव ठंडे जल से और समापन गर्म जल से की जाती है। ( )

   2) गर्म स्नान से पूर्व रोगी को पानी नहीं पिलाना चाहिए। ( )

   3) महिलाओं में मासिक स्राव के समय, गर्भावस्था के दौरान भाप स्नान नहीं देना चाहिए। ( )

   4) शराब आदि दुर्व्यसनों से ग्रस्त रोगियों के लिए ठंडा डूब स्नान सर्वाधिक लाभकारी है। ( )

   5) स्नायु मंडल के विषाक्त तत्वों को बाहर निकालने में सर्वाधिक प्रभावी स्नान मेहन स्नान है। ( )

fVIi.kh

7-4 ty fpfdRlk e ç;ä fofHkUu çdkj dh ifê;k ,o yiV

विभिन्न प्रकार की पट्टियों का प्रयोग अत्यंत व्यावहारिक रूप से हमारे घरों एवं समाज में पारंपरिक रूप से होता है। कितने ही रोगों में जैसे दर्द के स्थान पर एवं चोट आदि के प्राथमिक उपचार के रूप में प्रायः लपेट एवं पट्टियों का प्रयोग किया जाता है।

- पट्टियों और लपेट के लिए खादी की साड़ी सर्वोत्तम होती है क्योंकि वह जल को आसानी से और जल्दी सोखती है और बहुत देर तक पकड़े रहती है।
- इसके लिए पुराने साफ कपड़े जैसे सूती धोतियां, साड़ियां, बिछाने वाली चादरें आदि भी अच्छा काम करती हैं।
- पट्टियां सफेद कपड़ों की ही बनानी चाहिए और उन्हें सदैव साफ रखना चाहिए।
- पट्टियों और लपटों को भिगोने के काम में लाया जाने वाला जल सदैव स्वच्छ और मृदु होना चाहिए।
- भीगी बड़ी चादरें पूरे शरीर पर लपेटने के काम में आती हैं और पट्टियां शरीर के किसी भाग या अंग, जैसे सिर, गर्दन, छाती, पीठ तथा टांग आदि पर लगाई जाती है।

जल चिकित्सा में प्रयुक्त पट्टी दो प्रकार की होती हैंः

1. ठंडी जल पट्टी
2. गर्म जल पट्टी

7-4-1 BMh ty iêh ¼Cooling Wet Bandage½

जल चिकित्सा में ठंडी जल पट्टियों का प्रयोग अत्यंत महत्वपूर्ण एवं प्रचलित है। तेज बुखार होने पर माथे पर जल की ठंडी पट्टी का प्रयोग करने का उदाहरण समाज में प्राचीन काल से चला आ रहा है। जिस प्रकार सामान्य एवं व्यावहारिक रूप से जल की ठंडी पट्टी का प्रयोग माथे पर किया जाता है उसी प्रकार जल चिकित्सा के अंतर्गत शरीर के विभिन्न अंगों पर भी जल की ठंडी पट्टियों का प्रयोग किया जाता है। ठंडी जल पट्टी को cooling wet bandage भी कहते हैं।

ठंडी जल पट्टी में खादी के कपड़े की बनी पट्टी को ठंडे जल में अच्छे से भिगोने के बाद प्रभावित अंग पर रखते हैं। इसे लगाने के बाद इसे खुला रखा जाता है अर्थात् उसके ऊपर कोई दूसरा सूखा कपड़ा नहीं लपेटा जाता और इसको 2 से 5 मिनट में गरम होने के बाद या तो दूसरी ठंडी जल की पट्टी रखी जाती है या उसी पर ठंडा–ठंडा जल छिड़ककर उसे पुनः ठंडा किया जाता है। इस प्रकार सामान्य अवस्था में पट्टियों को बदलते हुए पांच से छः बार अर्थात् 25–30 मिनट तक की समयावधि तक ठंडे जल की पट्टियों का प्रयोग किया जाता है।

विशेष परिस्थितियों अथवा रोगावस्था में रोगी के रोग अनुसार इन पट्टियों की समयावधि को कम या ज्यादा किया जा सकता है। शरीर के विभिन्न अंगों जैसे पेट, माथे, सिर, कमर आदि की संरचना के अनुसार जल

की ठंडी पट्टियों को तैयार किया जाता है अर्थात् पेट की पट्टी, सिर की पट्टी, माथे की पट्टी, कमर की पट्टी आदि।

ykHk

- ठंडी पट्टी का प्रयोग करने से शरीर की अनावश्यक गर्मी शांत हो जाती है।
- ठंडी जल पट्टी सभी प्रकार की पीड़ा, दर्द, जलन, चोट तथा सूजन आदि में अत्यंत उपयोगी है।
- आग आदि से जलने के स्थान पर जलन होने पर ठंडी पट्टी लाभ करती है।
- अचानक पैर में मोच आने अथवा हड्डी के टूटने से उत्पन्न दर्द एवं सूजन में ठंडे जल की ठंडी पट्टी से दर्द एवं सूजन में आराम मिलता है।
- जहरीले कीट या जंतु के काटने अथवा डंक मारने पर शरीर में उत्पन्न होने वाली जलन एवं सूजन में विष का शोषण करके जल की पट्टी शीघ्र लाभ प्रदान करती है।

lko/kkfu;k

- यद्यपि जल की ठंडी पट्टियां अत्यंत लाभकारी एवं दुष्प्रभाव रहित होती हैं तथापि इन पट्टियों का प्रयोग एक बार में बहुत अधिक लम्बे समय तक (लगातार 30 मिनट से अधिक) नहीं करना चाहिए।
- दर्द जितना अधिक तीव्र हो ठंडी जल पट्टी उतनी ही मोटी लगानी चाहिए।
- साधारण दर्द में भी जल पट्टी केवल दर्द की जगह पर ही नहीं लगाना चाहिए अपितु उसके आस–पास भी काफी दूर तक लगानी चाहिए।

7-4-2 xje&B.Mh ty iêh ¼Stimulating Wet Bandage½

शिक्षार्थियों, यद्यपि सामान्य रूप से देखने पर ऐसा लगता है कि जल की गरम पट्टियों को गरम जल का प्रयोग करते हुए बनाया जाता होगा, किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है अपितु जल की गरम पट्टियों में भी ठंडे जल का ही प्रयोग किया जाता है। इनमें सिर्फ यह अंतर होता है कि जल की ठंडी पट्टियों को जल से अच्छी तरह भिगोकर प्रयोग में लाया जाता है जबकि जल की गरम पट्टियों को जल में भिगोकर अच्छी प्रकार से निचोड़कर प्रयोग में लाया जाता है। तत्पश्चात् इसके ऊपर ऊनी कम्बल की पट्टी या फलालैन की पट्टी को लपेट दिया जाता है।

अच्छी तरह निचोड़ी हुई ठंडी जल पट्टी लगाने के बाद उसके ऊपर जब सूखे फलालैन या किसी अन्य ऊनी कपड़े की एक दूसरी पट्टी लपेट दी जाती है तो उसे गरम–ठण्डी जल पट्टी कहते हैं।

- यद्यपि जल की ठंडी पट्टी को पांच मिनट के उपरान्त बदल दिया जाता है किन्तु जल की गरम पट्टी को तीन से छः घंटे तक अथवा इससे भी लम्बे समय तक बिना खोले हुए प्रयोग किया जा सकता है।
- ठंडी जल पट्टी को लगाने के बाद उसके ऊपर फलालैन या ऊनी कपड़े की दूसरी पट्टी की 2–3 तह

fVIi.kh

इस प्रकार लगाई जाती है कि गीली पट्टी से सूखी पट्टी 1–1 अंगुल चारों तरफ बढ़ी रहे। कभी–कभी आवश्यकतानुसार मोमजामे या रबर की चादर का भी प्रयोग किया जाता है।

- रोगी की दशा, देश तथा काल के अनुसार ही यह पट्टी मोटी या पतली लगायी जाती है तथा उसके ऊपर की सूखी गरम पट्टी एक तह या कई तह की हो सकती है या एक दम निकाली जा सकती है।

ykHk

- जल की गरम ठण्डी पट्टी शरीर से विजातीय विषाक्त पदार्थों को बाहर निकालने में विशेष लाभकारी, गुणकारी एवं प्रभावकारी सिद्ध होती है।
- इसका प्रयोग प्रमुख रूप से जीर्ण रोगों जैसे दमा, जीर्ण ज्वर, मधुमेह, रक्तचाप, हृदय रोग, एलर्जी, एक्जिमा, सोराइसिस, मोटापा एवं कैंसर आदि में लाभकारी प्रभाव रखता है।
- महिलाओं के विभिन्न रोगों में यह पट्टी विशेष लाभकारी प्रभाव रखती है।
- अनिद्रा रोग में भी सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

7-5 lEi.k xhyh pknj yiV

शिक्षार्थियों जैसा कि नाम से ही स्पष्ट होता है कि इसमें सम्पूर्ण गीली चादर को लपेट के रूप में प्रयोग किया जाता है इसलिए इसे गीली चादर लपेट कहते हैं। यह पूरे शरीर की गरम लपेट या पट्टी होती है। इसे सम्पूर्ण अंग्रेजी में wet sheet pack, whole body compress, whole body pack, stimulating wet pack तथा sweating wet sheet pack भी कहते हैं।

गीली चादर लपेट के सन्दर्भ में डॉ. ल्यूकस का वर्णन आता है, जिन्होंने अठारहवीं शताब्दी के मध्य में सर्वप्रथम इसका प्रयोग किया था। तत्पश्चात् जर्मनी देश के प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक विन्सेंज प्रिस्निज द्वारा इस लपेट का प्रयोग करके अनेक रोगियों को स्वस्थ किया गया।

महात्मा गाँधी भी इस लपेट की बहुत सराहना करते थे। उन्होंने एक बार यंग इंडिया में लिखकर बताया था कि उन्होंने किस तरह अपने बड़े लड़के श्री मणिलाल गाँधी को केवल इस लपेट से काला जार जैसे भयंकर रोग से मुक्त किया था।

चित्र 7.7 सर्वांग गीली चादर लपेट

इसमें गीली चादर की लपेट पूरे शरीर में दी जाती है। इसमें सबसे पहले एक कम्बल को नीचे बिछाकर उसके ऊपर एक भीगी और निचोड़ी हुई चादर को फैला दिया जाता है। उस पर रोगी को लिटाकर उसे पूरी तरह उसमें इस प्रकार लपेटा जाता है कि जिससे किसी भी तरफ से बाहरी हवा का आवागमन न हो सके। गर्दन से ऊपर सर का भाग खुला रखा जाता है। तत्पश्चात्

कम्बल को भी ऊपर से उसी प्रकार लपेट दिया जाता है। इस प्रकार पंद्रह से बीस लेटने के बाद शरीर में पसीना आ जाता है जिससे शरीर का विजातीय द्रव्य पसीने के साथ बाहर आ जाता है और रोगी स्वस्थ होने लगता है। इसके बाद रोगी के शरीर को ठंडे गीले कपड़े से पोंछकर साफ करके सूखाकर कपड़े पहनाये जाते हैं।

ykHk

- गीली चादर लपेट मूल रूप से शरीर में उपस्थित विषों को त्वचा के माध्यम से बाहर निकलती है जिसके परिणामस्वरूप शरीर की जीवनी शक्ति एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता तेजी से बढ़ती है।
- ज्वर की अवस्था में अथवा समस्त शरीर में विजातीय द्रव्य की अधिकता होने पर गीली चादर का प्रयोग बहुत लाभकारी होता है।
- इससे पाचन तंत्र की क्रियाशीलता बढ़ती है जिससे यकृत स्वस्थ सक्रिय बनता है, कब्ज़, अपच आदि रोग दूर होते हैं।
- मांसपेशियों की क्रियाशीलता बढ़ती है एवं पेशियों से सम्बंधित दर्द में आराम मिलता है।
- इनके अतिरिक्त जलन, चरम रोग, अनिद्रा, जुकाम, दमा, अम्लरोग, मोटापा, स्वप्न दोष, स्नायु सम्बन्धी रोगों, नए अथवा पुराने रोगों में इस लपेट का लाभकारी प्रभाव होता है।

ukV% छोटे–छोटे और मामूली रोगों में साधारणतः एक बार लपेट देने से आराम आ जाता है, किन्तु पुराने रोगों में इसका प्रयोग बार–बार करना चाहिए। सामान्यतः पुराने रोगों में एक महीने चार बार लपेट देना काफी होता है। कठिन रोगों में सप्ताह में दो बार भी यह दी सकती है।

lko/kkfu;k%

- रोगी का शरीर लपेट के समय गर्म होना चाहिए ताकि ठंडी चादर पर लेटने में उसे आराम हो।
- बच्चों, कमजोर एवं वृद्ध रोगी के शरीर को लपेट से पूर्व सूखी मालिश अथवा धूप स्नान अथवा किसी अन्य तरीके से गरम कर लपेट देनी चाहिए। कमजोर रोगी के हाथों को चादर लपेट से बाहर भी रखा जा सकता है तथा गीले कपड़े का परिणाम कम और गरम कम्बलों की संख्या अधिक की जा सकती है।
- उच्च रक्तचाप, हृदय रोगी, मिर्गी से ग्रस्त, त्वचा में गहरे घाव, मानसिक तनाव एवं अवसाद से ग्रस्त रोगी को एवं तीव्र रोग की अवस्था में लपेट नहीं देनी चाहिए।
- शरीर के किसी भाग में सूजन होने पर भी लपेट नहीं अत्यंत सावधानीपूर्वक देनी चाहिए।
- रोगी की क्षमतानुसार ही समय निर्धारित करते हुए लपेट देनी चाहिए एवं लपेट काल में रोगी को घबराहट अथवा बेचैनी होने पर लपेट को खोलकर स्नान करना चाहिए।
- महिलाओं को मासिक स्राव काल तथा गर्भावस्था में यह लपेट नहीं देनी चाहिए।

fVIi.kh

इसी प्रकार शरीर के विभिन्न अंगों पर गीली पट्टी की लपेट दी जाती है जिसे उसी स्थानिक नाम से जाना जाता है। जैसेः

1. सिर की गीली पट्टी
2. गले की गीली पट्टी
3. छाती की गीली पट्टी
4. धड़ की गीली पट्टी
5. पेड़ू की गीली पट्टी
6. कमर की गीली पट्टी
7. जोड़ की गीली पट्टी

इन सबके विषय में विस्तार से प्रायोगिक पुस्तिका में बताया जायेगा।

7-6 BUM ty d vkrfjd i;kx

प्रिय शिक्षार्थियों जिस प्रकार ठंडे जल के बाह्य प्रयोग से रोग दूर होते हैं, उसी प्रकार जल के आतंरिक प्रयोगों से भी बहुत से रोग ठीक किये जा सकते हैं।

ठंडे जल के आतंरिक प्रयोग से शरीर के भीतर के सभी अवयव सुदृढ़, स्वस्थ एवं निर्मल बनते हैं। तथा अपना कार्य सुचारू रूप से करने लगते हैं, जिससे शरीर में विजातीय द्रव्य इकट्ठा नहीं होने पाता और शरीर रोगी नहीं बनता।

जल के आतंरिक प्रयोगों की विभिन्न विधियाँ निम्नलिखित हैंः

1) उषापान
2) वमन
3) शंख प्रक्षालन
4) एनिमा
5) जलपान

शिक्षार्थियों इन सभी पर आप प्रथम वर्ष में विस्तार से ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं।

bdkbZxr iz'u&7-3

1. सही/गलत बताईए –

   क) पट्टियों और लपेट के लिए खादी की साड़ी सर्वोतम होती है। ( )

   ख) ठंडी पट्टी का प्रयोग करने से शरीर की अनावश्यक गर्मी शांत होती है। ( )

   ग) महात्मा गाँधी लपेट की सराहना नहीं करते थे।

2. पट्टियों का रंग किस प्रकार का होना चाहए ?

   ....

   ....

3. जल चिकित्सा में पट्टी कितने प्रकार की होती है ?

   ....

   ....

4. लपेट द्वारा गाँधी जी ने अपने बड़े लड़के को किस रोग से मुक्त किया था ?

   ....

   ....

vkiua D;k lh[kk

इस इकाई (यूनिट) में आपने सीखा कि –

- पंचतत्व से निर्मित मानव शरीर में जल भी एक प्रधान तत्व है। जल प्रकृति के साथ–साथ मानव शरीर में भी प्रमुखता से विद्यमान रहता है। शरीर का लगभग 70% भाग जल से ही बना है। हमारे रक्त, मांस, मेद, मज्जा आदि में जो आर्द्रता या नमी होती है वह जल के ही कारण है।
- जल हमारे जीवन में अति महत्वपूर्ण तत्व है, जो जीवन प्रदान करता है। यदि हम इसके चिकित्सीय स्वरूप पर दृष्टि डालें तो पता चलता है कि यह औषिधि का कार्य करता है। साथ ही शरीर के विभिन्न भागों व अंगों में एकत्रित विजातीय द्रव्यों के निष्कासन में सहायक है।
- जब जल तत्व का प्रयोग एक चिकित्सक द्वारा वैज्ञानिक विधिनुसार रोगों के उपचार के उद्देश्य से किया जाता है तब वह जल चिकित्सा कहलाती है।

- प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक डॉ. लिंडलहार के अनुसार बुखार ठीक करने में अन्य औषधियों की तुलना में जल 1/10 समय लेता है। अर्थात् औषधियों के प्रयोग से यदि बुखार दस दिनों में ठीक होता है तो वहीं जल के प्रयोग से (गीली पट्टी, चादर, एनिमा तथा अन्य प्रयोगों द्वारा) बुखार एक दिन में ठीक होता है।

- जल चिकित्सा में रोग निवारण के लिए जल का प्रयोग करने की प्रधान विधियां निम्न हैं:

  1. **fpfdRlk e: ty dk cká ç;kx &** इसमें विभिन्न प्रकार के स्नान, अंगों की लपेट, ठंडे व गर्म जल की पट्टियों का वर्णन आता है।
  2. **fpfdRlk e: ty dk vkrfjd ç;kx &** इसमें ऊषापान, वमन, शंख प्रक्षालन, एनिमा, जलपान आदि का वर्णन आता है।

- जल चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न प्रकार के स्नान:

  1) कटि स्नान
  2) रीढ़ स्नान
  3) पाद स्नान
  4) बांह स्नान
  5) पूर्ण डूब स्नान
  6) घर्षण मेहन स्नान
  7) भाप स्नान

- विभिन्न प्रकार की पट्टियों का प्रयोग अत्यंत व्यावहारिक रूप से हमारे घरों एवं समाज में पारंपरिक रूप से होता है। कितने ही रोगों में जैसे दर्द के स्थान पर एवं चोट आदि के प्राथमिक उपचार के रूप में प्रायः लपेट एवं पट्टियों का प्रयोग किया जाता है।

- भीगी बड़ी चादरें पूरे शरीर पर लपेटने के काम में आती हैं और पट्टियां शरीर के किसी भाग या अंग, जैसे सिर, गर्दन, छाती, पीठ तथा टांग आदि पर लगाई जाती है।

- जल चिकित्सा में प्रयुक्त पट्टी दो प्रकार की होती हैं:

  1. ठंडी जल पट्टी
  2. गर्म जल पट्टी

- अच्छी तरह निचोड़ी हुई ठंडी जल पट्टी लगाने के बाद उसके ऊपर जब सूखे फलालैन या किसी अन्य ऊनी कपड़े की एक दूसरी पट्टी लपेट दी जाती है तो उसे गरम–ठण्डी जल पट्टी कहते हैं।

- ठंडे जल के आतंरिक प्रयोग से शरीर के भीतर के सभी अवयव सुदृढ़, स्वस्थ एवं निर्मल बनते हैं। तथा

अपना कार्य सुचारू रूप से करने लगते हैं, जिससे शरीर में विजातीय द्रव्य इकट्ठा नहीं होने पाता और शरीर रोगी नहीं बनता।

bdkbZ ds vUr esa iz'u

1. जल चिकित्सा एवं इसके महत्व को समझाइए।
2. जल चिकित्सा की विभिन्न विधियों का वर्णन कीजिए।
3. जल चिकित्सा में प्रयुक्त होने वाली विभिन्न प्रकार की पट्टियों की विधियो पर विस्तार से प्रकाश डालिए।
4. जल चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न प्रकार की लपेटों का विस्तृत परिचय दीजिए।
5. जल चिकित्सा में प्रयुक्त विभिन्न प्रकार की पट्टियों एवं लपेटों के महत्व का वर्णन कीजिए।

bdkbZxr iz'uksa ds mÙkj

7-1

1. जल तत्व से शरीर की चिकित्सा करना।
2. (i) जल की ऐसा पदार्थ है, जिसका तापक्रम चिकित्सा के अनुरूप रखा जा सकता है।
   (ii) रक्त तथा लिम्फ परिवहन तत्र की तरलता को नियंत्रित करना।
3. (क) सही
   (ख) सही
   (ग) गलत
   (घ) गलत

7-2

1. रिक्त स्थान
   (क) कटि स्नान
   (ख) केंद्रीय

fVIi.kh

(ग) भाप

2. सही / असत्य

1. असत्य

2. असत्य

3. सत्य

4. सत्य

5. सत्य

7-3

1. सही / गलत

(क) सही

(ख) सही

(ग) गलत

2. सफेद रंग

3. दो प्रकार (1) ठंडी जल पट्टी (2) गर्म जल पट्टी

4. कालाजार जैसे भंयकर रोग से मुक्त किया था।

8

पृथ्वी तत्व चिकित्सा, विभिन्न विधियाँ एवं अनुप्रयोग

शिक्षार्थियों, पिछली इकाई (यूनिट) में आपने जल तत्व चिकित्सा के विषय में ज्ञान प्राप्त किया। आपने जल तत्व चिकित्सा के अंतर्गत विभिन्न चिकित्साओं जैसे गरम पाद स्नान, रीढ़ स्नान आदि के बारे में विस्तार से जाना। इन चिकित्साओं को आप रोगी के अनुसार व्यवहार में लाने में भी सक्षम हो चुके हैं।

आप प्रथम वर्ष में, पृथ्वी तत्व के विषय में विस्तारपूर्वक पढ़ चुके हैं। आप जानते ही हैं कि हमारे शरीर का निर्माण पंच तत्वों से हुआ है। इन पंच तत्वों में पृथ्वी तत्व अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि मानव का पालन, पोषण, वृद्धि, विकास तथा विनाश इसी पृथ्वी पर पूर्णतया निर्भर है। इस इकाई (यूनिट) में, आप चिकित्सीय दृष्टि से पृथ्वी तत्व चिकित्सा को व्यवहार में लाना सीख सकेंगे।

mí';

इस इकाई (यूनिट) का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- चिकित्सीय दृष्टि से पृथ्वी तत्व, के गुण, विशेषताएं एवं इसकी महत्वता का वर्णन कर सकेंगे;
- मिट्टी चिकित्सा का अर्थ एवं परिभाषा को समझा सकेंगे और मिट्टी चिकित्सा के इतिहास पर प्रकाश डाल सकेंगे;
- चिकित्सीय दृष्टि से उपयोगी, विभिन्न प्रकार की मिट्टियों का उल्लेख कर सकेंगे;
- पृथ्वी तत्व चिकित्सा की विभिन्न विधियाँ और उनके अनुप्रयोग व्यवहार में ला सकेंगे।

fVIi.kh

8-1 fpfdRlh; nf"V es iFoh rRo ,oa bldh egÙkork

शिक्षार्थियों, जैसा कि आप जानते ही हैं कि पंच तत्वों में पृथ्वी पाँचवा और अंतिम तत्व है। यह आप विषय संख्या – 2 प्राकृतिक चिकित्सा का आधारभूत ज्ञान के अंतर्गत पृथ्वी तत्व चिकित्सा में पढ़ चुके हैं। यहाँ हम चिकित्सकीय दृष्टि से पृथ्वी तत्व को समझने का प्रयास करेंगे।

पृथ्वी ही पेड़–पौधे, वनस्पतियों, जड़ी– बूटियों एवं विभिन्न प्रकार के खाद्यान्नों की जन्मदात्री है। मानव जीवन पूर्णतया इन्हीं पर निर्भर है। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति में पृथ्वी को माता कहा जाता है। यह शरीर द्वारा किए गए सभी अपराधों को क्षमा करके सदैव स्वस्थ, निर्मल एवं बलवान बनाने का प्रयत्न करती है। सभी रस पृथ्वी में मौजूद हैं। इसके गर्भ से खाद्य पदार्थ पोषक तत्व ग्रहण करते हैं, जिन्हें खाकर हम स्वस्थ बनते हैं।

enk ;k feêh gh iFoh gA

- हमारे शरीर में पृथ्वी अर्थात् मिट्टी तत्व से हड्डियां बाल आदि बने हैं। इसी कारण शास्त्रों में पृथ्वी और शरीर में घनिष्ठ संबंध वर्णित किया गया है तथा इस पृथ्वी तत्व के संपर्क में रहना, स्वस्थ रहने के लिए अत्यंत आवश्यक माना गया है।
- भगवत पुराण की कथानुसार राजा पृथु ने पृथ्वी को सजा कर उससे सब प्रकार की औषधियों का दोहन करके मानव जाति का कल्याण किया था। इसलिए तभी से इसे पृथ्वी कहा गया।
- मिट्टी का अर्थ है इस सृष्टि पर हर प्रकार की नित्य नई वस्तुएं बना कर उन्हें मिटाना व मिट्टी में मिलाना।
- लगभग सारे रोगों को दूर करने के कारण इसे **lojksxgkjh** भी कहा जाता है।
- सभी जड़ चेतन वस्तुओं को धारण करने से इसे **/kjrh] /kjk] /kk=h** कहते हैं।
- छान्दोग्य उपनिषद में कहा गया है कि, पृथ्वी तत्व अन्य चार तत्वों आकाश, वायु, अग्नि और जल का रस है। **Þ,"kke Hkrkuk iFoh jlß**
- बाइबिल के मतानुसार ईश्वर ने धरती की धूल से आदमी का पुतला बनाया उसके नासारन्ध्रों में प्राण डाले और वह सजीव प्राणी बन गया।

  "The first man is of the earth earthy" (1 Corinthians XV 47)

- वेदों के अनुसार :

  ^iFoh ekrk /kkS% u% firkß

  अर्थात् पृथ्वी हमारी माता और आकाश पिता है।

8-1-1 feêh d fpfdRlh; xq.k ,o fo'ks"krk,¡

fVIi.kh

शिक्षार्थियों मिट्टी में कुछ विशेष गुण पाए जाते हैं जिनके कारण मिट्टी चिकित्सा में प्रयुक्त होती है। आइये! इन गुणों और विशेषताओं को जानें–

- **nqxZU/k uk'kd {kerk** – सब प्रकार की दुर्गंध को मिटाने के लिए मिट्टी से बढ़कर संसार में और कोई वस्तु नहीं है। यही कारण है कि लोग मिट्टी से अपने घरों को लीपते हैं और दुर्गंध की जगह पर मिट्टी का प्रयोग करते हैं।

- **rki fu;=.k dh {kerk** – मिट्टी में सर्दी और गर्मी रोकने की क्षमता है। इसलिए सर्दी–गर्मी दोनों मौसम में मिट्टी से बने घर आरामदायक सिद्ध होते हैं । योगी लोग अपने शरीर पर मिट्टी लगाए रहते हैं, जिससे कड़ी से कड़ी धूप और तीव्र सर्दी, दोनों से उनके शरीर की रक्षा होती है। इसी गुण के कारण मिट्टी विभिन्न रोगों में अपना अच्छा प्रभाव छोड़ती है ।

- **fueZyhdj.k dh {kerk** – जल को निर्मल कर देने की अद्भुत शक्ति मिट्टी में होती है। कूपों, सरिताओं और स्रोतों का जल इसी कारण सदैव निर्मल रहता है। इसलिए गन्दे दूषित जल को निर्मल करने के लिए मिट्टी में से छानते हैं।

- **foækod {kerk** – मिट्टी में विलक्षण विद्रावक (Dissolving) शक्ति होती है। बड़े से बड़े फोड़े पर मिट्टी की पट्टी प्रयोग करने से वह अपनी शक्ति से उसे पकाकर बहा देती है और घाव भी बहुत जल्दी भर देती है।

- **vo'kks"k.k dh {kerk** – मिट्टी में अवशोषण की अपूर्व क्षमता होती है, जिससे यह विजातीय द्रव्य, विष आदि को शोषित कर शरीर से बाहर निकाल देती है। सांप, बिच्छू आदि के काटने पर मिट्टी का युक्तिपूर्वक लेप आश्चर्यजनक रूप से काम करता है।

- मिट्टी अग्नि की उष्णता का शोषण करके उसे शांत कर सकती है। इसी कारण आग लगने पर मिट्टी डालकर उसे बुझाते है।

- **fdlh Hkh vkdkj esa <yus dh {kerk** – मिट्टी जल के योग से तरह–तरह के आकार धारण कर सकती है। मिट्टी के मकान, खेल के सामान तथा बर्तन इसी के उदाहरण हैं।

- **okrkoj.k dks LoPN ,oa 'kq) cukus dh {kerk** – मिट्टी न केवल वातावरण को स्वच्छ बनाती है अपितु, सड़ी चीजों को अपने में समाहित कर वातावरण को पुनः शुद्ध बना देती है। इसी कारण मृत शरीर को मिट्टी में दबाकर विसर्जन किया जाता है।

- **vR;ar ljy ,oa çHkkoiw.kZ** – मिट्टी चिकित्सा सरल होने के साथ–साथ अत्यंत प्रभावी भी है। इसका प्रयोग घर में बिना किसी विशिष्ट उपकरण आदि के किया जा सकता है।

- **df'kdRo** – शिक्षार्थियों आपने देखा होगा कि मिट्टी के एक टुकड़े का पानी से स्पर्श होने के बाद

धीरे–धीरे पूरी मिट्टी स्वयं गीली हो जाती है। यह पानी का अवशोषण मिट्टी में बनी हुई अनेकानेक केशिकाओं के कारण होता है। इसी केशिकत्व के कारण मिट्टी की पट्टी जब शरीर पर लगाई जाती है तो उसके द्वारा शरीर के अंदर की विषाक्तता जो त्वचा के नीचे रक्तसंचार बढ़ने के कारण घुलित अवस्था में विजातीय द्रव्य के रूप में आ जाती है, मिट्टी द्वारा अवशोषित कर लिए जाते हैं। फलस्वरूप शरीर विष रहित होकर स्वास्थ्य को प्राप्त करता है।

8-1-2 feêh dk egÙo

- मिट्टी में जल तथा सब प्रकार की धातुएं अर्थात् खनिज पदार्थों को धारण करने की शक्ति है। समुद्र, नदियां, तालाब आदि पृथ्वी पर ही तो स्थिर हैं।
- मिट्टी में ही सभी प्राणियों के जीवन निर्वाह के लिए खाद्य पदार्थों को उनमें भिन्न–भिन्न रसों की प्रधानता के साथ उत्पन्न करने की शक्ति होती है।
- मिट्टी जल के वेग को रोक सकती है। इसी कारण मिट्टी का बांध बनाकर बाढ़ का पानी रोका जाता है।
- मिट्टी में शरीर की सफाई तथा निर्विषीकरण की क्षमता है।
- मिट्टी में रोगों को दूर करने की अपूर्व शक्ति होती है क्योंकि मिट्टी में जगत की सभी वस्तुओं का एक साथ रासायनिक सम्मिश्रण (Chemical combination) सर्वाधिक विद्यमान रहता है। जोकि किसी एक दवा का या कई दवाओं के मिश्रण में भी उतना कदापि संभव नहीं हो सकता। यही रासायनिक तथा खनिज तत्व हमें अनेक प्रकार से लाभ पहुंचाते हैं।
- जिस प्रकार सारी सृष्टि की रचना मिट्टी से हुई है उसी प्रकार अंत में सब को आत्मसात कर लेने की शक्ति भी पृथ्वी में ही निहित है। कहा भी गया है:–

  ''Dust Thou Art, and Unto Dust Shalt Thou Return''
- प्रोफेसर स्टांकलासा के अनुसार:

  मिट्टी में एक प्रकार का रेडियम होता है जो शरीर की ग्रंथियों को प्रभावित करके स्वास्थ्य में वृद्धि करता है। मशीनों द्वारा दी जाने वाली रेडियम चिकित्सा प्रायः हानिकारक होती है, जबकि मिट्टी के प्राकृतिक रेडियम से तनिक भी हानि नहीं होती, बल्कि लाभ ही होता है।
- डॉक्टर लिंडलार के अनुसार:

  ''मिट्टी त्वचा के रोम कूपों को खोलती है, रक्त को ऊपरी भाग में खींचती है, आन्तरिक भाग के दर्द एवं रक्त संचय को दूर करती है, और विजातीय द्रव्य को बाहर निकालती है।

bdkbxr iz’u&8-1

रिक्त स्थान भरें:

1) पृथ्वी को सभी जड़ चेतन वस्तुओं को धारण करने से .... और ....कहते हैं।

2) मिट्टी अपनी .... शक्ति के कारण फोड़े को पकाकर बहा देती है।

3) .... के कारण मिट्टी का एक टुकड़ा गीला होने पर पूरी मिट्टी गीली हो जाती है।

4) मिट्टी में शरीर की .... तथा .... की क्षमता है।

5) मिट्टी में एक प्रकार का .... होता है जो शरीर की ग्रंथियों को प्रभावित करके स्वास्थ्य में वृद्धि करता है।

8-2 feêh fpfdRlk dk vFkZ ,o ifjHkk"kk

feêh fpfdRlk dk vFkZ g iFoh rRo ls 'kjhj dh fpfdRlk djukA

अर्थात् पृथ्वी तत्व से की जाने वाली शरीर की चिकित्सा को प्राकृतिक चिकित्सा में मिट्टी चिकित्सा का नाम दिया गया है। अतः हम कह सकते हैं कि **Þfeêh fpfdRlk ,d çk—frd fpfdRlk i)fr g ftlesa fofHkUu 'kkjhfjd o ekufld jksxksa ,o fo—fr;ksa dks nwj djus ds fy, rFkk 'kkjhfjd LokLF; ds lao/kZu grq feêh dk fofHkUu :iksa esa mi;ksx fd;k tkrk gSAß**

- मिट्टी चिकित्सा एक ऐसी विशिष्ट चिकित्सा पद्धति है, जिसके द्वारा शरीर के विजातीय द्रव तथा मल विकारों को विभिन्न रूपों के द्वारा शरीर से बहिष्कृत किया जाता है।
- मिट्टी चिकित्सा का उपयोग न केवल उपचार हेतु करते हैं अपितु, शरीर को बलशाली, पुष्ट एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता की वृद्धि के लिए भी करते हैं।
- मिट्टी चिकित्सा एक ऐसी अमूल्य पद्धति है जिसका शरीर तथा मन दोनों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। और सामान्य रूप से दोनों ही स्वस्थ स्थिति को प्राप्त होते हैं।”

8-2-1 feêh fpfdRlk dk bfrgkl

मिट्टी चिकित्सा का इतिहास अत्यंत पुराना है। हमारे ऋषि–मुनियों ने प्रत्यक्ष उपयोग कर मिट्टी के महत्व को समझा और शरीर तथा मन को स्वस्थ रखने के लिए विभिन्न प्रकार से उपयोग करने की कला का विकास किया। यदि हम आश्रम व्यवस्था की ओर दृष्टिपात करें तो पृथ्वी पर सोना, नंगे पैर रहना एवं चलना, शरीर का मिट्टी से सीधा संपर्क रखना, मिट्टी से हाथ पैरों की सफाई, वस्त्रों की सफाई तथा निवास स्थान

fVIi.kh

की सफाई तथा आकस्मिक समय पर गीली मिट्टी का उपयोग पढ़ने और समझने को मिलता है। मिट्टी में अनेकानेक भौतिक, रासायनिक तथा चिकित्सकीय विशेषताएं होने के कारण स्वस्थ तथा अस्वस्थ दोनों दशाओं में इसका उपयोग होता रहा है। चिकित्सा के रूप में इसका उपयोग किया जाता है तो इसका महत्व अमूल्य औषधि से भी अधिक हो जाता है।

वैदिक संस्कृत के ऋषि–मुनि अर्थात् वैज्ञानिक मिट्टी के चिकित्सकीय गुणों से परिचित थे। 18 वीं शताब्दी में भी मिट्टी के चिकित्सकीय गुणों पर बुजवर्ग के स्टंफ, जर्मनी कर लुई कुने, अडोल्फ जस्ट, बवेरिया के फादर एस नीप तथा गैलन आदि वैज्ञानिकों ने कार्य किया है। अडोल्फ जस्ट ने तो पृथ्वी पर सोने व नंगे पैर चलने की जोरदार सिफारिश की है।

हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी तो मिट्टी के इतने समर्थक थे कि जब से उन्हें मिट्टी चिकित्सकीय गुणों का पता चला तब से जीवन पर्यंत अनेक असाध्य बीमारियों में मिट्टी के अनेक सफल प्रयोग स्वयं पर तथा अपने अनुयायियों पर करते रहे। उन्हीं के शब्दों में –''सख्त बुखार में मिट्टी का उपयोग पेडू पर करने के लिए और सिर में दर्द हो तो सिर पर रखने के लिए मैंने किया है। टाइफाइड में मैंने मिट्टी का खूब प्रयोग किया है सेवाग्राम आश्रम में टाइफाइड के अनेक केस हो चुके हैं पर उनमें से एक भी केस नहीं बिगड़ा। सेवाग्राम में अब टाइफाइड से लोग डरते नहीं हैं। मैं कह सकता हूं कि एक भी केस में मैंने दवा का उपयोग नहीं किया है। फोड़े फुंसी पर मिट्टी की पुल्टिस के प्रयोग पर वे लिखते हैं कि इसमें अधिकांश फोड़े मिट जाते हैं जिन पर मैंने यह प्रयोग किया उनमें से एक भी केस निष्फल रहा हो ऐसा मुझे याद नहीं है।'' (बापू लिखित आरोग्य की कुंजी से)।

वर्तमान सदी में सोवियत रूस के अनेक वैज्ञानिकों ने मिट्टी के दैवीय चिकित्सकीय गुणों पर अनेक शोध कार्य किए हैं। उन सोवियत आयुर्वैज्ञानिकों में डॉ कान वेट्रेसकी, डॉक्टर पोक्रोवस्की, डॉक्टर नालबान्डोव, डॉक्टर यासिनोवस्की, डॉक्टर तारुसोव, डॉक्टर गुक, डॉक्टर नालिसकी, डॉक्टर कोखनवीच, डॉक्टर टसरफिस, डॉक्टर प्रोकोपेन्को, तथा डॉक्टर बालकावा ने मिट्टी चिकित्सा पर अद्भुत कार्य किए हैं।

8-3 feêh ds fofHkUu çdkj rFkk fpfdRlk esa mi;ksfxrk

शिक्षार्थियों, आप प्रथम वर्ष में मिट्टी के प्रकार के विषय में संक्षेप में पढ़ चुके हैं। यहाँ हम उसे थोड़ा विस्तृत रूप से समझेंगे। जैसा कि आप जानते ही हैं कि, अपनी संरचना और संघटन के आधार पर मिट्टी कई प्रकार की होती है। प्रत्येक प्रकार मिट्टी का उपयोग उसके गुणों के अनुसार अलग–अलग होता है। आइये! इन्हें जानते हैं–

8-3-1 dkyh feêh

- काली मिट्टी अधिकतर कछार क्षेत्रों में पाई जाती है।
- यह अत्यधिक उपजाऊ होती है और इसमें कार्बनिक तत्वों की अधिकता से इसका रंग काला होता है।
- यह मिट्टी बालों की रक्षा करने और उनको साफ और स्वच्छ रखने में अद्वितीय है।

;g 'kjhj dh Ropk d LokLF; dk lqjf{kr djus e fo'k"k çdkj l mi;kxh gkrh gA

चित्र 8.1 – काली मिट्टी

8-3-2 yky feêh

- यह चट्टानों की कटी हुई मिट्टी है। लाल मिट्टी प्रायः विंध्य प्रदेश और चुनार जैसे पहाड़ी क्षेत्रों में पाई जाती है।
- लाल मिट्टी लौह तत्व प्रधान होती है, जिसके कारण ही इसका रंग लाल होता है। गेरू मिट्टी भी इसी का एक प्रकार है।

bldh ç—fr BMh vkj #[kh gkrh gA bl çdkj dh feêh dk mi;kx Ropk d fofHkUu çdkj d ,ythl tU; jkxk e gkrk gA

चित्र 8.2 – लाल मिट्टी

fVIi.kh

8-3-3 ihyh vkj lQn feêh

- यह मिट्टी तालाबों, खेतों में और नदियों के किनारे पाई जाती है।
- किसी भी व्यक्ति के रोगों को उपचारित करने में इसी तरह की मिट्टी का प्रयोग किया जाता है।
- चिकित्सा के बाह्य प्रयोग में यह मिट्टी सबसे उपयुक्त मानी जाती है।
- इसका अंतर प्रयोग या खुले घावों पर प्रयोग वर्जित है। क्योंकि नदियों के किनारे भूमि की सतह पर नाना प्रकार के विषाक्त पदार्थ भी उपस्थित होते हैं जिनके बहकर आने के कारण उसमें जीवाणुओं तथा विषाक्त पदार्थों की उपस्थिति भी हो सकती है।

ikuh ck/kus d s fo'k"k x.k d s dkj.k ;g feêh fpfdRlk e a vR;f/kd mi;ksxh gksrh gSA ;g lEiw.k feVVh yi e a cgqr mi;ksxh gSA

चित्र 8.3: पीली मिट्टी

8-3-4 nkeV feêh

- दोमट मिट्टी में चिकनी मिट्टी तथा बालू मिट्टी का लगभग सम भाग होता है।
- इन दोनों मिट्टियों के योग से निर्मित यह मिट्टी प्रचूर पानी रोकने की क्षमता से युक्त तथा केशिकत्व के गुणों से भरपूर होने के कारण चिकित्सा में सर्वथा प्रयुक्त मानी जाती है।
- इस प्रकार की मिट्टी की पट्टी बनाने पर पट्टी आसानी से टूटती नहीं और यह आसानी से शरीर के भाग के अनुसार अपने स्वरूप को परिवर्तित कर लेती है।

fpfdRlk e a mi;ksxh gSA ekl&if'k;ka e a ekp] ,Bu] lwtu vkj dCt vkfn e a mi;ksxh gSA

चित्र 8.4 – दोमट मिट्टी

8-3-5 fpduh feêh

- चिकनी मिट्टी को अत्यधिक चिकना होने के कारण भीगने में ज्यादा समय लगता है, पानी धीरे–धीरे अवशोषित करती है लेकिन बालू के मिल जाने के बाद यह मिट्टी सब से उपयुक्त हो जाती है।
- इस मिट्टी में कैल्शियम कार्बोनेट अत्यधिक मात्रा में पाया जाता है।

bl feêh dk mi;kx Ropk dh ckgjh lrg dh lQkbl djus d fy,] Luku d fy,] rFkk feêh dh ekfy'k d fy, mi;ä gkrh g D;kfd blei gkFk vklkuh l fQlyrk gA

vfLFk jkxk e bldk xel yi mi;kxh gkrk gA

चित्र 8.5 – चिकनी मिट्टी

8-3-6 lTth feêh ;k jsg feêh

- यह मिट्टी प्रायः ऊसर भूमि पर ओस गिरने से उत्पन्न होती है।

fVIi.kh

- रेहू मिट्टी के क्षार प्रधान होने के कारण इसके प्रयोग से शरीर की पूरी तरह सफाई हो जाती है।

vfLFk lc/kh leL;kvk e bl feêh dk ç;kx l 'kjhj e dfY'k;e dh ek=k dh vkifr gkrh g rFkk vfLFk;k etcr curh gA

tkMk d nnl e bl feêh dk ç;kx dju l fo'k"k ykHk feyrk gA

8-3-7 eYrkuh feêh

- मुल्तानी मिट्टी एक प्रकार की औषधीय मिट्टी है।
- इसका उपयोग पुराने समय से बाल धोने आदि के लिये किया जाता रहा है।
- आधुनिक काल में भी इसे स्नान करने, फेस पैक आदि के लिये प्रयोग करते हैं।

pe jkxk dk lekIr dju ,o Ropk dk eyk;e o lkQ j[ku e cgr lgk;d gA

चित्र 8.6 – मुल्तानी मिट्टी

8-3-8 ckyq feêh

- बालू नदी व समुद्र के किनारे मिलने वाली रेत युक्त मिट्टी को कहते हैं।
- इस मिट्टी में जल सोखने की विलक्षण शक्ति होती है।
- बालू मिट्टी में चिकनी मिट्टी को मिलाकर चिकित्सा में प्रयोग किया जाता है, जिससे इसकी कीटाणु नाशक क्षमता बढ़ जाती है।
- यह चिकित्सा के दृष्टिकोण से एक अद्वितीय मिट्टी है। बालू के कण हमारी पाचन शक्ति को ठीक रखने में बहुत उपयोगी हैं। पहाड़ी झरनों के पानी में बालू के कण विद्यमान होने के कारण वह स्वास्थ्यवर्धक होता है। इसी कारण पहाड़ों पर रहने वाले लोगों में कब्ज की समस्या नहीं पाई जाती।
- बालू में संसर्ग से फैलने वाली बीमारियों के कारकों को मारने की अद्भुत शक्ति होती है।

- गर्म बालू पक्षाघात, गठिया आदि जोड़ों के दर्द में लाभदायक होती है।

चित्र 8.7 – बालू मिट्टी

> डॉक्टर जुस्ट लिखते हैं – धरती में जो आश्चर्यकारी रोगनाशक गुण हैं, उनके कारण ही साधारण मिट्टी को भी रोगनाशक विशेष गुण प्राप्त हो गया। मिट्टी के प्रयोग से कितने ही रोग इस प्रकार दूर हो जाते हैं, जैसे उन पर जादू कर दिया गया हो।

bdkbxr i'u&8-2

1) मिट्टी चिकित्सा की परिभाषा लिखिए।

....

....

2) मिट्टियों के विभिन्न प्रकार बताइए।

....

....

3) काली मिट्टी के दो उपयोग हैं।

i) ....

ii) ....

4) दोमट मिट्टी की दो विशेषताएँ हैं।

i) ....

ii) ....

5) बालू मिट्टी चिकित्सा के कोई दो उपयोग बताइएँ।

i) ....

ii) ....

fVIi.kh

8-4 iFoh rRo fpfdRlk dh fofHkUu fof/k;k vkj mud vuiz;kx

शिक्षार्थियों, पृथ्वी तत्व चिकित्सा अर्थात् मिट्टी तत्व चिकित्सा मुख्य रूप से दो विधियों से दी जाती है :

1½ iFoh ls lh/kk lalx

2½ efÙkdk ;k feêh }kjk fpfdRlk

आइये! अब इन्हें विस्तार से जानें:

8-4-1 iFoh ls lh/kk lalx

प्रकृति जीव का संचालन करती है। वह उसके पार्श्व में रहकर उसके जन्म, मरण, स्वास्थ्य एवं रोग आदि का ध्यान रखती है। जिस प्रकार एक माँ अपने शिशु का ध्यान रखती है ठीक वैसे ही प्रकृति भी हमारी रोगों से रक्षा करती है और जब तक बच्चा माँ के पास रहता है तो अपने को सुरक्षित अनुभव करता है। इसी प्रकार मनुष्य जब तक प्रकृति के पास उसकी गोद में रहता है वह सुरक्षित और निरोग रहता है। अतः मनुष्य को सदा सर्वदा पृथ्वी से संसर्ग रखना चाहिए। क्योंकि संसार में प्रकृति से बढ़कर कोई चिकित्सक नहीं है।

प्रकृति का यह नियम है कि, उसने जिस जीव को जिस जगह के लिए, जिस ढंग से रचा है, उसे उस जगह उसी ढंग से रहना युक्तिसंगत है। संसार में तीन प्रकार के जीव वास करते हैं: नभचर, जलचर और थलचर। इनमें नभचर और जलचर तो प्राकृतिक नियम का पालन करते हैं तथा मनुष्य को छोड़कर सभी थलचर जीव भी। ये सभी जीव जीवन पर्यंत अपना संपर्क धरती माता से बनाये रखते हैं फलस्वरूप आनंदपूर्वक जीवन यापन करते हैं। परन्तु मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो अपनी इच्छा से या विवश होकर पर निश्चय ही अज्ञानवश प्रकृति के इस लाभदायक नियम को भंग करके अपने को अपनी स्नेहमयी माता धरती माता से दूर–दूर रहता है तथा कष्टों को भोगता है।

वर्तमान जीवन में हमें अनेकों प्रकार के रोगों ने जकड़ लिया है। क्योंकि हमारे उठने–बैठने, पारिवारिक वातावरण, आहार–विहार आदि में अनियमितता ही इसका मुख्य कारण है। अतः हमें फिर से मिट्टी से जुड़कर अर्थात् धरती माँ से संपर्क में रहकर, प्रकृति की गोद में जाकर ही इसका समाधान मिलेगा।

iFoh ls lh/k lalx dh dN 0;kogkfjd fof/k;k

d½ uxs iko iFoh ij pyuk

शिक्षार्थियों, इस विषय पर आप प्रथम वर्ष में विस्तार से पढ़ चुके हैं। इसमें आपने प्रत्यक्ष अनुभव किया कि खुली पृथ्वी पर नंगे पांव स्वच्छंदता से चलने फिरने से जितनी शांति और सुख मिलता है वह आनंद पक्की जमीन पर, लकड़ी के फर्श पर, पत्थर पर या जूते पहनकर चलने से कभी नहीं प्राप्त होता।

uxs iSj pyu d ykHk

- नंगे पैर चलने से नेत्र ज्योति बढ़ती है।

iFoh rRo fpfdRlk] fofHkUu fof/k;k ,oa vuqç;ksx

- नंगे पैर पृथ्वी के सम्पर्क में रहने से पैर मजबूत, स्वस्थ, सुडौल एवं रक्त संचरण बराबर होने से उनमें से गन्दगी एवं दुर्गन्ध निकल जाती है एवं बिवाई भी नहीं पड़ती।
- पाचन संस्थान सबल होता है एवं उच्च रक्तचाप व शरीर के बहुत सारे रोग आश्चर्यजनक रूप से दूर हो जाते हैं।
- **Qknj uhi d vuqlkj]** नंगे पांव चलने से सिरदर्द, गले की सूजन, जुकाम, पैरों और सिर का ठण्डा रहना आदि रोग दूर हो जाते हैं।

चित्र 8.8 : नंगे पांव चलना

[k½ iFoh ij cSBuk] ysVuk vkSj lkuk

पृथ्वी पर सीधे लेटने से शरीर पर गुरुत्वाकर्षण शक्ति लगभग शून्य हो जाती है। स्नायुविक दुर्बलता, अवसाद, तनाव, अहंकार की भावना दूर होकर नई ऊर्जा एवं प्राण शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं। इसके लिए सीधे धरती पर या पलंग पर 8 इंच से 12 इंच तक मोटी समतल बालू बिछाकर सोना चाहिए। प्रारंभ में थोड़ी कठिनाई होती है परंतु अभ्यास करने से धीरे–धीरे आदत पड़ जाती है और अबाध, स्वास्थ्यकर निद्रा की प्राप्ति होती है।

नंगे पांव चलने की अपेक्षा पृथ्वी पर नंगे बैठना लाभदायक है और बैठने की अपेक्षा उस पर नंगे बदन लेटना और सोना और भी अधिक गुणकारी है। क्योंकि इस स्थिति में पृथ्वी से हमारा संसर्ग बहुत अधिक रहता है।

चित्र 8.9 जमीन पर बैठना व सोना

fVIi.kh

हमारे पूर्वज पृथ्वी की अद्‌भुत शक्ति से परिचित थे। तभी तो वे लोग पूर्ण रूप से पृथ्वी की अमोघ शक्ति का उपयोग करके संसार में ऐसे–ऐसे कार्य कर गए हैं जिनका आज हमें विश्वास ही नहीं होता है। योग साधकों के लिए बिना कुछ बिछाए भूमि पर सोना एक आवश्यक नियम है। प्राचीन भारत के गुरुकुलों में विद्यार्थी गण भूमि पर ही सो कर ज्ञान प्राप्त करते थे। वानप्रस्थ एवं सन्यासियों को भी पृथ्वी पर ही सोने की व्यवस्था थी।

ykHk

- जितना विश्राम गुदगुदे बिस्तर पर 6–8 घंटे पड़े रहने से मिलता है, वह पृथ्वी पर सोने से उसके आधे या चौथाई समय में ही आसानी से प्राप्त हो जाता है।
- शरीर निरोगी भी रहने लगता है।
- इससे रात का समय हमें भगवद् भजन या अन्य आवश्यक कार्य करने के लिए मिल जाता है।

bdkbZxr iz'u&8-3

1) पृथ्वी तत्व चिकित्सा की दो मुख्य विधियां लिखिए।

i) ....

....

ii) ....

....

2) नंगे पैर पृथ्वी पर चलने के कोई दो लाभ बताइए।

i) ....

....

ii) ....

....

3) पृथ्वी पर सोने के लाभ हैं।

i) ....

....

ii) ....

....

fVIi.kh

8-4-2 feêh }kjk fpfdRlk

शिक्षार्थियों, जैसा कि हम पहले ही मिट्टी चिकित्सा पर चर्चा कर चुके हैं कि पृथ्वी तत्व से शारीरिक और मानसिक चिकित्सा करने को प्राकृतिक चिकित्सा में मिट्टी चिकित्सा का नाम दिया गया है। रोग होने पर, आवश्यकतानुसार मिट्टी के निम्नलिखित अनुप्रयोग उपचार रूप में किये जाते हैं –

1) मिट्टी की गरम पट्टी
2) मिट्टी की ठंडी पट्टी
3) गरम मिट्टी की पट्टी
4) रज स्नान
5) पंक स्नान
6) बालू भक्षण
7) मिट्टी के अन्य चिकित्सकीय प्रयोग

मिट्टी चिकित्सा में प्रमुख साधन मिट्टी है, जिसकी हमें उपयोग में लाने से पूर्व कुछ तैयारियां आवश्यक हैं, जिनका विवरण हम नीचे दे रहे हैं:

d½ fpfdRlk grq feêh dk lxg ,oa r;kj djus dh fof/k

- रोगोपचार के लिए प्रयोग में लायी जाने वाली कोई भी मिट्टी शुद्ध जगह की, साफ–सुथरी और जमीन से 3–4 फीट नीचे की होनी चाहिए।
- उसमें किसी तरह की मिलावट, कंकड़–पत्थर या रासायनिक खाद आदि नहीं होने चाहिए।
- किसी खेत की मिट्टी यदि प्रयोग करनी हो तो खेत की जमीन एक फुट खोदकर साफ मिट्टी निकालनी चाहिए।
- नदी तालाब के किनारे की मिट्टी चिकित्सकीय दृष्टि से अधिक उपयोगी होती है।
- इसी प्रकार जिस मिट्टी में बालू मिली होती है वह ज्यादा चिकित्सकीय गुणों से युक्त होती है। वस्तुतः उपचार के लिए आधी चिकनी मिट्टी और आधी महीन बालू का मिश्रण सर्वोत्तम समझा जाता है।
- मिट्टी यदि चिकनी हो तो उसमें बालू मिला लें, इससे मिट्टी में पानी शोषण करने की क्षमता बढ़ जाती है।
- उपचार के लिए एकत्रित मिट्टी को कुछ दिनों तक ऐसे स्थान पर रखना चाहिए जहाँ दिन में तेज धूप और रात में चंद्रमा का प्रकाश उस पर पड़ता रहे अर्थात् उसे अच्छी तरह से सुखा लेना चाहिए। धूप और चंद्रमा के प्रकाश के संपर्क में आकर मिट्टी पूर्णतया शुद्ध तो हो ही जाती है साथ ही उसके गुण और कार्यक्षमता में भी असाधारण वृद्धि हो जाती है।
- सूर्य की किरणों से मिट्टी में यदि कीड़े, मकोड़े, जीवाणु आदि होते हैं तो वे नष्ट हो जाते हैं।

fVIi.kh

- यह ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि एक बार प्रयोग में लायी गयी मिट्टी को दुबारा प्रयोग में न लाया जाये परन्तु उस मिट्टी को दुबारा अच्छी तरह से धूप में 10 –15 दिन सुखाकर उपयोग में लाया जा सकता है।

[k½ feêh dh iêh cukus dh fof/k

यह प्राकृतिक चिकित्सा का एक लोकप्रिय उपचार है। प्रायः मिट्टी की पट्टी का प्रयोग पेट एवं माथे पर किया जाता है किन्तु आवश्यकता पड़ने पर शरीर के अन्य भागों पर भी मिट्टी की पट्टी का प्रयोग किया जा सकता है। इसको बनाने की विधि निम्न हैः

- मिट्टी की पट्टी देने से पूर्व प्रयोग में आने वाली साफ–सुथरी मिट्टी को 12 घंटे पूर्व मिट्टी के ही किसी बड़े बर्तन में भिगो दें।
- प्रातः काल प्रयोग के समय लकड़ी की खुरपी की सहायता से उसको गूथे हुए आटे जैसी मुलायम बना लें। यह अधिक गीली नहीं होनी चाहिए।
- मौसम के अनुसार ग्रीष्मकाल में ठंडे जल से और शीतकाल में गरम जल से मिट्टी तैयार किया जा सकता है।
- तत्पश्चात् मिट्टी को एक फ्रेम में एक स्वच्छ सूती मोटे कपड़े को नीचे बिछाकर लकड़ी के खुरपे की सहायता से भरें तथा उसी से मिट्टी की ऊपरी सतह को बराबर कर लें और पट्टी जैसा बना लें।
- रोगी के आकार–प्रकार तथा लगाये जाने के स्थान के अनुसार इसमें परिवर्तन किया जा सकता है।
- मिट्टी की पट्टी को इस प्रकार रखें कि मिट्टी त्वचा से स्पर्श करती रहे।
- ऊपर से एक सूखे कपड़े से ढक दें। ठण्ड के दिनों में इसके ऊपर ऊनी कपड़ा लपेटा जा सकता है।
- 20 मिनट बाद पट्टी को हटाकर उस स्थान को गीले कपड़े से साफ कर हाथों से रगड़कर गरम कर लें।

चित्र 8.10: मिट्टी घोलना व पट्टी बनाना

lko/kkfu;k

- मिट्टी की पट्टी देने से पूर्व उस स्थान को गर्म करना आवश्यक है। जिससे कि विजातीय द्रव्य गर्मी के कारण अपनी सघनता कम कर के तरल अवस्था में आ जाएं।
- मृदा उपचार के दौरान रोगी को शांतचित्त, स्थिरता के साथ विश्राम करना चाहिए, जिससे मिट्टी की पट्टी अपने स्थान से बिल्कुल भी ना खिसके।
- आधे घंटे बाद मिट्टी की पट्टी गरम हो जाये तो उसे हटाने के उपरांत गरम रबर बैग से उस स्थान की सिकाई कर के उसका तापमान शरीर के अन्य भागों के तापमान के बराबर लाकर ही उपचार पूर्ण करना चाहिए।
- मिट्टी पट्टी का उपचार देने वाले स्थान पर यदि कोई खुला घाव हो तो उस घाव पर एक साफ सूती कपड़ा रखने के बाद पट्टी का प्रयोग करना चाहिए।
- मिट्टी की पट्टी का समय रोगी की क्षमता के अनुसार कम या ज्यादा किया जा सकता है।
- गीली मिट्टी में विद्युत् चुम्बकीय गुण होता है। हाथ लगाने या लोहे की छड़ डालने पर इसका गुण कम हो जाता है इसलिए गीली मिट्टी को हाथ से न गूंथकर लकड़ी की खुरपी से मिलाना चाहिए।

8-4-3 feêh dh iVVh ,o xje ifê;k d çdkj

मिट्टी की पट्टियां शरीर के स्थानानुसार मुख्य रूप से निम्न प्रकार की होती हैं:

1) पेडू की मिट्टी की पट्टी
2) सिर की मिट्टी की पट्टी
3) आँख की मिट्टी की पट्टी
4) कान की मिट्टी की पट्टी
5) गले की मिट्टी की पट्टी
6) सीने की मिट्टी की पट्टी
7) उदर की मिट्टी की पट्टी
8) घुटने की मिट्टी की पट्टी
9) मेरुदंड (रीढ़) की मिट्टी की पट्टी

fo'k"k: मिट्टी की पट्टी के ऊपर गरम कपड़े या फलालेन से बांधने पर इसे मिट्टी की गरम पट्टी कहते हैं। मिट्टी की पट्टी के ऊपर गरम कपड़ा ना रखने पर इसे ठंडी मिट्टी की पट्टी के नाम से जाना जाता है।

मिट्टी की गरम पट्टी के लिए बलुई (बालू) मिट्टी उपयुक्त होती है और नदी के कछार की ताजी गीली मिट्टी बहुत ही अच्छी होती है।

fVIi.kh

इन सभी पट्टियों का विस्तृत वर्णन हम प्रायोगिक पुस्तिका में पढ़ेंगे।

चित्र 8.11 – मिट्टी की पट्टी

8-4-4 xje feêh dh iêh

जब मिट्टी को गीली करके अच्छी तरह से गूंथकर किसी लोहे के पात्र में आग में गरम कर उसी गरम अवस्था में ही प्रयोग की जाती है तो वह गरम मिट्टी की पट्टी कहलाती है।

fof/k

किसी बर्तन में थोड़ी मिट्टी डालकर उसमें उबलता पानी धीरे–धीरे मिलाते हैं अथवा मिट्टी को धीमी आंच पर धीरे–धीरे गरम करते हैं। मिट्टी की गर्मी रोगी की सहन शक्ति के अनुसार होनी चाहिए।

ç;kx

- चोट, बेंत जैसी वस्तुओं के घावों तथा मोचादि में
- स्त्रियों के गर्भाशय संबंधी अनेक रोगों जैसे मासिक दर्द, श्वेत प्रदर आदि में (परन्तु गर्भ गिरने की आशंका के समय गरम मिट्टी की पट्टी का प्रयोग कदापि नहीं करना चाहिए)।
- गठिया, संधिवात के रोगियों में
- पेट दर्द
- स्थानिक दर्द
- उदर के अंगों की सूजन में

मिट्टी की गरम पट्टी की भांति इस गरम मिट्टी की पट्टी को लगाने के बाद ऊपर से फलालेन या ऊनी कपड़ा बांधना जरुरी है।

8-4-5 jt Luku

सूखी मिट्टी के स्नान को रज स्नान कहा जाता है और इसे गायों की खुर से उड़ती हुई मिट्टी से करने की सलाह दी गई है। अखाड़े की मिट्टी में पहलवानों का बार–बार गिरना, शरीर को मिट्टी से रगड़ना, व्यायाम द्वारा पसीना निकालना और त्वचा को संगठित करना भी रज स्नान कहलाता है।

fof/k

शुद्ध साफ सूखी मिट्टी को कपड़े से छान कर मिट्टी का पाउडर जैसा बना लिया जाता है। फिर इससे सारे शरीर और प्रत्येक अंग को रगड़ा जाता है और जब सारा शरीर मिट्टी से रगड़ा जा चुका हो तो 10–20 मिनट तक धूप में बैठने के पश्चात् ठंडे पानी से स्नान किया जाता है। यही सूखी मिट्टी का स्नान कहलाता है।

ykHk

इस स्नान से त्वचा नरम, लचीली और कोमल तो हो ही जाती है तथा साथ ही त्वचा के छिद्रों के खुलने से शरीर का विजातीय द्रव्य पसीने के रूप में उत्सर्जित होने लगता है।

त्वक् रोगों में बड़ा लाभदायक होता है। बरसात में उत्पन्न होने वाले फोड़े–फुंसियां इस स्नान से जादू की तरह से विलुप्त हो जाते हैं। इससे घना और पक्का रंग निखरता है तथा संगठित शरीर एवं प्राकृतिक सौंदर्य प्राप्त होता है।

lko/kkfu;k

रज स्नान लेते समय शारीरिक छिद्रों जैसे नाक, कान, आँख इत्यादि में मिट्टी ना चली जाए, इस हेतु छिद्रों पर रुई लगाकर बंद कर लेना चाहिए।

इसके अन्य प्रकार हैं:

1) सूर्य किरणों से तप्त बालुका स्नान – स्नान कूप में रोगी की सहन शक्ति लायक सूर्य किरणों से गरम रेत से लिटाकर स्नान दिया जाता है।

2) उतप्त वाष्पित रेत स्नान – इसे भी स्नान कूप में दिया जाता है। इसमें रेत/बालू को सूर्य किरणों से अच्छा गरम करके उस पर शीतल जल का छिड़काव करते हैं। तत्पश्चात् रोगी को कूप में लिटाकर पहले गीली बालू फिर ऊपर से सूखी बालू से कूप भर कर स्नान दिया जाता है।

3) गीली मिट्टी स्नान – सूखी स्वच्छ मिट्टी को 12 घंटे पूर्व भिगोकर कीचड़ सदृश कर लेते हैं। खुले स्थान में शरीर से वस्त्र हटाकर प्रत्येक भाग में मिट्टी को भली–भांति लगाकर 15–20 मिनट तक धूप में तब तक बैठते हैं जब तक मिट्टी सूखने न लगे। जब मिट्टी सूख जाये तब ठन्डे पानी से स्नान करके सूखे तौलिये से रगड़कर शरीर को सूखाना चाहिए। बालों के लिए काली मिट्टी का प्रयोग किया जाता है, जिससे बाल मुलायम और चमकीले हो जाते हैं।

चित्र 8.12 – रज स्नान

8-4-6 iad & Luku

शुद्ध, स्वच्छ और कंकड़ – पत्थर विहीन पिसी हुई और कपड़े से छनी हुई मिट्टी को जब पानी के साथ कीचड़ सदृश बना लेते हैं तब उसे आवश्यकतानुसार सारे शरीर पर या किसी भाग विशेष पर लेप या मालिश करना पंक–स्नान कहलाता है। इसे मिट्टी स्नान या सर्वांग मिट्टी लेप भी कहा जाता है। इसे ही अंग्रेजी में Mud Bath कहा जाता है।

किसी नदी या अन्य जलाशय के किनारे की साफ कीचड़ जो पानी घाट जाने पर दिखाई देती है, पंक स्नान के लिए अधिक उपयोगी होती है। ऐसी कीचड़ में यदि बालू भी मिला हो तो वह अधिक लाभ देता है।

पंक – स्नान लेने की कई विधियाँ हैं। उनमें से सबसे सरल विधि है कि पंक का सारे शरीर पर लेप करके धूप में बैठ जाना चाहिए। जब एक लेप सूख जाये तो दूसरा लेप चढ़ा लेना चाहिए। ऐसा 15–60 मिनट तक करना चाहिए। तत्पश्चात् मिट्टी के शरीर पर सूख जाने पर ठन्डे पानी से मल–मल कर स्नान कर लेना चाहिए।

दूसरे तरीके में आदम–कद बराबर या केवल छाती तक एक गहरा गड्ढा खोदा जाता है और उसे कीचड़ से भर दिया जाता है। तत्पश्चात् रोगी को निर्वस्त्र उसमें धंसाकर खड़ा कर दिया जाता है। मजबूत रोगी को आधे से एक घंटा और कमजोर रोगियों को 5–15 मिनट तक उस गड्ढे में रखा जाता है।

एक अन्य विधि में कीचड़ से भरे एक पक्के मड बाथ पूल में रोगी को इस प्रकार लिटा देते हैं कि केवल नासिका खुली रहे। बाकि छिद्रों को रुई से ढक देना चाहिए। उसमें रोगी 15 से 45 मिनट तक या अपने सामर्थ्यानुसार पूल में रहने के बाद व्यक्ति बाहर निकलकर खुली धूप में शरीर पर लगे कीचड़ को सूखा ले और तत्पश्चात् अच्छे से स्नान कर ले।

ykHk

- बहने वाले फोड़े–फुंसियां, खुजली, कोढ़, दाग आदि सभी चर्म रोगों में लाभदायक है।

- एक मास तक कीचड़ भरे गड्ढे में स्नान करने से गठिया, कमर दर्द, सिरदर्द, पेटदर्द आदि में आराम मिलता है।
- त्वचा की सफाई होती है।
- सूजन, कब्ज आदि दूर होते हैं।
- स्थौल्य, स्नायु दौर्बल्य, शरीर की गर्मी दूर करने में सहायता मिलती है।

चित्र 8.13 – पंक स्नान

lko/kkfu;k

- सर्दी, जुकाम, खांसी, गठिया, लकवा, संधिवात आदि वात रोग तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता की कमी वाले लोगों को ठंडा पंक स्नान नहीं देना चाहिए।
- सर्वांग मिट्टी स्थान लेने से पहले रुई से कर्ण छिद्रों को बंद कर लेना चाहिए।
- पंक स्नान के बाद गर्म या ठंडे पानी से स्नान करके आवश्यकतानुसार कंबल या चादर ओढ़कर पूर्ण विश्राम करना चाहिए।

8-4-7 cky w Hk{k.k

बालू मिट्टी ही एक ऐसी मिट्टी है जो मानव शरीर के लिए उसी प्रकार आवश्यक है जैसे भोजन और जल। परंतु इसके स्वास्थ्यवर्धक गुणों को केवल प्राकृतिक चिकित्सक ही भली–भांति समझते हैं। हिंदू धर्म ग्रंथों में बालू या रेणु फांकना एक धार्मिक कृत्य माना जाता है, जो इस तथ्य का ज्वलंत प्रमाण है। यह बालू के कण हमारी पाचन शक्ति को ठीक रखने में बहुत उयोगी होते हैं। पहाड़ी झरनों का पानी इन्हीं के कारण स्वास्थ्यवर्धक होता है। क्योंकि झरने के पानी में बालू की कुछ ना कुछ मात्रा अवश्य मिली रहती है, जिसे हम पानी के साथ पी जाते हैं। प्रायः लोग कहते हैं अमुक कुएं का पानी पीने से अन्न पच जाता है। इसका अर्थ यही है कि उसमें के पानी में बालू मिली हुई है, अथवा उसका पानी बालू के ढेर से गुजरता है और थोड़ी बहुत बालू अपने साथ लाता है। जिसे पीकर हमें लाभ मिलता है। यही कारण है कि उन नदियों का पानी (जो पहाड़ों से बहकर आती हैं और अपने साथ बालू पर्याप्त मात्रा में लाती हैं) का पानी असाधारण रूप से पाचक सिद्ध होता है। प्रयोगों से सिद्ध हो चुका है कि बालू मानव स्वास्थ्य के लिए बड़े लाभ की वस्तु है।

fVIi.kh

आजकल बालू भक्षण विधि को चिकित्सक नहीं करा रहे है क्योंकि शुद्ध बालू का मिल पाना आसान नहीं है।

जिस किसी व्यक्ति को कब्जियत की समस्या हो पेट साफ ना होता हो वह अगर खाना खाने के बाद ही एक चुटकी समुद्री महीन बालू दिन में दो–तीन बार निगल ले तो अगले दिन पेट की आंतें ढीली पड़ जाती हैं और मल आसानी से निकल जाता है और अंत में कब्ज दूर हो जाती है।

8-4-8 feêh fpfdRlk d vU; fpfdRldh; vuç;kx

1) पेट ही स्वास्थ्य एवं रोग का मूल कारण है। प्रत्येक रोग में पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी, गरम– ठंडी सेंक, हल्की मालिश तथा एनिमा देना आवश्यक है।

2) बवासीर, खाज– खुजली आदि चर्म रोग में पेडू की पट्टी के साथ गुदाद्वार जहाँ खुजली हो वहाँ मिट्टी का लेप करना चाहिए।

3) शुक्राणुओं की कमी, नपुंसकता, स्वप्नदोष, पेशाब में जलन तथा संक्रमण के समय समस्त जननांग पर मिट्टी का लेप करना चाहिए।

4) मलेरिया, रक्त कैंसर आदि रोगों में तथा प्लीहा बढ़ने, यकृत के रोग, एवं अग्न्याशय क्षतिग्रस्त होने पर क्रमशः प्लीहा, यकृत तथा अग्न्याशय पर मिट्टी का लेप करना चाहिए।

5) जीर्ण बीमारियों में सुबह–शाम मिट्टी की पट्टी देना आवश्यक है।

6) जलने पर जिस अंग को जल में डुबाया नहीं जा सकता उस पर बार–बार साफ–सुथरी, कंकर–पत्थर रहित मक्खन की तरह से गुथी हुई मिट्टी का लेप करना चाहिए। इससे जलन शांत होती है तथा दर्द दूर होता है।

7) बिच्छू, मधुमक्खी, ततैया के काटने पर बार–बार ठंडी मिट्टी का लेप करना चाहिए।

8) गठिया आदि संधियों एवं गांठ के रोगों में स्थानीय भाप या सेंक देकर ठंडी मिट्टी की पुल्टिस बांधना चाहिए।

9) आंत, आमाशय, गर्भाशय तथा मूत्राशय आदि अंगों से रक्तस्राव होने पर ठंडी गीली मिट्टी की पट्टी रखना लाभकरी होता है।

10) नासिका रक्त स्राव में नासिका तथा ललाट पर शीतल मिट्टी की पट्टी तत्काल लाभ पहुंचाती है।

11) साइनस शोथ, नासावरोध ने गर्म मिट्टी की पट्टी नासिका तथा ललाट पर रखी जानी चाहिए।

मिट्टी उतारने के बाद भी स्थानीय भाप देकर आक्रांत संधियों पर सूती– ऊनी कपड़ा लपेट देना उत्तम उपचार सिद्ध होता है।

शिक्षार्थियों, आपने जाना कि चाहे रोग शरीर के अंदर हो या बाहर मिट्टी उसके विष और गर्मी को धीरे–धीरे खींचकर उसे जड़ मूल से नष्ट करती है। रोगों में मिट्टी का सफल प्रयोग आज का अविष्कार नहीं है। भारत में यह प्रयोग अति प्राचीन काल से होता चला आ रहा है। मिट्टी के घरों में रहना, मिट्टी के बर्तनों में खाना बनाना आदि सभी इसी बात के प्रमाण हैं कि हमारे पूर्वज मिट्टी के गुणों से भली–भांति परिचित थे। मिट्टी के सभी गुण व विशेषताएं मिट्टी चिकित्सा को एक वैज्ञानिक आधार भी प्रदान करते हैं।

इन्हीं गुणों के कारण मिट्टी हमारे शरीर में व्याप्त विष एवं विकारों को खींचकर निष्कासित करती है, सूजन तथा शूल को शांत करती है। त्वचा की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। गीली मिट्टी में स्थित खनिजों के आयनों की अदला–बदली होने से शरीर की विद्युत चालकता स्वास्थ्य की दिशा को प्रभावित करती है। मिट्टी में अनेकानेक भौतिक, रासायनिक तथा चिकित्सकीय विशेषताएं होने के कारण स्वास्थ्य तथा अस्वस्थ दोनों दशाओं में इसका उपयोग होता रहा है। चिकित्सा के रूप में इसका उपयोग किया जाता है तो इसका महत्व अमूल्य औषधि से भी अधिक हो जाता है।

bdkbxr i'u&8-4

सही अथवा गलत बताइए–

1) रोगोपचार के लिए किसी भी स्थान की मिट्टी प्रयोग में लायी जा सकती है। ( )

2) जिस मिट्टी में बालू मिली होती है वह ज्यादा चिकित्सकीय गुणों से युक्त होती है। ( )

3) एक बार प्रयोग में लायी गयी मिट्टी को दुबारा प्रयोग में लाया जा सकता है। ( )

4) मिट्टी की पट्टी देने से पूर्व प्रयोग में आने वाली साफ–सुथरी मिट्टी को 12 घंटे पूर्व मिट्टी के ही किसी बड़े बर्तन में भिगो देना चाहिए। ( )

5) रोगी के आकार–प्रकार तथा लगाये जाने के स्थान के अनुसार इसमें परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। ( )

6) मिट्टी की पट्टी देने से पूर्व उस स्थान को गर्म करना आवश्यक है। ( )

vkius D;k lh[kk

इस इकाई (यूनिट) में आपने सीखा कि –

- पृथ्वी ही पेड़–पौधे, वनस्पतियों, जड़ी–बूटियों एवं विभिन्न प्रकार के खाद्यान्नों की जन्मदात्री है। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति में पृथ्वी को माता कहा जाता है।

fVIi.kh

- हमारे शरीर में पृथ्वी के अनेक तत्व है। इसी कारण शास्त्रों में पृथ्वी और शरीर में घनिष्ठ संबंध वर्णित किया गया है तथा इस पृथ्वी तत्व के संपर्क में रहना, स्वस्थ रहने के लिए अत्यंत आवश्यक माना गया है।
- मिट्टी में दुर्गन्ध नाशक, ताप नियंत्रण, निर्मलीकरण, विद्रावक, अवशोषण की क्षमता आदि के कारण इसका चिकित्सकीय उपयोग किया जाता है।
- मिट्टी में जल तथा सब प्रकार की धातुएं अर्थात् खनिज पदार्थों को धारण करने की शक्ति है।
- मिट्टी में शरीर की सफाई तथा निर्विषीकरण की क्षमता है।
- मिट्टी चिकित्सा एक प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति है जिसमें विभिन्न शारीरिक व मानसिक रोगों एवं विकृतियों को दूर करने के लिए तथा शारीरिक स्वास्थ्य के संवर्धन हेतु मिट्टी का विभिन्न रूपों में उपयोग किया जाता है।
- वैदिक संस्कृत के ऋषि–मुनि अर्थात् वैज्ञानिक मिट्टी के चिकित्सकीय गुणों से परिचित थे।
- अपनी संरचना और संघटन के आधार पर मिट्टी कई प्रकार की होती है। प्रत्येक प्रकार मिट्टी का उपयोग उसके गुणों के अनुसार अलग–अलग होता है। ये हैं– काली मिट्टी, लाल मिट्टी, पीली और सफेद मिट्टी, दोमट मिट्टी, चिकनी मिट्टी, सज्जी मिट्टी, मुल्तानी मिट्टी और बालू मिट्टी।
- पृथ्वी तत्व चिकित्सा को दो मुख्य प्रकारों पृथ्वी से सीधा संसर्ग और मिट्टी चिकित्सा में बाँट सकते हैं।
- पृथ्वी से सीधा संसर्ग में नंगे पांव चलना, बैठना, लेटना और सोना आते हैं।
- मिट्टी चिकित्सा के अंतर्गत मिट्टी की गरम पट्टी, मिट्टी की ठंडी पट्टी, गरम मिट्टी की पट्टी, रज स्नान, पंक स्नान, बालू भक्षण एवं मिट्टी के अन्य चिकित्सकीय प्रयोग आते हैं।
- चिकित्सा हेतु मिट्टी का संग्रह एवं तैयार करने की विधि आपने सीखा।
- मिट्टी की पट्टी बनाने की विधि भी आपने सीखा। प्रायः मिट्टी की पट्टी का प्रयोग पेट एवं माथे पर किया जाता है किन्तु आवश्यकता पड़ने पर शरीर के अन्य भागों पर भी मिट्टी की पट्टी का प्रयोग किया जा सकता है।
- मिट्टी की पट्टियों के शरीर के स्थानानुसार विभिन्न प्रकार की हैं।
- रज स्नान, पंक स्नान करने की विशेष विधि तथा लाभ हैं।

bdkbl d vUr e i’u

1) चिकित्सीय दृष्टि से पृथ्वी तत्व एवं इसके महत्त्व पर प्रकाश डालिए।

2) चिकित्सीय दृष्टि से मिट्टी के गुण एवं विशेषताओं को सविस्तार लिखिए।

3) मिट्टी चिकित्सा की परिभाषा बताते हुए मिट्टी के प्रकारों का वर्णन कीजिए।

4) मिट्टी चिकित्सा के विभिन्न प्रकारों का विस्तर से वर्णन कीजिए।

5) चिकित्सा हेतु मिट्टी संग्रह करने एवं पट्टी बनाने की विधियां और उस दौरान ली जाने वाली सावधानियों पर प्रकाश डालिए।

6) रज स्नान और पंक स्नान की विधियों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

bdkbxr i'uk d mÙkj

8-1

1) धरती, धात्री

2) विद्रावक

3) केशिकत्व

4) सफाई, निर्मलीकरण

5) रेडियम

8-2

1) मिट्टी चिकित्सा एक प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति है जिसमें विभिन्न शारीरिक व मानसिक रोगों एवं विकृतियों को दूर करने के लिए तथा शारीरिक स्वास्थ्य के संवर्धन हेतु मिट्टी का विभिन्न रूपों में उपयोग किया जाता है।

2) काली मिट्टी, लाल मिट्टी, पीली और सफेद मिट्टी, दोमट मिट्टी, चिकनी मिट्टी, सज्जी मिट्टी, मुल्तानी मिट्टी और बालू मिट्टी।

3) i) बालों की रक्षा करने में

ii) उनको साफ और स्वच्छ रखने में, शरीर की त्वचा के स्वास्थ्य को संरक्षित करने में

fVIi.kh

4) i) चिकनी मिट्टी तथा बालू मिट्टी का लगभग सम भाग होता है,

ii) मिट्टी की पट्टी बनाने पर पट्टी आसानी से टूटती नहीं

5) i) पाचन शक्ति को ठीक रखने में,

ii) संसर्ग से फैलने वाली बीमारियों के कारकों को मारने में

8-3

1) पृथ्वी से सीधा संसर्ग, मृत्तिका या मिट्टी चिकित्सा

2) नेत्र ज्योति बढ़ती है, पाचन संस्थान सबल होता है

3) शरीर को आराम थोड़े समय में ही प्राप्त हो जाता है, शरीर निरोगी रहने लगता है

8-4

1) गलत

2) सही

3) गलत

4) सही

5) गलत

6) सही

9

स्त्री रोगों में प्राकृतिक चिकित्सा प्रबन्धन

प्रिय शिक्षार्थियों, अब तक आप पंचतत्व चिकित्सा प्रबंधन के विषय में पढ़ चुके हैं और प्राकृतिक चिकित्सा के माध्यम से विभिन्न रोगों के उपचार का प्रायोगिक स्वरूप भी समझ चुके हैं। अब आप महिला संबन्धित सामान्य रोग, बच्चों में होने वाले विभिन्न विकार या रोग तथा अन्य रोगों में प्राकृतिक चिकित्सा प्रबंधन कर सकते हैं। किसी भी राष्ट्र की उन्नति एवं विकास के लिए, महिलाओं का स्वस्थ होना बहुत आवश्यक है, क्योंकि एक स्वस्थ माँ से ही योग्य, बुद्धिमान, वीर और बलवान संतति संभव है, जो स्वस्थ समाज और राष्ट्र का निर्माण करती हैं और राष्ट्र को उन्नति के शिखर पर ले जा सकती है। इसलिए महिला का स्वस्थ एवं प्रसन्न होना अत्यंत आवश्यक होता है।

इस इकाई (यूनिट) में आप महिला संबन्धित सामान्य रोग और उनकी प्राकृतिक चिकित्सा के विषय में अध्ययन करेंगे।

mís';

इस इकाई (यूनिट) का अध्ययन करने के पश्चात् आप–

- महिला स्वास्थ्य की विवेचना कर सकेंगे;
- महिला संबन्धित सामान्य रोगों का परिचय दे सकेंगे;
- महिला संबन्धित सामान्य रोगों, जैसे – मासिक धर्म, गर्भावस्था, प्रसवावस्था, रजोनिवृत्ति आदि से संबन्धित विकारों का उल्लेख कर सकेंगे और इनकी प्राकृतिक चिकित्सा करने में सक्षम होंगे।

fVIi.kh

9-1 efgyk LokLF; & ifjp;

प्रिय शिक्षार्थियों, संसार की कुल आबादी में महिलाओं की संख्या लगभग आधी है और इस प्रकार महिलाएं, इस सृष्टि की एक महत्त्वपूर्ण अवयव हैं। एक महिला स्वस्थ सुखी एवं प्रसन्न होने पर परिवार में सकारात्मक वातावरण का निर्माण करती है, समाज को अच्छे संस्कारों से संस्कारित करती है और एक उन्नत राष्ट्र का निर्माण करती है, जबकि महिला के रोगी और दुखी होने पर परिवार, समाज एवं राष्ट्र पतन की गहराइयों में जाने लगता है। इसी महत्त्वपूर्ण तथ्य को ध्यान में रखते हुए, महिलाओं के सम्मान एवं स्वास्थ्य को उन्नत बनाने के उद्देश्य से सम्पूर्ण विश्व में प्रतिवर्ष 8 मार्च को अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस भी मनाया जाता है।

संतान उत्पन्न करने के कारण महिला को सर्वोपरि माना जाना चाहिए किन्तु कटु सत्य यह है कि महिला को आज भी समाज में वह सम्मानित स्थान प्राप्त नहीं है जिसकी वह अधिकारी है तथा घर के प्रत्येक सदस्य के स्वास्थ्य का ध्यान रखने वाले इस सदस्य के स्वास्थ्य का ध्यान कोई नहीं रखता। इसी कारण संसार में महिलाओं की हमारी आधी आबादी अनेक रोगों से ग्रस्त है और दुर्भाग्य की बात यह है कि अधिकतर महिलाओं को आवश्यकता पड़ने पर उपयुक्त उपचार भी प्राप्त नहीं हो पाता है, जिससे महिलाओं के स्वास्थ्य की समस्या गंभीर होती जाती है। महिला स्वास्थ्य, पुरुष स्वास्थ्य से कहीं भिन्न नहीं है किन्तु शारीरिक संरचना में यदि देखें तो महिला और पुरुष के कुछ अंग एक दूसरे से भिन्न होते हैं और इन भिन्न अंगों के कारण ही कुछ रोग महिला संबंधित रोग कहलाते हैं।

सामान्यता यह दृष्टिगोचर भी होता है कि जब एक महिला स्वस्थ होती है तब वह प्रसन्न रहती हुई स्वयं को सक्रिय, सृजनशील, समझदार और कार्य करने में सक्षम अनुभव करती है। इस अवस्था में महिला शक्ति और बल से परिपूर्ण रहती है। वह अपने दैनिक कार्यों को करने के साथ–साथ परिवार एवं समाज में निर्धारित अपनी भूमिकाओं का प्रसन्नतापूर्वक वहन करती हुई दूसरों के साथ सकारात्मक दिशा प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है जबकि रोगवास्था में उसके सभी दायित्व एवं कार्य अपूर्ण रहने लगते हैं। इस तथ्य से अवगत होकर वर्तमान समय में महिलाओं के स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान देने की बात बहुत तेजी से बढ़ी है परंतु वर्तमान समय में भी महिलाओं के स्वास्थ्य का अर्थ, गर्भावस्था तथा प्रसव में दी जाने वाली मात्र मातृ स्वास्थ्य सेवाओं तक ही सीमित हो जाता है। हालांकि ये सेवाएँ भी अत्यंत आवश्यक हैं परंतु ये केवल महिलाओं की **Þek¡ dh Hkwfedkß** का ही ध्यान रखती हैं, जबकि महिलाओं का शरीर, पुरुषों की तुलना में जटिल संरचना वाला होता है, साथ ही महिलाएं भावनात्मक स्तर पर अधिक संवेदनशील होती हैं अतः स्वास्थ्य के स्तर पर इनका अधिक ध्यान रखने की आवश्यकता होती है।

,d LoLFk efgyk ¾ 'kkjhfjd] ekufld] lkekftd vkj vk/;kfRed :i ls LoLFk efgyk

जब एक महिला, शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक रूप से स्वस्थ है, प्रसन्नचित है तो यह कहा जा सकता है कि वह महिला स्वस्थ है। सामान्य भाषा में, यदि कोई महिला अपने सभी दैनिक कार्य पूरी कुशलता और सरलता के साथ कर सकती है और उसे किसी प्रकार का कोई रोग या शारीरिक कष्ट न हो तो हम कह सकते हैं कि वह महिला पूरी तरह से स्वस्थ है। इसके अलावा महिला में संतानोत्पत्ति

की क्षमता का होना भी अनिवार्य है। नारी को ^tuuh* कहा जाता है क्योंकि इसमें संतान को जन्म देने की अद्‌भुत क्षमता होती है। आमतौर पर यह देखा गया है कि शारीरिक कमजोरी और खानपान में कमी के कारण महिलाओं की संतानोत्पत्ति की क्षमता प्रतिकूल रूप से प्रभावित हो जाती है जबकि एक स्वस्थ महिला में संतानोत्पत्ति की क्षमता का होना भी अनिवार्य है। बच्चे देश का भविष्य होते हैं और एक स्वस्थ महिला ही स्वस्थ बच्चे को जन्म दे सकती है इसलिए किसी भी महिला का स्वस्थ होना, स्वस्थ समाज की एक प्राथमिक शर्त होती है।

इसके साथ–साथ प्रत्येक महिला का जीवन भी बाल्यावस्था, युवावस्था, मध्यावस्था और वृद्धावस्था आदि चरणों से होकर गुजरता है। इन चरणों में शरीर के बाहर एवं भीतर अनेक प्रकार भौतिक एवं जैविक परिवर्तन (Physical and biological changes) होते हैं। विशेष रूप से मध्यावस्था के काल में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन रजोनिवृत्ति होता है। यह प्रत्येक महिला के जीवन का बहुत महत्त्वपूर्ण काल होता है। इस काल में शारीरिक और मानसिक परिवर्तन होते हैं। इन परिवर्तनों के अनुरूप दिनचर्या, आहार – विहार एवं अन्य कार्य करने से यह परिवर्तन सहज हो जाते हैं जबकि इसके विपरीत आचरण करने से यह परिवर्तन जटिल और असहज होकर जीर्ण रोगों का रूप ग्रहण कर लेते हैं।

bdkbxr i’u&9-1

सत्य/असत्य बताइए –

क) महिला एवं पुरुष के सभी अंग एक समान होते हैं। ( )

ख) महिला के मध्यावस्था काल में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन होता है। ( )

ग) साधारणतया कन्याओं में 12–15 वर्ष की आयु तक मासिक धर्म प्रारम्भ हो जाता है। ( )

घ) मासिक धर्म के प्रारम्भ होने का संबंध गर्भधारण की क्षमता से नहीं है। ( )

9-2 efgykvk e lkekU; jkx

महिलाओं में सामान्यतः मासिक धर्म, गर्भावस्था, प्रसवावस्था और रजोनिवृत्ति प्राकृतिक क्रियाएँ हैं। इन अवस्थाओं के दौरान महिलाओं में अधिकांशतः कुछ विकार उत्पन्न हो जाते हैं, जिनके कुछ प्रमुख कारण निम्न हो सकते हैं :–

1) असंयमित दिनचर्या
2) विकृत आहार–विकार
3) आरामदायक जीवन–शैली
4) मानसिक तनाव
5) नकारात्मक चिंतन आदि

fVIi.kh

विकृत आहार–विहार के परिणामस्वरूप, जहाँ शारीरिक बल और क्षमता में कमी आयी है, तो वहीं नकारात्मक चिंतन ने शरीर में हार्मोन्स के संतुलन को बिगाड़ दिया है। इस कारण वर्तमान समय में अधिकतर महिलाएं अनेक प्रकार की शारीरिक और मानसिक विकृतियों से ग्रस्त हो रही हैं। इन विकृतियों से ग्रस्त होने के उपरांत, इनसे मुक्ति प्राप्त करने के लिए ऐलोपैथिक दवाइयों का सेवन किया जाता है। ऐलोपैथी दवाइयों के प्रभाव से कुछ समय के लिए आराम तो मिल जाता है, किन्तु रोग स्थायी रूप से दूर नहीं होता है। इसके अतिरिक्त ऐलोपैथिक दवाइयों का अधिक सेवन करने से इनके दुष्प्रभावों से शरीर और मन में अन्य रोग उत्पन्न होने लगते हैं। अंग्रेजी दवाइयों के प्रयोग के स्थान पर विधिपूर्वक प्राकृतिक चिकित्सा का अभ्यास करने से एक ओर जहां सभी रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है, तो वहीं दूसरी ओर महिलाओं के स्वास्थ्य का स्तर उन्नत बनता है।

आइए, महिलाओं की असंयमित दिनचर्या, विकृत आहार–विकार, आरामदायक जीवन–शैली, मानसिक तनाव, नकारात्मक चिंतन आदि के कारण प्रमुख रूप से होने वाले सामान्य रोगों के विषय में जानें –

- पाण्डु (एनीमिया),
- श्वेत प्रदर (सफ़ेद पानी जाना),
- मासिक धर्म का अनियमित होना,
- मासिक स्राव के समय दर्द होना,
- रक्त का कम या अधिक जाना
- रजोनिवृत्ति से संबन्धित लक्षण

9-2-1 efgykvksa ds lkekU; jksxksa ds çeq[k y{k.k

महिलाओं के सामान्य रोगों के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं –

i) भूख न लगना।

ii) शरीर में रक्त की कमी।

iii) शारीरिक कार्यक्षमता में कमी।

iv) शारीरिक एवं मानसिक थकान बने रहना।

v) शरीर में हार्मोन्स का असंतुलन।

vi) शारीरिक और मानसिक विकास सही प्रकार से नहीं होना।

vii) लगातार सिरदर्द की समस्या बने रहना।

viii) मासिक धर्म कम समय तक होना।

ix) अधिक समय तक अथवा कभी–कभी होना।

x) मासिक धर्म काल में पेट अथवा कमर में अत्यधिक पीड़ा का होना।

xi) भूख, नींद आदि जैविक क्रियाएँ अव्यवस्थित होने के साथ स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाना और स्वयं पर नियंत्रण की कमी होना।

xii) सही प्रकार से शारीरिक अंगो का विकास नहीं होना।

xiii) सिरदर्द, बेचैनी, घबराहट आदि से ग्रस्त रहना।

xiv) सांवेगिक अस्थिरता, क्रोध, तनाव अथवा अवसाद में रहना।

इस प्रकार उपरोक्त समस्याओं को महिलाओं के सामान्य रोगों की श्रेणी में रखा जाता है। इन रोगों से मुक्त रहने में प्राकृतिक चिकित्सा बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका वहन करती है। इस संसार में एकमात्र मनुष्य ऐसा प्राणी है जो सबसे अधिक प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करता हुआ स्वयं को प्रकृति से दूर कर लेता है। इसका दंड मनुष्य को रोगों के रूप में प्राप्त होता है और विभिन्न शोध अध्ययनों से यह स्पष्ट भी होता है कि इस संसार में सबसे अधिक रोगों से ग्रस्त मनुष्य ही रहता है। वहीं दूसरी ओर प्रकृति के नियमों के अनुरूप जीवन यापन करने से मनुष्य का शारीरिक एवं मानसिक विकास भली प्रकार होता है और सभी प्रकार के रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है। सामान्य स्त्री रोगों के उपचार में भी प्राकृतिक चिकित्सा बहुत लाभकारी प्रभाव रखती है। एलोपैथिक दवाइयों का सेवन करने से महिलाओं के सामान्य रोग भी जटिल एवं गंभीर हो जाते हैं, जबकि प्राकृतिक चिकित्सा को अपनाने से रोग ठीक हो जाते हैं और अच्छे स्वास्थ्य का लाभ मिलता है।

bdkbxr iz'u&9-2

i). महिलाओं में होने वाले सामान्य रोगों के दो प्रमुख कारण लिखिए।

....

....

ii). महिलाओं के सामान्य रोगों के कोई दो प्रमुख लक्षण बताइए।

....

....

iii). महिलाओं में होने वाले कोई दो सामान्य रोग लिखिए।

....

....

fVIi.kh

9-3 lkekU; L=h jksxksa dh izkÑfrd fpfdRlk

प्रिय शिक्षार्थियों, मानव शरीर की उत्पत्ति पंच महाभूतों से हुई है। जैसा कि आप जान ही चुके हैं, शरीर में इन पंचमहाभूतों की प्राकृत अवस्था स्वास्थ्य एवं विकृत अवस्था रोग कहलाती है। प्राकृतिक चिकित्सा में प्रकृति के नियमों का पालन करते हुए पंचमहाभूतों का सम्यक प्रयोग किया जाता है। इसके परिणामस्वरूप पुनः शरीर में पंचतत्वों का संतुलन स्थापित होता है और रोगावस्था दूर होकर उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश तत्व के द्वारा शरीर का शोधन किया जाता है और शरीर में पंचमहाभूतों का संतुलन स्थापित किया जाता है। शरीर में इन पंचतत्वों का संतुलन ही स्वास्थ्य का मूल आधार होता है। इसलिए रोगावस्था में शरीर की क्षमता के अनुसार पृथ्वी तत्व, जल तत्व आदि पंचतत्वों के द्वारा रोगोपचार किया जाता है। सामान्य स्त्री रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा निम्न रूप में करने से रोगावस्था में स्थाई लाभ प्राप्त होने के साथ ही उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है।

¼d½ iFoh rRo fpfdRlk

प्रिय शिक्षार्थियों, सामान्य स्त्री रोगों में पेडू पर मिट्टी की पट्टी का प्रयोग बहुत लाभकारी प्रभाव रखता है। प्रातःकाल खाली पेट मिट्टी की पट्टी लेने से उदर में स्थित विजातीय विषों का शरीर से निष्कासन होता है। इससे सम्पूर्ण पाचन तंत्र की क्रियाशीलता बढ़ती है और भोजन का पाचन एवं उत्सर्जन भली–भांति होने लगता है। पेट पर मिट्टी की पट्टी से जठराग्नि प्रदीप्त होती है और भूख अच्छी प्रकार से लगती है। इसके साथ–साथ ग्रहण किये भोजन का पाचन भी अच्छी प्रकार से होता है, जिससे शरीर में रक्त की मात्रा सन्तुलित होती है और शारीरिक थकान दूर होने के साथ ही शरीर क्रियाशील एवं ऊर्जावान बनता है।

¼[k½ ty rRo fpfdRlk

प्रिय शिक्षार्थियों, जल तत्व में शरीर शुद्धि का अत्यन्त विशिष्ट गुण विद्यमान होता है। सामान्य स्त्री रोगों में प्रातःकाल गुनगुने जल (उषापान) का सेवन अवश्य करना चाहिए। उषापान के प्रभाव से शरीर स्वच्छ एवं निरोगी बनता है और सिरदर्द, घबराहट एवं बेचैनी आदि रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है। इसके साथ–साथ नियमित रूप से कटि स्नान, रीढ़ स्नान, भाप स्नान एवं सम्पूर्ण शरीर का स्नान देने से शरीर का शोधन होता है और सामान्य स्त्री रोगों में शीघ्र लाभ प्राप्त होता है। मासिक धर्म के काल में उदर पीड़ा एवं कमर दर्द में गर्म जल की सिकाई करने से शीघ्र लाभ प्राप्त होता है। अंग्रेजी दर्द निवारक दवाइयों का सेवन करने के स्थान पर गर्म जल की सिकाई बहुत लाभकारी होती है।

सामान्य स्त्री रोगों में एनिमा का प्रयोग बहुत लाभकारी प्रभाव रखता है। मानव शरीर में कब्ज को सभी रोगों की जननी कहा जाता है। एनिमा क्रिया का अभ्यास कब्ज रोग को समूल नष्ट करता है इसलिए प्राकृतिक चिकित्सा में एनिमा क्रिया को सर्वरोगनाशक की संज्ञा दी जाती है। एनिमा क्रिया से विजातीय विषों का निष्कासन होता है और रोग प्रतिरोधक क्षमता उन्नत बनने के साथ ही सामान्य स्त्री रोगों में लाभ प्राप्त होता है।

¼x½ vfXu rRo fpfdRlk

अग्नि तत्व चिकित्सा के अन्तर्गत मानव शरीर पर सूर्य किरणों का प्रयोग करते हुए ऊर्जा के स्तर को सन्तुलित बनाया जाता है। वास्तव में ऊर्जा सन्तुलन का मनुष्य के शरीर और मन पर सीधा प्रभाव पड़ता है। ऊर्जा के संतुलित रहने पर भूख–प्यास और निद्रा आदि जैविक क्रियाएं सुव्यवस्थित रहती हैं इसलिए प्राकृतिक चिकित्सा में विभिन्न रंग की सूर्य किरणों के द्वारा शरीर में ऊर्जा सन्तुलन को स्थापित किया जाता है।

सामान्य स्त्री रोगों में नीले रंग की किरणों का प्रयोग लाभकारी प्रभाव रखता है। नीले रंग की किरणों के प्रभाव से बढ़ी हुई अतिरिक्त ऊर्जा सन्तुलित बनती है जिससे सिरदर्द और अनिद्रा आदि रोगों में लाभ प्राप्त होता है। इसके साथ–साथ सूर्य किरणों में पके पीत वर्ण फलों का सेवन करने से जठराग्नि प्रदीप्त होती है और इन रोगों में लाभ प्राप्त होता है। मासिक धर्म से सम्बन्धित रोगों में हरे रंग की किरणों का प्रयोग लाभकारी प्रभाव रखता है।

¼?k½ ok;q rRo fpfdRlk

वायु तत्व चिकित्सा के अन्तर्गत प्राणायाम एवं प्रातःकालीन भ्रमण का वर्णन आता है। सामान्य स्त्री रोगों में नाड़ी शोधन एवं अनुलोम–विलोम प्राणायाम का अभ्यास बहुत लाभकारी प्रभाव रखता है। इसके साथ–साथ शरीर को स्वस्थ एवं ऊर्जावान बनाने के लिए सूर्यभेदी, उज्जायी, भस्त्रिका और भ्रामरी प्राणायाम का अभ्यास नियमित रूप से एवं पर्याप्त समय तक करना चाहिए।

सामान्य स्त्री रोगों में दिनचर्या का पालन करने से विशेष लाभ प्राप्त होता है। अव्यवस्थित दिनचर्या एवं रात्रि जागरण का त्याग करते हुए प्रातःकाल सूर्योदय पूर्व उठना एवं प्रातःकाल भ्रमण करने का रोगावस्था में सीधा प्रभाव पड़ता है। प्रातःकालीन भ्रमण से रोग प्रतिरोधक क्षमता उन्नत बनती है और सामान्य स्त्री रोगों में स्थाई लाभ प्राप्त होता है। हाथों की हथेलियों और पैर के पंजों पर हल्की मालिश देने से रोगों में लाभ प्राप्त होता है।

¼M½ vkdk'k rRo fpfdRlk

आकाश तत्व चिकित्सा के अन्तर्गत उपवास एवं प्रार्थना का वर्णन आता है। सामान्य स्त्री रोगों में दीर्घकालीन उपवास नहीं कराने चाहिए, अपितु लघु उपवास कराने चाहिए। उपवास काल में पर्याप्त जल का सेवन करना चाहिए। उपवास काल में मानसिक संवेगों का पूर्ण रूप से त्याग करते हुए ईश्वर का ध्यान एवं जप आदि करने चाहिए।

ईश्वर समर्पण को अपनाने एवं प्रार्थना आदि करने से मानसिक बल की प्राप्ति होती है और रोग प्रतिरोधक क्षमता उन्नत बनती है जिससे सामान्य स्त्री को रोगों से स्थाई मुक्ति प्राप्त होकर उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। इस प्रकार प्राकृतिक चिकित्सा में पंचमहाभूतों का सम्यक प्रयोग करते हुए सामान्य स्त्री रोगों का उपचार किया जाता है। इनके साथ–साथ इन रोगों से मुक्ति प्राप्त करने हेतु पथ्य प्राकृतिक आहार का सेवन करना चाहिए।

fVIi.kh

bdkbZxr iz'u&9-3

रिक्त स्थान भरिए –

i) पंचमहाभूतों की प्राकृत अवस्था .... एवं विकृत अवस्था .... कहलाती है।

ii) सामान्य स्त्री रोगों में पेडू पर .... की पट्टी का प्रयोग बहुत लाभकारी प्रभाव रखता है।

iii) प्राकृतिक चिकित्सा में एनिमा को .... की संज्ञा दी जाती है।

iv) सामान्य स्त्री रोगों में .... रंग की किरणों का प्रयोग लाभकारी प्रभाव रखता है।

v) .... रंग की किरणों का प्रयोग मासिक धर्म से संबंधित रोगों में लाभकारी है।

vi) सामान्य स्त्री रोगों में .... उपवास नहीं करने चाहिए।

9-4 efgykvk dh ekfld /ke dh ie[k leL;k,

प्रिय शिक्षार्थियों, सामान्यतः महिलाओं में मासिक धर्म का समय 28 दिन का होता है। महिलाओं के जीवन की निश्चित अवधि में प्रत्येक 28 वें दिन यह चक्र नियमित रूप से चलता रहता है। इस चक्र का सामान्य रूप से चलना उत्तम स्वास्थ्य का परिचायक होता है जबकि इस चक्र की अनियमितता रोगावस्था को जन्म देती है। महिलाओं में मासिक धर्म के चक्र की क्रियाविधि निम्न होती है–

9-4-1 efgykvk dk ekfld pØ ¼Menstrual Cycle in Women½

बाल्यावस्था पूर्ण करने के उपरान्त जैसे ही बालिका 12 से 15 वर्ष की आयु पूर्ण करती है तब उसके शरीर में कुछ विशेष शारीरिक और मानसिक परिवर्तन होते हैं। इन परिवर्तनों में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह होता है कि इस अवस्था में ओवरी (अण्डाशय) प्रत्येक माह एक विकसित ओवम (अण्डा) उत्पन्न करना प्रारम्भ कर देता है। ओवरी में उत्पन्न यह ओवम पुरुष के शुक्राणु से निषेचित होकर गर्भ के रूप में विकसित होता है। किन्तु यदि इस ओवम का शुक्राणु के साथ संयोग नहीं हो पाता है तब यह रक्त के साथ योनि से बाहर निष्कासित होता है जिसे मासिक धर्म, रजोधर्म, ऋतुस्राव और माहवारी (Menstrual Cycle) आदि नामों से जाना जाता है। साधारणतः प्रत्येक 28 वें दिन मासिक धर्म होता है। शरीर की यह प्राकृतिक क्रिया 12–14 वर्ष की आयु से प्रारम्भ होकर 48 से 50 वर्ष की आयु तक चलती रहती है। इसी अवस्था में महिला का शरीर प्रजनन क्रिया (गर्भधारण) करने में सक्षम रहता है।

9-4-2 efgykvk e ekfld èke dh leL;kvk d y{k.k

प्रिय शिक्षार्थियों, महिलाओं में मासिक धर्म का चक्र प्रत्येक 28 वें दिन प्राकृतिक रूप से चलता रहता है किन्तु

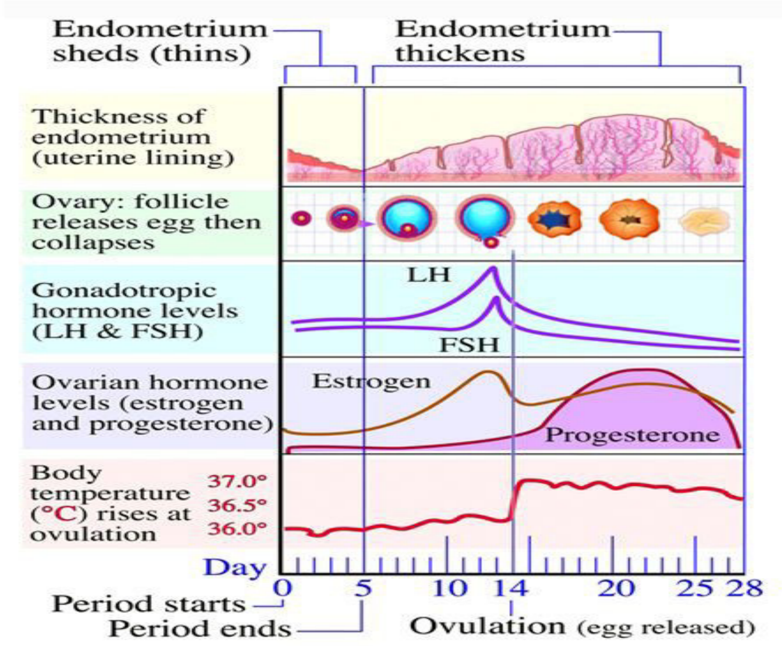

चित्र – 9.1 महिलाओं का मासिक धर्म

इस चक्र पर कुछ कारक नकारात्मक प्रभाव डालते हैं। जैसे –

- शरीर के वजन का कम अथवा अधिक होने पर दुष्प्रभाव
- खान–पान से सम्बन्धित अनियमितता होने पर दुष्प्रभाव
- मानसिक तनाव होने पर दुष्प्रभाव
- रासायनिक एलोपैथिक दवाइयों के अधिक सेवन से दुष्प्रभाव

यहाँ तक कि मादक पदार्थों के सेवन करने पर भी मासिक धर्म में अनियमितताएं एवं विकृतियां उत्पन्न हो जाती हैं। मासिक धर्म का सीधा सम्बन्ध हार्मोन्स के साथ होता है। शरीर में हार्मोन्स के असन्तुलित होने पर मासिक धर्म भी अनियमित हो जाता है। मासिक धर्म से सम्बन्धित प्रमुख विकार इस प्रकार होते हैं–

i) मासिक धर्म में अत्यधिक पीड़ा या कष्ट होना।

ii) मासिक धर्म में अधिक रक्तस्राव होना।

iii) मासिक धर्म कम अथवा अधिक लम्बा होना।

iv) मासिक धर्म का समय से नहीं होना।

v) मासिक धर्म काल में पेट अथवा कमर में अत्यधिक पीड़ा का होना।

इस प्रकार मासिक धर्म में उपरोक्त समस्याएं उत्पन्न होती है जिनसे बचने के लिए दर्द निवारक रासायनिक दवाइयों का प्रयोग किया जाता है और मासिक धर्म के चक्र को नियमित करने के लिए रासायनिक दवाइयों

fVIi.kh

का प्रयोग किया जाता है किन्तु मासिक धर्म से सम्बन्धित समस्याओं में दवाइयों के सेवन के स्थान पर प्राकृतिक उपचार इन विकृतियों का श्रेष्ठतम विकल्प होता है।

9-4-3 ekfld èkeZ dh leL;kvksa dh çk—frd fpfdRlk

प्रिय शिक्षार्थियों, महिलाओं की मासिक धर्म की समस्याओं में निम्न प्राकृतिक चिकित्सा करने से शीघ्र एवं स्थाई लाभ की प्राप्ति होती है–

¼d½ iFoh rRo fpfdRlk

पेट पर गीली मिट्टी की पट्टी एवं नियमित अन्तराल पर सम्पूर्ण शरीर पर मिट्टी का लेप करना चाहिए। सम्पूर्ण शरीर पर मिट्टी लेप धूप के समय ही देना चाहिए।

¼[k½ ty rRo fpfdRlk

मासिक धर्म सम्बन्धी समस्याओं में प्रातःकाल उषापान, एनीमा, गर्म कटि स्नान, रीढ़ स्नान, भाप स्नान, गर्म पैर स्नान, सम्पूर्ण स्नान आदि देना चाहिए।

¼x½ vfXu rRo fpfdRlk

मासिक धर्म सम्बन्धी समस्याओं में हरे रंग की किरणों का प्रयोग करने से लाभ प्राप्त होता है। पीत वर्ण फलों का सेवन करने से रोगावस्था में लाभ मिलता है।

¼?k½ ok;q rRo fpfdRlk

मासिक धर्म सम्बन्धी समस्याओं में अनुलोम–विलोम, नाड़ी–शोधन, उज्जायी एवं भ्रामरी प्राणायामों का अभ्यास करने से लाभ प्राप्त होता है। इसके साथ–साथ योग निद्रा एवं हाथों की हथेलियों और पैर के पंजों पर हल्की मालिश देने से रोगों में लाभ प्राप्त होता है।

¼M½ vkdk'k rRo fpfdRlk

मासिक धर्म सम्बन्धी समस्याओं में लघु उपवास करने से लाभ प्राप्त होता है। मासिक धर्म की समस्याओं के मूल कारणों में हार्मोन्स का असन्तुलन प्रमुख कारण होता है जबकि शरीर में हार्मोन्स का सन्तुलन स्थापित करने में ध्यान एवं सकारात्मक भावों के साथ ईश्वर प्रार्थना बहुत लाभकारी भूमिका वहन करती है।

इस प्रकार महिलाओं की मासिक धर्म की समस्याओं में प्राकृतिक उपचार से शीघ्र एवं स्थाई लाभ प्राप्त होता है।

bdkbZxr iz'u&9-4

रिक्त स्थान भरिए–

i). सामान्यतया महिलाओं में मासिक धर्म का समय .... दिन होता है।

ii). मासिक धर्म .... वर्ष की आयु से प्रारंभ होकर .... वर्ष की आयु तक चलते है।

9-5 xHkkZoLFkk ,oa izlokRrj voLFkk dh leL;k,a

प्रिय शिक्षार्थियों, गर्भावस्था एवं इसके बाद प्रसवावस्था के उपरान्त का समय महिलाओं के जीवन का अत्यन्त महत्वपूर्ण, परिवर्तनयुक्त एवं संवेदनशील काल होता है। मानवजाति में गर्भावस्था का समय 40 सप्ताह अर्थात् 280 दिनों का होता है। इस अवस्था में महिला को निम्न शारीरिक और मानसिक समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है। यद्यपि सभी महिलाओं को निम्न समस्याएं नहीं आती हैं किन्तु प्रायः अधिकतर महिलाएं इनसे ग्रस्त हो जाती हैं।

9-5-1 xHkkZoLFkk ,oa çlokRrj voLFkk dh leL;kvksa ds y{k.k

महिलाओं में गर्भावस्था एवं इसके उपरान्त प्रसवोत्तर अवस्था की प्रमुख समस्याएं निम्नवत होती हैं–

(1) भूख कम हो जाना, भोजन का पाचन नहीं होना एवं पेट में दर्द होना।

(2) शरीर में लगातार थकावट बने रहने के साथ चक्कर आना।

(3) पैरों में सूजन–दर्द एवं कमर में दर्द उत्पन्न होना।

(4) जी मिचलाना एवं उल्टियां होना।

(5) सिरदर्द होने के साथ बेचैनी होना।

(6) शरीर में रक्त की कमी के साथ अत्यधिक शारीरिक और मानसिक कमजोरी होना।

इन समस्याओं से मुक्ति पाने के लिए अंग्रेजी दवाइयों का सेवन करने के स्थान पर प्राकृतिक चिकित्सा एक श्रेष्ठतम विकल्प है।

fVIi.kh

9-5-2 xHkkZoLFkk ,oa çlokÙkj voLFkk dh leL;kvksa esa çk—frd fpfdRlk

प्रिय शिक्षार्थियों, महिलाओं की गर्भावस्था एवं प्रसवास्था की समस्याओं में निम्न प्राकृतिक चिकित्सा करने से शीघ्र एवं स्थाई लाभ की प्राप्ति होती है–

¼d½ i`Foh rRo fpfdRlk

महिलाओं को गर्भावस्था एवं प्रसव अवस्था में पेट पर मिट्टी की पट्टी का प्रयोग पूर्ण रूप से निषिद्ध होता है। अर्थात् पेट पर मिट्टी की पट्टी का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

¼[k½ ty rRo fpfdRlk

महिलाओं की गर्भावस्था एवं प्रसवास्था के उपरान्त की समस्याओं में प्रातःकाल उषापान एवं एनीमा का प्रयोग करना चाहिए। इसके साथ –साथ बहुत सावधानीपूर्वक कटि स्नान, रीढ़ स्नान एवं गर्म पैर स्नान देना चाहिए। इस अवस्था में भाप स्नान का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

¼x½ vfXu rRo fpfdRlk

महिलाओं की गर्भावस्था एवं प्रसव अवस्था के उपरान्त की समस्याओं में हरे एवं नीले रंग की किरणों का प्रयोग करने से लाभ प्राप्त होता है। पीत वर्ण फलों का सेवन करने से रोगावस्था में लाभ मिलता है।

¼?k½ ok;q rRo fpfdRlk

महिलाओं की गर्भावस्था एवं प्रसवावस्था के उपरान्त की समस्याओं में अनुलोम–विलोम, नाड़ी–शोधन, उज्जायी एवं भ्रामरी प्राणायामों का अभ्यास करने से लाभ प्राप्त होता है। इसके साथ–साथ योग निद्रा एवं हाथों की हथेलियों और पैर के पंजों पर हल्की मालिश देने से इन समस्याओं में लाभ प्राप्त होता है।

¼³½ vkdk'k rRo fpfdRlk

इस अवस्था में उपवास नहीं करना चाहिए अपितु निश्चित समय पर एवं निश्चित मात्रा में शुद्ध सात्विक एवं प्राकृतिक आहार का सेवन करना चाहिए। नकारात्मक भावों का पूर्ण रूप से त्याग करते हुए सकारात्मक चिंतन को अपनाना चाहिए।

इस प्रकार महिलाओं की गर्भावस्था एवं प्रसव अवस्था के उपरान्त की समस्याओं में प्राकृतिक उपचार से शीघ्र एवं स्थाई लाभ प्राप्त होता है।

9-6 jtksfuo`fÙk voLFkk dh leL;k,a

प्रिय शिक्षार्थियों, गर्भधारण एवं प्रसव की अवस्था के उपरान्त की अवस्था रजोनिवृत्ति होती है। इस अवस्था में महिला के मासिक धर्म का चक्र रुक जाता है और महिला में विभिन्न शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तन

होते हैं। इस अवस्था में भी महिला के सम्मुख कुछ समस्याएं उत्पन्न होती हैं जिनका प्राकृतिक चिकित्सा से प्रबन्धन किया जा सकता है। रजोनिवृत्ति के प्राकृतिक चिकित्सा प्रबन्धन को जानने के लिए रजोनिवृत्ति एवं इससे सम्बन्धित लक्षणों तथा समस्याओं को जानना आवश्यक होता है।

9-6-1 jtksfuo`fÙk ifjp; ¼Menopause½

जब डिम्ब ग्रन्थि में डिम्बों का क्षरण बन्द हो जाता है, तब मासिक धर्म भी बन्द हो जाता है। डिम्ब ग्रन्थि में जो अन्तःस्राव बनते हैं, वे ही डिम्ब के परिपक्व होने के बाद अंडोत्सर्ग, गर्भस्थापना और गर्भवृद्धि में सहायक होते हैं। डिम्ब ग्रन्थि के सक्रिय जीवन के समाप्त होने पर इन स्रावों का बनना निसर्गतः बन्द हो जाता है। रजोनिवृत्ति इसी का सूचक तथा परिणाम है।

रजोनिवृत्ति होने पर स्त्री के शरीर में शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के परिवर्तन हो जाते हैं। बहुधा ये परिवर्तन इतनी धीमी गति तथा अल्प होते हैं कि स्त्री को कोई असुविधा नहीं होती है, किन्तु कुछ स्त्रियों को विशेष कष्ट होता है। रजोनिवृत्ति को अंग्रेजी में मेनोपॉज (Menopause) कहते हैं, जिसका अर्थ 'जीवन में परिवर्तन' होता है। यह वास्तव में स्त्री के जीवन का परिवर्तनकाल होता है। इस काल का प्रारम्भ होने पर चित्त में निरूत्साह, शरीर में शिथिलता, निद्रा नहीं आना, सिर में तथा शरीर के भिन्न–भिन्न भागों में पीड़ा रहना, अनेक प्रकार की असुविधाएँ या बेचैनी होना आदि लक्षण प्रकट होते हैं। अधिकतर स्त्रियों के शरीर में स्थूलता आ जाती है। आनुवंशिक या वैयक्तिक उन्माद या पागलपन होने की आशंका रहती है अथवा अन्य प्रकार के मानस विकार भी हो सकते हैं। प्रजनन क्रिया समाप्त होने के पश्चात्, प्रजनन अंगों में अबुर्द (Tumour) होने का भय रहता है। डिम्ब ग्रन्थि और गर्भाशय दोनों में अर्बुद (Tumour) उत्पन्न हो सकते हैं। गर्भाशय में घातक और प्रघातक दोनों प्रकार के अर्बुदों की प्रवृत्ति होती है। मासिक धर्म की गड़बड़ी प्रजनन अंगों में कैन्सर का सर्वप्रथम लक्षण होता है। उदर के आकार में वृद्धि का कारण अर्बुद (Tumour) हो सकता है। इस अवस्था में गलगंड या घेंघा रोग के उत्पन्न होने की भी संभावना रहती है।

सभी महिलाओं को प्रायः जीवन की एक निश्चित अवस्था पर रजोनिवृत्ति यानी मेनोपॉज होता है। यद्यपि रजोनिवृत्ति का चक्र 45 से 50 उम्र में शुरू हो जाता है परन्तु हाल ही में हुए शोध अध्ययन से यह भी पता चला है कि अब मेनोपॉज की उम्र घट चुकी है। अब 50 नहीं बल्कि इसके लक्षणों का अनुभव 30 की उम्र में भी होने लगा है। इस अध्ययन के अनुसार एक–दो प्रतिशत भारतीय महिलाएं 29 से 34 साल के बीच रजोनिवृत्ति के लक्षणों का अनुभव करती हैं, इसके अलावा 35 से 39 साल की उम्र के बीच की उम्र में यह आंकड़ा आठ प्रतिशत तक बढ़ जाता है।

महिलाओं के शरीर में प्रौढ़ावस्था में अण्डाशय से अण्डे के उत्पादन की क्रिया बन्द हो जाती है, इस कारण से शरीर में स्त्री हार्मोन की कमी हो जाती है और रजोनिवृत्ति अवस्था प्रारम्भ हो जाती है। इस अवस्था में निम्न लक्षण उत्पन्न होते हैं–

(क) अनियमित ढंग से मासिक चक्र होना ।

(ख) अचानक से तेज गर्मी लगना या पसीना आना।

fVIi.kh

(ग) सामान्य नींद में समस्या होना एवं गहरी निद्रा में कमी होना।

(घ) शरीर का वजन अचानक से बढ़ना।

(ङ) रक्तचाप अनियमित होने के साथ घबराहट होना।

(च) जनन अंगों में सूखापन के साथ प्रजनन क्षमता में कमी होना।

(छ) त्वचा में रूखापन और झुर्रियां होना।

(ज) मनोदशा में बदलाव जैसे चिड़चिड़ापन, क्रोध आदि एवं संवेगिक अस्थिरता।

प्रिय शिक्षार्थियों, उपरोक्त लक्षण ये संकेत करते हैं कि महिला रजोनिवृत्ति अवस्था में प्रवेश कर रही है। इन लक्षणों के साथ–साथ शोध अध्ययन से यह तथ्य भी स्पष्ट हुआ है कि इस अवस्था में तीन में से एक व्यस्क महिला को हृदय सम्बन्धी कोई न कोई रोग होता है। विशेष रूप से रजोनिवृत्ति के बाद हृदय सम्बन्धित बीमारियों का जोखिम बढ़ सकता है। महिलाओं में मेनोपॉज के 10 साल बाद दिल का दौरा पड़ने के मामलों में वृद्धि देखी जाती है। यह बात एक शोध में सामने आयी है। शोध रिपोर्ट के मुताबिक, महिलाओं में रजोनिवृत्ति के काल को अन्य स्वास्थ्य प्रभावों के साथ जोड़कर देखा जाता है, जिसमें हॉट फ्लेशेज (hot flashes) और डिप्रेशन से लेकर वास्कुलर एजिंग तक शामिल होती है, जिसे आम तौर पर धमनियों की कठोरता और एंडोथेलियल डिस्फंक्शन के रूप में देखा जाता है। अब यह महत्वपूर्ण प्रश्न उत्पन्न होता है कि महिलाओं के जीवन की इस महत्वपूर्ण अवस्था की समस्याओं की प्राकृतिक चिकित्सा किस प्रकार की जा सकती है।

9-6-2 jtksfuo`fÙk voLFkk dh leL;kvksa dh çk–frd fpfdRlk

शिक्षार्थियों, प्राकृतिक चिकित्सा मूलरूप से चिकित्सा पद्धति नही वरण सम्पूर्ण जीवन दर्शन है। इसके अन्तर्गत मनुष्य प्रकृति के समीप वास करता है और प्रकृति के समस्त नियमों का पालन करता हुआ प्राकृतिक आहार–विहार को अपनाता है। इस प्रकार प्रकृति के समीप वास करने से शरीर में आन्तरिक रोग–प्रतिरोधक क्षमता का विकास होता है और समस्त समस्याओं का प्राकृतिक रुप से स्थाई निवारण होता है। प्राकृतिक चिकित्सा का मूल सिद्धान्त है कि सभी रोगों का मूल कारण शरीर में उपस्थित विजातीय विष होता है। प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करने एवं अप्राकृतिक आहार–विहार करने से शरीर में विजातीय विषों की मात्रा बढ़ती चली जाती है और रोग के रुप में अनेक प्रकार की शारीरिक और मानसिक समस्याएं उत्पन्न होती है।

प्राकृतिक चिकित्सा के प्रथम मूलभूत सिद्धान्त में स्पष्ट किया जाता है कि सभी रोगों का मूल कारण शरीर में उपस्थित विजातीय विष होता है। शरीर में विजातीय विष का भण्डारण होने से शरीर की सभी क्रियाएं असंतुलित एवं अव्यवस्थित होने लगती हैं और शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता क्षीण हो जाती है। इसलिए प्राकृतिक चिकित्सा को शोधन चिकित्सा भी कहा जाता है क्योंकि प्राकृतिक चिकित्सा में पंचतत्वों का प्रयोग करते हुए शरीर में उपस्थित विजातीय विषों को बाहर निकाला जाता है।

L=h jksxks esa çk—frd fpfdRlk icU/ku

¼d½ iFoh rRo fpfdRlk & रजोनिवृत्ति अवस्था की समस्याओं में सर्वप्रथम मिट्टी का प्रयोग करते हुए शरीर में उपस्थित विष का अवशोषण किया जाता है। मिट्टी में विषों का अवशोषण करने की अद्‌भुत क्षमता विद्यमान होती है इसलिए शरीर के विभिन्न भागों पर मिट्टी की पट्टी का प्रयोग करते हुए शरीर को स्वच्छ बनाया जाता है।

¼[k½ ty fpfdRlk & जल तत्व के द्वारा शरीर का शोधन किया जाता है। जल तत्व में शुद्धिकरण करने का बहुत महत्वपूर्ण गुण विद्यमान होता है। जल तत्व का उषापान, वमन, एनीमा एवं स्नान के रूप में प्रयोग करते हुए शरीर को विजातीय विषों से मुक्त बनाया जाता है। जल तत्व के प्रयोग से शरीर स्वच्छ एवं निर्मल बनता है और शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास होता है। रजोनिवृत्ति अवस्था की समस्याओं में उषापान के साथ कटि स्नान, रीढ़ स्नान, भाप स्नान और पैर स्नान कराना चाहिए। इसके साथ–साथ कब्ज रोग से मुक्त रहने के लिए एनीमा क्रिया का अभ्यास करना चाहिए।

¼x½ vfXu rRo fpfdRlk & महिलाओं के रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत अग्नि तत्व के रूप में सूर्य किरणों का प्रयोग किया जाता है। सात रंगों का प्रयोग करते हुए शरीर में ऊर्जा का स्तर संतुलित बनता है और शरीर स्वस्थ, ऊर्जावान एवं रोगमुक्त बनता है। रजोनिवृत्ति अवस्था की समस्याओं में ऊर्जा सन्तुलन हेतु हरे एवं नीले रंग की किरणों का प्रयोग करना चाहिए।

¼?k½ ok;q rRo fpfdRlk & वायु तत्व के अन्तर्गत प्राणायाम का अभ्यास करने से विषाक्त पदार्थों का शरीर से निष्कासन होता है। प्राणायाम का अभ्यास करने से प्राण तत्व एवं प्राण ऊर्जा सन्तुलित होती है। इसके साथ–साथ प्रातःकाल भ्रमण करने से विजातीय विषों का निष्कासन होता है और रोग प्रतिरोधक क्षमता उन्नत बनती है। रजोनिवृत्ति अवस्था की समस्याओं में अनुलोम–विलोम, नाड़ीशोधन, उज्जायी एवं भ्रामरी प्राणायामों का अभ्यास करने से लाभ प्राप्त होता है। इसके साथ–साथ योग निद्रा एवं हाथों की हथेलियों और पैर के पंजों पर हल्की मालिश देने से इन समस्याओं में लाभ प्राप्त होता है।

¼M½ vkdk'k rRo fpfdRlk & प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत आकाश तत्व को प्रार्थना एवं उपवास के द्वारा सन्तुलित बनाया जाता है। इस प्रकार प्राकृतिक चिकित्सा में पंचमहाभूतों का प्रयोग करते हुए विजातीय विषों का शरीर से निष्कासन किया जाता है जिसके परिणामस्वरूप शरीर स्वयं अपनी चिकित्सा करने में सक्षम बनता है।

रजोनिवृत्ति अवस्था की समस्याओं में लघु उपवास एवं ईश्वर प्रार्थना करने से मन स्थिर एवं एकाग्र बनता है और इन समस्याओं से मुक्ति प्राप्त होती है।

रजोनिवृत्ति अवस्था की समस्याओं में महिला को अपथ्य आहार का त्याग करते हुए निम्न प्राकृतिक पथ्य आहार का सेवन करना चाहिए–

¼v½ iF; vkgkj

महिला को प्रातःकाल उषापान करते हुए कब्ज रोग से बचना चाहिए। इसके साथ अंकुरित आहार का सेवन,

fVIi.kh

जौ, चना, गेहूँ को मिलाकर चोकर सहित रोटियों का सेवन और मौसम के अनुसार हरी पत्तेदार सब्जियाँ जैसे मेथी, पालक, लौकी, तोरई, परवल, करेला, नींबू आदि का सेवन करना चाहिए। मौसमी ताजे फलों जैसे मौसमी, सन्तरा, अनार, आम, पपीता, अंगूर आदि का अधिक सेवन करना चाहिए।

¼[k½ viF; vkgkj

चाय, चीनी, नमक आदि उत्तेजक एवं तामसिक पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए। मैदा और मैदे से बने सभी खाद्य पदार्थों, कृत्रिम रंगों एवं रसायनों से युक्त बाजार की मिठाइयों व खाद्य पदार्थों का प्रयोग वर्जित होता है। विशेष रूप से रसायनों से युक्त आहार के सेवन से महिलाओं की प्रजनन क्षमता का ह्रास होने के साथ रोगों की उत्पत्ति होती है।

bdkbZ x r i'u&9-5

रिक्त स्थान भरिए –

i). .... अवस्था में महिला का मासिक चक्र रूक जाता है।

ii). महिलाओं में रजोनिवृत्ति की उम्र .... से .... होती है।

iii). रजोनिवृत्ति के दौरान महिला में .... की क्षमता नहीं रहती है।

vkiu D;k lh[kk

इस इकाई (यूनिट) में हमने सीखा कि –

- किसी भी राष्ट्र की उन्नति एवं विकास के लिए, महिलाओं का स्वस्थ होना बहुत आवश्यक है, क्योंकि एक स्वस्थ माँ से ही योग्य, बुद्धिमान, वीर और बलवान संतति संभव है, जो स्वस्थ समाज और राष्ट्र का निर्माण करती हैं और राष्ट्र को उन्नति के शिखर पर ले जा सकती है। इसलिए महिला का स्वस्थ एवं प्रसन्न होना अत्यंत आवश्यक होता है।
- संसार की कुल आबादी में महिलाओं की संख्या लगभग आधी है और इस प्रकार महिलाएं, इस सृष्टि की महत्त्वपूर्ण अवयव हैं।
- एक महिला स्वस्थ सुखी एवं प्रसन्न होने पर परिवार में सकारात्मक वातावरण का निर्माण करती है, समाज को अच्छे संस्कारो से संस्कारित करती है और एक उन्नत राष्ट्र का निर्माण करती है।
- महिला के रोगी और दुखी होने पर परिवार, समाज एवं राष्ट्र पतन की गहराइयों में जाने लगता है।

इसी महत्त्वपूर्ण तथ्य को ध्यान में रखते हुए, महिलाओं के सम्मान एवं स्वास्थ्य को उन्नत बनाने के उद्देश्य से सम्पूर्ण विश्व में प्रतिवर्ष 8 मार्च को अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस भी मनाया जाता है।

- जब एक महिला, शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक रूप से स्वस्थ है, प्रसन्नचित्त है तो यह कहा जा सकता है कि वह महिला स्वस्थ है। सामान्य भाषा में, यदि कोई महिला अपने सभी दैनिक कार्य पूरी कुशलता और सरलता के साथ कर सकती है और उसे किसी प्रकार का कोई रोग या शारीरिक कष्ट न हो तो हम कह सकते हैं कि वह महिला पूरी तरह से स्वस्थ है।

- प्रत्येक महिला का जीवन भी बाल्यावस्था, युवावस्था, मध्यावस्था और वृद्धावस्था आदि चरणों से होकर गुजरता है। इन चरणों में शरीर के बाहर एवं भीतर अनेक प्रकार के भौतिक एवं जैविक परिवर्तन (Physical and biological changes) होते हैं।

- विशेष रूप से मध्यावस्था के काल में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन रजोनिवृति होता है। यह प्रत्येक महिला के जीवन का बहुत महत्त्वपूर्ण काल होता है। इस काल में शारीरिक और मानसिक परिवर्तन होते हैं। इन परिवर्तनों के अनुरूप दिनचर्या, आहार–विहार एवं अन्य कार्य करने से यह परिवर्तन सहज हो जाते हैं जबकि इसके विपरीत आचरण करने से यह परिवर्तन जटिल और असहज होकर रोग का रूप ग्रहण कर लेते हैं।

- महिलाओं की असंयमित दिनचर्या, विकृत आहार–विहार, आरामदायक जीवन–शैली, मानसिक तनाव, नकारात्मक चिंतन आदि के कारण पाण्डु (एनीमिया), श्वेत प्रदर (सफ़ेद पानी जाना), मासिक धर्म का अनियमित होना, मासिक स्राव के समय दर्द होना, रक्त का कम या अधिक जाना आदि रोग हो जाते हैं।

- सामान्यतः महिलाओं में मासिक धर्म का समय 28 दिन का होता है। महिलाओं के जीवन की निश्चित अवधि में प्रत्येक 28 वें दिन यह चक्र नियमित रूप से चलता रहता है। इस चक्र का सामान्य रूप से चलना उत्तम स्वास्थ्य का परिचायक होता है जबकि इस चक्र की अनियमितता रोगावस्था को जन्म देती है।

- प्राकृतिक चिकित्सा के अंतर्गत पंच तत्व चिकित्सा के माध्यम से महिला स्वास्थ्य को उत्तम रखा जा सकता है।

bdkbZ ds vUr esa iz'u

1. वर्तमान काल में बढ़ते स्त्री के रोगों के कारण एवं सामान्य प्राकृतिक उपचार लिखिए।
2. महिलाओं की मासिक धर्म की प्रमुख समस्याएं एवं उनके प्राकृतिक उपचार का वर्णन कीजिए।
3. महिलाओं में रजोनिवृत्ति अवस्था की प्रमुख समस्याएं लिखते हुए प्राकृतिक उपचार पर प्रकाश डालिए।
4. रजोनिवृत्ति अवस्था की समस्याओं का प्राकृतिक उपचार समझाइये।
5. महिलाओं की समस्याओं के समाधान में प्राकृतिक चिकित्सा के महत्व पर प्रकाश डालिए।

fVIi.kh

bdkbZxr iz'uksa ds mÙkj

9-1

1. क) असत्य   ख) सत्य

   ग) सत्य   घ) असत्य

9-2

1. (i) असंयमित दिनचर्या

   (ii) विकृत आहार–विहार

2. (i) शरीर में रक्त की कमी के साथ शारीरिक कार्यक्षमता कम होना।

   (ii) मासिक धर्म का कम समय तक, अधिक समय तक या कभी–2 होना।

3. (i) पाण्डु

   (ii) श्वेत प्रदर

9-3

क) स्वास्थ्य, रोग   ख) मिट्टी   ग) सर्वरोगनाशक

घ) नीले   ड) हरे   च) दीर्घकालीन

9-4

(i) 28   (ii) 12–15, 48–50

9-5

(1) क) रजोनिवृत्ति   ख) 45–50   ग) गर्भप्रजनन

10

बाल रोगों में प्राकृतिक चिकित्सा

प्रिय शिक्षार्थियों, प्राकृतिक चिकित्सा से अभिप्रायः प्रकृति के नियमों का पालन करते हुए प्रकृति के समीप वास करने से होता है। संसार के सभी प्राणी प्राकृतिक चिकित्सा के इस नियम का पालन करते हुए स्वस्थ जीवन यापन करते हैं किन्तु मनुष्य सबसे अधिक प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करते हुए अप्राकृतिक जीवन यापन करता है और इसका परिणाम उसे विभिन्न प्रकार के रोगों के रूप में प्राप्त होता है। विशेषरूप से बाल्यावस्था के रोगों में अंग्रेजी दवाइयों के सेवन का दुष्प्रभाव जीवन भर कष्टकारी प्रभाव रखता है। बाल्यावस्था में बच्चों को अंग्रेजी दवाइयों का सेवन करवाने से उनकी रोग प्रतिरोधक क्षमता बहुत क्षीण हो जाती है और विभिन्न प्रकार के जीर्ण रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसके विपरीत बाल्यावस्था में प्रकृति के नियमों का पालन करने से शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता जीवन पर्यन्त उन्नत अवस्था में बनी रहती है और जीवन निरोगी व रोगमुक्त रहता है। इस प्रकार बच्चों में होने वाले रोगों के उपचार में ऐलोपैथी चिकित्सा अथवा रासायनिक दवाइयों के स्थान पर प्राकृतिक चिकित्सा में वर्णित पंचमहाभूतों के प्रयोग अधिक श्रेष्ठकर एवं लाभकारी प्रभाव रखते हैं।

प्राचीन काल में बच्चों में होने वाले रोगों के उपचार में प्राकृतिक संसाधनों का ही प्रयोग किया जाता था और ऐसे बच्चे आगे चलकर शारीरिक और मानसिक रूप से अधिक स्वस्थ एवं ऊर्जावान रहते थे। परन्तु आधुनिक समय में बच्चों में होने वाले सामान्य रोगों के उपचार में अंग्रेजी दवाइयों का प्रयोग करते हुए उन्हें जटिल बना दिया जाता है, जिससे ऐसे बच्चे स्वाभाविक रूप से विकसित नहीं हो पाते हैं और उनमें बाल्यावस्था से ही शारीरिक और मानसिक विकृतियां जन्म ले लेती हैं। बाल्यावस्था में प्रयोग की गयी रासायनिक दवाइयों के दुष्प्रभावों से उत्पन्न विकृतियों का प्रभाव जीवनभर बना रहता है और कमजोर जीवनी शक्ति के साथ–साथ अन्य जटिल और गंभीर रोगों से संबंध जुड़ जाता है।

fVIi.kh

इस प्रकार बच्चों में होने वाले सामान्य रोगों के उपचार में प्राकृतिक चिकित्सा बहुत महत्वपूर्ण एवं उपयोगी भूमिका वहन कर सकती है। प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा बहुत सहजतापूर्वक बच्चों के सामान्य रोगों का उपचार किया जा सकता है। प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा रोगोपचार करने से शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता उन्नत बनी रहती है और यह चिकित्सा पूर्णरूप से दुष्प्रभावरहित होती है। इस इकाई (यूनिट) के अन्तर्गत बच्चों में होने वाले सामान्य रोगों के उपचार में प्राकृतिक चिकित्सा से संबंधित कौशल व्यवहार में ला सकेंगें।

mís';

इस इकाई (यूनिट) का अध्ययन करने के पश्चात् आप –

- बाल रोगों के प्रमुख कारणों की विवेचना कर पायेंगे;
- बाल रोगों के प्रमुख लक्षणों की व्याख्या कर सकेंगे;
- बाल रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा का ज्ञान प्राप्त कर पायेंगे;
- बाल रोगों के उपचार में प्राकृतिक चिकित्सा के महत्व को समझ पायेंगे।

10-1 cky jkxk dk ifjp; ,o dkj.k

प्रिय शिक्षार्थियों, बाल्यावस्था से अभिप्रायः जीवन की छः से बारह वर्ष की आयु से होता है। जीवन के इस भाग को बाल्यावस्था की संज्ञा दी जाती है। वास्तव में गहराई से अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि बाल्यावस्था मानव जीवन की वह आधारशीला होती है जिसके ऊपर जीवनरूपी भवन का निर्माण होता है। दूसरे शब्दों में समझें तो यह मानव जीवन की एक नींव होती है। यह नींव जितनी मजबूत होगी उसका जीवन और व्यक्तित्व उतना ही ऊर्जावान, सार्थक एवं प्रभावशाली होगा। जबकि जीवन की इस नींव के विकारग्रस्त हो जाने पर जीवन रोगग्रस्त और अर्थहीन हो जाता है। इस प्रकार मनुष्य जीवन में बाल्यावस्था का महत्व बहुत अधिक होता है। किन्तु एक महत्वपूर्ण बिन्दु यह भी है कि बाल्यावस्था बहुत कोमल एवं संवेदनशील अवस्था होती है जिसमें एक ओर शरीर में ऊर्जा का स्तर विकसित हो रहा होता है तो वहीं दूसरी ओर विषम परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता बहुत कम होती है। इस अवस्था में बहुत ध्यान देने की आवश्यकता होती है क्योंकि इस समय बच्चों के शरीर, मन और बुद्धि का विकास बहुत तेजी से होता है। इसके साथ–साथ संक्रामक रोगों के चपेट में आने की संभावना भी इस अवस्था में बहुत अधिक होती है।

बाल रोगों की उत्पत्ति के प्रमुख कारण निम्नवत् होते हैं–

(1) बाल रोगोत्पत्ति का सबसे प्रमुख कारण स्वच्छता का अभाव होता है।

(2) प्रदूषण युक्त, घुटनयुक्त अथवा अधिक नमीयुक्त वातावरण में बच्चे को रखना।

(3) अचानक से अधिक सर्द स्थान (ठंड लगना) अथवा अधिक गर्म स्थान (लू लगना) पर बच्चे को ले जाना।

(4) बच्चों को हल्के–सुपाच्य आहार के स्थान पर अप्राकृतिक व सिंथेटिक खाद्य पदार्थों का सेवन कराना।

(5) शरीर के लिए उपयोगी एवं आवश्यक पोषक तत्वों से युक्त आहार की कमी होना।

(6) बच्चों की गलत दिनचर्या का परिणाम रोगावस्था के रूप में प्राप्त होता है।

(7) बच्चों के साथ नकारात्मक व्यवहार करते हुए उनकी इच्छाओं और आवश्यकताओं को दमित करना।

(8) बच्चों पर आवश्यकता से अधिक शारीरिक–मानसिक बोझ डालना।

(9) बच्चों के मन की भावनाओं और उनके अहं भाव की उपेक्षा करना।

(10) माता–पिता से अनुवांशिक रूप में प्राप्त विकृतियों के कारण बच्चों में जन्मजात रोग उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार उपरोक्त कारणों के परिणामस्वरूप बच्चों में विभिन्न प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक रोगों की उत्पत्ति होती है। बच्चों से सम्बन्धित इन रोगों में अपच, गैस, कब्ज, दस्त, पेट में कीड़े, ठंड, कफ, बुखार, निमोनिया, क्वाशियोरकर, रिकेट्स और वजन बढ़ना–कम होना आदि प्रमुख होते हैं। इन रोगों से ग्रस्त होने पर बहुत ध्यान देने की आवश्यकता होती है क्योंकि बच्चों में इन रोगों से लड़ने की प्रतिरोधक क्षमता का स्तर बहुत अधिक विकसित नहीं होता है अपितु इन रोगों को गंभीर होने से पूर्व ही इनका उपचार करना आवश्यक होता है।

bdkbZ izu&10-1

सत्य/ असत्य बताइये

क) प्राकृतिक चिकित्सा से अभिप्रायः प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करने से होता है। ( )

ख) बच्चों में रोगोत्पत्ति का सबसे प्रमुख कारण स्वच्छता का अभाव होता है। ( )

ग) बच्चों की गलत दिनचर्या का परिणाम रोगावस्था के रूप में प्राप्त होता है। । ( )

घ) बच्चों के रोगग्रस्त होने पर शीघ्र विशेष ध्यान देने की आवश्यकता नहीं होती है। ( )

10-1-1 cPpksa esa vip jksx dk lkekU; ifjp; ,oa y{k.k

अपच का अर्थ होता है पाचन नहीं होना। इसे सामान्य बोलचाल की भाषा में पेट की बदहजमी भी कहा जाता है। शरीर में पाचन तंत्र का कार्य भोजन का पाचन करना तथा उसे शरीरोपयोगी सरल रूप में परिवर्तित करना है। किन्तु किसी कारणवश पाचन तंत्र में भोजन का पाचन सही प्रकार नहीं हो पाता है तो पेटदर्द अथवा गैस आदि विकार उत्पन्न होते हैं तब उसे अपच रोग (Indigestion) कहा जाता है। अपच पाचन तंत्र

fVIi.kh

से सम्बन्धित बच्चों का एक प्रमुख रोग होता है जिसके प्रमुख लक्षण निम्नलिखित होते हैं–

1. पेट में जलन होना और भारीपन के साथ खट्टी डकारें आना।
2. पेट में गैस बनते हुए पेट फूलना और पेट में दर्द होना।
3. बच्चों में भूख कम होने के साथ भोजन के प्रति अरूचि उत्पन्न होना।
4. जी मिचलाना, मुँह में पानी आना और गले–छाती में जलन होना।
5. बच्चों में कभी कब्ज तो कभी दस्त होना।
6. शरीर में शक्तिहीनता और कार्यों में अरुचि का होना।
7. शरीर में आलस्य, भारीपन और सुस्ती रहना।
8. बच्चों के शरीर का वजन कम होना एवं
9. शारीरिक क्रियाशीलता कम हो जाना।

cPpk d 'kjhj e mijkDr y{k.k vip jkx dh vkj lidr djr gA

10-1-2 cPpk d iV e xl cuu dk lkekU; ifjp; ,o y{k.k

बच्चों का शरीर बहुत तेजी से विकसित होता है। अतः बच्चों को नियमित अन्तराल पर सन्तुलित एवं पौष्टिक आहार देने की नितांत आवश्यकता होती है। किन्तु जब किसी कारणवश बच्चों को समय पर अथवा सन्तुलित मात्रा में आहार प्राप्त नहीं होता है अथवा पाचन अंगों की विकृति के परिणामस्वरूप जब ग्रहण किए भोजन का सही प्रकार पाचन नहीं होता है तब ग्रहण किये गये खाद्य पदार्थों में सड़न के साथ दुर्गन्धयुक्त गैसें बनकर पेटदर्द व सिरदर्द आदि विकारों को उत्पन्न करती है। बच्चों के शरीर की इस अवस्था को 'पेट में गैस बनना' रोग कहा जाता है। बच्चों के शरीर में इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

1. पेट में दर्द के साथ ऐंठन होना और पेट फूलना इस रोग का सबसे प्रमुख लक्षण होता है।
2. भोजन के प्रति अरूचि उत्पन्न होना।
3. जी मिचलाने के साथ ही उल्टियां होना।
4. आंतों में गैस बनने के कारण पेट एवं आंतों में दर्द होना।
5. गैस के कारण शौच के उपरान्त भी आंतों की सही प्रकार से सफाई नहीं होना।
6. शरीर में भारीपन, आलस्य और सिरदर्द होना।

cPpk d 'kjhj e mijkDr y{k.k iV e xl jkx dh vkj lidr djr gA

10-1-3 cPpk e dCt jkx dk lkekU; ifjp; ,o y{k.k

आधुनिक समय में मनुष्य के द्वारा अपने आहार में बहुत परिवर्तन किया गया है। आधुनिक समय में मनुष्य द्वारा प्राकृतिक आहार के स्थान पर कृत्रिम खाद्य पदार्थों का सेवन बढ़ गया है। विशेष रूप से मैदे से बनी वस्तुओं के सेवन का प्रयोग आधुनिक समाज में काफी बढ़ गया है। इसके साथ–साथ बच्चे भी मैदे से बने खाद्य पदार्थों का सेवन कर रहे हैं। इसका परिणाम कब्ज रोग के रूप में सामने आता है। आधुनिक समाज में कब्ज रोग बच्चों में बहुत तेजी से फैलता जा रहा है। कब्ज अनेक रोगों की जननी है। इस गंभीर रोग से ग्रस्त होने पर बच्चों के शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास की गति धीमी हो जाती है और शारीरिक व मानसिक ऊर्जा का स्तर क्षीण होने के साथ ही अन्य रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं। बच्चों में कब्ज रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

1. पेट में भारीपन के साथ शौच में कठिनाई होना और भली प्रकार पेट साफ नहीं होना।
2. जीभ पर सफेद मैल की परत जमना और श्वासों में बदबू आना।
3. भोजन के प्रति अरूचि के साथ ही अधिकतर समय पेट में हल्का दर्द रहना।
4. मुँह में छाले पड़ जाना और चेहरे पर फुन्सियां निकलना।
5. सिरदर्द के साथ चक्कर आना और स्वभाव चिडचिड़ा होना।
6. चेहरे पर उदासीनता के भाव, शरीर में शक्तिहीनता और कार्यों में अरूचि होना।
7. पेट साफ नहीं होने के कारण दुर्गन्धयुक्त अपान वायु का निष्कासन होना।
8. शरीर में आलस्य, भारीपन और सुस्ती रहने के साथ नींद कम हो जाना।

cPpk d 'kjhj e mijkDr y{k.k dCt jkx dh vkj ldr djr gA

10-1-4 cPpk d nLr jkx dk lkekU; ifjp; ,o y{k.k

भोजन के साथ शरीर में कुछ विषाक्त तत्व जाने पर पाचन तंत्र में विकृति उत्पन्न हो जाती है और बार–बार शौच क्रिया होने लगती है। इस अवस्था को दस्त रोग की संज्ञा दी जाती है। प्रायः बच्चों में जीवनी शक्ति कमजोर होने पर जब बाह्य वातावरण में होने वाले परिवर्तनों को शरीर सहन करने में असक्षम हो जाता है तभी बच्चों में यह रोग उत्पन्न होता है। इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

1. बार–बार शौच क्रिया होना।
2. शौच में जल की अधिकता अथवा बहुत पतला होना।
3. पेट में ऐंठन के साथ तीव्र दर्द होना।
4. पेट में गैस बनने के साथ पेट दर्द होना।

5. शरीर में कमजोरी के साथ हाथों–पैरों में शक्तिहीनता उत्पन्न होना।

6. भूख न लगना और शरीर का तापक्रम सामान्य से अधिक बढ़ जाना।

'kjhj e mijkDr y{k.k cPpk d nLr jkx dh vkj Idr djr gA

10-1-5 cPpk d Ñfe jkx dk IkekU; ifjp; ,o y{k.k

बाल्यावस्था के रोगों में यह एक प्रमुख रोग है जिसमें बच्चों के पेट में लगातार दर्द बना रहता है और बच्चों के शरीर का वजन भी कम हो जाता है। बच्चों के द्वारा कुछ दूषित पदार्थ को खाने अथवा गन्दे हाथों से भोजन करने के कारण उदर प्रदेश में संक्रमण होने के साथ पेट में कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं। कुछ अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि भारतवर्ष में हर पाँचवा व्यक्ति पेट के कीड़ों की समस्या से ग्रसित है और बच्चों में यह समस्या अधिक व्यापक और गंभीर होती है। इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

1. बच्चों के पेट में लगातार चुभन के साथ दर्द रहना।

2. सही प्रकार भोजन लेने के उपरान्त भी शरीर का वजन कम होना।

3. बच्चों के स्वभाव में परिवर्तन होना चिडचिड़ा, अप्रसन्न एवं उत्तेजित रहना।

4. पेट दर्द के साथ ही उल्टियां होना।

5. बच्चों के मल के साथ रक्त का आना।

6. गुदा भाग में खुजली अथवा दर्द की शिकायत होना।

'kjhj e mijkDr y{k.k cPpk d Ñfe jkx dh vkj Idr djr gA

10-1-6 cPpk e BM yxuk jkx dk IkekU; ifjp; ,o y{k.k

बाल्यावस्था बहुत संवेदनशील और कोमल होती है। विशेष रूप से बालकों के शरीर में वातावरण में होने वाले परिवर्तनों को सहन करने की क्षमता धीरे–धीरे विकसित होती है अतः बच्चों को इन परिवर्तनों से बचाकर रखना बहुत आवश्यक होता है। इस प्रकार ठंडे मौसम में बच्चों को ठंड लगने का रोग प्रायः हो जाता है। यहाँ पर यह भी महत्वपूर्ण बिन्दु होता है कि इस रोग पर तुरन्त ध्यान देते हुए इसका उपचार करना चाहिए अन्यथा यह रोग गंभीर रूप ग्रहण करते हुए जीवन संकट की स्थिति उत्पन्न कर देता है। इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

1. शरीर का तापक्रम (98.6 डिग्री फेरेहनाइट) बढ़ने के साथ ही श्वसन क्रिया एवं नाड़ी की गति तीव्र होना।

2. गले एवं छाती में कफ जमना।

3. कफ के साथ खाँसी का लम्बे समय तक बने रहना।

4. ठंड लगने के कारण बार–बार शौच अथवा दस्त होना।
5. सिर दर्द के साथ पेट दर्द व हाथों–पैरों के जोड़ों में दर्द की शिकायत होना।
6. शरीर में कमजोरी के साथ ठंड लगते हुए बुखार आ जाना।
7. सम्पूर्ण शरीर में दर्द के साथ भारीपन एवं कमजोरी का बने रहना।

'kjhj e mijkDr y{k.k cPpk e BM yxuk jkx dh vkj l dr djr gA

10-1-7 cPpk e dQ ,o c[kkj jkx dk lkekU; ifjp; ,o y{k.k

मानव शरीर में वात, पित्त और कफ तीन दोष स्वास्थ्य का आधार होते हैं। इन दोषों के सन्तुलित अवस्था में रहने से शरीर ऊर्जावान, सक्रिय और निरोगी बना रहता है जबकि इन दोषों की विषम अवस्था शरीर को कमजोर और रोगी बना देती है। आयुर्वेद शास्त्र में कफ दोष को मानव शरीर का बल कहा गया है। इस कफ दोष के विकृत होने पर शरीर बलहीन और रोगी बन जाता है। बच्चों के शरीर में वृद्धि और विकास का आधार भी यह कफ दोष ही होता है। इस दोष में विकृति उत्पन्न होने पर शरीर का विकास रुक जाता है और अनेक प्रकार की विकृतियां उत्पन्न होने लगती हैं। कफ दोष की विकृति से शरीर में कमजोरी के साथ–साथ बुखार भी हो जाता है और यदि समय पर इसका उपचार नहीं किया जाता है तब यह अवस्था अधिक जटिल और गंभीर हो जाती है। बच्चों में होने वाले इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

1. शरीर का तापक्रम बढ़ने के साथ ही श्वसन क्रिया एवं नाड़ी की गति तीव्र होना।
2. गले एवं छाती में कफ जमने के कारण श्वसन क्रिया में बाधा उत्पन्न होना।
3. तेज सिर दर्द, गले एवं छाती में भारीपन होना।
4. नाक बहना एवं लगातार छींके आना।
5. कंपकंपी लगते हुए ठंड की अनुभूति होना।
6. शरीर में कमजोरी के साथ ठंड लगते हुए बुखार आ जाना।
7. सम्पूर्ण शरीर में दर्द के साथ भारीपन एवं कमजोरी का बने रहना।

'kjhj e mijkDr y{k.k cPpk e dQ ,o c[kkj jkx dh vkj l dr djr gA

10-1-8 cPpk e fuekfu;k jkx dk lkekU; ifjp; ,o y{k.k

निमोनिया शरीर के श्वसन तंत्र से संबंधी एक गंभीर रोग है जो बच्चों के फेफड़ों पर सीधा प्रभाव डालता

fVIi.kh

हुआ श्वसन क्रिया को बाधित कर देता है। इस रोग से ग्रस्त होने पर बच्चों के फेफड़ों में संक्रमण हो जाता है और रोग की गंभीर अवस्था में फेफड़ों के वायु कोषों में द्रव (पस) भर जाता है जिस कारण कफ के साथ खांसी, जुकाम, बुखार एवं श्वास लेने में पीड़ा उत्पन्न होती है। बच्चों में सामान्य ठंड लगने से यह रोग प्रारम्भ होता है। इस अवस्था में ध्यान नहीं देने पर कमजोर प्रतिरोधक क्षमता के बच्चे इस रोग से ग्रसित हो जाते हैं। शोध से प्राप्त आंकड़ों से यह भी स्पष्ट होता है कि वर्तमान समय में भारत वर्ष के साथ–साथ सम्पूर्ण विश्व में यह रोग बहुत तेजी से बढ़ता जा रहा है। इस रोग के बढ़ते प्रभाव को देखते हुए विश्व स्वास्थ्य संगठन के द्वारा प्रतिवर्ष 12 नवम्बर को 'विश्व निमोनिया दिवस' मनाया जाता है। इसका उद्देश्य इस रोग के प्रति जागरुकता बढ़ाते हुए इसके प्रभाव को रोकना है। इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

1 शरीर का तापक्रम अधिक बढ़ना।

2 श्वास लेते समय वक्ष में तीव्र वेदना होना एवं बच्चों की पसलियां चलना।

3 श्वसन क्रिया में घर्र–घर्र की आवाज होना और लगातार खाँसी उठना।

4 बच्चे के द्वारा सामान्य कार्य करने पर तुरन्त श्वास फूलना।

5. सम्पूर्ण शरीर में दर्द के साथ आलस्य और भारीपन का बने रहना।

6. वक्ष प्रदेश में दर्द के साथ शरीर में शक्तिहीनता का अनुभव होना।

'kjhj e mijkDr y{k.k cPpk d fuekfu;k jkx dh vkj ladr djr gA

10-1-9 cPpk e Dokf'kvkjdkj ,o fjdV'l jkx dk lekU; ifjp; ,o y{k.k

बच्चों के क्वाशिओरकोर एवं रिकेट्स रोग का सीधा सम्बन्ध उनके आहार एवं पोषण के साथ होता है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान बच्चों के इन दोनों रोगों को कुपोषण (Malnutrition) का परिणाम मानता है अर्थात् बाल्यावस्था में सन्तुलित आहार के नहीं मिलने पर बच्चों में क्वाशिओरकोर एवं रिकेट्स रोग उत्पन्न होते हैं। बच्चों के शरीर में विकास की क्रिया बहुत तीव्र होती है और विकास की क्रिया में प्रोटीन एवं अन्य खजिन लवणों की प्रमुख रूप से आवश्यकता पड़ती है। किन्तु जब शरीर को भोजन से आवश्यक मात्रा में प्रोटीन व अन्य पोषक तत्वों की प्राप्ति नहीं होती है तब बच्चों में क्वाशिओरकोर और रिकेट्स रोग उत्पन्न होता है। बच्चों के इन रोगों का समय पर उपचार बहुत आवश्यक होता है अन्यथा उपचार के अभाव में यह रोग बच्चों की मृत्यु का कारण भी बन जाते हैं। इन गंभीर रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

1 शरीर का वजन सामान्य से कम होना और बच्चे का शारीरिक विकास रूक जाना।

2 बच्चों में डिहाइड्रेशन (Dehydration) अथवा डायरिया की शिकायत होना।

fVIi.kh

3 पेट की मांसपेशियों में सिकुड़न अथवा असामान्य रूप से फैलाव होना।

4 शरीर की त्वचा सूखी और खुरदरी हो जाना।

5 पैरों की अस्थियों का टेढ़ा होना, रीढ़ का टेढ़ा होना और वक्ष की अस्थियों का बाहर की ओर निकल जाना।

6. शरीर की लम्बाई नहीं बढ़ना और हमेशा थकान–शक्तिहीनता की अनुभूति होना।

cPpk d 'kjhj e mijkDr y{k.k Dokf'kvkjdj ,o fjdV l jkx dh vkj ldr djr gA

10-1-10 cPpk e otu de gkuk vFkok c< tkuk jkx dk lkekU; ifjp; ,o y{k.k

आधुनिक जीवनशैली, खानपान अथवा अनुवंशिक कारणों से बच्चों में आयु के अनुसार वजन कम होना अथवा सामान्य से अधिक होना रोगावस्था का परिचायक होता है। इस अवस्था में बच्चों के शरीर की चयापचय दर असन्तुलित हो जाती है और बाल्यावस्था के यह विकार आगे चलकर गंभीर रूप ग्रहण कर लेते हैं। वैज्ञानिकों के मतानुसार छः वर्ष की आयु में बच्चे का वजन उसके जन्म के समय के वजन से छः गुणा और दस वर्ष की आयु में उसके जन्म के समय के वजन से दस गुणा होना चाहिए। यदि बच्चे का वजन इस अनुपात में नहीं बढ़ रहा है अथवा इससे अधिक बढ़ रहा है तो यह रोगावस्था के अन्तर्गत आ जाता है। इस रोगावस्था का प्रभाव बच्चों के भावी जीवन पर भी पड़ता है। अतः समय रहते प्राकृतिक आहार–विहार एवं अन्य प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग करते हुए बच्चों के इन रोगों का समाधान करने से उनका शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक विकास भली–भांति होता है। बच्चों में वजन कम होना अथवा बढ़ जाना इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

1 शरीर का वजन सामान्य से कम होना और बच्चे का शारीरिक विकास रूक जाना।

2 बच्चों के शरीर का वजन आयु के अनुपात में अधिक होना एवं शरीर असन्तुलित हो जाना।

3 पेट की मांसपेशियों में सिकुड़न अथवा असामान्य रूप से फैलाव होना।

4 शरीर में वसा का पूर्णरूप से अभाव अथवा सामान्य से अधिक बढ़ जाना।

5 पैरों की अस्थियों का टेढ़ा होना, रीढ़ का टेढ़ा होना और वक्ष की अस्थियों का बाहर की ओर निकल जाना।

6. शरीर की लम्बाई नहीं बढ़ना और हमेशा थकान, शक्तिहीनता की अनुभूति होना।

cPpk d 'kjhj e mijkDr y{k.k cPpk e otu de gkuk vFkok c< tkuk jkx dh vkj ldr djr gA

fVIi.kh

bdkbZ xr iz'u&10-2

i) मानव शरीर में स्वास्थ्य के आधार तीन दोषों के नाम लिखिए ?

....

....

....

ii) बच्चों के निमोनिया रोग का सीधा प्रभाव शरीर के किस अंग पर पड़ता है ?

....

....

....

iii) बच्चों में क्वाशियोरकर एवं रिकेट्स रोग का सीधा सम्बन्ध किसके साथ होता है ?

....

....

....

iv) मानव शरीर का सामान्य तापक्रम लिखिए।

....

....

....

v) अनेक रोगों की जननी किसे कहा जाता है ?

....

....

....

10-2 cky jksxksa dh izkÑfrd fpfdRlk

प्रिय शिक्षार्थियों, बच्चों के रोगों में प्राकृतिक चिकित्सा एक श्रेष्ठ विकल्प होता है। प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत पंचमहाभूतों का सम्यक प्रयोग करने से बच्चों के शरीर की जीवनी शक्ति प्राकृतिक रूप से उन्नत बनती है और बच्चों के रोगों का समूल निवारण होने के साथ ही उनका शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास सही प्रकार से होने लगता है। इसके विपरीत बच्चों के सामान्य रोगों में एलोपैथी दवाइयों का प्रयोग करने से बच्चों की रोग प्रतिरोधक क्षमता और जीवनी शक्ति पर बहुत नकारात्मक प्रभाव पड़ता है और वह

fVIi.kh

क्षीण पड़ जाती है और शरीर की चयापचय दर (Metabolic Rate) भी असन्तुलित हो जाती है। बाल्यावस्था में रासायनिक और जहरीली (एंटीबायोटिक्स) दवाइयों का अधिक सेवन कराने से बच्चों के यकृत और किडनी जैसे शरीर के महत्वपूर्ण अंग कमजोर हो जाते हैं और इसका दुष्प्रभाव जीवन पर्यन्त बना रहता है। इस प्रकार बाल्यावस्था में अंग्रेजी दवाइयों के सेवन कराने से बच्चों में गंभीर और जीर्ण रोगों उत्पन्न होते है। इसके विपरीत बाल्यावस्था में बच्चों के सामान्य रोगों का प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा उपचार करने पर किसी प्रकार का दुष्प्रभाव नहीं होता है।

प्राकृतिक चिकित्सा के मूल सिद्धान्तों में से एक सिद्धान्त है कि प्रकृति अर्थात् हमारा शरीर अपनी चिकित्सा स्वयं करता है। यदि हम शरीर के लिए अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न करते हैं तो शरीर अपनी रोग प्रतिरोधक क्षमता को उन्नत बनाता हुआ शीघ्र रोग पर नियंत्रण प्राप्त कर लेता है। इसके साथ–साथ प्राकृतिक चिकित्सा में यह भी स्पष्ट किया जाता है कि अंग्रेजी दवाइयों के द्वारा रोग के लक्षणों एवं रोगावस्था को दबा दिया जाता है जबकि प्राकृतिक चिकित्सा में शरीर का शोधन करते हुए रोग से स्थाई मुक्ति प्राप्त की जाती है। यद्यपि शरीर शोधन करते हुए रोगावस्था से मुक्ति प्राप्त करने में समय लगता है जिससे प्राकृतिक चिकित्सा में धीरे–धीरे लाभ प्राप्त होता है किन्तु प्राकृतिक चिकित्सा बच्चों की कोमल जीवनी शक्ति को उन्नत बनाने में बहुत सरल एवं प्रभावी है। बच्चों के सामान्य रोगों में पंचमहाभूतों का सम्यक प्रयोग एवं रोगावस्था को दूर करने के अनुरूप आहार देने से शीघ्र लाभ प्राप्त हो जाता है। इसके साथ–साथ आहार पर नियंत्रण करने का सकारात्मक प्रभाव भी बच्चों के रोगों में पड़ता है। इस इकाई (यूनिट) में हम बच्चों के सामान्य रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा से सम्बन्धित महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर विचार करेंगे। बच्चों के रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा इस प्रकार है–

¼d½ i`Foh rRo fpfdRlk

बच्चों का मूल स्वभाव मिट्टी के साथ जुड़ना होता है। दैनिक जीवन में अनेक बार हम इस तथ्य से अवगत होते हैं कि बच्चों का स्वभाव मिट्टी में खेलना होता है। जैस ही बच्चों को अवसर मिलता है वे तुरन्त ही मिट्टी में चले जाते हैं। बच्चों का यह स्वभाव इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि मिट्टी के साथ हमारा अटूट और घनिष्ठ संबंध होता हैं। किन्तु वर्तमान समय में हमने बच्चों को एवं स्वयं अपने आप को मिट्टी से बहुत अलग कर लिया है। इसी कारण मिट्टी की विषशोषक विलक्षण शक्ति का बच्चों के शरीर में अभाव हो जाता है और शरीर में विजातीय विषों की मात्रा बढ़ने के साथ ही उनकी जीवनी शक्ति व रोग प्रतिरोधक क्षमता भी क्षीण पड़ जाती है। इसलिए प्राकृतिक चिकित्सा में प्रातःकाल ओस की बूदों पर नंगे पैर चलना एवं प्रतिदिन कुछ समय मिट्टी के सम्पर्क में रहना बच्चों के उत्तम स्वास्थ्य के लिए आवश्यक माना जाता है।

बच्चों में पाचन तंत्र के पेटदर्द, कब्ज, अपच गैस और दस्त आदि रोगों के उपचार में बच्चों के पेट पर गीली मिट्टी की पट्टी देने से रोगावस्था में लाभ प्राप्त होता है। इसके साथ–साथ बच्चों के शरीर पर पन्द्रह दिन अथवा एक माह में मिट्टी का लेप देने से शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता विकसित होती है और बच्चों के स्वास्थ्य का स्तर भी उन्नत बनता है। शरीर में कफ दोष की विकृति होने पर बालू मिट्टी को गर्म करके छाती एवं गले पर सिकाई करने से निमोनिया एवं सर्दी–जुकाम आदि रोगों में शीघ्र लाभ प्राप्त होता है।

टिप्पणी

(ख) जल तत्व चिकित्सा

बच्चों के रोगों में जल चिकित्सा का प्रयोग बहुत लाभकारी प्रभाव रखता है। पाचन तंत्र के रोगों में गुनगुने अथवा गर्म जल का सेवन कराने पर बच्चों के कब्ज, पेट दर्द एवं गैस आदि रोगों से राहत प्राप्त होती है। इसके साथ–साथ बच्चों को दस्त या डायरिया आदि रोग होने पर शीतल जल में नमक एवं चीनी का घोल बनाकर देने से आराम मिलता है। पेट पर ठंडे जल का तौलिया रखने से उदर की गर्मी शान्त हो जाती है और बच्चों के पाचन तंत्र संबंधी रोग दूर होते हैं।

बच्चों को प्रातःकाल उठते ही उषापान के रूप में गुनगुने जल के सेवन की आदत डालनी चाहिए। इसके प्रभाव से बच्चों में अनेक रोग स्वतः ही नष्ट होते हैं। इसके साथ–साथ बच्चों के पाचन रोगों में कटि स्नान रोगावस्था में लाभदायक है। जबकि कफ रोगों में गर्म जल का सेवन करने एवं नासिका से लौंग, अजवायन, दालचीनी, तुलसी आदि प्राकृतिक औषध द्रव्यों की भाप देने से इन रोगों में स्थाई लाभ प्राप्त होता है। कफ एवं खांसी आदि रोग की अवस्था में गर्म पैर स्नान भी बहुत सहायक है। बच्चों के पेट में कीड़े होने पर नीम एवं आडू के पत्तों का एनीमा देना चाहिए। यहाँ पर बच्चों को उपचार देते समय यह सावधानी रखनी चाहिए कि गर्म जल का तापक्रम बच्चों के अनुसार हो अर्थात् बहुत गर्म जल का प्रयोग कदापि नहीं करना चाहिए एवं बच्चों को यह समस्त उपचार बहुत सावधानीपूर्वक व संवेदनशील होकर देने चाहिए।

(ग) अग्नि तत्व चिकित्सा

बच्चों के रोगों में अग्नि तत्व चिकित्सा अथवा रंग चिकित्सा बहुत लाभकारी प्रभाव रखती है। बच्चों के शरीर में ऊर्जा का स्तर सन्तुलित करने के लिए विभिन्न रंग की किरणों का प्रयोग किया जाता है। कफ विकारों को दूर करने हेतु शरीर की ऊर्जा का स्तर बढ़ाने के लिए लाल रंग की किरणों का प्रयोग जाता है। इसी प्रकार खांसी रोग को दूर करने के लिए नारंगी रंग एवं गहरे नीले रंग का प्रयोग लाभकारी प्रभाव रखता है।

बच्चों के शरीर में ऊर्जा का स्तर सामान्य से बढ़ने पर शीतल स्वभाव की किरणों का प्रयोग एवं शीतल रंग से आवेशित जल का सेवन कराने से रोगावस्था में लाभ प्राप्त होता है। बच्चों में वमन एवं पेचिश आदि रोग होने पर हरे एवं नीले रंग की किरणों का प्रयोग एवं इन्हीं रंगों से आवेशित जल का सेवन कराना चाहिए। बच्चों के शरीर के वजन को सन्तुलित करने में पीले रंग का प्रयोग कराएं। विशेष रूप से सूर्य की किरणों में पके पीत वर्ण फलों एंव सब्जियों का सेवन कराने से बच्चों के शरीर में चयापचय दर (Metabolism) सन्तुलित होती है और उदर की जठराग्नि (भूख) बढ़ती है। इससे बच्चों के शरीर का वजन और लम्बाई सन्तुलित रूप में बढ़ने लगती है और बच्चों के शरीर का विकास भली–भांति होने लगता है।

बच्चों के शरीर पर प्रातःकाल सूर्योदय काल की रश्मियों का प्रयोग बहुत लाभ पहुँचाता है। प्रातःकाल की सूर्य रश्मियों को शरीर पर देने से बच्चों के कफ संबंधी रोग दूर होते हैं। उगते सूर्य की किरणों के प्रभाव से बच्चों के शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता उन्नत बनती है और पीलिया, सूखा रोग व शारीरिक कमजोरी आदि गंभीर रोगों में लाभ प्राप्त होता है। प्रातःकाल के उगते सूर्य की किरणों में जीवाणु, विषाणु एवं रोगाणु नाशक गुण विद्यमान होते हैं जिनका प्रयोग करने से बच्चों के अनेक रोग समूल नष्ट होते हैं। इसके

साथ–साथ बच्चों के पाचन संबंधी रोगों में सूर्य किरणों में पके पीत वर्ण फलों का सेवन कराने से जठराग्नि प्रदिप्त होती है और कब्ज–अपच आदि रोगों में लाभ प्राप्त होता है। बच्चों के शरीर की कमजोरी दूर करने में भी सूर्य किरण चिकित्सा लाभकारी प्रभाव रखती है। यहाँ पर महत्वपूर्ण बिंदु यह होता है कि बच्चों को दिन के समय की तेज धूप नहीं देनी चाहिए अपितु सूर्योदय अथवा सूर्यास्त के समय की हल्की धूप में रखना चाहिए और शीतकाल में ठंडी हवा से बचाकर ही सूर्य की धूप देनी चाहिए। बच्चों को उनकी क्षमतानुसार दस से तीस मिनट की अवधि तक सहनीय तापक्रम की धूप देनी चाहिए।

¼?k½ ok;q rRo fpfdRlk

शरीर में प्राण ऊर्जा के रूप में वायु तत्व बहुत महत्वपूर्ण भूमिका वहन करता है। बाल्यावस्था में बच्चों के शरीर के विकास की गति तीव्र होती है जिसके फलस्वरूप बच्चों में श्वसन दर 20 से 30 श्वास प्रतिमिनट होती है। इसके अतिरिक्त रोगावस्था में बच्चों की श्वसन दर इससे भी बढ़ जाती है। प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत बच्चों के रोगों को दूर करने में स्वच्छता का बहुत विशेष महत्व होता है। विशेषरूप से रोगावस्था होने पर सर्वप्रथम बच्चे को स्वच्छ स्थान पर रखने के साथ–साथ स्वच्छ वायु के आवागमन वाले स्थान पर रखना चाहिए। साफ–स्वच्छ एवं ढीले वस्त्र पहनाने चाहिए। इसके साथ–साथ रोगावस्था में बच्चों के हाथों–पैरों पर हल्की मालिश देने से रोग में आराम मिलता है। बच्चों के पैरों में स्थित दाब बिन्दुओं को बहुत हल्के हाथों से दबाने पर ऊर्जा प्रवाह तीव्र बनता है और शरीर रोगावस्था से मुक्त बनता है।

श्वसन तंत्र के रोगों एवं सर्दी–जुकाम, खांसी व बुखार आदि रोगों में हवन–सामग्री की शुद्ध वायु (धूमनी) का सेवन बच्चों को कराने से इनके रोगों में शीघ्र एवं स्थाई लाभ प्राप्त होता है। अंग्रेजी दवाइयों के स्थान पर गाय के घी को अग्नि में जलाने एवं इस अग्नि में अजवायन, गुगुल आदि औषध द्रव्यों की धूम का नासिका के द्वारा बच्चों को सेवन कराने से गंभीर संक्रामक रोगों जैसे निमोनिया, टायफाइड आदि में लाभ प्राप्त होता है। हवन सामग्री की शुद्ध वायु एवं औषध द्रव्यों की धूम का सेवन बच्चों को कराने से इनके शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता उन्नत बनती है और रोगावस्था में आराम मिलता है। परन्तु रोगावस्था में बच्चों को ठंडी हवा से बचाना चाहिए एवं स्वच्छ–उष्ण वायु में रखना चाहिए। यद्यपि बच्चों में अधिक समय तक प्राणायाम व ध्यान आदि यौगिक क्रियाओं के अभ्यास की समझ विकसित नहीं होती है परन्तु हमें बच्चों को अनुलोम–विलोम और भ्रामरी आदि लाभकारी प्राणायामों का अभ्यास करने हेतु प्रेरित करना चाहिए। बच्चों को थोड़े–थोड़े समय नियमित रूप से सूर्यनमस्कार, प्राणायाम एवं ध्यान आदि यौगिक क्रियाओं का अभ्यास करवाने की आदत (दिनचर्या) बनाए।

¼³½ vkdk'k rRo fpfdRlk

आकाश तत्व चिकित्सा में उपवास और प्रार्थना का वर्णन आता है परन्तु बच्चों के लिए उपवास पूर्णरूप से निषिद्ध होता है। आयुर्वेद शास्त्र के साथ–साथ विभिन्न शरीर शास्त्रियों व चिकित्सकों के मतानुसार बाल्यावस्था में बच्चों को उपवास नहीं करवाना चाहिए। परन्तु रोगावस्था में बच्चों के उपवास के स्थान पर उनके आहार पर संयम करते हुए नियंत्रित खाद्य पदार्थों का सेवन करवाना आवश्यक है। रोगावस्था में बच्चों को ठोस एवं गरिष्ठ आहार के स्थान पर फलों के जूस और सब्जियों के सूप का सेवन कराएं।

रोगावस्था के काल में बच्चों को एकाहार अथवा फलोपवास कराने से रोगावस्था में लाभ प्राप्त होता है।

बच्चों की रोगावस्था में इनके ठीक होने के लिए सकारात्मक भावों के साथ ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए। बच्चों के समक्ष सकारात्मक विचार–चिन्तन करना चाहिए और उन्हें भी रोगमुक्ति हेतु ईश्वर से प्रार्थना करने के लिए प्रेरित करना चाहिए। प्रार्थना के इन सकारात्मक भावों का रोगावस्था में लाभ प्राप्त होता है और बच्चों को रोगावस्था से मुक्ति मिलती है।

इस प्रकार उपरोक्त प्राकृतिक चिकित्सा में पचंमहाभूतों के सम्यक प्रयोग करने से बच्चों के विभिन्न रोगों में शीघ्र एवं स्थाई लाभ प्राप्त होता है। बच्चों के रोगों में पंचमहाभूतों के प्रयोग के साथ–साथ निम्न अपथ्य आहार का त्याग करते हुए पथ्य आहार का सेवन बच्चों को कराना चाहिए।

viF; vkgkj% गरिष्ठ तेलयुक्त खाद्य पदार्थ, शीत प्रकृति के कफदोष वर्द्धक खाद्य पदार्थ, मैदा और मैदे से बनी वस्तुएं, बासी एवं प्रिजर्वेटिव युक्त खाद्य पदार्थ, बाजार के रसायनों युक्त खाद्य पदार्थ जैसे मैगी, ब्रेड, बिस्किट, नमकीन, चाउमिन, समोसा, पिजा–बर्गर, चिप्स, बाजार की मिठाइयां, बर्फ–आईसक्रीम, कोल्ड ड्रिंक्स और फ्रिज का बहुत ठंडा जल बच्चों की रोगावस्था में पूर्णरूप से निषिद्ध आहार होता है।

iF; vkgkj% हल्का सुपाच्य आहार, लौकी, तुराई, टमाटर आदि सुपाच्य सब्जियों का सूप, पपीता, अंगूर, अनार, सन्तरा, मौसमी आदि सूर्य के प्रकाश में पके पीत वर्ण (पीले रंग के) फल पथ्य आहार होते हैं। बच्चों के लिए जौ, चना एवं गेहूँ के अनाज से बना दलिया, सत्तू, चौकरयुक्त आटे की रोटियां बच्चों की रोगावस्था में पथ्य आहार होता है। इसके साथ–साथ बच्चों के शारीरिक एवं मानसिक विकास के लिए पौष्टिक अंकुरित अन्न जैसे अंकुरित चना, मूंगफली, बादाम, मुनक्का, किशमिश, मखाना आदि सूखे मेवे एवं दूध, दही, घी, मक्खन आदि पोषक तत्वों युक्त खाद्य पदार्थों का सन्तुलित रूप में सेवन करने से रोग प्रतिरोधक क्षमता उन्नत बनती है और बच्चों को रिकेट्स और क्वाशिओरकोर आदि रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है और बच्चों का वजन सन्तुलित होने के साथ–साथ शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास सही प्रकार से होता है।

bdkbZxr iz'u&10-3

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

i) बाल्यावस्था में अंग्रेजी दवाइयों का अधिक सेवन कराने से .... और .... जैसे महत्वपूर्ण अंग कमजोर हो जाते हैं।

ii) आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार बाल्यावस्था में बच्चों को .... नहीं करवाना चाहिए।

iii) बच्चों के पाचन संबंधी रोगों में सूर्य किरणों में पके .... वर्ण फलों का सेवन कराने से जठराग्नि प्रदीत होती है।

iv) रोगावस्था होने पर सर्वप्रथम बच्चे को .... स्थान पर रखना चाहिए।

vkiu D;k lh[kk

इस इकाई (यूनिट) में आपने सीखा कि –

- प्राकृतिक चिकित्सा से अभिप्रायः प्रकृति के नियमों का पालन करते हुए प्रकृति के समीप वास करने से होता है। संसार के सभी प्राणी प्राकृतिक चिकित्सा के इस नियम का पालन करते हुए स्वस्थ जीवन यापन करते हैं किन्तु मनुष्य सबसे अधिक प्रकृति के नियमों का उल्लघंन करते हुए अप्राकृतिक जीवन यापन करता है और इसका परिणाम उसे विभिन्न प्रकार के रोगों के रूप में प्राप्त होता है। विशेषरूप से बाल्यावस्था के रोगों में अंग्रेजी दवाइयों का सेवन करने का दुष्प्रभाव जीवन भर कष्टकारी बना रहता है।

- बाल्यावस्था से अभिप्रायः जीवन की छः से बारह वर्ष की आयु से होता है। जीवन के इस भाग को बाल्यावस्था की संज्ञा दी जाती है। बाल्यावस्था मानव जीवन की वह आधारशीला होती है जिसके ऊपर जीवनरूपी भवन का निर्माण होता है। दूसरे शब्दों में समझें तो यह मानव जीवन की एक नींव होती है। यह नीव जितनी मजबूत होगी उसका जीवन उतना ही ऊर्जावान एवं प्रभावशाली होगा। जबकि इस नींव के विकारग्रस्त हो जाने पर जीवन रोगग्रस्त और अर्थहीन हो जाता है।

- बच्चों में रोगोत्पत्ति का सबसे प्रमुख कारण स्वच्छता का अभाव होता है। इसके साथ–साथ प्रदूषणयुक्त, घुटनयुक्त अथवा अधिक नमीयुक्त वातावरण में बच्चे को रखना, अचानक से अधिक सर्द अथवा गर्म स्थान पर बच्चे को ले जाना और बच्चों को हल्के–सुपाच्य आहार के स्थान पर अप्राकृतिक व सिंथेटिक खाद्‌य पदार्थों का सेवन कराने आदि कारणों के परिणामस्वरूप बच्चों के रोगों की उत्पत्ति होती है।

- उपरोक्त कारणों के परिणामस्वरूप बच्चों में विभिन्न प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक रोगों की उत्पत्ति होती है। बच्चों से सम्बन्धित इन रोगों में अपच, गैस, कब्ज, दस्त, पेट में कीड़े, ठंड, कफ, बुखार, निमोनिया, क्वाशिओरकोर, रिकेट्स और वजन बढ़ना–कम होना आदि प्रमुख होते हैं। इन रोगों से ग्रस्त होने पर बहुत ध्यान देने की आवश्यकता होती है क्योंकि बच्चों में इन रोगों से लड़ने की प्रतिरोधक क्षमता का स्तर बहुत अधिक विकसित नहीं होता है अपितु इन रोगों को गंभीर होने से पूर्व ही इनका उपचार करना आवश्यक होता है।

- बच्चों के रोगों में प्राकृतिक चिकित्सा एक श्रेष्ठ विकल्प होता है। प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत पंचमहाभूतों का सम्यक प्रयोग करने से बच्चों के शरीर की जीवनी शक्ति प्राकृतिक रूप से उन्नत बनती है और बच्चों के रोगों का समूल निवारण होने के साथ ही उनका शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास सही प्रकार से होने लगता है।

- बच्चों के सामान्य रोगों में पंचमहाभूतों का सम्यक प्रयोग एवं रोगावस्था को दूर करने के अनुरूप आहार देने से शीघ्र लाभ प्राप्त हो जाता है। इसके साथ–साथ आहार पर नियंत्रण करने का सकारात्मक प्रभाव भी बच्चों के रोगों में पड़ता है।

fVIi.kh

- बच्चों के शारीरिक एवं मानसिक विकास के लिए पौष्टिक अंकुरित अन्न जैसे अंकुरित चना, मूंगफली, बादाम, मुनक्का, किशमिश, मखाना आदि सूखे मेवे एवं दूध, दही, घी, मख्खन आदि पोषक तत्वों युक्त खाद्य पदार्थों का सन्तुलित रूप में सेवन करने से रोग प्रतिरोधक क्षमता उन्नत बनती है और बच्चों को रिकेट्स और क्वाशिकोयर आदि रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है और बच्चों का वजन सन्तुलित होने के साथ–साथ शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास सही प्रकार से होता है।

bdkb d vUr e i’u

1. बच्चों के किन्हीं चार सामान्य रोगों के प्रमुख लक्षणों का उल्लेख कीजिए।
2. बच्चों के सामान्य रोगों की उत्पत्ति के प्रमुख कारणों पर प्रकाश डालिए।
3. बच्चों के सामान्य रोगों का प्राकृतिक उपचार सविस्तार से समझाइये।
4. बच्चों के सामान्य रोगों में प्राकृतिक चिकित्सा के महत्व पर प्रकाश डालिए।

bdkbxr i'uk d mÙkj

10-1

क) असत्य   ख) सत्य

ग) सत्य   घ) असत्य

10-2

i) वात–पित्त–कफ   ii) फेफड़ों

iii) आहार एवं पोषण   iv) 98.4 डिग्री फेरेहनाइट   v) कब्ज

10-3

i) यकृत, किड़नी   ii) उपवास

iii) पित्त   iv) स्वच्छ

11

श्वसन एवं हृदय संबंधी प्रमुख रोग एवं प्राकृतिक चिकित्सा

प्रिय शिक्षार्थियों, अब तक आप प्राकृतिक चिकित्सा के माध्यम से विभिन्न रोगों के उपचार का प्रायोगिक स्वरूप समझ चुके हैं। आपने महिलाओं से सम्बन्धित सामान्य रोगों एवं बाल रोगों में प्राकृतिक चिकित्सा के प्रबन्धन को समझा। मनुष्य श्वास के माध्यम से ऑक्सीजन नामक प्राणदायी वायु को शरीर में फेफड़ों के द्वारा ग्रहण करता है। फेफड़ों से ऑक्सीजन लेकर रक्त हृदय नामक महत्वपूर्ण अंग में जाता है। हृदय का प्रमुख कार्य इस ऑक्सीजन युक्त रक्त को सम्पूर्ण शरीर में भेजना होता है। कोशिकाओं में भोजन से प्राप्त ग्लूकोज ऑक्सीजन की उपस्थिति में दहन (ऑक्सीकरण) होता है। इस ऑक्सीकरण से शरीर के भीतर ऊर्जा की उत्पत्ति होती है जिसका उपयोग विभिन्न आन्तरिक और बाह्य कार्यों को करने में किया जाता है। इस प्रकार श्वसन तंत्र और हृदय तंत्र मिलकर शरीर को ऊर्जा प्रदान करने का कार्य निरन्तर करते रहते हैं। इन दोनों तंत्रों के स्वस्थ और सक्रिय होने पर शरीर ऊर्जावान बना रहता है जबकि इन तंत्रों में विकार उत्पन्न होने पर शरीर ऊर्जाहीन हो जाता है।

वर्तमान समय में इन तंत्रों से संबंधी अनेक प्रकार के रोग बहुत तेजी से फैलते जा रहे हैं। विशेष रूप से वातावरण में बढ़ता प्रदूषण का स्तर, रासायनिक खाद्य पदार्थों का अधिक सेवन एवं तनावयुक्त अव्यवस्थित दिनचर्या आदि कारकों के परिणामस्वरूप वर्तमान समय में श्वसन और हृदय संबंधी रोग बहुत तेजी से बढ़ते जा रहे हैं। इन रोगों के उपचार में अंग्रेजी दवाइयों का प्रयोग कुछ समय के लिए राहत अवश्य प्रदान करता है किन्तु रोगावस्था समूल समाप्त नहीं होती है, अपितु धीरे–धीरे गंभीर रूप धारण करने लगती है। इन रोगों के प्रबंधन में प्राकृतिक चिकित्सा बहुत महत्वपूर्ण एवं लाभकारी प्रभाव रखती है। प्रस्तुत इकाई (यूनिट) में आप श्वसन तंत्र और हृदय संबंधी रोगों एवं उनकी प्राकृतिक चिकित्सा का अध्ययन करेंगे।

fVIi.kh

mís';

इस इकाई (यूनिट) के अध्ययन के पश्चात् आप –

- श्वसन क्रिया से संबंधी प्रमुख रोगों के प्रमुख कारणों की विवेचना कर पायेंगे ;
- श्वसन क्रिया से संबंधी प्रमुख रोगों के प्रमुख लक्षणों की व्याख्या कर सकेंगे ;
- श्वसन क्रिया से संबंधी प्रमुख रोगों का प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा प्रबंधन जान पायेगें ;
- हृदय से संबंधी प्रमुख रोगों के प्रमुख कारणों की विवेचना कर पायेंगे ;
- हृदय से संबंधी प्रमुख रोगों के प्रमुख लक्षणों की व्याख्या कर सकेंगे ;
- हृदय से संबंधी प्रमुख रोगों का प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा प्रबंधन जान पायेगें।

11-1 'olu r= lac/kh jksxksa dk lkekU; ifjp; ,oa dkj.k

प्रिय शिक्षार्थियों, आधुनिक समय में फैक्ट्रियों और यातायात के साधनों से निकलने वाले धुएं, वातावरण में प्रयोग हो रहे रासायनिक कीटनाशक जहर, जनसंख्या विस्फोट और अग्निहोत्र (हवन) नहीं करने आदि कारकों ने पर्यावरण असन्तुलन की स्थिति उत्पन्न कर दी है। वर्तमान समय में वातावरण में प्रदूषण के स्तर को देखकर प्रत्येक पर्यावरणीय वैज्ञानिक (Ecologist) के माथे पर चिन्ता की गहरी लकीरें उभर कर आती हैं। इसके साथ–साथ विकृत खान–पान और मानसिक तनाव के कारण मनुष्यों में श्वसन तंत्र से सम्बन्धित रोगों की बाढ़ सी आयी हुई है। इन रोगों से ग्रस्त होने पर श्वसन क्रिया बाधित होने से शरीर में ऊर्जा उत्पादन की दर कम हो जाती है और शरीर ऊर्जाहीन और शक्तिहीन हो जाता है। इन रोगों की उत्पत्ति के प्रमुख कारण निम्नवत् होते हैं–

(1) प्रदूषण युक्त अथवा अधिक नमीयुक्त वातावरण में वास करना।

(2) फैक्ट्री एवं यातायात साधनों (ऑटोमोबाईल्स) से निकलने वाले धुएं में रहना।

(3) कीटनाशक एवं खरपतवार नाशक आदि रासायनिक दवाइयों का प्रयोग करना एवं श्वास के द्वारा इन रसायनों का शरीर के फेफड़ों में पहुंचना।

(4) प्राकृतिक खाद्य पदार्थों के स्थान पर सिंथेटिक खाद्य पदार्थों का सेवन करना।

(5) श्रमहीन जीवनशैली को अपनाना एवं दिनचर्या अव्यवस्थित होना।

(6) धूम्रपान, मद्यपान अथवा अन्य नशीले पदार्थों का सेवन करना।

(7) चिन्ता, तनाव, भय, क्रोध, तनाव एवं अवसाद आदि मानसिक संवेगों से ग्रस्त रहना।

(8) नियमित रूप से योगाभ्यास एवं प्रातःकालीन भ्रमण आदि ना करना।

इस प्रकार उपरोक्त कारणों के परिणामस्वरूप श्वसन तंत्र संबंधी रोगों की उत्पत्ति होती है। श्वसन तंत्र के

'olu ,oa ân; lac/kh iaeq[k jksx ,oa izkÑfrd fpfdRlk

रोगों में साइनोसाइटिस, टॉन्सिलाइटिस, ब्रोन्काईटिस, अस्थमा, खांसी, निमोनिया एवं बुखार प्रमुख होते हैं। इन रोगों से ग्रस्त होने पर शरीर की श्वसन क्रिया अव्यवस्थित हो जाती है और शरीर की कार्यक्षमता धीरे–धीर क्षीण होने लगती है।

fVIi.kh

bdkbZ iz'u&11-1

सत्य/असत्य बताइये

i) मनुष्य श्वास के माध्यम से ऑक्सीजन नामक प्राणदायी वायु को शरीर में ग्रहण करता है। ( )

ii) श्वसन रोगों से ग्रस्त होने पर मानव शरीर में ऊर्जा उत्पादन की दर बढ़ जाती है। ( )

iii) मानव शरीर में भोजन से प्राप्त ग्लूकोज का कार्बन डाईऑक्साइड (CO_2) की उपस्थिति में ऑक्सीकरण होता है। ( )

iv) धूम्रपान एवं मद्यपान श्वसन रोगों की उत्पत्ति का प्रमुख कारण होते हैं। ( )

11-1-1 lkbukslkbfVl jksx dk lkekU; ifjp; ,oa y{k.k

यह श्वसन तंत्र का बहुत तेजी से बढ़ता रोग है जिसे सामान्य बोलचाल की भाषा में साइनस के नाम से भी जाना जाता है। इस रोग में नासिका के चारों ओर सूजन के साथ तेज सिर दर्द होने लगता है जिसमें दर्दनिवारक दवाइयों से भी आराम नहीं मिल पाता है। इसके कारण श्वसन क्रिया में बाधा उत्पन्न होती है और तेज सिरदर्द होता है।

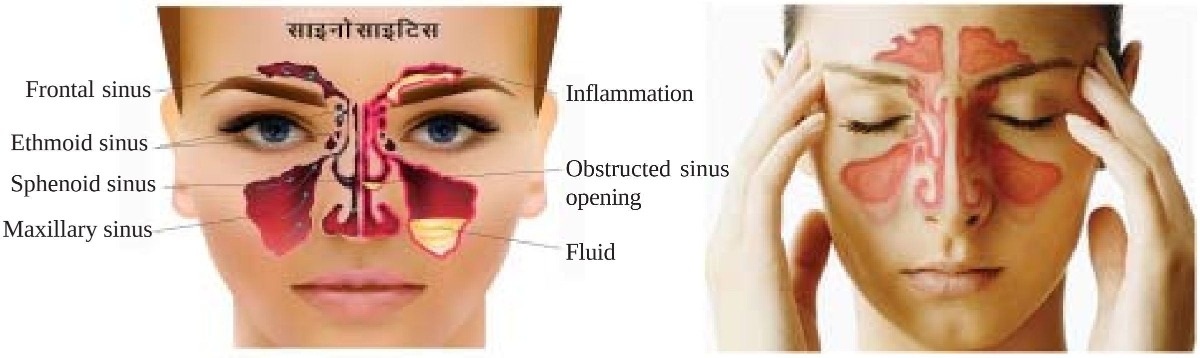

चित्र 11.1 साइनस एवं साइनोसाइटिस

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

1. नासिका के भीतर की झिल्ली में बैक्टिरिया या फंगस के संक्रमण के कारण नासिका क्षेत्र में दर्द के साथ सूजन होना।
2. लगातार जुकाम के साथ श्लेष्मा का अधिक स्राव होना।

3. नासिका के चारों ओर चेहरे पर सूजन आ जाना।
4. शरीर में शक्तिहीनता के साथ तेज सिरदर्द रहना।
5. नासिका में गन्ध ग्रहण करने की शक्ति क्षीण हो जाना।
6. नासिका में साइनस की जगहों पर दबाने से दर्द होना।
7. नाक की हड्डी बढ़ने अथवा टेढ़ी होने के कारण श्वास लेने में आवाज के साथ परेशानी होना।
8. खांसी होना व नासिका में कफ जम जाना।

ekuo 'kjhj e mijkDr y{k.k 'olu r= d lkbul jkx dh vkj ldr djr gA

11-1-2 VkfUlykbfVl jkx dk lkekU; ifjp; ,o y{k.k

मानव शरीर में गले के दोनों ओर टॉन्सिल नामक दो लिम्फ ग्रन्थियां उपस्थित रहती हैं, जिनका कार्य बाह्य रोगाणु अथवा विषाणुओं से शरीर की सुरक्षा करना होता है। अचानक मौसम में परिवर्तन, ठण्डे पदार्थों का अधिक सेवन और अव्यवस्थित दिनचर्या के परिणाम स्वरूप जब इन ग्रन्थियों में संक्रमण हो जाता है तब इनके आकार में वृद्धि के साथ तीव्र वेदना होने लगती है जिसे टॉन्सिलाइटिस रोग कहा जाता है। श्वसन तंत्र का यह रोग पहले बच्चों में अधिक पाया जाता था परन्तु अब यह युवाओं को भी चपेट में ले रहा है।

चित्र 11.2 टॉन्सिल का स्थान

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

1. टॉन्सिल ग्रन्थियों में संक्रमण के कारण इस क्षेत्र में दर्द के साथ सूजन होना।
2. गले में कफ की अधिकता के साथ खराश होना।
3. गले में तीव्र वेदना के साथ कुछ भी निगलने में बहुत परेशानी होना।
4. गले से लेकर कानों तक दर्द एवं खुजली होना।

5. शरीर का कमजोरी के साथ बुखार से ग्रस्त हो जाना।

6. बोलने में परेशानी के साथ आवाज परिवर्तित हो जाना।

7. गर्दन में दर्द के साथ सिरदर्द होना।

'kjhj e mijkDr y{k.k 'olu r= d VkfUlykbfVl jkx dh vkj ldr djr gA

11-1-3 ckdkbfVl jkx dk lkekU; ifjp; ,o y{k.k

शिक्षार्थियों जैसा कि आप जानते हैं कि मानव शरीर की वक्षीय गुहा में दो फेफड़े उपस्थित होते हैं। जिनके भीतर श्वसनी और श्वसनिकाओं का जाल फैला होता है। इन श्वसनिकाओं में बाह्य रोगाणु अथवा विषाणुओं से संक्रमण होने के कारण पर इनमें सूजन उत्पन्न हो जाती है, तो इसे ब्रोन्काईटिस (श्वसनी शोथ) रोग कहा जाता है।

चित्र 11.3 ब्रोंकाईटिस रोग का स्थान

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

1. श्वसनियों में संक्रमण के कारण वक्ष प्रदेश में तीव्र दर्द होना।

2. कफ की अधिकता के साथ खांसी होना एवं खांसते समय बहुत परेशानी होना।

3. श्वसन क्रिया अव्यवस्थित होने के साथ श्वास फूलना।

4. श्वसन गति में वृद्धि के साथ नाड़ी दर बढ़ जाना।

5. शरीर में कमजोरी के साथ ठंड लगते हुए बुखार आ जाना।

fVIi.kh

fVIi.kh

6. सम्पूर्ण शरीर में दर्द के साथ बच्चों में न्यूमोनिया हो जाना।

7. लगातार नाक बहना और भूख नहीं लगना।

'kjhj eas mijksDr y{k.k 'olu r= d cSDVsfj;y jksx dh vksj ladsr djrs gSA

11-1-4 vLFkek ¼nek½ jksx dk lkekU; ifjp; ,oa y{k.k

आधुनिक समाज में श्वसन तंत्र का यह रोग बहुत तेजी से बढ़ रहा है। पहले यह एक बुढ़ापे का रोग माना जाता था परन्तु मानसिक तनाव और रोग प्रतिरोधक क्षमता क्षीण होने के कारण आजकल यह रोग बच्चों और युवाओं में भी बहुत तेजी से फैलता जा रहा है। महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है यह रोग विकासशील देशों की तुलना में विकसित देशों में अधिक फैल रहा है। यह रोग व्यक्ति की जीवनी शक्ति को इतना कमजोर बना देता है कि एक बार शरीर में प्रवेश करने के बाद जीवन भर के लिए जुड़ जाता है।

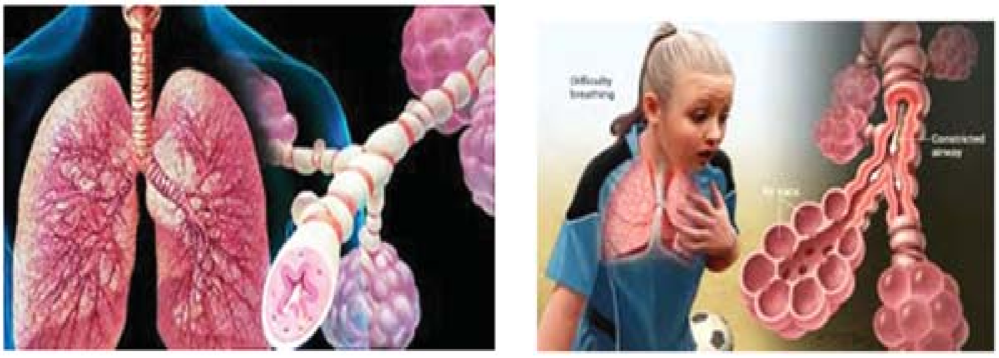

चित्र 11.4 दमा रोग

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

1 अचानक श्वसन क्रिया का तीव्र होने के साथ अनियमित और अव्यवस्थित होना।

2 बहुत खाँसी उठना और खाँसते–खाँसते व्यक्ति का होश खो देना।

3 रात्रि में खाँसी आना और प्रातःकाल नियमित रूप से लगातार खाँसी उठना।

4 सामान्य कार्य करने पर भी श्वास फूलना।

5. शरीर में कमजोरी के साथ ठंड लगते हुए बुखार आ जाना।

6 सम्पूर्ण शरीर में दर्द के साथ आलस्य और भारीपन का बने रहना।

7 कफ के साथ खाँसी का लम्बे समय तक बने रहना।

8. वक्ष प्रदेश में होना तथा शरीर में शक्तिहीनता का अनुभव होना।

'kjhj eas mijksDr y{k.k 'olu r= d vLFkek ;k nek jksx dh vksj ladsr djrs gSA

11-1-5 [kklh jkx dk lkekU; ifjp; ,oa y{k.k

श्वास नलिका में अवरोध उत्पन्न होने पर जब अधिक दबाव एवं ध्वनि के साथ वायु बाहर निकलती है, तब वह अवस्था खांसी कहलाती है। कभी किसी क्रिया के प्रतिक्रिया स्वरूप अचानक खांसी होना एक स्वाभाविक क्रिया होती है किन्तु बिना किसी प्रतिक्रिया के लगातार रोगावस्था का रूप धारण कर लेती है। आयुर्वेद शास्त्र में इस रोग को वात–पित्त और कफ के असन्तुलन का परिणाम माना जाता है। इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

1 नाक अथवा गले में अवरोध की अनुभूति होने के साथ लगातार खांसी होना।

2 खांसते समय नाक एवं आंखों से पानी आना।

3 रात्रि में सोते समय खाँसी आना और प्रातःकाल नियमित रूप से लगातार खाँसी उठना।

4 सामान्य कार्य करने पर भी खांसी उठना।

5. खांसी के साथ ठंड लगते हुए शरीर का तापक्रम बढ़ना।

6 खांसते रहने के कारण पेट में दर्द होना।

7. वक्ष प्रदेश में दर्द के साथ शरीर में शक्तिहीनता का अनुभव होना।

'kjhj e mijkDr y{k.k 'olu r= d [kklh jkx dh vkj ldr djr gA

11-1-6 fuekfu;k jkx dk lkekU; ifjp; ,oa y{k.k

निमोनिया श्वसन तंत्र का गंभीर रोग है जो मनुष्य के फेफड़ों पर सीधा प्रभाव डालता है। इस रोग के अन्तर्गत फेफड़ों में संक्रमण हो जाता है और रोग की गंभीर अवस्था में फेफड़ों के वायु कोषों में द्रव (पस)

चित्र 11.5 निमोनिया रोग

fVIi.kh

भर जाता है जिस कारण कफ के साथ खांसी, जुकाम, बुखार एवं श्वास लेने में पीड़ा उत्पन्न होती है। श्वसन तंत्र का यह रोग प्रायः कमजोर प्रतिरोधक क्षमता के मनुष्यों को अपना शिकार बनाता है किन्तु शोध से प्राप्त आंकड़ों से ज्ञात होता है कि वर्तमान समय में भारत वर्ष के साथ–साथ सम्पूर्ण विश्व में यह रोग बहुत तेजी से बढ़ता जा रहा है। इस रोग के बढ़ते प्रभाव को देखते हुए विश्व स्वास्थ्य संगठन के द्वारा प्रतिवर्ष 12 नवम्बर को 'विश्व निमोनिया दिवस' मनाया जाता है। इसका उद्देश्य इस रोग के प्रति जागरुकता बढ़ाते हुए इसके प्रभाव को रोकना है।

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

1 शरीर का तापक्रम बढ़ने (बुखार) के साथ खांसी होना।

2 श्वास लेते समय वक्ष में तीव्र वेदना होना।

3 नियमित रूप से लगातार खाँसी उठना।

4 सामान्य कार्य करने पर भी श्वास फूलना।

5. सम्पूर्ण शरीर में दर्द के साथ आलस्य और भारीपन का बने रहना।

6. वक्ष प्रदेश में दर्द के साथ शरीर में शक्तिहीनता का अनुभव होना।

'kjhj e mijkDr y{k.k 'olu r= d fuekfu;k jkx dh vkj ldr djr gA

11-1-7 c[kkj jkx dk lkekU; ifjp; ,o y{k.k

गलत आहार–विहार करने एवं उचित दिनचर्या पालन के अभाव में जब सम्पूर्ण शरीर में विजातीय विष भर जाता है तब विजातीय विषों पर बाह्य वातावरण से रोगाणु या जीवाणु अपना आक्रमण कर शरीर को संक्रमित कर देते हैं। इस संक्रमण का शरीर की आन्तरिक जीवनी शक्ति द्वारा विरोध किया जाता है, जिससे शरीर का तापक्रम (98.6 डिग्री फेरेहनाइट) बढ़ जाता है, यह अवस्था 'बुखार' कहलाती है।

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

1 सिरदर्द के साथ शरीर का तापक्रम बढ़ना।

2 हृदय की गति (Pulse Rate) और श्वास गति का बढ़ना।

3 शरीर के विभिन्न अंगों मुख्य रूप से जोड़ों में दर्द होना।

4 शरीर में थकान, आलस्य एवं शक्तिहीनता का अनुभव होना।

5 श्वसन क्रिया में बाधा उत्पन्न होने के साथ खांसी होना।

6 कंपकंपी के साथ ठण्ड का अनुभव होना।

'kjhj e mijkDr y{k.k c[kkj jkx dh vkj ldr djr gA

bdkbxr i'u&11-2

i) श्वसन तंत्र रोगों के दो प्रमुख कारण लिखिए।

....

....

ii) श्वसन तंत्र के किन्हीं दो रोगों के नाम लिखिए।

....

....

iii) साइनस रोग के दो प्रमुख लक्षण लिखिए।

....

....

iv) अस्थमा रोग के दो प्रमुख लक्षण लिखिए।

....

....

11-2 'olu r= jkxk dh ikÑfrd fpfdRlk

प्रिय शिक्षार्थियों, प्राकृतिक चिकित्सा का प्रारम्भ प्रकृति के समीप रहते हुए प्राकृतिक जीवनयापन करने से होता है। अतः सर्वप्रथम सुव्यवस्थित दिनचर्या एवं आहार–विहार पर नियंत्रण करते हुए साफ–स्वच्छ प्राकृतिक वातावरण में वास करने से श्वसन तंत्र के रोगों में शीघ्र लाभ प्राप्त होता है। इसके साथ–साथ श्वसन तंत्र के रोगों से मुक्ति प्राप्त करने के लिए स्वच्छ वायु का सेवन बहुत आवश्यक होता है। अतः प्रातःकाल सूर्योदय पूर्व उठकर प्रातःकालीन भ्रमण और प्राणायाम का अभ्यास श्वसन रोगों को दूर करने में बहुत लाभकारी भूमिका वहन करता है। श्वसन तंत्र के रोगों में प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत पंचमहाभूतों का सम्यक प्रयोग करने से श्वसन रोगों में स्थाई लाभ प्राप्त होता है। श्वसन तंत्र के रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा इस प्रकार है–

¼d½ i`Foh rRo fpfdRlk

श्वसन तंत्र के रोगों में गर्म मिट्टी का प्रयोग बहुत लाभकारी प्रभाव रखता है। गीली मिट्टी को गर्म करके वक्ष एवं रीढ़ पर प्रयोग करने से विषाक्त पदार्थों का अवशोषण होता है और रोगावस्था में शीघ्र लाभ प्राप्त होता है। इसके साथ–साथ पृथ्वी से उत्पन्न उष्ण स्वभाव के प्राकृतिक खाद्य पदार्थों का सेवन करने से श्वसन रोगों में लाभ प्राप्त होता है। श्वसन रोगों में अदरक, अजवायन, काली मिर्च, तुलसी, पिप्पली, दालचीनी, तेजपत्र आदि उष्ण स्वभाव के खाद्य पदार्थों का सेवन लाभकारी प्रभाव रखता है।

fVIi.kh

¼[k½ ty rRo fpfdRlk

श्वसन तंत्र के रोगों का सीधा सम्बन्ध कफ दोष की विकृति से होता है। अतः कफ दोष को सम बनाने के लिए उष्ण जल का प्रयोग करना चाहिए। प्रातःकाल उठते ही उषापान के रूप में गर्म जल का सेवन करना चाहिए। इसके उपरान्त शौच आदि से निवृत्त होने के उपरान्त नमकीन गुनगुने जल से वमन और कुंजल क्रिया का अभ्यास करना चाहिए।

श्वसन रोगों में गर्म कटि स्नान, गर्म रीढ़ स्नान, गर्म पैर स्नान और भाप स्नान का प्रयोग बहुत लाभकारी प्रभाव रखता है। यहाँ पर प्रमुख सावधानी यह रखनी चाहिए कि श्वसन रोगी को भाप स्नान देने के उपरान्त ठंडे जल से स्नान नहीं करवाना चाहिए। इसके साथ–साथ मुंह एवं वक्ष पर भाप का सेवन भी लाभकारी प्रभाव रखता है। श्वसन रोगों में अजवायन, लौंग, दालचीनी, तुलसी आदि प्राकृतिक औषध द्रव्यों की भाप का सेवन करने से रोगावस्था में शीघ्र लाभ प्राप्त होता है।

¼x½ vfXu rRo fpfdRlk

श्वसन तंत्र के रोगों में कंठ एवं वक्ष प्रदेश की गर्म–ठंडी सिकाई बहुत लाभकारी प्रभाव रखती है। श्वसन तंत्र के रोगों में शरीर में ऊर्जा का स्तर कम हो जाता है अतः शरीर में ऊर्जा के स्तर को बढ़ाने के लिए लाल रंग का प्रयोग किया जाता है। खांसी रोग को दूर करने के लिए नारंगी रंग एवं गहरे नीले रंग का प्रयोग किया जाता है।

¼?k½ ok;q rRo fpfdRlk

श्वसन तंत्र के रोगों में प्रातःकाल की शुद्ध वायु का सेवन एवं प्राणायाम का अभ्यास लाभ पहुंचाता है। यद्यपि अधिक ठंड के दिनों में प्रातःकाल ठंडी हवा में भ्रमण नहीं करना चाहिए क्योंकि शीतल वायु द्वारा कफ दोष में वृद्धि करने से श्वसन रोग जटिल बन सकते हैं परन्तु सामान्य दिनों में प्रातःकाल की स्वच्छ वायु श्वसन रोगों में लाभकारी प्रभाव रखती है।

श्वसन रोगों में शरीर की कार्यक्षमता क्षीण हो जाती है जिसे पुनः उन्नत बनाने में प्राणायाम का अभ्यास बहुत महत्वपूर्ण है। श्वसन रोगों की अवस्था में धीरे–धीरे प्राणायाम का समय बढ़ाते रहना चाहिए। प्राणायाम के क्रम में नाड़ी शोधन, अनुलोम–विलोम, कपालभाति, भस्त्रिका, उज्जायी और भ्रामरी का अभ्यास पर्याप्त समय तक एवं नियमित रूप से करना चाहिए। श्वसन रोगों में प्राणायाम का अभ्यास प्रातः और सांयकाल दोनों समय किया जा सकता है।

¼³½ vkdk'k rRo fpfdRlk

आकाश तत्व चिकित्सा में लघु उपवास एवं प्रार्थना का अभ्यास अत्यन्त लाभकारी प्रभाव रखता है। श्वसन रोगी को दीर्घ समय का उपवास नहीं करना चाहिए अपितु लघुकालिक उपवास करते हुए शरीर की जीवनी शक्ति को उन्नत बनाने का प्रयास करना चाहिए।

'olu ,o ân; lc/kh ie[k j¨x ,o ikÑfrd fpfdRlk

विभिन्न शोधों से स्पष्ट होता है कि श्वसन रोगों में तनाव एवं मानसिक संवेगों का सीधा प्रभाव पड़ता है। तनाव एवं नकारात्मक चिन्तन से दमा आदि श्वसन रोग जटिल और गंभीर बन जाते हैं। अतः इस अवस्था में सकारात्मक मनन–चिन्तन, ध्यान एवं ईश्वर प्रार्थना का बहुत सकारात्मक प्रभाव श्वसन रोगों में प्राप्त होता है।

इस प्रकार उपरोक्त पचंमहाभूतों के सम्यक प्रयोग से श्वसन तंत्र के रोगों में शीघ्र एवं स्थाई लाभ प्राप्त होता है। श्वसन रोगी को अपथ्य आहार का त्याग करते हुए केवल पथ्य आहार का सेवन करना चाहिए।

viF; vkgkj% गरिष्ठ तेलयुक्त खाद्य पदार्थ, शीत प्रकृति के खाद्य पदार्थ, मैदा और मैदे से बनी वस्तुएं, बासी एवं प्रिजर्वेटिव युक्त खाद्य पदार्थ, मिठाइयां, बर्फ–आईसक्रीम, दही–मठ्ठा एवं फ्रिज के ठंडे जल का पूर्णतया त्याग कर देना चाहिए।

iF; vkgkj% हल्का सुपाच्य आहार, उष्ण प्रकृति के खाद्य पदार्थ जैसे अदरक, सौंठ, इलायची, काली मिर्च, अजवायन, तुलसी, सब्जियों का गर्म सूप, विटामिन ए और सी युक्त ताजे फल, चौकर युक्त आटे की रोटियां एवं गर्म जल का सेवन करना चाहिए।

bdkbxr i'u&11-3

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

i) श्वसन तंत्र के रोगों का सीधा सम्बन्ध .... दोष की विकृति से होता है।

ii) श्वसन तंत्र के रोगों की आकाश तत्व चिकित्सा में .... एवं .... का अभ्यास अत्यन्त लाभकारी प्रभाव रखता है।

iii) शरीर में ऊर्जा के स्तर को बढ़ाने के लिए .... रंग का प्रयोग किया जाता है।

iv) श्वसन रोगी को भाप स्नान देने के उपरान्त .... से स्नान नहीं करवाना चाहिए।

11-3 ân; lEcfU/kr ie[k jkxk d dkj.k

प्रिय शिक्षार्थियों, प्राचीन काल में जब वातारण प्रदूषण से मुक्त था और मनुष्य का आहार पूर्ण रूप से प्राकृतिक था एवं मनुष्य निश्चित दिनचर्या के अन्तर्गत समय पर उठने से लेकर सभी कार्य सुव्यवथित रूप से करता हुआ तनावमुक्त रहता था, उस समय मनुष्य का हृदय पूर्ण रूप से रोगों से मुक्त रहता था। परन्तु वर्तमान समय में प्रदूषित वातावरण के साथ, कृत्रिम रसायनों से युक्त आहार करना और अव्यवस्थित दिनचर्या के साथ मानसिक तनाव से ग्रस्त रहना, कुछ ऐसे महत्वपूर्ण कारक हैं जिनके कारण हृदय रोगों की समाज में एक बाढ़ सी आ गयी है। वर्तमान समय में हृदय रोग सम्पूर्ण विश्व के समक्ष बहुत बड़ी चुनौती के रूप में

fVIi.kh

उभर रहे हैं। विश्व में हृदय रोगों के कारण प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में लोग मृत्यु को प्राप्त हो रहे हैं और रक्तचाप की समस्या को सबसे बड़ी महामारी घोषित किया गया है। इन रोगों की उत्पत्ति के प्रमुख कारण निम्नलिखित होते हैं–

- अप्राकृतिक एवं असंयमित जीवनशैली, रात्रिजागरण एवं अनियमित दिनचर्या।
- प्राकृतिक एवं सात्विक आहार के स्थान पर अधिक वसायुक्त राजसिक एवं तामसिक खाद्य पदार्थों (मैदा, चीनी, तेल, खटाई, अचार आदि) का अधिक सेवन करना।
- उत्तेजक दवाइयों तथा नशीले पदार्थों जैसे गुटका–पान मसाला, सिगरेट, बीड़ी व शराब आदि का अधिक सेवन करना।
- डिब्बाबंद आहार, फास्ट फूड, सोडा वाटर, सॉफ्ट ड्रिंक्स, नमक व माँसाहारी भोजन का अधिक सेवन करना।
- पूर्णरूप से शारीरिक श्रम का अभाव, मोटापा एवं अत्यधिक सुविधायुक्त भोगमय जीवनशैली को अपनाना।
- अधिक समय तक नकारात्मक मनन–चिन्तन करना, क्रोध में रहना, अत्यधिक चिन्ता एवं मानसिक तनाव आदि संवेगों में रहना।

इस प्रकार उपरोक्त कारणों के परिणामस्वरूप हृदय रोगों की उत्पत्ति होती है। मनुष्य के शरीर में हृदय से सम्बन्धित प्रमुख रोग निम्न होते हैं–

11-3-1 dkjksujh vkjVjh fMthT dk lkekU; ifjp; ,oa y{k.k

यह हृदय से सम्बन्धित ऐसा रोग है जो वर्तमान समय में बहुत तेजी से बढ़ता जा रहा है। विकृत आहार–विहार अथवा अन्य कारणों से जब शरीर में हृदय सम्बधित धमनियों में वसा जमने से इनका आकार संकरा हो जाता है तब हृदय में रक्त के संचार की क्रिया बाधित होने लगती है और सीने में तीव्र चुभन तथा

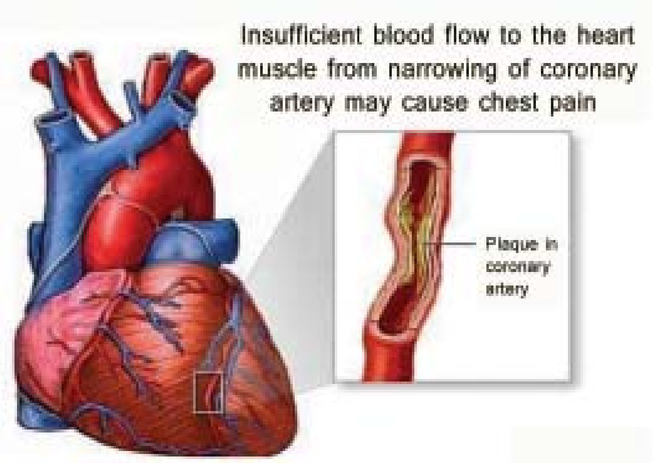

चित्र 11.6 कोरोनरी आरटरी डिजीज

दर्द उत्पन्न होता है, जिसे कोरोनरी आरटरी डिजीज कहा जाता है। इस रोग से ग्रस्त होने पर रोगी व्यक्ति की शल्य चिकित्सा एन्जियोप्लास्टी कराई जाती है किन्तु इससे भी समस्या का स्थाई समाधान नहीं होता है। अपितु पुनः इस रोग के लक्षण प्रकट होने लगते हैं।

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

1. सीने में बहुत तेज दर्द के साथ सुई के समान चुभन का होना इस रोग का सबसे प्रमुख व महत्वपूर्ण लक्षण होता है।
2. दीर्घ श्वास में परेशानी होने के साथ छोटी श्वासें आना एवं श्वासों का फूलना।
3. सीने में दर्द के साथ जी मिचलाना।
4. असामान्य रूप से बिना कार्य किए हुए बहुत थकान होना।
5. वक्ष में सूजन के साथ ठंडा पसीना आना।

शरीर में उपरोक्त लक्षण हृदय से सम्बन्धित कोरोनरी आरटरी डिजीज रोग की ओर संकेत करते हैं। कुछ परिस्थितियों में मनुष्य इसे पाचन तंत्र का अपच या एसिडिटी रोग मान लेता है किन्तु ऐसी अवस्थाओं में बहुत ध्यान देने की आवश्यकता होती है क्योंकि आगे चलकर यह गंभीर हृदयाघात (Heart attack) का कारण भी बन सकता है।

11-3-2 ,atkbuk iDVkfjl jkx dk lkekU; ifjp; ,o y{k.k

जब किसी कारण इस स्थिति को एंजाइना पेक्टोरिस कहते हैं। हृदय की मांसपेशियों को कम मात्रा में रक्त आपूर्ति होती है, तब वक्ष के बायें भाग में तीव्र दर्द के साथ श्वास लेने में परेशानी होती है। मानव शरीर के वक्ष स्थल में बांयी ओर उठने वाले दर्द को कई बार पाचन तंत्र का अपच या एसिडिटी रोग मानकर इसे अनदेखा कर दिया जाता है और कई बार मनुष्य बहुत परेशान हो जाता है जबकि वास्तव में यह हृदय का एंजाइना पेक्टोरिस रोग होता है।

चित्र 11.7 एंजाइना पेक्टोरिस (हृदयाघात)

fVIi.kh

मानव शरीर में एंजाइना पेक्टोरिस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

1. सीने में बांयी ओर हल्का अथवा तेज दर्द होना इस रोग का सबसे प्रमुख लक्षण होता है जो इस रोग की ओर संकेत करता है।

2. छाती में जलन के साथ बेचैनी महसूस होना।

3. सीने में जकड़न के साथ भारीपन महसूस होना।

4. सीने का दर्द कन्धों, गले और पीठ की ओर भी स्थानान्तरित होना।

'kjhj e miijkDr y{k.k ân; d ,tkbuk iDVkfjl jkx dh vkj ldr djr gA bl jkx dh tkp d fy, vk/kfud fpfdRlk foKku e byDVkdkfM;kxke ¼b0 lh0 th0½ djk;k tkrk gA

11-3-3 jDrpki jkx dk lkekU; ifjp; ,o y{k.k

मानव शरीर में सामान्यतया 5.5 लीटर रक्त उपस्थित होता है। इस रक्त की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह होती है कि शरीर में रक्त किसी भी स्थान पर रूकता नहीं है अपितु प्रतिक्षण हृदय और रक्तवाहिनियों में परिभ्रमण करता रहता है। **'kjhj e jDr ftl ncko d lkFk ân; l jDrokfgfu;k e cgrk g ml jDrpki dgk tkrk gA** जब हृदय सिकुड़ता है तो 120 m.m. of Hg. का दबाव होता है जिसे सिस्टोलिक प्रेशर और जब हृदय फैलता है तो 80 m.m. of Hg. का दबाव होता है जिसे डायस्टोलिक प्रेशर कहा जाता है। इस प्रकार स्वस्थ मनुष्य का रक्त चाप 120–80 m.m. of Hg. होता है। जिसे स्फेग्मोमेनोमीटर नामक यंत्र की सहायता से मापा जाता है। परन्तु जब किन्हीं कारणों या परिस्थितियों के प्रभाव से रक्तचाप इस सामान्य स्तर से अधिक अथवा कम होता है तब उस अवस्था को रक्तचाप रोग की संज्ञा दी जाती है। रक्तचाप सम्पूर्ण विश्व में सबसे बड़ी महामारी है जिससे ग्रस्त होने वाले रोगियों की संख्या

चित्र 11.8 रक्तचाप मापते हुए

विश्व में सबसे अधिक है। इस रोग के दो प्रमुख प्रकार होते हैं।

प्रथम उच्चरक्तचाप में निम्न लक्षण उत्पन्न होते हैं–

1. तेज सिरदर्द के साथ पसीना आना।
2. श्वास गति और नाड़ी स्पंदन की दर अचानक तेज हो जाना।
3. हाथों–पैरों में सूक्ष्म कम्पन्न होने के साथ श्वास फूलना।
4. संवेगों पर नियंत्रण का अभाव होने के साथ अधिक क्रोध और स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाना।
5. बेचैनी होना, नींद में कमी होना और नाक से खून निकलना।

इस रोग का दूसरा प्रकार निम्न रक्तचाप होता है जिसमें निम्न लक्षण उत्पन्न होते हैं–

1. सिर में हल्के दर्द के साथ हाथ–पैर ठंडे रहना।
2. श्वास गति और नाड़ी स्पंदन की दर अनियमित हो जाना।
3. हाथों–पैरों में शक्तिहीनता होना।
4. कार्य में मन नहीं लगना।
5. जी मिचलाना, उल्टी होना, धुंधला दिखलाई देना और बेहोशी होना निम्न रक्तचाप रोग के लक्षण हैं।

'kjhj e mijkDr y{k.k jDrpki jkx dh vkj ldr djr gA

11-3-4 bfLdfed ân; jkx dk lkekU; ifjp; ,o y{k.k

प्रिय शिक्षार्थियों, जैसा कि इस इकाई (यूनिट) में हमने हृदय से सम्बन्धित कोरोनरी आरटरी डिजीज का अध्ययन किया है यह ठीक उसी के समान रोग है जो वर्तमान समय में बहुत तेजी से बढ़ता जा रहा है। अमेरिका जैसे विकसित देश में इस रोग के लाखों की संख्या में मामले आते हैं। इस रोग में भी जब शरीर में हृदय से सम्बधित धमनियां क्षतिग्रस्त हो जाती हैं अथवा धमनियों में वसा जमने के कारण इनका आकार संकरा हो जाता है तब उस स्थिति में हृदय में रक्त का संचार की क्रिया बाधित होने लगती है और सीने में तीव्र चुभन के साथ दर्द उत्पन्न होता है जिसे इस्किमिक हृदय रोग कहा जाता है।

चित्र 11.9 इस्किमिक हृदय रोग

fVIi.kh

fVIi.kh

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

1. सीने में बहुत तेज दर्द के साथ सुई के समान चुभन का होना इस रोग का सबसे प्रमुख व महत्वपूर्ण लक्षण होता है।

2. सीने में बहुत तेज दर्द के साथ दिल का दौरा भी पड़ जाता है।

3. दीर्घ श्वास में परेशानी होने के साथ छोटी श्वासें आना एवं श्वासों का फूलना।

4. सीने में दर्द के साथ जी मिचलाना।

5. असामान्य रूप से बिना कार्य किए हुए बहुत थकान होना।

6. वक्ष में सूजन के साथ ठंडे पसीने की अनुभूति होना।

bl idkj 'kjhj e mijkDr y{k.k bfLdfed ân; jkx dh vkj lidr djr gA

11-3-5 ofjdkt f'kjk jkx dk lkekU; ifjp; ,o y{k.k

प्रिय शिक्षार्थियों, आपको स्मरण होगा कि मानव शरीर में हृदय से ऑक्सीजन युक्त रक्त सम्पूर्ण शरीर के अंगों, ऊतकों और कोशिकाओं तक जाता है, जहां पर रक्त से ऑक्सीजन ऊतक ग्रहण कर लेते हैं और कार्बन–डाईऑक्साईड रक्त को दे देते हैं। कार्बन–डाईऑक्साईड को लेकर रक्त वेन्स (Veins) के माध्यम से वापिस हृदय में आता है। इस अवस्था में रक्त गुरुत्वाकर्षण बल के विरुद्व ऊपर की ओर आता है अतः इसमें बल की आवश्यकता होती है। इस बल को पैरों में स्थित मांसपेशियों से प्राप्त किया जाता है। परन्तु बढ़ती उम्र के प्रभाव से अथवा अन्य कारणों से जब अशुद्ध रक्त वापिस हृदय में नहीं जा पाता है और

चित्र 11.10 वेरिकोज शिरा रोग

'olu ,o ân; lc/kh ie[k j¨x ,o ikÑfrd fpfdRlk

वेन्स में ही एकत्र होने लगता है तब इस रोगावस्था को वेरिकोज शिरा (Varicose Veins) का नाम दिया जाता है। वर्तमान समय में यह रोग सम्पूर्ण विश्व में तेजी से फैलता जा रहा है।

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

1. पैरों पर नीली और लाल रंग की नसें असामान्य रूप से उभार लिए हुए अलग से दिखलाई पड़ना इस रोग का सबसे प्रमुख एवं मूल लक्षण है।
2. पैरों के इन भागों में भारीपन के कारण जलन की अनुभूति होना है।
3. लम्बे समय तक लगातार खड़े होकर कार्य करने से उपरोक्त समस्या का बढ़ना व पैरों में तीव्र दर्द होना।
4. रोग की गंभीर अवस्था में त्वचा के रंग में परिवर्तन, त्वचा में सूजन और नसों में कठोरता (स्टिफनेस) आना।
5. पैर के टखने के पास से इसका क्षेत्र फैलने लगता है और इस स्थान पर खुजली, जलन और बेचैनी होने लगती है।

bl idkj 'kjhj e mijkDr y{k.k ofjdkt f'kjk jkx dh vkj lidr djr gA

bdkbZ ik'u&11-4

i) हृदय संबंधी रोगों के दो प्रमुख कारण लिखिए।

....

....

ii) एक स्वस्थ मनुष्य का सामान्य रक्तचाप लिखिए।

....

....

iii) वेरिकोज शिरा रोग के दो प्रमुख लक्षण लिखिए।

....

....

iv) हृदय संबंधी किन्हीं दो रोगों के नाम लिखिए।

....

....

fVIi.kh

11-4 ân; jkxk dh ikÑfrd fpfdRlk

प्रिय शिक्षार्थियों, वर्तमान समय में हृदय रोग और रक्तचाप की समस्या सम्पूर्ण विश्व के लिए बहुत बड़ी चुनौती बनी हुई है। इस समस्या से निपटने के लिए अनेक शोध–अनुसंधान कार्य किए जा रहे हैं किन्तु इस समस्या का स्थाई समाधान अभी तक भी प्राप्त नहीं हो पाया है। विश्व में इन रोगों से ग्रस्त होकर अकाल मृत्यु को प्राप्त होने वाले मनुष्य की संख्या सबसे अधिक है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने इन रोगों को असाध्य रोगों की श्रेणी में रख दिया है जिनका स्थाई उपचार संभव नहीं होता है अपितु एक बार इन रोगों की चपेट में आने के बाद मनुष्य दवाइयों के प्रभाव से केवल इन रोगों के लक्षणों को दबाए रख सकता है और इन रोगों से मुक्ति प्राप्त करना संभव नहीं है। इसलिए विषय की गंभीरता के समझते हुए विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा प्रतिवर्ष 29 सितम्बर को 'विश्व हृदय दिवस' घोषित किया गया है। इसका उद्देश्य हृदय रोगों के प्रति जागरूकता उत्पन्न करते हुए इससे सम्बन्धित रोगों पर नियंत्रण प्राप्त करना है।

इन रोगों का प्राकृतिक चिकित्सा के माध्यम से बहुत कुशलतापूर्वक प्रबन्धन किया जा सकता है। प्रकृति के नियमों का पालन करते हुए पंचमहाभूतों के सम्यक प्रभाव से हृदय रोगों एवं रक्तचाप के रोगों से बचा जा सकता है अपितु इन रोगों के लक्षणों को स्थाई रूप से दूर करते हुए इनसे सदैव के लिए मुक्ति भी प्राप्त की जा सकती है। सर्वप्रथम प्राकृतिक जीवनयापन करते हुए सुव्यवस्थित दिनचर्या एवं प्राकृतिक आहार–विहार को अपनाते हुए स्वयं को अनुशासित और सकारात्मक बनाने से हृदय रोगों में शीघ्र लाभ प्राप्त होता है। इसके साथ–साथ हृदय रोगों में पंचमहाभूतों का सम्यक प्रयोग करने से ये रोग समूल नष्ट होते हैं। रासायनिक दवाइयों एवं अप्राकृतिक जीवनयापन का त्याग करते हुए सकारात्मक मनन–चिन्तन एवं प्रकृति के नियमों के अनुरूप जीवनचर्या को अपनाने से रक्तचाप एवं हृदय रोगों में तुरन्त लाभ मिलने लगता है। हृदय रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा इस प्रकार है–

¼d½ **iFoh rRo fpfdRlk&** रक्तचाप एवं हृदय रोगों का सम्बन्ध रक्त की अशुद्धि से होता है अतः रक्त को शुद्ध बनाने के लिए मिट्टी का प्रयोग किया जाता है। उदर और, रीढ़ पर गीली मिटटी की पट्टी और सम्पूर्ण शरीर पर मिट्टी का लेप करने से रक्त के विषाक्त तत्व मिट्टी के द्वारा अवशोषित कर लिये जाते हैं जिससे इन रोगों में स्थाई लाभ प्राप्त होता है।

¼[k½ **ty rRo fpfdRlk&** हृदय संबंधी रोगों के उपचार में जल चिकित्सा बहुत प्रभावी सिद्ध होती है। प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सा डा0 जे0 एच केलॉग के शब्दों में ''कोई भी औषधि उतना कार्य नहीं कर पाती जितना कार्य केवल शीतल जल का स्पर्श करता है।'' मनुष्य के रक्तचाप को संतुलित करने से लेकर गंभीर हृदय रोगों के उपचार में जल का प्रयोग बहुत लाभकारी प्रभाव रखता है। हृदय रोगों में कटि स्नान, रीढ़ स्नान, गर्म पैर स्नान और सम्पूर्ण स्नान लाभ पहुँचाती है। यहां पर प्रमुख सावधानी यह रखनी चाहिए कि उच्च रक्तचाप एवं हृदय रोगों की अवस्था में रीढ़ अथवा सिर पर गर्म उपचार नहीं दिया जाता है।

रक्तचाप एवं हृदय रोगों की अवस्था में प्रातःकाल उषापान का अभ्यास बहुत आवश्यक होता है। शरीर शोधन एवं कब्ज रोग से मुक्ति प्राप्त करने हेतु एनिमा क्रिया का सकारात्मक प्रभाव होता है। इसके साथ

सिर पर ठंडे जल का तौलिया एवं पैरों पर गर्म जल की बोतल से सिकाई करने पर सम्पूर्ण शरीर में रक्त संचार सही प्रकार सें होने लगता है और रक्तचाप एवं हृदय रोगों को दूर करने में सहायता मिलती है।

¼x½ vfXu rRo fpfdRlk& रक्तचाप एवं हृदय रोगों की अवस्था में नीले एवं आसमानी रंग का प्रयोग लाभकारी प्रभाव रखता है। इन रंगों की किरणों का शरीर पर प्रयोग करने एवं इन रंगों से आवेशित जल का सेवन करने से रक्तचाप एवं हृदय रोगों में लाभ प्राप्त होता है।

¼?k½ ok;q rRo fpfdRlk– रक्तचाप एवं हृदय रोगों की अवस्था में प्रातःकालीन भ्रमण लाभदायक है। इसके साथ–साथ अनुलोम–विलोम और नाड़ीशोधन प्राणायाम का अभ्यास करने से हृदय को बल मिलता है। भ्रामरी प्राणायाम के साथ नियमित रूप से दीर्घ श्वसन के साथ ओंकार जप करने से हृदय स्वस्थ एवं रोगमुक्त बनता है। रोगी मनुष्य के द्वारा प्रतिदिन प्रातःकाल प्राणायाम का पर्याप्त समय तक अभ्यास करने से रक्तचाप सन्तुलित होता है और हृदय संबंधी रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है।

रक्तचाप एवं हृदय रोगों की अवस्था में हाथों की हथेलियों, पैरों के पंजों एवं रीढ़ पर मालिश करने से शीघ्र लाभ मिलता है। पैर के पंजों एवं हाथ की हथेलियों में स्थित सूक्ष्म ऊर्जा केन्द्रों पर दबाव देने से भी रोगावस्था में लाभ प्राप्त होता है।

¼³½ vkdk'k rRo fpfdRlk& रक्तचाप एवं हृदय रोगों की अवस्था में दीर्घ उपवास पूर्ण रूप से निषेध होते हैं अपितु इनके स्थान पर रोगी मनुष्य को चिकित्सक की देख–रेख में लघु उपवास कराने से लाभ प्राप्त होता है। उपवास काल में कठिन श्रम एवं मानसिक संवेगों का त्याग करते हुए ईश्वर का ध्यान करना चाहिए। रक्तचाप एवं हृदय रोगों की अवस्था में ईश्वर समर्पण के भावों को अपनाते हुए ध्यान एवं प्रार्थना का अभ्यास करना चाहिए एवं मानसिक तनाव का पूर्ण रूप से त्याग करना चहिए। त्राटक क्रिया के माध्यम से स्थूल विषयों पर ध्यान की प्रक्रिया को बढ़ाते हुए ज्योतिर्ध्यान और सूक्ष्म ध्यान का प्रतिदिन अभ्यास करने से इन रोगों में स्थाई लाभ मिलना प्रारम्भ हो जाता है। हृदय रोगी को प्रतिदिन विधिपूर्वक ध्यान का अभ्यास एवं पूर्णमनोयोग से ईश्वर प्रार्थना करने से रोगावस्था से मुक्ति प्राप्त होकर उत्तम स्वास्थ्य प्राप्ति होती है।

हृदय संबंधी रोगों में उपरोक्त प्राकृतिक चिकित्सा के साथ–साथ निम्न वर्णित अपथ्य आहार का त्याग करते हुए केवल पथ्य आहार का सेवन करना चाहिए। रक्तचाप एवं हृदय रोगी को निम्न पथ्य–अपथ्य आहार पर विशेष ध्यान रखना चाहिए–

(i) **viF; vkgkj%** नमक, मिर्च, मसाले, वसा, डालडा, घी–तेल चिकनाई युक्त खाद्य पदार्थ, मैदा और मैदे से बनी वस्तुएं, बासी एवं प्रिजर्वेटिव युक्त खाद्य पदार्थ, मलाई, बाजार की मिठाइयां, बर्फ–आईसक्रीम, कोल्ड ड्रिंक्स आदि का त्याग कर देना चाहिए।

(ii) **iF; vkgkj%** हल्का सुपाच्य आहार, गेंहूँ–जौ और चना मिलाकर चौकर युक्त आटे की रोटियां, दलिया, लौकी, तुराई, टमाटर, नींबू, विटामिन ए और सी युक्त ताजे फल जैसे सन्तरा, मौसमी, अनार, पपीता, अंगूर, अनानास, नारियल पानी आदि सुपाच्य खाद्य पदार्थों का सेवन करना चाहिए।

fVIi.kh

bdkbxr i’u&11-5

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

i) उच्च रक्तचाप एवं हृदय रोगों की अवस्था में .... उपचार नहीं दिया जाता है।

ii) रक्तचाप एवं हृदय रोगों की अवस्था में .... पूर्ण रूप से निषेध होते हैं

iii) विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा प्रतिवर्ष .... को 'विश्व हृदय दिवस' घोषित किया हुआ है।

vkius D;k lh[kk

इस इकाई (यूनिट) में आपने सीखा कि –

- आधुनिक समय में फैक्ट्रियों और यातायात के साधनों से निकलने वाले धुएं, वातावरण में प्रयोग हो रहे रासायनिक कीटनाशक जहर, जनसंख्या विस्फोट और अग्निहोत्र (हवन) नहीं करने आदि कारकों ने पर्यावरण असन्तुलन की स्थिति उत्पन्न कर दी है। इसके साथ–साथ विकृत खान–पान और मानसिक तनाव के कारण मनुष्यों में श्वसन तंत्र से सम्बन्धित रोगों की बाढ़ सी आयी हुई है।

- श्वसन तंत्र के रोगों में साइनोसाइटिस, टॉन्सिलाइटिस, ब्रोन्काइटिस, अस्थमा, खांसी, निमोनिया एवं बुखार प्रमुख होते हैं। इन रोगों से ग्रस्त होने पर शरीर की श्वसन क्रिया अव्यवस्थित हो जाती है और शरीर की कार्य क्षमता धीरे–धीरे क्षीण होने लगती है।

- सुव्यवस्थित दिनचर्या एवं आहार–विहार पर नियंत्रण करते हुए साफ–स्वच्छ प्राकृतिक वातावरण में वास करने से श्वसन तंत्र के रोगों में शीघ्र लाभ प्राप्त होता है। इसके साथ–साथ श्वसन तंत्र के रोगों से मुक्ति प्राप्त करने के लिए स्वच्छ वायु का सेवन बहुत आवश्यक होता है।

- पंचमहाभूतों के सम्यक प्रयोग से श्वसन तंत्र के रोगों में शीघ्र एवं स्थाई लाभ प्राप्त होता है। श्वसन रोगी को अपथ्य आहार का त्याग करते हुए केवल पथ्य आहार का सेवन करना चाहिए।

- प्राचीन काल में जब वातारण प्रदूषण मुक्त तथा दिनचर्या सुव्यवथित थी, उस समय मनुष्य का हृदय पूर्ण रूप से रोगों से मुक्त रहता था। परन्तु वर्तमान समय में प्रदूषित वातावरण के साथ, कृत्रिम रसायनों से युक्त आहार करना और अव्यवस्थित दिनचर्या के साथ मानसिक तनाव से ग्रस्त रहना, ऐसे महत्वपूर्ण कारक हैं जिनके कारण हृदय रोगों की समाज में एक बाढ़ सी आ गयी है।

- वर्तमान समय में हृदय रोग और रक्तचाप की समस्या सम्पूर्ण विश्व के लिए बहुत बड़ी चुनौती बनी हुई है।

'olu ,o ân; lca/kh ie[k jksx ,o ikÑfrd fpfdRlk

- सर्वप्रथम प्राकृतिक जीवनयापन करते हुए सुव्यवस्थित दिनचर्या एवं प्राकृतिक आहार–विहार को अपनाते हुए स्वयं को अनुशासित और सकारात्मक बनाने से हृदय रोगों में शीघ्र लाभ प्राप्त होता है। इसके साथ–साथ हृदय रोगों में पंचमहाभूतों का सम्यक प्रयोग करने से यह रोग समूल नष्ट होते हैं। रासायनिक दवाइयों एवं अप्राकृतिक जीवनयापन का त्याग करते हुए सकारात्मक मनन–चिन्तन एवं प्रकृति के नियमों के अनुरूप जीवनचर्या को अपनाने से रक्तचाप एवं हृदय रोगों में तुरन्त लाभ मिलने लगता है।

bdkbl dk vUr esa iz'u

1) श्वसन तंत्र के सामान्य रोगों के प्रमुख लक्षणों का उल्लेख कीजिए।

2) वर्तमान काल में बढ़ते हृदय रोगों के कारण एवं प्राकृतिक उपचार लिखिए।

3) श्वसन तंत्र के प्रमुख रोग एवं उनका प्राकृतिक उपचार लिखिए।

4) श्वसन तंत्र के रोगों में प्राकृतिक चिकित्सा के महत्व पर प्रकाश डालिए।

bdkbxr iz'uksa ds mÙkj

11-1

i) सत्य

ii) असत्य

iii) असत्य

iv) सत्य

11-2

i) कफ

ii) लघुउपवास, प्रार्थना

iii) लाल

iv) ठंडे जल

fVIi.kh

11-3

i) (a) प्राकृतिक खाद्य पदार्थों के स्थान पर सिंथेटिक खाद्य पदार्थों का सेवन करना।

(b) श्रमहीन जीवनशैली को अपनाना एवं दिनचर्या अव्यवस्थित होना।

ii) (a) बहुत खाँसी उठना और खाँसते–खाँसते व्यक्ति का होश खो देना।

(b) रात्रि में खाँसी आना और प्रातःकाल नियमित रूप से लगातार खाँसी उठना।

iii) (a) लगातार जुकाम के साथ श्लेष्मा का अधिक स्राव होना।

(b) नासिका के चारों ओर चेहरे पर सूजन आ जाना।

iv) (a) साइनोसाइटिस

(b) अस्थमा

11-4

i) (a) हृदय रोगों की उत्पत्ति का मूल कारण अप्राकृतिक एवं असंयमित जीवनशैली, रात्रिजागरण एवं अनियमित दिनचर्या होती है।

(b) उत्तेजक दवाइयों तथा नशीले पदार्थों जैसे गुटका–पान मसाला, सिगरेट, बीड़ी व शराब आदि का अधिक सेवन करना।

ii) (a) 120 m.m. of Hg.

(b) 80 m.m. of Hg.

iii) (a) पैरों पर नीली और लाल रंग की नसें असामान्य रूप से उभार लिए हुए अलग से दिखलाई पड़ना।

(b) लम्बे समय तक लगातार खड़े होकर कार्य करने से वेरीकोज वेन रोग बढ़ना।

iv) (a) उच्चरक्तचाप

(b) वेरीकोज वेन

11-5

i) गर्म

ii) दीर्घ उपवास

iii) 29 सितम्बर

12

पाचन और उत्सर्जन व प्रजनन तंत्र संबंधी प्रमुख रोग एवं प्राकृतिक चिकित्सा

प्रिय शिक्षार्थियों, पूर्व इकाई (यूनिट) में आपने श्वसन तंत्र एवं हृदय से सम्बन्धित रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा के विषय में जाना। आप जान चुके हैं कि प्रकृति के नियमों का पालन करते हुए प्रकृति प्रदत्त पंचमहाभूतों का सम्यक प्रयोग करने से मानव शरीर के महत्वपूर्ण संस्थानों को स्वस्थ, सक्रिय और रोगमुक्त बनाया जा सकता है। पूर्व इकाई (यूनिट) के अध्ययन के उपरान्त आपके मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न होनी स्वाभाविक है कि जिस प्रकार श्वसन तंत्र एवं हृदय सम्बन्धित रोगों का प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा उपचार किया जा सकता है, क्या उसी प्रकार पाचन और उत्सर्जन तंत्र के विकारों को प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा ठीक किया जा सकता है ? प्रस्तुत इकाई (यूनिट) का विषय पाचन और उत्सर्जन तंत्र से सम्बन्धित रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा को समझना है। मानव शरीर के सभी तंत्रों में पाचन तंत्र का स्थान सबसे विशिष्ट होता है क्योंकि शरीर के सभी तंत्रों को क्रियाशील रहने के लिए ऊर्जा पाचन तंत्र से ही प्राप्त होती है इसलिए 'सभी रोग पेट से जन्म लेते हैं' और 'पेट स्वस्थ, शरीर स्वस्थ' जैसी लोकोक्ति प्राचीन काल से ही प्रचलित हैं जो पाचन तंत्र के महत्व को स्पष्ट करती है।

वर्तमान काल में आधुनिकता का बहुत अधिक प्रभाव मनुष्य के आहार पर पड़ा है। समय का अभाव कहें अथवा स्वाद के वशीभूत होना माने, परन्तु यह तथ्य स्पष्ट है कि वर्तमान सभ्य समाज में शुद्ध–सात्विक आहार को छोड़कर फास्टफूड, जंकफूड, डिब्बाबंद आहार, कोल्डड्रिंक्स और अन्य रसायनों से युक्त आहार के सेवन का प्रचलन बहुत तेजी से बढ़ता जा रहा है। इस प्रकार के आहार से पाचन तंत्र और इसके साथ उत्सर्जन तंत्र अनेक रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं। इन रोगों से मुक्ति प्राप्त करने के लिए रासायनिक दवाइयों का सेवन कुछ समय के लिए राहत अवश्य प्रदान कर देता है किन्तु रोग स्थाई रूप से दूर नहीं होता है। इसके साथ रासायनिक दवाइयों के दुष्प्रभाव से यकृत और किडनी की कार्यक्षमता भी क्षीण हो जाती है। अतः

fVIi.kh

यहां पर प्राकृतिक चिकित्सा एक श्रेष्ठ विकल्प है, जिसे अपनाने से पाचन और उत्सर्जन तंत्र के रोग दूर होकर स्वास्थ्य उत्तम होता है। प्रस्तुत इकाई (यूनिट) में पाचन और उत्सर्जन तंत्र के प्रमुख रोगों का परिचय, कारण और लक्षण समझाते हुए इनकी प्राकृतिक चिकित्सा पर सविस्तार चर्चा की गई है।

mís';

इस इकाई (यूनिट) का अध्ययन करने के पश्चात् आप –

- पाचन संबधी प्रमुख रोगों के प्रमुख कारणों की विवेचना कर पायेंगे;
- पाचन संबधी प्रमुख रोगों के प्रमुख लक्षणों की व्याख्या कर सकेंगे;
- पाचन संबधी प्रमुख रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा के कौशल व्यवहार में ला सकेंगे;
- मूत्र–जनन संबधी प्रमुख रोगों के प्रमुख कारणों की विवेचना कर पायेंगे;
- मूत्र–जनन संबधी प्रमुख रोगों के प्रमुख लक्षणों की व्याख्या कर सकेंगे;
- मूत्र–जनन संबधी प्रमुख रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा के कौशल व्यवहार में ला सकेंगे।

12-1 ikpu r= lc/kh jkxk dk lkekU; ifjp; ,o dkj.k

प्रिय शिक्षार्थियों, मनुष्य को विभिन्न कार्य करने के लिए प्रतिक्षण ऊर्जा की आवश्यकता होती है, जिसे मुनष्य भोजन से प्राप्त करता है किन्तु भोजन से ऊर्जा प्राप्त करने के लिए उसे पहले सरल रूप में परिवर्तित करना होता है क्योंकि भोजन के सरल अणुओं को ही रक्त के द्वारा शरीर में अवशोषित किया जाता है। भोजन की इस प्रक्रिया को पाचन (Digestion) कहा जाता है। जिसमें सभी पाचन अंग मिलकर भाग लेते हैं। परन्तु वर्तमान समय में अनियमित दिनचर्या, विकृत आहार का सेवन, शारीरिक श्रम का अभाव और मानसिक तनाव आदि कारकों के परिणामस्वरूप पाचन अंगों की क्रियाशीलता कम हो रही है, जिस कारण पाचन क्रिया में बाधा उत्पन्न होने के साथ पाचन से सम्बंधित रोगों की उत्पत्ति होती है। आइए पाचन रोगों की उत्पत्ति के प्रमुख कारण जानें–

1. शुद्ध–सात्विक, प्राकृतिक आहार के स्थान पर अप्राकृतिक, तामसिक एवं मैदायुक्त खाद्य पदार्थों का अधिक सेवन करना।

2 अनियिमित दिनचर्या को अपनाना एवं भोजन की मात्रा–समय आदि अनियमित होना।

3 पाचन अंगों की विकृति के कारण पाचक रसों का स्राव अनियमित होना।

4. शारीरिक श्रम का पूर्णरूप से अभाव होना एवं निष्क्रिय जीवनशैली को अपनाना।

5. दैनिक जीवन में योगाभ्यास एवं प्रातःकालीन भ्रमण आदि स्वास्थ्य को उन्नत बनाने वाली क्रियाओं को नहीं करना।

6. दिन भर में सामान्य (तीन से चार लीटर) से कम मात्रा में जल का सेवन करना।

7. धूम्रपान, नशीले पदार्थ एवं कृत्रिम शीतल पेय का अधिक सेवन करना।

8 मानसिक तनाव, चिन्ता, क्रोध एवं निराशा आदि संवेगों से ग्रस्त रहना।

bl ikdkj mijkDr dkjd feydj ikpu r= d jkxk dk mRiUu djr gA

bdkbZxr iz'u&12-1

सत्य/असत्य बताइये।

क) पाचन तंत्र की क्रियाशीलता का सीधा प्रभाव शरीर के अन्य तंत्रों पर पड़ता है। ( )

ख) ऊर्जा प्राप्त करने के लिए पहले भोजन को जटिल रूप से सरल रूप में परिवर्तित करना होता है। ( )

ग) मैदायुक्त खाद्य पदार्थों का सेवन करने से पाचन तंत्र स्वस्थ एवं ऊर्जावान बनता है। ( )

घ) धूम्रपान, नशीले पदार्थ एवं कृत्रिम शीतल पेय का सेवन, पाचन रोगों के प्रमुख कारण हैं। ( )

12-1-1 ukfHk Vyuk jkx dk lkekU; ifjp; ,o y{k.k

मानव शरीर में नाभि का बहुत विशिष्ट स्थान होता है। नाभि की तुलना सूर्य के साथ की जाती है। जिस प्रकार सूर्य सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का आधार होता है और शेष समस्त ग्रह–नक्षत्र आदि इसी के चारों और चक्कर लगाते रहते हैं, ठीक उसी प्रकार सम्पूर्ण मानव शरीर का आधार नाभि होता है। शरीर में नाभि के स्थान पर सूक्ष्म स्पंदन होता रहता है। यदि यह स्पंदन अपने मूल स्थान से हट जाता है तो शरीर में अनेक प्रकार की समस्याएं उत्पन्न होने लगती है। इस विषम अवस्था को नाभि टलना कहा जाता है।

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

1. पाचन क्रिया अव्यवस्थित हो जाना।

2. समय पर भूख नहीं लगना।

3. पेट में भारीपन के साथ लगातार दर्द रहना।

4. कब्ज अथवा दस्त होना।

5. पाचन क्रिया अव्यवस्थित होने के कारण शरीर कमजोर एवं शक्तिहीन होना।

6. नाभि के स्थान से नाभि का अलग धड़कना।

ekuo 'kjhj e mijkDr y{k.k ikpu r= d ukfHk Vyuk jkx dh vkj lidr djr gA

fVIi.kh

12-1-2 vip jkx dk lkekU; ifjp; ,o y{k.k

अपच का अर्थ होता है ठीक से पाचन नहीं होना। जैसा कि हमें ज्ञात है कि शरीर में पाचन तंत्र का मूल कार्य भोजन का पाचन करना अर्थात् उसे शरीरोपयोगी सरल रूप में परिवर्तित करना होता है किन्तु जब पाचन तंत्र में भोजन का पाचन नहीं हो पाता है और ग्रहण किया गया भोजन बिना पचा ही रहने लगता है, उस अवस्था को अपच रोग (Indiagestion) कहा जाता है।

चूंकि इस अवस्था में भोजन का पाचन नहीं हो पाता है अतः शरीर और पेट भारी रहता है। इसके साथ मनुष्य को कभी–कभी दस्त और कभी–कभी कब्ज की शिकायत होती है और कभी बिना पचे भोजन के कारण दस्त भी होने लगते हैं। ऐसी अवस्था में भोजन करने के बाद जी मचलता है। खट्टी डकारें आने के साथ कभी–कभी उल्टियां भी होने लगती हैं। इस अवस्था में शरीर का बल और कार्यक्षमता बहुत क्षीण हो जाती है।

चित्र 12.1 अपच रोग में स्थिति

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

1. पेट में जलन होना और भारीपन के साथ खट्टी डकारें आना।
2. पेट में गैस बनते हुए पेट फूलना और दर्द होना।
3. भूख कम होने के साथ भोजन के प्रति अरुचि होना।
4. जी मिचलाना, मुँह में पानी आना और गले–कलेजे में जलन होना।
5. कभी कब्ज तो कभी दस्त होना।
6. शरीर में शक्तिहीनता और कार्यों में रुचि का अभाव होना।
7. शरीर में आलस्य, भारीपन और सुस्ती रहने के साथ नींद कम हो जाना।

शरीर में उपरोक्त लक्षण पाचन तंत्र के अपच रोग की ओर संकेत करते हैं।

12-1-3 dCt jkx dk lkekU; ifjp; ,o y{k.k

यह पाचन तंत्र का सबसे सामान्य, किन्तु गंभीर होने के साथ बहुत तेजी से बढ़ता रोग है। यद्यपि यह जीर्ण रोगों की श्रेणी में आता है जो एकदम उत्पन्न नहीं होता है अपितु धीरे–धीरे शरीर में आता है। मनुष्य जो आहार ग्रहण करता है, उसके शरीरोपयोगी अंश का आमाशय एवं आंतों द्वारा पाचन एवं अवशोषण होता है तथा शेष अनुपयोगी अंश मल के रूप में बड़ी आंत के द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है। यह शरीर की एक सामान्य प्रक्रिया है जो प्रतिक्षण चलती रहती है परन्तु जब यह भोजन से उत्पन्न मल सुचारू रूप से बाहर नहीं निकल पाता है और बड़ी आंत में ही एकत्र होने लगता है तब यह अवस्था कब्ज (Constipation) कहलाती है।

इस रोग के विषय में महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि कब्ज अनेक रोगों की जननी है। इससे ग्रस्त मनुष्य के शरीर में ऊर्जा का स्तर क्षीण हो जाता है और वह व्यक्ति बहुत जल्दी अनेक रोगों की चपेट में आ जाता है। इससे ग्रस्त व्यक्ति शारीरिक और मानसिक स्तर पर ऊर्जाहीन एवं क्रियाहीन होने लगता है।

चित्र 12.2 कब्ज के कारण–पेट दर्द

आइए, इस रोग के प्रमुख लक्षण जानें –

1. पेट में भारीपन के साथ शौच में कठिनाई होना और भली प्रकार पेट साफ नहीं होना।
2. जीभ पर सफेद मैल की परत जमना और श्वासों में बदबू आना।
3. भूख कम होने के साथ अधिकतर समय पेट में हल्का दर्द रहना।
4. मुँह में छाले पड़ जाना और चेहरे पर फुन्सियां निकलना।
5. सिरदर्द के साथ चक्कर आना और स्वभाव चिड़चिड़ा होना।
6. चेहरे पर उदासीनता के भाव, शरीर में शक्तिहीनता और कार्यों में रुचि का अभाव होना।
7. पेट साफ नहीं होने के कारण दुर्गन्धयुक्त अपान वायु का निष्कासन होना।
8. शरीर में आलस्य, भारीपन और सुस्ती रहने के साथ नींद कम हो जाना।

'kjhj ea mijkDr y{k.k ikpu r= d dCt jkx dh vkj ldr djr gA

fVIi.kh

12-1-4 ,flfMVh jkx dk lkekU; ifjp; ,o y{k.k

वर्तमान समय में मनुष्य की जीवनशैली में बदलाव के साथ भोजन में अम्लीय मिर्च–मसालों के अधिक प्रयोग, फास्ट फूड और जंक फूड का सेवन और बिना भूख बार–बार खाने जैसी आदतों ने अम्लता रोग को जन्म दिया है। यद्यपि यह रोग शरीर में धीरे–धीरे आता है किन्तु आने के उपरान्त शरीर में ही ठहर जाता है और यदि समय पर इस रोग पर ध्यान देते हुए इसका उपचार नहीं किया जाता है तो आगे चलकर यह अल्सर का गंभीर रूप धारण कर लेता है। इस रोग को भी आधुनिक सभ्यता का रोग कहा जाता है क्योंकि प्राचीन काल में यह रोग बहुत कम होता था किन्तु वर्तमान समय में इस रोग ने बहुत तेजी से फैलते हुए समाज में गहरी जड़ें जमा ली हैं।

एसीडिटी रोग को आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की भाषा में गैस्ट्रोइसोफेजियल रिफलक्स डिजिज (GERD) के नाम से जाता है। इस रोग को आयुर्वेद शास्त्र में 'अम्लपित्त' कहा जाता है। वास्तव में भोजन के पाचन हेतु आमाशय में स्थित ग्रन्थियों से अम्ल का स्रावण किया जाता है किन्तु जब आमाशय में यह अम्ल अधिक होकर जलन उत्पन्न करता है, वह अवस्था एसिडिटी रोग कहलाती है।

चित्र 12.3 एसिडिटी की स्थिति

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

1. गले से लेकर वक्ष तक के क्षेत्र में जलन एवं हृदय प्रदेश में दर्द महसूस होना ।
2. पेट में भारीपन के साथ बार–बार खट्टी डकारें आना।
3. भोजन के प्रति अरुचि होना और भूख नहीं लगना।
4. घबराहट होना, पसीना अधिक आना, जी घबराने के साथ हार्ट अटैक का सन्देह होना।
5. पेट में गैस बनना और जी मिचलाने के साथ उल्टियां होना।
6. शरीर में शक्तिहीनता की अनुभूति के साथ श्वास फूलना।
7. बिना परिश्रम किए हुए शारीरिक और मानसिक थकावट होना।

'kjhj e mijkDr y{k.k ikpu r= d ,flfMVh jkx dh vkj ldr djr gA

12-1-5 vfrlkj@ifp'k jkx dk lkekU; ifjp; ,o y{k.k

हमारे शरीर को ऊर्जावान बने रहने के लिए भोजन से ऊर्जा प्राप्त होती है किन्तु जब ग्रहण किया गया भोजन शरीर को प्राप्त नहीं हो पाता है और मल के रूप में शरीर से बाहर उत्सर्जित होने लगता है, वह अवस्था अतिसार अथवा पेचिश रोग कहलाती है। दूसरे शब्दों में मनुष्य के गलत आहार–विहार के परिणाम स्वरूप शरीर में गन्दगियों का विष अधिक होने पर मल सामान्य से अधिक तेजी से बाहर निकलने लगता है। शरीर से तेजी से मल का बाहर निकलना अतिसार/पेचिश रोग कहलाता है।

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

1. बार–बार शौच क्रिया होना।
2. पेट में भारीपन के साथ दर्द रहना एवं शौच के लिए जाना।
3. मल में जल की मात्रा सामान्य से अधिक होना।
4. भोजन के प्रति अरुचि होना और भूख नहीं लगना।
5. पेट में गैस बनना और जी मिचलाने के साथ उल्टियां प्रारम्भ होना।
6. शरीर में शक्तिहीनता की अनुभूति होने के साथ तापक्रम में वृद्धि होना।

'kjhj e mijkDr y{k.k ikpu r= d vfrlkj@ifp'k jkx dk igpkuk tk ldrk gA

12-1-6 vkbl0 ch0 ,l0 jkx dk lkekU; ifjp; ,o y{k.k

यह शरीर की बड़ी आंत से सम्बन्धित पाचन तंत्र का रोग है जिसका पूरा नाम Irritable Bowel Syndrome (IBS) है। इसे हिन्दी भाषा में 'क्षोभी आंत विकार' कहा जाता है। वर्तमान समय में अनियमित दिनचर्या, असंयमित आहार, विलासितापूर्ण जीवनशैली और मानसिक तनाव आदि कारकों के परिणामस्वरूप जब बड़ी

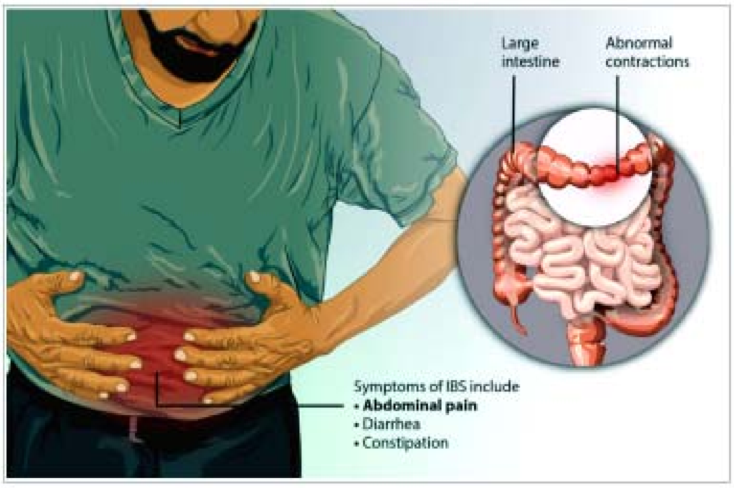

चित्र 12.4 आई0 बी0 एस0 रोग में बड़ी आंत की स्थिति

fVli.kh

आंत की क्रियाशीलता प्रभावित होकर आंतों में ऐंठन, पेट दर्द, सूजन, गैस, दस्त और कब्ज आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं तब वह अवस्था इर्रिटेबल बाऊल सिंण्ड्रोम कहलाती है।

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

1. पेट में भारीपन के साथ दर्द और ऐंठन होना।
2. पेट में गैस अधिक बनना, जिसके कारण पेट फूला हुआ महसूस होना।
3. कभी कब्ज तो कभी दस्त होना।
4. मल का अधिक श्लेष्मायुक्त होना।
5. रोग की गंभीर अवस्था में शरीर का वजन कम हो जाना।
6. शरीर में कमजोरी की अनुभूति होना।

'kjhj e mijkDr y{k.k ikpu r= d vkb0 ch0 ,l0 jkx dh vkj ldr djr gA

12-1-7 ifIVd vYlj jkx dk lkekU; ifjp; ,o y{k.k

सामान्य रूप से समझें तो उदर प्रदेश में स्थित पाचन तंत्र में होने वाले घाव को अल्सर (Ulcer) कहा जाता है। पाचन तंत्र के विभिन्न अंगों जैसे आमाशय, छोटी आंत और बड़ी आंत के आन्तरिक भागों में होने वाले घावों को अल्सर के नाम से जाना जाता है। यह अवस्था गैस्ट्रिक अल्सर या पेप्टिक अल्सर या पेट के छाले आदि नामों से जानी जाती है।

प्रिय शिक्षार्थियों, आपको ज्ञात होगा कि आमाशय में उपस्थित ऑक्जेन्टिक सैल्स हाईड्रोक्लोरिक अम्ल का स्रावण करती है, जिसका कार्य भोजन के पाचन में मदद करना होता है किन्तु जब अधिक अम्लीय आहार का सेवन, अधिक समय तक एंटीबायोटिक दवाइयों का सेवन, दर्द निवारक (पेन किलर) का अधिक सेवन, धूम्रपान अथवा मद्यपान एवं मानसिक तनाव आदि कारकों के प्रभाव से आमाशय की दीवारों पर अम्ल से छाले

चित्र 12.5 पेप्टिक अल्सर के कारण पेट में बहुत तेज दर्द

अथवा घाव उत्पन्न होने लगते हैं, यह अवस्था पेप्टिक अल्सर कहलाती है। वर्तमान समय में अल्सर रोगियों की संख्या तेजी से बढ़ती जा रही है।

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

1 खाली पेट अथवा खाना खाने के कुछ समय बाद पेट में अचानक बहुत तेज दर्द होना।

2 पेट में बहुत गैस बनने के साथ खट्टी डकारें आना।

3 पेट के ऊपरी भाग में भारीपन के साथ दर्द और ऐंठन होना।

4 भूख में कमी आने के साथ भोजन के प्रति अरुचि उत्पन्न होना।

5. शरीर में कमजोरी के साथ शरीर का वजन कम होते जाना।

6 कुछ परिस्थितियों में सुबह–सुबह के समय उल्टियां होती हैं और रोग की गंभीर अवस्था में उल्टियों में रक्तस्राव भी होता है।

7 अल्सर रोग की गंभीर अवस्था में मल के साथ भी रक्तस्राव होने लगता है।

वास्तव में एसीडिटी की समस्या आगे चलकर अल्सर रोग का रूप ग्रहण कर लेती है और यदि मनुष्य अपने आहार–विहार एवं आदतों में परिवर्तन नहीं करता है तो अल्सर रोग गंभीर रूप ग्रहण करता हुआ अगले चरण में कैंसर में परिवर्तित हो जाता है।

12-1-8 gfu;k jkx dk lkekU; ifjp; ,o y{k.k

प्रिय शिक्षार्थियों, प्रकृति ने मानव शरीर में प्रत्येक अंगों को एक निश्चित स्थान प्रदान किया है किन्तु जब शरीर का कोई अंग अपने मूल स्थान से हटकर बाहर निकल जाता है तब उस शारीरिक अवस्था को 'हर्निया'

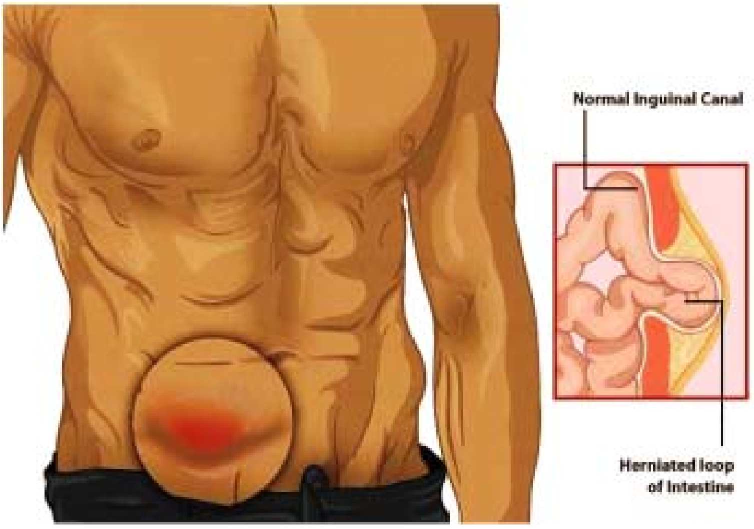

चित्र 12.6 हर्निया में आंत की स्थिति

कहा जाता है। यहाँ पर उदर भाग में स्थित बड़ी आंत के किसी भाग का अपने मूल स्थान से हटकर बाहर की ओर निकलने के अर्थ में हर्निया रोग को लिया जाता है।

वास्तव में विकृत आहार–विहार, अव्यवस्थित दिनचर्या और यौगिक क्रियाओं का अभ्यास नहीं करने के फलस्वरूप जब उदर की मांसपेशियां कमजोर और शिथिल हो जाती हैं और भारी वजन उठाने के अवस्था में बड़ी आंत का कोई भाग नाभि के पास से बाहर निकल जाता है, वह अवस्था हर्निया रोग कहलाता है।

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

1 नाभि के पास के क्षेत्र में आंत का कोई भाग उभर कर बाहर की ओर निकल जाना, इस रोग का सबसे प्रमुख लक्षण होता है।

2 नाभि के पास उभरे स्थान पर सूजन के साथ दर्द होना, विशेष रूप से वजन उठाने पर पेट के इस भाग में बहुत तेज दर्द होना।

3 पेट के ऊपरी भाग में दर्द के साथ उल्टियां होना।

4 पेट में उभरे स्थान पर दर्द के साथ बुखार आ जाना।

5. रोग की गंभीर अवस्था में पेट के सूजन वाले भाग में गांठ बन जाना, जिसे छूने पर दर्द होना।

'kjhj e mijkDr y{k.k ikpu r= d gful;k jkx dh vkj lidr djr gA

12-1-9 xnk jkx dk lkekU; ifjp; ,o y{k.k

प्रिय शिक्षार्थियों, मनुष्य का पाचन तंत्र 28 से 32 फिट लम्बी एक जटिल रचना होती है। यह मुख से प्रारम्भ होकर गुदा तक फैली होती है। इस रचना में विभिन्न पाचन अंगों का समावेश होता है और प्रत्येक अंग का अपना विशिष्ट कार्य होता है। इस प्रकार पाचन तंत्र का सबसे अन्तिम भाग गुदा होती है जिसके द्वारा भोजन का अनुपयोगी भाग शरीर से बाहर उत्सर्जित किया जाता है। यह शरीर का एक संवेदनशील अंग है जिसमें रक्तवाहिनियों द्वारा रक्त की तीव्र आपूर्ति की जाती है। शरीर के इस भाग में कुछ समय के लिए भोजन का मल रूप एकत्र होता है और शौच के माध्यम से बाहर उत्सर्जित किया जाता है।

मनुष्य के खान–पान सम्बन्धी गलत आदतों, धूम्रपान–मद्यपान, अव्यवस्थित दिनचर्या, मानसिक तनाव और यौगिक क्रियाओं का अभ्यास नहीं करने के फलस्वरूप जब गुदा अपने मूल कार्य– (मल भाग का उत्सर्जन) भली–भांति नहीं कर पाता है तब उस अवस्था को गुदा रोग की संज्ञा दी जाती है। ऐसी अवस्था में इस भाग में पीड़ा, सूजन, संक्रमण, बवासीर और गुदा कैन्सर जैसे रोग उत्पन्न होने लगते हैं। इन रोगों का मूल लक्षण इस भाग में पीड़ा का होना होता है। मल त्याग की स्थिति में इस भाग में पीड़ा ओर अधिक बढ़ जाती है। इस अवस्था को गुदा रोगों की संज्ञा दी जाती है।

12-1-10 frYyh c<uk(jkx dk lkekU; ifjp; ,o y{k.k

प्रिय शिक्षार्थियों, मनुष्य के उदर भाग में बाईं ओर पसलियों के नीचे तिल्ली नामक अंग विद्यमान होता है जिसे अंग्रेजी भाषा में स्पलीन (Spleen) कहा जाता है। सामान्यतया उदर के इस भाग को छूने पर यहां किसी प्रकार की कोई वेदना अथवा उभार प्रतीत नहीं होता है किन्तु मलेरिया, यकृत में संक्रमण अथवा कैंसर आदि गंभीर रोगावस्था में इस भाग का आकार बढ़ने लगता है। इसके साथ–साथ इस भाग को छूने पर इसमें पीड़ा होने लगती है, यह अवस्था तिल्ली बढ़ना रोग कहलाती है।

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

1 उदर के बायें भाग में ऊपर की ओर उभार होना, दर्द एवं भारीपन की अनुभूति होना, इस रोग का सबसे प्रमुख लक्षण होता है।

2 सामान्य भूख नहीं लगना एवं बिना कुछ खाये हुए ही पेट में भारीपन की अनुभूति होना।

3 शरीर में रक्त की कमी होना।

4 कभी–कभी मल के साथ रक्त स्राव होना।

5. पाचन क्रिया अव्यवस्थित होने के साथ शरीर में कमजोरी एवं शक्तिहीनता की स्थिति उत्पन्न होना।

'kjhj e mijkDr y{k.k ikpu r= d frYyh c<uk jkx dh vkj ldr djr gA

प्रिय शिक्षार्थियों, इस प्रकार अपच, कब्ज, एसीडिटी, आईबीएस, पेप्टिक अल्सर, हर्निया, गुदा रोग पाचन तंत्र के प्रमुख विकार होते हैं जिनका प्रकोप दिन–प्रतिदिन समाज में बढ़ता जा रहा है। इन रोगों से मुक्ति प्राप्त करने में प्राकृतिक चिकित्सा बहुत लाभकारी एवं प्रभावशाली भूमिका वहन करती है।

bdkbxr i'u&12-2

1) दो पाचन तंत्र रोगों के नाम लिखिए।

....

....

2) "नाभि टलना" रोग के दो लक्षण बताइए।

....

....

3) तिल्ली का बढ़ना क्या संकेत करता है?

....

....

12.2 पाचन तंत्र के रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

प्रिय शिक्षार्थियों, पाचन तंत्र के रोगों का मूल कारण अप्राकृतिक एवं असंयमित आहार का सेवन करना होता है अतः इन रोगों से मुक्ति प्राप्त करने हेतु सर्वप्रथम मनुष्य को प्राकृतिक एवं संयमित आहार का सेवन करना चाहिए। इसके साथ–साथ उषापान, वमन एवं एनीमा आदि शोधन क्रियाओं का अभ्यास करने से पाचन तंत्र के रोगों में स्थाई लाभ प्राप्त होता है। पाचन रोगों में प्रातःकालीन भ्रमण एवं प्राणायाम का अभ्यास करने से पाचन अंगों की क्रियाशीलता में वृद्धि होती है और इन रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है। पाचन रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा में उपवास अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका वहन करता है। उपवास करने से सम्पूर्ण पाचन तंत्र को विश्राम प्राप्त होता है और पाचन अंगों की कार्यक्षमता में वृद्धि होती है। परन्तु महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि पाचन रोगों की अवस्था में उपवास योग्य चिकित्सक के दिशा–निर्देशानुसार ही करना चाहिए। पाचन तंत्र के रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा को इस प्रकार समझ सकते हैं–

(क) पृथ्वी तत्व चिकित्सा

पाचन तंत्र के रोगों में गीली मिट्टी की पट्टी का प्रयोग बहुत लाभकारी प्रभाव रखता है। गीली मिट्टी शरीर से बढ़ी हुई ऊर्जा के साथ–साथ अन्य विषाक्त पदार्थों को अवशोषित करने का गुण रखती है। उदर पर गीली मिट्टी का प्रयोग करने से विषाक्त पदार्थों का अवशोषण होता है और पाचन तंत्र से सम्बन्धित रोगों में शीघ्र लाभ प्राप्त होता है। रोगावस्था में नियमित रूप से उदर पर मिट्टी पट्टी देने के अतिरिक्त सप्ताह में एक बार सम्पूर्ण शरीर पर गीली मिट्टी का लेप देने से लाभ प्राप्त होता है। जटिल कब्ज से मुक्ति प्राप्त करने के लिए चुटकी भर बालू का सेवन करने पर रोग से मुक्ति प्राप्त होती है। पाचन रोगों की उत्पत्ति का प्रमुख कारण रेशारहित आहार का अधिक सेवन करना होता है अतः पृथ्वी से उत्पन्न रेशेयुक्त खाद्य पदार्थों जैसे– लौकी, तुरई, मौसमी, खरबूजा, तरबूज, ककड़ी, खीरा आदि का पर्याप्त सेवन करने से पाचन रोगों में लाभ प्राप्त होता है।

(ख) जल तत्व चिकित्सा

पाचन तंत्र के रोगों का सीधा सम्बन्ध उदर प्रदेश में विजातीय पदार्थों के एकत्र होने से होता है अतः जल तत्व का प्रयोग करते हुए उदर प्रदेश का शोधन करने से पाचन रोगों से छुटकारा मिलता है। पाचन रोगों से मुक्ति प्राप्त करने हेतु नियमित रूप से प्रातःकाल उठते ही उषापान के रूप में गर्म अथवा गुनगुने जल का सेवन करना चाहिए। इसके उपरान्त शौच अदि से निवृत्त होने के उपरान्त आमाश्य शुद्धि हेतु नमकीन गुनगुने जल से वमन और कुंजल क्रिया का अभ्यास करना चाहिए। सम्पूर्ण पाचन तंत्र का शोधन करने हेतु 'लघु शंखप्रक्षालन' क्रिया का अभ्यास रोगी को कराने से पाचन रोगों में विशेष लाभ प्राप्त होता है।

ikpu vkj mRltu o itluu r= lc/kh ie[k j"x ,o ikÑfrd fpfdRlk

पाचन रोगों में शोधन हेतु एनीमा क्रिया का प्रयोग बहुत लाभकारी होता है। प्राकृतिक चिकित्सा में एनीमा को सर्वरोगनाशक क्रिया की संज्ञा दी जाती है। विशेष रूप से कब्ज, अपच एवं गुदा सम्बन्धी रोगों में एनीमा क्रिया का अभ्यास उत्तम माना है। इसके साथ–साथ पाचन अंगों की क्रियाशीलता में वृद्धि करने हेतु गर्म–ठंडा कटि स्नान, रीढ़ स्नान और सम्पूर्ण शरीर का डूब स्नान का प्रयोग बहुत लाभकारी प्रभाव रखता है।

¼x½ vfXu rRo fpfdRlk

उदर भाग में भोजन का पाचन करने वाली जठराग्नि का मंद (कमजोर) होना पाचन रोगों की उत्पत्ति का एक प्रमुख कारण होता है। अतः जठराग्नि को तीव्र बनाने हेतु सूर्य के प्रकाश में पके पीत वर्ण फल जैसे– अमरूद, आम, पपीता, नींबू, सन्तरा आदि का सेवन करने से जठराग्नि तीव्र होती है और पाचन अंगों की क्रियाशीलता में वृद्धि होने के साथ ही पाचन रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है।

¼?k½ ok;q rRo fpfdRlk

पाचन तंत्र के रोगों में प्रातःकाल की शुद्ध वायु का सेवन एवं प्राणायाम का अभ्यास लाभकारी प्रभाव रखता है। प्रातःकाल नियमित रूप से भ्रमण करने से उदर में स्थित पाचन अंगों का व्यायाम होता है और इन अंगों की क्रियाशीलता में वृद्धि होती है। पाचन रोगों की अवस्था में निरन्तरता के साथ एवं पर्याप्त समय तक प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। प्राणायाम के क्रम में नाड़ी शोधन, अनुलोम–विलोम, कपालभाति, भस्त्रिका, उज्जायी और भ्रामरी का अभ्यास पर्याप्त समय तक एवं नियमित रूप से करना चाहिए।

¼³½ vkdk'k rRo fpfdRlk

पाचन तंत्र के रोगों की आकाश तत्व चिकित्सा में उपवास एवं प्रार्थना का अभ्यास अत्यन्त लाभकारी प्रभाव रखता है। निरन्तर क्रियाशील रहने वाले पाचन तंत्र को उपवास करने से कुछ समय के लिए आराम मिलता है जिससे पाचन अंगों की कार्यक्षमता एवं कार्य कुशलता में वृद्धि होती है और पाचन रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है। यहां महत्वपूर्ण बिन्दु यह है कि पाचन रोगों की अवस्था में बहुत सावधानीपूर्वक लघु उपवास करने चाहिए। उपवास काल में शारीरिक श्रम कम करने के साथ–साथ मानसिक उद्वेगों से स्वयं को मुक्त रखना चाहिए।

पाचन तंत्र के रोगों में तनाव एवं मानसिक संवेगों का सीधा प्रभाव पड़ता है। तनाव एवं नकारात्मक चिन्तन से कब्ज, एसिडिटि आदि पाचन तंत्र के रोग जटिल और गंभीर बन जाते हैं। अतः इस अवस्था में सकारात्मक मनन–चिन्तन, ध्यान एवं ईश्वर प्रार्थना का अभ्सास करना चाहिए।

इस प्रकार उपरोक्त पचंमहाभूतों के सम्यक प्रयोग से पाचन तंत्र के रोगों को दूर किया जाता है। पाचन तंत्र के रोगी को अपथ्य आहार का त्याग करते हुए निम्न पथ्य आहार का सेवन करना चाहिए:

viF; vkgkj% गरिष्ठ तेलयुक्त खाद्य पदार्थ, नमक, मिर्च–मसाले, अचार, मुरब्बा, जैम, मैदा और मैदे से

fVIi.kh

बनी वस्तुएं, बासी एवं प्रिजर्वेटिव युक्त खाद्य पदार्थ, मिठाइयां, बर्फ–आइसक्रीम एवं कृत्रिम शीतल पेय आदि का पूर्णतया त्याग कर देना चाहिए।

iF; vkgkj% हल्का सुपाच्य आहार, मौसमी फल एवं सब्जियां, रासायनिक खादों से मुक्त अन्न एवं फल–सब्जियां, विटामिन्स और खनिज लवणों से युक्त ताजे प्राकृतिक फल– सब्जियां, चोकर युक्त आटे की रोटियां एवं पर्याप्त मात्रा में जल का सेवन करना चाहिए।

bdkbZxr iz'u&12-3

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

i) मनुष्य का पाचन तंत्र .... फिट लम्बी एक जटिल रचना होती है।

ii) सम्पूर्ण पाचन तंत्र का शोधन करने हेतु .... क्रिया का अभ्यास पाचन रोगों में विशेष लाभ प्रदान करता है।

iii) निरन्तर क्रियाशील रहने वाले पाचन तंत्र को .... करने से कुछ समय के लिए आराम मिलता है

iv) उदर में भोजन का पाचन करने वाली जठराग्नि को तीव्र बनाने हेतु सूर्य के प्रकाश में पके .... फलों का सेवन करना चाहिए।

12-3 mRltlu o&iltuu ls lEcfU/kr ie[k jksxks dk ifjp;

प्रिय शिक्षार्थियों, आप अपने विषय सं0–3 में शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान में सभी शारीरिक तंत्रों के विषय में पढ़ चुके हैं। उत्सर्जन तंत्र में आपने पढ़ा था कि शरीर के अन्दर विषाक्त व अपशिष्ट पदार्थों को शरीर के विशिष्ट अंगों – जैसे त्वचा से पसीना, फेफड़ों से अशुद्ध वायु, मूत्राश्य से मूत्र, मलाशय से मल, से समय–समय पर उत्सर्जित कर दिया जाता है। यहाँ हम मूत्र व जनन से सम्बंधित रोगों, लक्षणों और उनकी प्राकृतिक चिकित्सा करना सीखेंगे। मानव शरीर की सात धातुओं में रक्त अत्यन्त महत्वपूर्ण धातु है जिसे जीवन रस कहा जाता है। यह जीवन रसरूपी धातु सम्पूर्ण शरीर में प्रतिक्षण परिभ्रमण करती हुई सभी अंगों को पोषक तत्व प्रदान करने का महत्वपूर्ण कार्य करती रहती है। शरीर की इस महत्वपूर्ण धातु का स्वच्छ और निर्मल होना अत्यन्त आवश्यक होता है। इसे साफ–स्वच्छ बनाने के लिए शरीर की उदरीय पार्श्व गुहा में दो वृक्क प्रतिक्षण क्रियाशील रहते हुए इसे छानकर स्वच्छ बनाने का कार्य करते रहते हैं। इन वृक्कों का कार्य रक्त को छानकर अशुद्धियों को अलग करना होता है। इस रक्त से प्राप्त अशुद्धियों को जल के साथ मिलाकर मूत्र का निर्माण किया जाता है और मूत्र को समय–समय पर शरीर से बाहर उत्सर्जित किया जाता है। **'kjhj dk bl r= dk e=og lLFkku dh lKk nh tkrh g] ftldk egRoi.k dk;l jDr dk LoPN cukuk gkrk gA** इस तंत्र के स्वस्थ, सक्रिय और रोगमुक्त रहने पर रक्त स्वच्छ और निर्मल

बना रहता है जिससे शरीर की सभी क्रियाएं सुचारू रूप से चलती रहती है। परन्तु वर्तमान समय में मनुष्य की खान–पान सम्बन्धी गलत आदतों, अव्यवस्थित दिनचर्या, शारीरिक श्रम का अभाव, मानसिक तनाव और यौगिक क्रियाओं का अभ्यास नहीं करने के कारण मानव शरीर का यह महत्वपूर्ण तंत्र विभिन्न रोगों से ग्रस्त हो रहा है। इस तंत्र के प्रमुख रोग इस प्रकार हैं–

12-3-1 uÝkbfVl% lkekU; ifjp; ,o y{k.k

वृक्क का निर्माण लाखों सूक्ष्म कोशिकाओं के मिलने से होता है। वृक्क का निर्माण करने वाली इन कोशिकाओं को नेफ्रान कहा जाता है। नेफ्रान को वृक्क की रचनात्मक और क्रियात्मक इकाई (यूनिट) कहा जाता है क्योंकि इनके मिलने से ही वृक्क का निर्माण होता है और यही वृक्क में रक्त छानने की प्रक्रिया में लगी रहती हैं। किन्तु विकृत आहार–विहार और रासायनिक एंटी बायोटिक या पेनकिलर दवाइयों के सेवन से जब इन कोशिकाओं को क्षमता से अधिक कार्य करना पड़ता है तब इनमें दर्द और सूजन उत्पन्न हो जाती है जिसे नेफ्राइटिस रोग कहा जाता है।

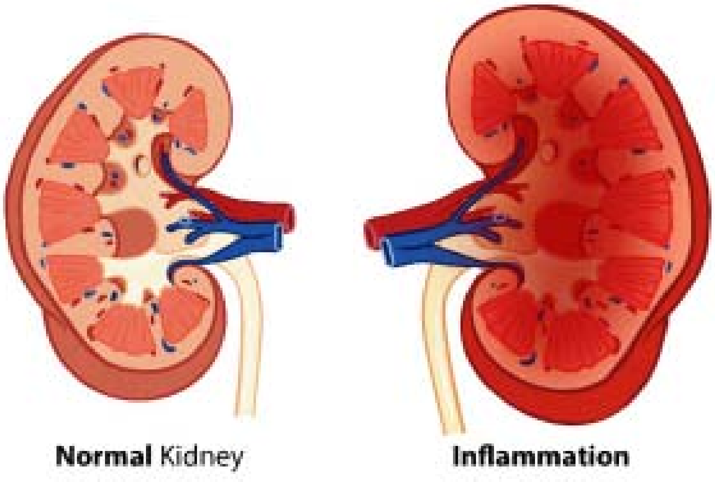

चित्र 12.7 सामान्य व नेफ्राइटिस युक्त किडनी

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

1. वृक्कों के आस–पास दर्द होना एवं इस भाग में सूजन होना।
2. बार–बार और अधिक मात्रा में मूत्र आना।
3. मूत्र के रंग में परिवर्तन होना और पस आना।
4. ठंड लगना एवं बुखार आना।
5. असामान्य थकान के साथ मितली होना।
6. मूत्र में जलन होना एवं रक्तचाप बढ़ जाना।

fVIi.kh

7. शरीर के किसी हिस्से जैसे– हाथ–पैर अथवा चेहरे पर सूजन आ जाना।

8. मानसिक स्थिति में बदलाव जैसे– बेचैनी अथवा उलझन में रहना।

शरीर में उपरोक्त लक्षण मूत्रवह संस्थान के नेफ्राइटिस रोग की ओर संकेत करते हैं।

12-3-2 e=nkg jksx% lkekU; ifjp; ,oa y{k.k

मूत्रवह संस्थान के किसी भाग में संक्रमण के परिणाम स्वरूप मूत्र त्याग में जलन होने लगती है और बार–बार मूत्र त्याग होने लगता है। इस अवस्था को मूत्रदाह रोग कहा जाता है। इसे चिकित्सकीय भाषा में यू0टी0आई0 अर्थात् (Urinary Tract Infection) कहा जाता है। इस रोग से ग्रसित होने पर मूत्र का रंग गहरा पीला हो जाता है और मूत्र त्याग में पीड़ा होने के साथ–साथ जलन होती है। इस अवस्था में रोगी व्यक्ति को रात के समय बार–बार मूत्र त्याग के लिए उठना पड़ता है और मूत्र त्याग में जलन होती है। शरीर के उदरीय पार्श्व भागों में दर्द और जलन होना, मूत्र की मात्रा बढ़ जाना, मूत्र त्याग में दर्द–जलन के साथ रक्त का आना इस रोग के प्रमुख लक्षण होते हैं।

12-3-3 fdMuh LVksu% lkekU; ifjp; ,oa y{k.k

मानव शरीर में वृक्क का सबसे मुख्य कार्य रक्त को छानकर रक्त में उपस्थित उत्सर्जित पदार्थों को अलग करना होता है। मनुष्य के दोनों वृक्क प्रतिदिन (24 घन्टों में) 150 से 180 लीटर रक्त को छानकर उपस्थित, शरीर के लिये अनुपयोगी पदार्थों को मूत्र के रूप में अलग करने का कार्य करते हैं। परन्तु जब वृक्क कैल्शियम के सल्फेट, क्लोराइड एवं फास्फेटों को रक्त से छानकर अलग तो कर देते हैं किन्तु उन्हें मूत्र के साथ उत्सर्जित नहीं कर पाते तब ये अकार्बनिक पदार्थ वृक्क में ही इकठ्ठा होकर एक पथरी के समान रचना बना लेते हैं, इसे वृक्क की पथरी (किडनी स्टोन) कहा जाता है। इस अवस्था में वृक्क में बहुत तीव्र सुई की चुभन के समान दर्द की अनुभूति होती है। प्रारम्भिक अवस्था में दर्द हल्का होता है किन्तु आगे चलकर यह दर्द असहनीय हो जाता है जिसमें दर्दनिवारक दवाइयों के सेवन से भी कोई आराम नहीं मिलता है। व्यक्ति को बार–बार मूत्र त्याग की इच्छा होती है और मूत्र का रंग भी गहरा पीला होने लगता है।

12-3-4 e= jksxksa dk lkekU; ifjp; ,oa y{k.k

प्रिय शिक्षार्थियों, सामान्य और स्वस्थ अवस्था में एक मनुष्य प्रतिदिन 1 से 1.8 लीटर स्वच्छ, पारदर्शी, हल्के पीले रंग के द्रव मूत्र का उत्सर्जन करता है। इस मूत्र का हल्का पीला रंग यूरेबिलिन नामक रंजक पदार्थ के कारण होता है। मूत्र में अपनी एक विशेष एरोमेटिक गन्ध होती है। मूत्र की पी0 एच0 5.0 से 8.0 के बीच होती है, यह पी0 एच0 ग्रहण किये आहार के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। शाकाहारी एवं सात्विक आहार लेने वाले मनुष्यों का मूत्र उदासीन अथवा हल्का क्षारीय प्रकृति का जबकि मांसाहारी एवं मिर्च मसाले युक्त अम्लीय प्रकृति का आहार लेने वाले व्यक्तियों में मूत्र अम्लीय प्रकृति का होता है। मूत्र में सबसे अधिक मात्रा में जल होता है जबकि शेष पदार्थो में कार्बनिक एवं अकार्बनिक पदार्थ होते हैं।

परन्तु विकृत आहार–विहार, अव्यवस्थित दिनचर्या और अन्य कारकों के परिणामस्वरूप उपरोक्त रोगों की उत्पत्ति होती है। इनके अतिरिक्त कम मात्रा में मूत्र निर्माण होना, अधिक मूत्र उत्सर्जन होना, मूत्र में शरीरोपयोगी तत्वों का आना भी ऐसे लक्षण हैं जिनका सम्बन्ध मूत्रवह संस्थान के रोगों से होता है।

12-3-5 i#"k tuu jkxk dk lkekU; ifjp; ,o y{k.k

प्रिय शिक्षार्थियों, मानव शरीर के 11 तंत्रों में प्रजनन तंत्र का अपना विशिष्ट स्थान होता है। इस तंत्र का कार्य सन्तानोत्पत्ति क्रिया का सम्पादन करना होता है। इसके माध्यम से मनुष्य वंशवृद्धि करने में सक्षम होता है। परन्तु वर्तमान समय के विकृत अप्राकृतिक आहार–विहार, मानसिक तनाव एवं नकारात्मक चिंतन के फलस्वरूप शरीर का यह तंत्र अपना कार्य भली प्रकार नहीं कर पाता है और वर्तमान समय में इस तंत्र से सम्बन्धित विकृतियां समाज में बहुत तेजी से बढ़ती जा रही है। प्रजनन तंत्र की इन विकृतियों में वीर्यदोष, इन्द्रिय शिथिलता एवं प्रोस्टेट ग्रन्थि में वृद्धि प्रमुख हैं। इन विकृतियों की उत्पत्ति का मूल कारण अप्राकृतिक आहार–विहार एवं असयंमित जीवनशैली होती है। यद्यपि वर्तमान समय में इन विकृतियों से मुक्ति प्राप्त करने के लिए अनेक प्रकार की रासायनिक दवाइयों को भी व्यवहार में लाया जाता है किन्तु इन रोगों में स्थाई लाभ प्राकृतिक आहार–विहार एवं संयमित जीवनशैली से प्राप्त होता है।

मानव शरीर के सप्त धातुओं में शुक्र सबसे अन्तिम एवं महत्वपूर्ण धातु होती है जिसे शरीर का रस, बल, ओज और तेज कहा जाता है। भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता में शरीरस्थ इस महत्वपूर्ण धातु की रक्षा करना मनुष्य का परम धर्म माना गया है। इस महत्वपूर्ण धातु की रक्षा के महत्व पर प्रकाश डालते हुए वेद में कहा गया है–

cºep;!.k rilk nok eR;Ekik?urA ¼vFkoZon½

मंत्रदृष्टा उपदेश करते हैं कि ब्रह्मचर्य पालन की साधना से विद्वान पुरुष मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार शरीरस्थ शुक्र धातु के रक्षा के महत्व का वर्णन शास्त्रों में स्थान–स्थान पर प्राप्त होता है किन्तु वर्तमान समय में मनुष्य द्वारा भौतिकवादी संस्कृति का अनुकरण करने के परिणामस्वरूप एवं अप्राकृतिक आहार–विहार का सेवन करने के परिणामस्वरूप शरीरस्थ शुक्र धातु से सम्बन्धित अनेक रोगों को जन्म दिया है। इन रोगों में वीर्यदोष, इन्द्रिय शिथिलता एवं प्रोस्टेट ग्रन्थि में वृद्धि का वर्णन आता है। इन रोगों से ग्रस्त होने पर मानव शरीर ऊर्जाहीन, ओजहीन एवं तेजहीन होने लगता है और शारीरिक–मानसिक अस्थिरता उत्पन्न हो जाती है। मनुष्य के जीवन में स्थिरता एवं सन्तोष का अभाव होने लगता है एवं वह अपने जीवन के मूल लक्ष्य से भटकने लगता है।

12-4 e=&tuu l lEcfU/kr jkxk dh ikÑfrd fpfdRlk

प्रिय शिक्षार्थियों, प्राकृतिक चिकित्सा को शोधन चिकित्सा की संज्ञा दी जाती है क्योंकि प्राकृतिक चिकित्सा में मुख्य रूप से शरीर शोधन और मन को स्वच्छ–निर्मल बनाने पर बल दिया जाता है। दूसरे शब्दों में पंचमहाभूतों का प्रयोग करते हुए शरीर से विषाक्त पदार्थों का अवशोषण किया जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा शरीर और मन में स्थित गन्दगियों, विषाक्त पदार्थो एवं अविशिष्ट पदार्थो को बाहर निकालने का कार्य करती

टिप्पणी

है, जबकि उत्सर्जन तंत्र का भी मूल कार्य शरीर में स्थित इन उत्सर्जित पदार्थो को बाहर निकालने का होता है अर्थात् प्राकृतिक चिकित्सा में मिट्टी, जल और अग्नि आदि तत्वों के सम्यक प्रयोग करने का उत्सर्जन तंत्र पर बहुत सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इनके प्रयोग से उत्सर्जन तंत्र पर वर्ज्य पदार्थों को शरीर से बाहर निकालने का भार कम होता है। जिससे इस तंत्र की क्रियाशीलता और कार्यकुशलता में वृद्धि होती है। इन क्रियाओं के अभ्यास से प्रस्तुत इकाई (यूनिट) में वर्णित मूत्र एवं जनन रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है। मूत्रवह एवं जनन संबंधी रोगों में प्राकृतिक चिकित्सा के प्रभाव को इस प्रकार समझा जा सकता है –

12.4.1 पृथ्वी तत्व चिकित्सा

शरीर पर पृथ्वी तत्व अर्थात् मिट्टी का प्रयोग करने से शरीर की शुद्धि होती है, जिसका सकारात्मक प्रभाव सम्पूर्ण मूत्रवह तंत्र पर पड़ता है। उदर प्रदेश पर गीली मिट्टी का प्रयोग करने से विजातीय विष एवं बढ़ी हुई ऊर्जा का अवशोषण होता है और वृक्कों की क्रियाशीलता में वृद्धि होती है। सम्पूर्ण शरीर का मिट्टी लेप करने से भी त्वचा के माध्यम से विजातीय विष शरीर से बाहर निकलते हैं।

पृथ्वी से उत्पन्न शरीर में रक्त का शोधन करने वाले खाद्य पदार्थों जैसे नींबू, सन्तरा, मौसमी, नारंगी, नारियल पानी, खरबूजा, तरबूज आदि का सेवन करने से वृक्कों की क्रियाशीलता बढ़ती है और उत्सर्जन तंत्र के रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है।

12.4.2 जल तत्व चिकित्सा

जल तत्व का सबसे प्रमुख गुण शरीर शोधन करना होता है। अतः जल तत्व का प्रयोग उत्सर्जन तंत्र के रोगों में विशेष लाभकारी प्रभाव रखता है। प्रातःकाल सूर्योदय पूर्व उठते ही उषापान करने से वृक्काणुओं की क्रियाशीलता में वृद्धि होती है और अनेक रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है। पर्याप्त मात्रा में जल का सेवन करने से वृक्कों का शोधन होता है और वृक्कों से सम्बन्धित रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है।

इसके साथ–साथ गर्म–ठंडा कटि स्नान, रीढ़ स्नान, पाद स्नान एवं भाप स्नान का भी लाभकारी प्रभाव उत्सर्जन तंत्र के रोगों में प्राप्त होता है। इन स्नानों के प्रभाव से वृक्कों की क्रियाशीलता में वृद्धि होती है और रोगावस्था से मुक्ति प्राप्त होती है।

12.4.3 अग्नि तत्व चिकित्सा

उत्सर्जन तंत्र के रोगों का सम्बन्ध शरीर की बढ़ी हुई ऊर्जा के साथ होता है अतः शरीर में ऊर्जा के स्तर को सम बनाने हेतु आसमानी एवं हरे रंग की किरणों का प्रयोग करने से इन रोगों में लाभ प्राप्त होता है। आसमानी रंग का प्रयोग करने पर मूत्र विकारों में लाभ प्राप्त होता है। वृक्क में पथरी होने पर आसमानी रंग के जल का सेवन करने एवं वृक्क के स्थान पर आसमानी रंग की किरणों का प्रयोग करने से रोगावस्था में लाभ प्राप्त होता है। इसके साथ–साथ पुरुषों के जनन रोगों में हरे रंग की किरणों का प्रयोग करने से लाभ प्राप्त होता है।

12-4-4 ok;q rRo fpfdRlk

उत्सर्जन तंत्र के रोगों प्रातःकालीन भ्रमण एवं प्राणायाम का अभ्यास बहुत लाभकारी प्रभाव रखता है। प्रातःकाल उषापान करने के उपरान्त शौच आदि दैनिक कार्यों से निवृत्त होने के उपरान्त अपनी क्षमतानुसार प्रातःकाल भ्रमण करने से विजातीय पदार्थ आसानी से शरीर से बाहर निकलते हैं जिससे शरीर के अंगों की कार्य क्षमता में वृद्धि होती है और उत्सर्जन तंत्र के रोगों में शीघ्र लाभ प्राप्त होता है।

नियमित रूप से प्राणायाम का अभ्यास करने से वृक्क स्वस्थ एवं सक्रिय बनते है और उत्सर्जन तंत्र से सम्बन्धित विकार दूर होते है। प्राणायाम का पर्याप्त समय अभ्यास करने से प्रॉस्ट्रेट ग्लैण्ड एवं किडनी आरोग्यता को प्राप्त होती है एवं बहुमूत्र, अल्पमूत्र, किडनी फेल, किडनी में सूजन एवं किडनी में जलन आदि रोग समूल दूर होते हैं। प्राणायाम के अभ्यास क्रम में अनुलोम–विलोम, नाड़ी शोधन, भस्त्रिका, भ्रामरी एवं शीतली आदि प्राणायामों का विधिपूर्वक और नियमित रूप से अभ्यास करने का अच्छा प्रभाव वृक्कों की क्रियाशीलता पर पड़ता है। इसके अतिरिक्त शरीर के पृष्ठ भाग पर हल्के हाथों से मालिश करने पर वृक्कों की क्रियाशीलता में वृद्धि होने के साथ ही वृक्क विकारों से मुक्ति प्राप्त होती है।

12-4-5 vkdk'k rRo fpfdRlk

उत्सर्जन तंत्र के रोगों एवं जनन रोगों में उपवास, ध्यान एवं प्रार्थना आदि का अभ्यास बहुत लाभकारी प्रभाव रखता है। उपवास करने से विजातीय विष अधिक तेजी से बाहर निकलते हैं और वृक्कों की कार्यक्षमता में वृद्धि होती है। ध्यान का सीधा सम्बन्ध अन्तःस्राव से है ध्यान के अभ्यास से वृक्कों के ऊपर स्थित एड्रिनल ग्रथियों के स्राव (हारमोन्स) व्यवस्थित एवं सन्तुलित होते हैं, जिससे वृक्कों की क्रियाशीलता भी सुव्यवस्थित होती है और सम्बन्धित रोग दूर होते हैं। प्रार्थना के सकारात्मक भावों का प्रभाव मानव शरीर के सभी तंत्रों पर पड़ता है। प्रातः एवं सांयकाल स्थिर मन के साथ ईश्वर प्रार्थना करने से शरीर के सभी तंत्र एवं अंग–अवयव रोगों से रहित होकर पूर्ण क्रियाशीलता के साथ अपना कार्य करते हैं। इस प्रकार प्रार्थना की सकारात्मकता में लीन होने पर शरीर में उत्सर्जित पदार्थों की उत्पत्ति बहुत अल्प मात्रा में हाने लगती है तथा उत्पन्न हुए उत्सर्जी पदार्थ भली–भाँति शरीर से बाहर निकलते हैं। इससे उत्सर्जन एवं जनन रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है।

इस प्रकार उपरोक्त प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा उत्सर्जन एवं जनन सम्बन्धी रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है। उपरोक्त चिकित्सा के साथ रोगी व्यक्ति को निम्न अपथ्य आहार का त्याग और पथ्य आहार का सेवन करना चाहिए–

viF; vkgkj% नमक, मिर्च, मसाले, वसा, घी–तेल चिकनाई युक्त खाद्य पदार्थ, मैदा और मैदे से बनी वस्तुएं, बासी एवं प्रिजर्वेटिव युक्त खाद्य पदार्थ, मलाई, मिठाइयां, बर्फ–आइसक्रीम, कोल्ड ड्रिंक्स, सोडा वाटर आदि कृत्रिम खाद्य पदार्थों का त्याग कर देना चाहिए।

iF; vkgkj% हल्का सुपाच्य आहार, गेंहूँ–जौ और चना मिलाकर चौकर युक्त आटे की रोटियां, लौकी, तुरई, टमाटर, नींबू, विटामिन्स और खनिज लवणों युक्त ताजे फल–सब्जियां जैसे सन्तरा, मौसमी, अनार, पपीता, अंगूर, अनानास, नारियल पानी, रसदार फल जैसे तरबूज, खरबूजा आदि सुपाच्य खाद्य पदार्थों का सेवन करना चाहिए।

fVIi.kh

bdkbxr i’u&12-4

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

i) प्राकृतिक चिकित्सा को .... चिकित्सा की संज्ञा दी जाती है

ii) जल तत्व का सबसे प्रमुख गुण शरीर .... करना होता है।

iii) मूत्र विकारों में .... रंग की किरणों का प्रयोग करने से लाभ प्राप्त होता है।

vkiu D;k lh[kk

इस इकाई (यूनिट) के अध्ययन के पश्चात् आपने सीखा कि –

- वर्तमान काल में आधुनिकता का बहुत अधिक प्रभाव मनुष्य के आहार पर पड़ा है। समय का अभाव कहें अथवा स्वाद के वशीभूत होना माने परन्तु यह तथ्य स्पष्ट है कि वर्तमान सभ्य समाज में शुद्ध–सात्विक आहार को छोड़कर फास्टफूड, जंकफूड, सीफूड, डिब्बाबंद आहार, कोल्डड्रिंक्स और अन्य रयासनों से युक्त आहार के सेवन का प्रचलन बहुत तेजी से बढ़ता जा रहा है। इस प्रकार के आहार से पाचन तंत्र और इसके साथ उत्सर्जन तंत्र अनेक रोगों से ग्रस्त हो जाता है।

- वर्तमान समय में गलत दिनचर्या, विकृत आहार का सेवन, शारीरिक श्रम का अभाव और मानसिक तनाव आदि कारकों के परिणामस्वरूप पाचन अंगों की क्रियाशीलता कम हो रही है जिस कारण पाचन क्रिया में बाधा उत्पन्न होने के साथ पाचन रोगों की उत्पत्ति होती है।

- इस प्रकार अपच, कब्ज, एसीडिटी, आईबीएस, पेप्टिक अल्सर, हर्निया गुदा रोग पाचन तंत्र के प्रमुख विकार होते हैं जिनका प्रकोप दिन–प्रतिदिन समाज में बढ़ता जा रहा है। इन रोगों से मुक्ति प्राप्त करने में प्राकृतिक चिकित्सा बहुत लाभकारी एवं प्रभावशाली भूमिका वहन करती है।

- पाचन तंत्र के रोगों का मूल कारण अप्राकृतिक एवं असंयमित आहार का सेवन करना होता है अतः इन रोगों से मुक्ति प्राप्त करने हेतु सर्वप्रथम मनुष्य को प्राकृतिक एवं संयमित आहार का सेवन करना चाहिए। इसके साथ–साथ उषापान, वमन एवं एनीमा आदि शोधन क्रियाओं का अभ्यास करने से पाचन तंत्र के रोगों में स्थाई लाभ प्राप्त होता है। पाचन रोगों में प्रातःकालीन भ्रमण एवं प्राणायाम का अभ्यास करने से पाचन अंगों की क्रियाशीलता में वृद्धि होती है और इन रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है।

- पचंमहाभूतों के सम्यक प्रयोग से पाचन तंत्र के रोगों में शीघ्र एवं स्थाई लाभ प्राप्त होता है। पाचन तंत्र के रोगी को अपथ्य आहार का त्याग करते हुए पथ्य आहार का सेवन करना चाहिए।

- मानव शरीर में वृक्कों का कार्य रक्त को छानकर अशुद्धियों को अलग करना होता है। इन रक्त से प्राप्त अशुद्धियों को जल के साथ मिलाकर मूत्र का निर्माण किया जाता है और मूत्र को समय–समय पर शरीर से बाहर उत्सर्जित किया जाता है। शरीर के इस तंत्र को मूत्रवह संस्थान की संज्ञा दी जाती है जिसका महत्वपूर्ण कार्य रक्त को स्वच्छ बनाना होता है। इस तंत्र के स्वस्थ, सक्रिय और रोगमुक्त रहने पर रक्त स्वच्छ और निर्मल बना रहता है जिससे शरीर की सभी क्रियाएं सुचारु रूप से चलती रहती है।

- विकृत आहार–विहार, अव्यवस्थित दिनचर्या और अन्य कारकों के परिणामस्वरूप रोगों की उत्पत्ति होती है। इनके अतिरिक्त कम मात्रा में मूत्र निर्माण होना, अधिक मूत्र उत्सर्जन होना, मूत्र में शरीरोपयोगी तत्वों का आना भी ऐसे लक्षण हैं जिनका सम्बन्ध मूत्रवह संस्थान के रोगों से होता है।

- वर्तमान समय में शरीर के प्रजनन तंत्र से सम्बन्धित विकृतियां समाज में बहुत तेजी से बढ़ती जा रही हैं। प्रजनन तंत्र की विकृतियों में वीर्यदोष, इन्द्रिय शिथिलता एवं प्रोस्टेट ग्रन्थि में वृद्धि प्रमुख हैं। इन विकृतियों की उत्पत्ति का मूल कारण अप्राकृतिक आहार–विहार एवं असंयमित जीवनशैली होती है।

- प्राकृतिक चिकित्सा को शोधन चिकित्सा की संज्ञा दी जाती है क्योंकि प्राकृतिक चिकित्सा में मुख्य रूप से शरीर शोधन और मन को स्वच्छ–निर्मल बनाने पर बल दिया जाता है। दूसरे शब्दों में पंचमहाभूतों का प्रयोग करते हुए शरीर से विषाक्त पदार्थों का अवशोषण किया जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा शरीर और मन में स्थित गन्दगियों, विषाक्त पदार्थो एवं अविशिष्ट पदार्थो को बाहर निकालने का कार्य करती है, जबकि उत्सर्जन तंत्र का भी मूल कार्य शरीर में स्थित इन उत्सर्जित पदार्थों को बाहर निकालने का होता है अर्थात प्राकृतिक चिकित्सा में मिट्टी, जल और अग्नि आदि तत्वों के सम्यक प्रयोग करने का उत्सर्जन तंत्र पर बहुत सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

- प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा उत्सर्जन एवं जनन सम्बन्धी रोगों से स्थाई रूप से मुक्ति प्राप्त होती है। प्राकृतिक चिकित्सा के साथ रोगी व्यक्ति को अपथ्य आहार का त्याग करते हुए पथ्य आहार का सेवन करना चाहिए।

bdkbl d vUr e iz'u

1. उत्सर्जन तंत्र के सामान्य रोगों के प्रमुख लक्षणों का उल्लेख कीजिए?
2. वर्तमान काल में बढ़ते पाचन रोगों के प्रमुख कारण एवं इन रोगों का प्राकृतिक उपचार समझाइए।
3. उत्सर्जन तंत्र के प्रमुख रोगों का वर्णन कीजिए एवं उनका प्राकृतिक उपचार लिखिए।
4. पाचन तंत्र के रोगों में प्राकृतिक चिकित्सा के महत्व पर प्रकाश डालिए।

fVIi.kh

bdkbxr i'uk dk mÙkj

12-1

(क) सत्य (ख) असत्य (ग) असत्य (घ) सत्य

12-2

1. (i) अपच (ii) कब्ज
2. (i) नाभि के स्थान से नाभि का अलग धड़कना

   (ii) पेट में दर्द, अपच और दस्त होना।
3. मलेरिया, यकृत में संक्रमण अथवा शरीर के रक्त में संक्रमण आदि।

12-3

(i) 28 से 30

(ii) लधु शंख प्रक्षालन

(iii) उपवास

(iii) पीत वर्ण

12-3

(i) शोधन

(ii) शोधन

(iii) आसमानी

13

मस्कुलो–स्केलेटल सिस्टम संबंधी प्रमुख रोग एवं प्राकृतिक चिकित्सा

प्रिय शिक्षार्थियों, पूर्व इकाई (यूनिट) में आपने पाचन तंत्र एवं उत्सर्जन व जनन तंत्र से सम्बन्धित रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा के विषय में जाना। आप जान चुके हैं कि प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा मानव शरीर का शोधन करने से सभी अंग एवं तंत्र स्वस्थ बनते हैं और इन अंगों से सम्बन्धित रोगों में शीघ्र व स्थाई लाभ की प्राप्ति होती है। पूर्व इकाई (यूनिट) का अध्ययन करने से आपको स्पष्ट हुआ होगा कि पाचन तंत्र एवं उर्त्सजन व जनन तंत्र से सम्बन्धित रोगों में पंचमहाभूतों का सम्यक प्रयोग करने से विशेष लाभ प्राप्त होता है। वर्तमान समय में बहुत तेजी से बढ़ रहे मस्कुलो–स्केलेटल सिस्टम संबंधी विकारों को भी प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा ठीक किया जा सकता है।

मस्कुलो–स्केलेटल सिस्टम के नाम से ही स्पष्ट होता है कि इसमें मांसपेशियों और अस्थियों का समावेश होता है। अर्थात् मानव शरीर में पेशियों और अस्थियों के मिलने से मस्कुलो–स्केलेटल सिस्टम का निर्माण होता है। अस्थियां और मासंपेशियां आपस में मिलकर मानव शरीर की मूल संरचना का निर्माण करती हैं और शरीर को गति प्रदान करने में सहायता करती हैं। इन दोनों तंत्रों के सहयोग से मानव शरीर गतिशील बनकर सभी सरल से लेकर जटिल कार्य करने में सक्षम बनता है। परन्तु इन तंत्रों में विकार उत्पन्न होने पर शरीर की गतिशीलता प्रभावित होती है और इसी से ही आगे चलकर मांसपेशियों में दर्द, जकड़न, आर्थराइटिस, सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस, कमर दर्द और स्लिप डिस्क आदि रोग उत्पन्न होते है। वर्तमान समय में विकृत आहर–विहार, असंयमित जीवनचर्या, शारीरिक श्रम में कमी, योगाभ्यास की कमी, कम्प्यूटर, टी0वी0 पर अधिक समय बैठना, गलत मुद्राओं में कार्य करने और मानसिक तनाव जैसे कारकों के परिणाम स्वरूप समाज में इन रोगों का प्रभाव बहुत तेजी से बढ़ता जा रहा है। यद्यपि, प्रारम्भिक अवस्था में लोग इन

fVIi.kh

रोगों पर अधिक ध्यान नहीं देते हैं परन्तु आगे चलकर रोग गंभीर रुप धारण कर लेते हैं। इन रोगों में पेनकिलर दवाइयों के प्रयोग से कुछ समय के लिए राहत तो प्राप्त हो जाती है किन्तु समस्या का स्थाई समाधान नहीं हो पाता है। अतः इन रोगों में प्राकृतिक चिकित्सा उत्तम विकल्प होता है। प्रस्तुत इकाई (यूनिट) में हम मस्कुलो–स्केलेटल सिस्टम से संबंधी प्रमुख रोगों, लक्षण और इनकी प्राकृतिक चिकित्सा के कौशल सीखने में समर्थ होंगे।

mís';

इस इकाई (यूनिट) का अध्ययन करने के पश्चात् आप –

- मस्कुलो–स्केलेटल सिस्टम संबंधी प्रमुख रोगों के प्रमुख कारणों की विवेचना कर पाएंगे;
- मस्कुलो–स्केलेटल सिस्टम संबंधी प्रमुख रोगों के प्रमुख लक्षणों की व्याख्या कर सकेंगे;
- मस्कुलो–स्केलेटल सिस्टम संबंधी प्रमुख रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा का कौशल सीख सकेंगे।

13.1 eLdyk&LdyVy fLLVe lc/kh jkxk dk lkekU; ifjp; ,o dkj.k

प्रिय शिक्षार्थियों, मानव शरीर को गतिशील बनाने के लिए ऐच्छिक, अनैच्छिक और हृद् नामक तीन प्रकार की पेशियां शरीर में उपस्थित होती हैं। इन पेशियों में संकुचन और विस्तार क्रिया (Contraction & Extension) करने का गुण होता है जिस कारण ये पेशियां शरीर को आन्तरिक और बाह्य स्तर पर गतिशील बनाने का कार्य करती रहती हैं। इन पेशियों की गतिशीलता के कारण शरीर विभिन्न कार्यों को करने में सक्षम होता है। इस प्रकार शरीर को क्रियाशील बनाने में मांसपेशियां बहुत महत्वपूर्ण भूमिका वहन करती हैं। परन्तु गलत दिनचर्या, विकृत आहार का सेवन, शारीरिक श्रम का अभाव, योगाभ्यास का अभाव और गलत मुद्राओं में कार्य करने के कारण इन पेशियों में दर्द और जकड़न की रोगावस्था उत्पन्न हो जाती है जिससे शारीरिक कार्यों को करने में बाधा उत्पन्न होने के साथ रोगावस्था उत्पन्न हो जाती है। इन रोगों की उत्पत्ति के प्रमुख कारण निम्न होते हैं–

1. शुद्ध–सात्विक, पौष्टिक एवं प्राकृतिक आहार के स्थान पर कृत्रिम रासायनों से युक्त अप्राकृतिक, वातवर्धक एवं मैदायुक्त डिब्बाबंद खाद्य पदार्थों का सेवन करना।
2. स्वयं पर संयम का अभाव होने के कारण अनियिमित एवं अव्यवस्थित दिनचर्या को अपनाना एवं भोजन की मात्रा, समय आदि अनियमित होना।
3. रात्रि जागरण करना अथवा रात्रि में देर से सोना व प्रातःकाल देर तक सोना।
4. गलत शारीरिक मुद्राओं में कार्य करना, मोटे गद्दों पर सोना, सोने में मोटे तकिये का प्रयोग करना।

5. रीढ़ में अथवा शरीर के किसी अन्य भाग में चोट लगना या दुर्घटना का शिकार होना।

6. भोगमय जीवनशैली का अनुकरण करते हुए शारीरिक श्रम का पूर्णरुप से अभाव होना अथवा अत्यधिक शारीरिक श्रम करते हुए विश्राम न करना।

7. योगाभ्यास (योगासन, प्राणायाम व ध्यान आदि) एवं प्रातःकालीन भ्रमण नहीं करना।

8. कम मात्रा में जल का सेवन करना अथवा फ्रिज के ठंडे जल का सेवन करना।

9. धूम्रपान, नशीले पदार्थ एवं कृत्रिम रासायनिक शीतल पेय का अधिक सेवन करना।

10 मानसिक तनाव, चिन्ता, क्रोध एवं निराशा आदि संवेगों से ग्रस्त रहना।

bl idkj mijkDr dkjdk d ifj.kkeLo#i 'kjhj e eLdiyk&LdiyVy fILVe Ilc/kh jkx mRiUu gkr gA orieku Ie; e bu jkxk I xLr jkfx;k dh I[;k dk xkQ fnukfnu c<rk tk jgk gA

bdkbxr i’u&13-1

सत्य/ असत्य बताइये

क) मस्कुलो–स्केलेटल सिस्टम के सहयोग से मानव शरीर गतिशील बनकर सभी सरल से लेकर जटिल कार्य करने में सक्षम बनता है। ( )

ख) मानव शरीर को गतिशील बनाने के लिए दो प्रकार की पेशियां शरीर में उपस्थित होती हैं। ( )

ग) गलत मुद्राओं में कार्य करने के कारण पेशियों में दर्द और जकड़न उत्पन्न हो जाती है। ( )

घ) योगाभ्यास एवं प्रातःकालीन भ्रमण मस्कुलो–स्केलेटल सिस्टम संबंधी रोगों के प्रमुख कारण हैं। ( )

13-1-1 IkbfVdk jkx dk IkekU; ifjp; ,o y{k.k

मानव शरीर में रीढ़ के निचले भाग से दोनों पैरों की ओर साईटिका नामक नाड़ी स्थित होती है। यह नाड़ी मानव शरीर की सबसे लम्बी नाड़ी होती है जो मस्तिष्क से निकलकर रीढ़ से होती हुई पैरों तक फैली होती है। यह नाड़ी पैरों से संवेदनाओं को ग्रहण करने के उपरान्त उन संवेदनाओं को मस्तिष्क तक पहुंचाने का महत्वपूर्ण कार्य करती है। सामान्य अवस्था में कूल्हों से पैरों तक स्थित इस नाड़ी की अनुभूति नहीं होती है किन्तु गलत मुद्राओं में कार्य करने अथवा चोट आदि कारणों से जब इस महत्वपूर्ण नाड़ी पर दबाव आता है तो पैरों के इस भाग में असहनीय दर्द एवं वेदना उत्पन्न होती है और ऐसी अवस्था में मनुष्य का पैरों पर नियंत्रण कम होने लगता है। विशेष रुप से पैरों पर दबाव आते ही इस नाड़ी में असहनीय वेदना उत्पन्न

fVIi.kh

होने लगती है। इस अवस्था में मनुष्य पैरों पर किसी भी प्रकार का दबाव नहीं दे पाता है और वह चलने में असक्षम हो जाता है। शरीर की इस अवस्था को साईटिका रोग कहा जाता है।

साईटिका रोग को हिन्दी भाषा में गृध्रसी (Sciatica Neuritis) कहा जाता है। इस रोगावस्था में तीव्र वेदना नितम्ब संधि से प्रारम्भ होकर पैर के अंगूठों तक जाती है। इसके अतिरिक्त रोगावस्था गंभीर होने पर रोगी व्यक्ति असह्य पीड़ा से ग्रस्त होकर बिस्तर में ही लेटा रहता है। इस रोग के विषय में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी स्पष्ट होता है कि, इसमें होने वाली पीड़ा में पेनकिलर दवाइयों का प्रयोग भी विशेष लाभ प्रदान नहीं करता है अपितु, रोगी का चलना बहुत कम हो जाता है। इसके परिणामस्वरुप मनुष्य का शारीरिक श्रम बहुत कम हो जाता है।

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

1. एक पैर अथवा दोनों पैरों में भीतर की और असहनीय दर्द होना, इस रोग का सबसे प्रमुख लक्षण होता है।
2. पैरों पर दबाव देते ही तीव्र वेदना उत्पन्न होना।
3. पैरों में सुन्नपन होना एवं विशेष रुप से पैर की अंगुलियों में झनझनाहट होना।
4. नितम्ब संधि से लेकर पैरों के पिछले भाग में सुई के समान असह्य चुभन होना।
5. पैरों की क्रियाशीलता कम होने के कारण मनुष्य का दैनिक कार्यों को करने में अस़क्षम होना।

ekuo 'kjhj e mijkDr y{k.k lkbfVdk jkx dh vkj ldr djr gA

13-1-2 ekl isf'k;k e nn ,o tdMu dk lkekU; ifjp; ,o y{k.k

शरीर की मांसपेशियों में दर्द और जकड़न का होना आजकल बहुत सामान्य रोग बनता जा रहा है। पहले वृद्धावस्था में शरीर की मांसपेशियों की क्रियाशीलता कम होने पर यह समस्या उत्पन्न होती थी किन्तु वर्तमान समय में आहार–विहार, असंयमित जीवनशैली एवं शारीरिक श्रम का अभाव आदि कारणों के परिणामस्वरुप यह रोग बच्चों से लकर युवाओं और वृद्धों आदि में भी अर्थात् समाज के सभी आयु वर्ग के लोगों में यह रोग बहुत तेजी से बढ़ता जा रहा है। इस रोग के विषय में हुए शोध से एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी स्पष्ट होता है कि पुरुषों की तुलना में महिलाएं इस रोग की चपेट में अधिक आ रही हैं।

यद्यपि, अधिक कार्य करने के उपरान्त शरीर की मांसपेशियों में दर्द और भारीपन होना मानव शरीर की एक स्वभाविक प्रक्रिया है जो दैनिक जीवन में प्रायः अनुभव होती है। इस प्रकार थकान से उत्पन्न दर्द एवं भारीपन में रात्रिकाल का विश्राम आराम प्रदान करता है। वैज्ञानिक मतानुसार कार्य करने पर मासंपेशियों में लैक्टिक ऐसिड की उत्पत्ति होती है जो विश्राम करने पर हटा दिया जाता है और मांसपेशियों में पुनः हल्कापन उत्पन्न हो जाता है। परन्तु जब शरीर के विभिन्न भागों की मांसपेशियों में दर्द, भारीपन और जकड़न लगातार बनी रहती है और उसमें आराम करने से भी लाभ प्राप्त नहीं होता है बल्कि दर्द के कारण आराम करने में भी बाधा (नींद नहीं आना) उत्पन्न होने लगती है तब वह रोगावस्था कहलाती है। इस अवस्था में शरीर के सम्बन्धित भाग की पेशियों में दर्द के साथ जकड़न भी उत्पन्न होती है।

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

1. पेशियों में दर्द, ऐंठन के साथ जकड़न उत्पन्न होना।

2. पेशियों में भारीपन के साथ उस भाग में लालीपन और सूजन आना।

3. आराम करने पर दर्द में आराम के स्थान पर समस्या बढ़ जाना।

4. शरीर के भागों का मूवमेन्ट कम हो जाना और मूवमेन्ट करने पर तीव्र दर्द होना।

5. पेशियों में जकड़न और दर्द के कारण रात्रि की नींद में बाधा उत्पन्न होना और नींद नहीं आना।

'kjhj e miijkDr y{k.k ekl if'k;k e nn ,o tdMu dh vkj ldr djr gA

13-1-3 vkFkjkbfVl jkx dk lkekU; ifjp; ,o y{k.k

प्रिय शिक्षार्थियों, आर्थराइटिस अंग्रेजी भाषा का शब्द है जिसकी उत्पत्ति ग्रीक भाषा से हुई है। आर्थराइटिस ग्रीक भाषा के दो शब्दों आथ्रो (Arthro) और आइटिस (Itis) से मिलकर बनता है। ग्रीक भाषा में आथ्रो (Arthro) का अर्थ जोड़ अर्थात् सन्धियां तथा आइटिस (Itis) का अर्थ सूजन होता है अर्थात् शाब्दिक अर्थ में वह रोग जिसमें जोड़ों अथवा सन्धियों में सूजन उत्पन्न होती है, आर्थराइटिस (Arthritis) कहलाता है। चूंकि आर्थराइटिस रोग में सन्धियों में सूजन उत्पन्न होती है अतः हिन्दी भाषा में इसे सन्धि शोथ के नाम से जाना जाता है। आयुर्वेद शास्त्र में आर्थराइटिस रोग को संधिवात का नाम दिया गया हैं।

इस रोग का प्रारम्भ जोड़ों में सूजन के साथ होता है। जोड़ों में सूजन के साथ जोड़ लाल होने लगते हैं एवं इन जोड़ों में सुई सी चुभन उत्पन्न होने लगती है। यही आगे चलकर गठिया में एवं गठिया आगे चलकर आर्थराइटिस रोग का रुप ले लेता है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में आर्थराइटिस रोग के सौ से भी अधिक प्रकारों को वर्णित किया गया है। आर्थराइटिस रोग के प्रकारों में सबसे अधिक व्यापक रुमेटोयड आर्थराइटिस (आमवातिक संधिशोथ) है। इसके अतिरिक्त ऑस्टियो आर्थराइटिस, सेप्टिक आर्थराइटिस, सोरियाटिक आर्थराइटिस तथा रिएक्टिव आर्थराइटिस भी आर्थराइटिस रोग के अन्य प्रकार हैं।

भारत के अतिरिक्त पश्चिमी विकसित देशों में जहाँ अधिकांश कार्य मशीनों से होता है एवं शारीरिक श्रम का अधिक अभाव है, उन देशों में अस्थि तंत्र के जोड़ों के दर्द से सम्बन्धित रोगियों की संख्या और भी अधिक है। भारत की तुलना में इन देशों में आर्थराइटिस रोगियों की संख्या और भी अधिक है। एक गणना के अनुसार अमेरिका देश में आर्थराइटिस रोग से ग्रस्त रोगियों की संख्या 20 लाख से भी अधिक है। इसी प्रकार कनाडा, इग्लैंण्ड एवं आस्ट्रेलिया आदि ठंडे वातावरण के विकसित देशों में भी आर्थराइटिस रोगियों की संख्या तेजी से बढ़ती जा रही है। दुनिया भर में आर्थराइटिस रोग के बढ़ते प्रभाव को दूर करने के उद्‌देश्य से एवं आर्थराइटिस के प्रति जागरुकता फैलाने के उद्‌देश्य से 12 अक्टूबर को 'विश्व आर्थराइटिस दिवस' मनाया जाता है। इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

1. शरीर के जोड़ों में सूजन के साथ तीव्र वेदना होना इस रोग का मूल लक्षण होता है।

fVIi.kh

fVIi.kh

2. जोड़ों में कठोरता आने के साथ अस्थियों का टेढ़ा हो जाना।

3. शरीर का तापक्रम बढ़ना एवं शरीर में हल्का बुखार बने रहना।

4. त्वचा पर रेशेज, झुर्रियां पड़ना और खुरदरी होना।

5. शरीर में भारीपन के साथ हाथ–पैर मोड़ने में दर्द एवं पीड़ा होना।

6. शरीर में हर समय कष्ट और पीड़ा रहने के साथ शरीर का वजन कम हो जाना।

7. निन्द्रा में बाधा उत्पन्न होना और अनिद्रा उत्पन्न होना।

8. स्वभाव में परिवर्तन जैसे चिड़चिड़ापन, क्रोध, बेचैनी आदि उत्पन्न होना।

'kjhj e mijkDr y{k.k eLdykLDyVy fILVe d vkFkjkbfVI jkx dh vkj Idr djr gA

rkfydk 1% vkeokr] If/kokr o xfB;k e vUrj

fo'k"krk,;	vke okr (Rheumatoid Arthritis)	If/k okr (Osteo Arthritis)	xfB;k (Gout Disease)
dkj.k	Proliferation of synovial membrane Inflammatory disease	Degeneration of articular cartilage Degenerative disease	Impaired purine metabolism Metabolic disease
tkM@If/k	तीन या अधिक संधि पीड़ित हाथ पाँव की संधियों पर होता है	शरीर का वज़न बार गिरने वाले संधि	अधिकतर एक संधि
nnl dh rhork	अधिक	कम	कम
If/k;k dh dBkjrk rFkk Itu	1घंटे या उससे अधिक	15 मिनट तक	नहीं होता

fpfdRlk	• आक्रांत पेशी के ऊपर 5 मिनट गरम फिर 5 मिनट ठंडे पानी से भीगी और निचोड़ी कपड़े की पट्टी से 10–20 मिनट तक सेक देनी चाहिए। • इस रोग में मालिश लाभ नहीं करती। • पेशियों को पूरा आराम देना भी जरूरी है।	• दर्द वाले पैर को दिन में तीन बार आधे घंटे तक गरम जल में डूबा रखने के बाद उस पर भाप देने के बाद ठंडे जल से भीगे कपड़े की पट्टी रखकर गरम हो जाने पर उसे पुनः पुन बदलते रहना चाहिए। • एक किलो गरम पानी में 50 ग्राम नमक पानी से भीगे और निचोड़े कपड़े से जोड़ों को सेक कर उन्हें ठंडे पानी से धो देना चाहिए। • सूर्यतप्त लाल रंग के तेल से मालिश करने से जल्दी आराम मिलता है।	• उपवास, रसाहार, फलाहार तथा भोजन के नियमों का पालन करना चाहिए। • चेहरा, सिर रोग वाले स्थान को केले की हरी पत्तियों से ढक कर लगभग आधे घंटे तक नंगे बदन धूप में रहना चाहिए। उसके बाद ठंडे जल से भीगी और निचौड़ी तोलिया से पूरे बदन को पोछना चाहिए यह क्रिया सप्ताह में तीन बार करनी चाहिए।

fVIi.kh

13-1-4 lokbdy LikfUMykbfVLk dk lkekU; ifjp; ,oa y{k.k

प्रिय शिक्षार्थियों, मनुष्य की रीढ़ का निर्माण छोटी–छोटी विशेष आकार एवं संरचना की अस्थियों (कशेरुकाओं) के मिलने से होता है। रीढ़ में इन कशेरुकाओं की कुल संख्या 26 होती है। इनमें से ऊपर की (सिर की ओर) प्रथम सात कशेरुकाओं को सर्वाइकल की संज्ञा दी जाती हैं। जिन्हे अग्रेंजी भाषा के अक्षर सी–1 से लेकर सी–7 तक से प्रर्दशित किया जाता है। रीढ़ की इन सी–1 से लेकर सी–7 तक की कशेरुकाओं के मूल स्थान, आकृति अथवा संरचना में विकृति ही सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस (Cervical Spondolytis) नामक रोग के नाम से जाना जाता हैं।

शरीर की गलत मुद्रा अपनाकर देर तक कार्य करने से रीढ़ की उपरोक्त कशेरुकाओं पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है तथा यह रोग उत्पन्न होता है। इसी प्रकार लम्बे समय तक झुककर बैठने से भी यह रोग उत्पन्न होता है। नियमित रूप से गलत मुद्राओं में सोने, अधिक गहरे व लचीले गद्दों पर सोने एवं सोते समय मोटे तकिये को सिराहने के रुप में प्रयोग करने की आदत इस गंभीर रोग को जन्म देती है। इस रोग में गर्दन

fVIi.kh

के भाग में बहुत तीव्र सुई की चुभन के समान वेदना होती है जिसमें दर्द निवारक दवाइयों का सेवन भी प्रभावहीन होता है।

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

1. गर्दन में तीव्र वेदना और जकड़न के साथ गर्दन का जाम हो जाना एवं गर्दन घुमाने में बहुत तेज दर्द होना।
2. गर्दन दर्द बढ़ते हुए कन्धों में दर्द और जकड़न होना।
3. कमर दर्द के साथ आगे को झुकने में तीव्र दर्द होना।
4. हाथों व अंगुलियों में सुन्नपन होना और इन्द्रिय बोध कम होना।
5. आंखों के सामने अंधेरा छाते हुए चक्कर आना एवं सिरदर्द बने रहना ।
6. गर्दन में दर्द के कारण निद्रा में बाधा उत्पन्न होना और अनिद्रा उत्पन्न होना।
7. स्वभाव में परिवर्तन जैसे चिड़चिड़ापन, क्रोध, बेचैनी आदि उत्पन्न होना।

'kjhj e mijkDr y{k.k eLdykLDyVy fLVe d lokbdy LikfUMykbfVl jkx l xLr gku dh vkj ladr djr gA

13-1-5 ihBnnl ,o dfVLuk;q'ky jkx dk lkekU; ifjp; ,o y{k.k

प्रिय शिक्षार्थियों, मानव शरीर के आधार के रूप में रीढ़ का वर्णन आता है। रीढ़ का निर्माण कुल 26 कशेरुकाओं के मिलने से होता है। इसके साथ–साथ रीढ़ से ही 31 जोड़ी मेरुतंत्रिकाएं निकलती हैं। यह मेरुतंत्रिकाएं रीढ़ से निकलकर सम्पूर्ण शरीर में फैलकर संवेदनाओं को ग्रहण करने का कार्य करती है। परन्तु शरीर की गलत मुद्राओं में देर तक कार्य करने; भारी सामान उठाने अथवा वातवर्द्धक ठंडी प्रकृति के आहार का अधिक सेवन अथवा अधिक गहरे व लचीले गद्दों पर सोने या चोट आदि कारकों के परिणास्वरुप रीढ़ की उपरोक्त कशेरुकाओं एवं तंत्रिकाओं पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है तथा पीठ दर्द एवं कटिस्नायुशूल रोग उत्पन्न होता है।

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

1. पीठ की रीढ़ के मध्य भाग में बहुत तेज दर्द होना।
2. पीठ दर्द बढ़ते हुए रीढ़ में जकड़न होना।
3. कमर दर्द के साथ आगे को झुकने में तीव्र दर्द होना।

4. कार्य करने में असुविधा एवं दर्द होना।

5. विश्राम करने पर भी दर्द में आराम प्राप्त नहीं होना।

6. पीठदर्द के कारण निद्रा में बाधा उत्पन्न होना और अनिद्रा उत्पन्न होना।

7. स्वभाव में परिवर्तन जैसे चिड़चिड़ापन, क्रोध, बेचैनी आदि उत्पन्न होना।

'kjhj e mijkDr y{k.k eLdykLDyVy fILVe d ihBnn ,o dfVLuk;| 'ky jkx dh vkj Idr djr gA

13-1-6 fLyi fMLd jkx dk IkekU; ifjp; ,o y{k.k

प्रिय शिक्षार्थियों, वर्तमान समय में पीठदर्द ऐसा सामान्य एवं व्यापक रोग है जिसका सामना प्रायः अधिकांश लोगों को अपने जीवन में करना पड़ता है। इनमें से जहाँ कुछ व्यक्तियों को यह दर्द कभी–कभी सताता है जो कुछ समय के उपरान्त ठीक हो जाता है किन्तु कुछ व्यक्ति इस पीठदर्द से स्थाई रुप से ही ग्रस्त रहते हैं। ऐसे व्यक्तियों में आगे चलकर यह पीठदर्द **^fLyi fMLd*** नामक रोग में परिवर्तित हो जाता है। इस रोग से ग्रस्त होने पर इस दर्द की गंभीरता इतनी होती है कि इन लोगों का घूमना फिरना एवं कार्य करना लगभग बंद सा हो जाता है और ये लोग बिस्तर पकड़ लेते हैं।

स्लिप डिस्क अग्रेंजी भाषा का शब्द है जिसमें स्लिप का अर्थ फिसलने से और डिस्क का अर्थ मेरुदण्ड की कशेरुका से होता है अर्थात् वह अवस्था जिसमें मेरुदण्ड की कशेरुका अपने स्थान से फिसल जाती है, स्लिप डिस्क रोग के नाम से जाना जाता है। इस रोग का सीधा सम्बन्ध हमारी रीढ़ अर्थात् मेरुदण्ड से होता है जिसमें रीढ़ की कशेरुकाएं अपने मूल स्थान से फिसल जाती है।

इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

1. कमर के निचले भाग में तेज दर्द (लोवर बैक पेन) होना।

2. रीढ़ से निकलने वाली तंत्रिकाओं (नाड़ियों) का दब जाना।

3. शरीर का असन्तुलित होकर एक दिशा में झुक जाना और चलते समय एक ओर झुककर चलना।

4. दैनिक कार्य करने में असुविधा एवं दर्द होना।

5. रोग की गंभीर अवस्था में मल–मूत्र पर नियंत्रण का अभाव होना।

6. पीठदर्द के कारण निद्रा में बाधा उत्पन्न होना और अनिद्रा उत्पन्न होना।

'kjhj e mijkDr y{k.k eLdykLDyVy fILVe d fLyi fMLd jkx dh vkj Idr djr gA

fVIi.kh

fVIi.kh

bdkbxr i’u&13-2

i) मस्कुलो–स्केलेटल सिस्टम संबधी रोगों के प्रमुख कारण लिखिए।

....

....

ii) साईटिका रोग के प्रमुख लक्षण लिखिए।

....

....

iii) मांसपेशियों में दर्द व जकड़न के प्रमुख लक्षण लिखिए।

....

....

iv) मस्कुलो–स्केलेटल सिस्टम संबंधी किन्हीं दो रोगों का सामान्य परिचय दिजिए।

....

....

प्रिय शिक्षार्थियों, मस्कुलो–स्केलेटल सिस्टम संबंधी रोगों से ग्रस्त होने पर शरीर की संरचना में विकृति उत्पन्न हो जाती है और शरीर का सन्तुलन सही प्रकार नहीं रहता है। जिसके परिणामस्वरुप चलने में समस्या उत्पन्न होने लगती है। इसके साथ–साथ मस्कुलो–स्केलेटल सिस्टम का सबसे प्रमुख कार्य शरीर को गतिशील बनाए रखना होता है। इस तंत्र में विकृति उत्पन्न होने के परिणामस्वरुप शरीर की गतिशीलता में बाधा उत्पन्न होने लगती है और हाथों–पैरों की मांसपेशियों में जकड़न के साथ–साथ शरीर कार्य करने में असक्षम होने लगता है। बहुत हल्के श्रम से ही शरीर में थकान एवं दर्द उत्पन्न होने लगता है। इस अवस्था में दर्द से मुक्ति प्राप्त करने के लिए मनुष्य अंग्रेजी दर्द निवारक दवाइयों का सेवन करता है किन्तु इन रोगों में पेन किलर दवाईयों का सेवन भी निष्प्रभावी होता है और अंग्रेजी दवाइयों के दुष्प्रभाव के साथ–साथ शरीर की कार्य क्षमता धीरे–धीरे क्षीण होने लगती है। इन रोगों में प्राकृतिक चिकित्सा अत्यन्त लाभकारी प्रभाव रहती है। यद्यपि, प्राकृतिक चिकित्सा मस्कुलोस्केलेटल तंत्र संबंधी रोगों का उपचार धीरे–धीरे करती है किन्तु प्राकृतिक चिकित्सा के प्रभाव से इन गंभीर रोगों में स्थाई लाभ की प्राप्ति होती है। अतः अब इन रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा पर विचार करते हैं ।

13-2 eLdykLdyVy r= d jkxk dh ikÑfrd fpfdRlk

प्रिय शिक्षार्थियों, मस्कुलोस्केलेटल तंत्र के रोगों की उत्पत्ति में अप्राकृतिक आहार–विहार एवं गलत मुद्राओं में कार्य करना अत्यन्त महत्वपूर्ण कारण होते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत इन रोगों से मुक्ति प्राप्त

करने हेतु सर्वप्रथम इन दोनों कारणों का निवारण करना बहुत आवश्यक होता है। रोगी मुनष्य को शुद्ध–सात्विक, पौष्टिक एवं प्राकृतिक आहार का सेवन कराना चाहिए। शुद्ध–सात्विक, पौष्टिक एवं प्राकृतिक आहार का सेवन करने से मांसपेशियां एवं अस्थियां स्वस्थ, सक्रिय एवं रोगमुक्त बनती है और मस्कुलोस्केलेटल तंत्र से सम्बन्धित रोगों में स्थाई लाभ प्राप्त होता है। इस तंत्र से सम्बन्धित रोगों के उपचार में प्राकृतिक चिकित्सा की शोधन क्रियाएं विशेष लाभकारी प्रभाव रखती हैं। प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत पंचमहाभूतों के सम्यक प्रयोग से इस तंत्र के रोगों में शीघ्र लाभ प्राप्त होता है।

पंचमहाभूतों में मिट्टी का प्रयोग करने से मांसपेशियों एवं अस्थियों में उपस्थित विजातीय विषों का अवशोषण होता है और मांसपेशियों व अस्थियों की कार्यक्षमता उन्नत बनने के साथ–साथ सम्बन्धित रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है। जल तत्व शरीर को बाह्य और आन्तरिक रूप में स्वच्छ व निर्मल बनाने का कार्य करता है। जल तत्व के अर्न्तगत उषापान, एनिमा एवं विभिन्न प्रकार के स्नानों का प्रयोग करने से मांसपेशियां एवं अस्थियां सक्रिय एवं रोगमुक्त बनती है। प्राकृतिक चिकित्सा में अग्नि तत्व के द्वारा शरीर में ऊर्जा का सन्तुलन स्थापित किया जाता है। ऊर्जा का सन्तुलन होने पर मांसपेशियों एवं अस्थियों की कार्यक्षमता और कार्यकुशलता में वृद्धि होती है और रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है। शरीर में पंच प्राणों का असन्तुलन मस्कुलोस्केटल तंत्र के रोगों को जन्म देता है अतः प्राणायाम का अभ्यास करते हुए पाँच प्रकार की वायुओं को सन्तुलित बनाने से इस तंत्र के रोगों में शीघ्र लाभ प्राप्त होता है। इसके साथ–साथ रोगी मनुष्य के सम्बन्धित स्थान पर वैज्ञानिक ढंग से मालिश करने पर प्राण वायु के संचारण में तीव्रता उत्पन्न होती है और रोगावस्था से मुक्ति प्राप्त होती है। मस्कुलोस्केटल तंत्र के रोगों में लघु उपवास भी लाभकारी प्रभाव रखते हैं। प्रायः अधिकांश जीव–जन्तु और पशु–पक्षी बीमार पड़ते ही अन्न का त्याग कर देते हैं और अपनी पूरी जीवनी शक्ति रोग से मुक्ति प्राप्त करने में लगा देते हैं। इसी प्रकार रोगी मनुष्य को लघु उपवास करवाने से जीवनी शक्ति उन्नत बनती है और रोगावस्था से मुक्ति मिलती है। उपवास के प्रभाव से शरीर में स्थित अनावश्यक चर्बी नष्ट होती है और मांसपेशियों की क्रियाशीलता में वृद्धि होने के साथ ही रोगावस्था में लाभ मिलता है। इसके साथ–साथ सकारात्मक भावना का चिन्तन करने से जीवनी शक्ति व रोग प्रतिरोधक क्षमता उन्नत बनती है और रोगों से मुक्ति प्राप्त होकर उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है।

प्राकृतिक चिकित्सा में रोगों को दबाया नहीं जाता है अपितु, पंचमहाभूतों का सम्यक प्रयोग करते हुए एवं प्राकृतिक आहार–विहार के माध्यम द्वारा समूल शरीर से बाहर निकाल दिया जाता है। इस हेतु रोगी मनुष्य पर मिट्टी, जल, अग्नि, वायु और आकाश नामक पंचमहाभूतों का सम्यक प्रयोग किया जाता है। मस्कुलोस्केलेटल तंत्र के रोगों की उत्पत्ति में शरीर की गलत मुद्राएँ बहुत हानिकारक प्रभाव रखती हैं। अतः गलत मुद्राओं के स्थान पर रीढ़ को सीधा रखते हुए बैठना, सही मुद्रा में कार्य करना एवं मोटे गद्दों के स्थान पर हार्ड बैड पर सोने की आदत डालनी चाहिए। इस प्रकार मस्कुलोस्केलेटल तंत्र के रोगी मनुष्य को शरीर की मुद्राओं पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है। इससे मस्कुलोस्केलेटल तंत्र के रोगों में स्थाई लाभ प्राप्त होता है। मस्कुलोस्केलेटल तंत्र के रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा को इस प्रकार समझा जा सकता है–

¼d½ iFoh rRo fpfdRlk

विकृत आहार–विहार एवं अनियमित दिनचर्या के परिणाम स्वरुप शरीर में विजातीय विष एकत्र होने लगते

fVIi.kh

हैं। इन विजातीय विषों के एकत्र होने से मांसपेशियों और अस्थियों में अनेक प्रकार के विकारों की उत्पत्ति होने लगती है। ऐसी अवस्था में मिट्टी की पट्टी का प्रयोग बहुत लाभकारी प्रभाव रखता है। मिट्टी में विजातीय विषों के अवशोषण की विलक्षण क्षमता विद्यमान होती है जिसके फलस्वरुप गीली मिट्टी शरीर से बढ़ी हुई ऊर्जा के साथ–साथ अन्य विषाक्त पदार्थों को अवशोषित करने का गुण रखती है। उदर पर गीली मिट्टी का प्रयोग करने से विषाक्त पदार्थों का अवशोषण होता है और मस्कुलोस्केलेटल तंत्र से संबंधी रोगों में शीघ्र लाभ प्राप्त होता है।

शरीर की मांसपेशियों एवं अस्थियों में दर्द होने पर गीली मिट्टी को गर्म करके प्रयोग करने से लाभ प्राप्त होता है। गर्म मिट्टी के प्रयोग से रक्त संचार में वृद्धि होती है और उस स्थान के दर्द में आराम मिलता है। कमर दर्द, सियाटिका और आर्थराइटिस आदि रोगों में गर्म मिट्टी का प्रयोग बहुत लाभकारी प्रभाव रखता है। इन रोगों की अवस्था में गर्म मिट्टी की पट्टी को रीढ़ अथवा शरीर के अन्य भागों पर प्रयोग किया जा सकता है। इसके साथ–साथ सम्पूर्ण शरीर पर गीली मिट्टी का लेप करने से विजातीय विषों का अवशोषण होता है और रोगावस्था में स्थाई लाभ प्राप्त होता है।

¼[k½ ty rRo fpfdRlk

मस्कुलोस्केलेटल तंत्र के रोगों में जल चिकित्सा बहुत लाभकारी प्रभाव रखती है। विशेष रुप से रोगी मनुष्य को गर्म जल का सेवन करने से इन सभी रोगों में शीघ्र लाभ प्राप्त होता है। प्रातःकाल उषापान के रुप में गर्म अथवा गुनगुने जल का सेवन करना चाहिए।

शरीर में वात दोष की विकृति मस्कुलोस्केलेटल तंत्र के रोगों को जन्म देता है। वात दोष को सम बनाने में प्राकृतिक चिकित्सा की एनिमा क्रिया बहुत लाभकारी प्रभाव रखती है। एनिमा क्रिया के प्रभाव से शरीर में वात दोष से सम्बन्धित रोग समूल नष्ट होते है। इस प्रकार एनिमा के प्रभाव से जोड़ों में दर्द, सूजन, गठिया, आर्थराईटिस आदि रोगों में शीघ्र लाभ प्राप्त होता है। इन रोगों में भाप स्नान भी बहुत लाभकारी होता है। कमर दर्द एवं स्लिप डिस्क की अवस्था में भाप स्नान से बहुत आराम मिलता है। भाप स्नान के साथ–साथ स्थानीय भाप, गर्म रीढ़ स्नान, गर्म पैर स्नान और सम्पूर्ण शरीर का स्नान भी लाभकारी प्रभाव रखता है। जोड़ों में दर्द–सूजन आदि अवस्था में गीली लपेट का प्रयोग भी लाभकारी सिद्ध होता है। इस प्रकार इन रोगों में जल चिकित्सा बहुत लाभकारी सिद्ध होती है। यहाँ पर महत्वपूर्ण बिन्दु यह भी होता है कि गठिया, आर्थराईटिस और कमर दर्द आदि रोगों की अवस्था में ठंडे जल का प्रयोग नहीं करना चाहिए अन्यथा दर्द में वृद्धि होने के साथ ही रोगावस्था गंभीर होने लगती है।

¼x½ vfXu rRo fpfdRlk

मस्कुलोस्केलेटल तंत्र के रोगों में लाल एवं बैंगनी रंग की किरणों का प्रयोग लाभकारी होता है। इन किरणों के प्रभाव से ऊर्जा के स्तर में वृद्धि होती है और रक्त संचार तीव्र होने के साथ ही दर्द एवं सूजन आदि में आराम मिलता है। इसी प्रकार लाल रंग की किरणों से आवेशित जल का सेवन एवं लाल रंग के तेल से सम्बन्धित अंगों पर हल्की–हल्की मालिश करने से इन रोगों में लाभ प्राप्त होता है।

fVIi.kh

¼?k½ ok;q rRo fpfdRlk

यद्यपि, मस्कुलोस्केलेटल तंत्र के रोगों से ग्रस्त होने पर मनुष्य का शारीरिक श्रम कम हो जाता है। विशेष रुप से चलने में कठिनाई होने लगती है जिसके परिणामस्वरुप शरीर का वजन बढ़ने लगता है और रोगावस्था गंभीर होने लगती है। किन्तु, ऐसी परिस्थिति में भी रोगावस्था में कुछ आराम मिलने पर रोगी मनुष्य को प्रातःकालीन भ्रमण की आदत बनानी चाहिए। सर्वप्रथम व्यक्ति को प्रातःकाल सूर्योदय पूर्व उठने की आदत बनानी चाहिए और प्रातःकाल की स्वच्छ वायु का सेवन करना चाहिए। प्रातःकाल की स्वच्छ वायु का सेवन करने से मांसपेशियों और अस्थियों की कार्य क्षमता उन्नत बनती है और रोगावस्था में लाभ मिलता है। इसके साथ–साथ प्रातःकाल नियमित रुप से एवं पर्याप्त समय तक प्राणायाम का अभ्यास करने से इन रोगों में स्थाई लाभ प्राप्त होता है। मस्कुलो स्केलेटल तंत्र से संबंधी रोगों में नाड़ीशोधन, अनुलोम–विलोम, भस्त्रिका, भ्रामरी और उज्जायी आदि प्राणायामों का नियमित रुप से एवं पर्याप्त समय तक अभ्यास करने से रोगों में स्थाई लाभ प्राप्त होता है। प्राणायाम के अभ्यास से प्राण ऊर्जा में वृद्धि होती है और शरीर में रोगों से लड़ने की शक्ति उन्नत बनती है।

¼³½ vkdk'k rRo fpfdRlk

मस्कुलो स्केलेटल तंत्र से संबंधी रोगों में उपवास एवं प्रार्थना का अभ्यास अत्यन्त लाभकारी प्रभाव रखता है। इस तंत्र से संबंधी रोगों में रोगी मनुष्य को लघु उपवास करने चाहिए। लघु उपवास करने से मांसपेशियों एवं अस्थियों में उपस्थित विजातीय विष नष्ट होता है और रोगावस्था में आराम मिलता है। लघु उपवास करने से सम्पूर्ण शरीर की नाड़ियों में प्राण तत्व का विस्तार होता है और मस्कुलो स्केलेटल तंत्र से संबंधी समस्त रोगों में लाभ प्राप्त होता है।

इसके साथ–साथ रोगमुक्ति हेतु ईश्वर से श्रद्धाभाव एवं निष्ठापूर्वक प्रार्थना करनी चाहिए। प्रार्थना के सकारात्मक भावों से रोग की नकारात्मकता का त्याग होता है और सकारात्मक ऊर्जा के प्रभाव से इन रोगों के उपचार में लाभ प्राप्त होता है। प्रार्थना के साथ–साथ सकारात्मक चिन्तन–मनन करने से जीवनी शक्ति और रोग प्रतिरोधक क्षमता उन्नत बनती है और मस्कुलो स्केलेटल तंत्र के रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है।

इस प्रकार उपरोक्त पचंमहाभूतों के सम्यक प्रयोग से मस्कुलो स्ककेलेटल तंत्र संबंधी रोगों में शीघ्र एवं स्थाई लाभ प्राप्त होता है। इस तंत्र के रोगी को अपथ्य आहार का त्याग करते हुए निम्न पथ्य आहार का सेवन करना चाहिए।

viF; vkgkj% गरिष्ठ तेलयुक्त खाद्य पदार्थ, नमक, मिर्च–मसाले, अचार, मुरब्बा, जैम, मैदा और मैदे से बनी वस्तुएँ, चावल, उड़द की दाल, राजमा, बासी एवं प्रिजर्वेटिव युक्त खाद्य पदार्थ, खट्टी दही, बाजार की मिठाईयाँ, बर्फ–आईसक्रीम एवं कृत्रिम शीतल पेय, फ्रिज में रखी वस्तुएँ एवं फ्रिज का ठंडा जल आदि का पूर्णतया त्याग कर देना चाहिए।

iF; vkgkj% हल्का सुपाच्य आहार, मौसमी फल एवं सब्जियां, रासायनिक खादों से मुक्त अन्न एवं

फल–सब्जियां, विटामिन्स और खनिज लवणों से युक्त ताजे प्राकृतिक फल–सब्जियां, चना एवं जौ मिश्रित चौकर युक्त आटे की रोटियां एवं पर्याप्त मात्रा में जल का सेवन करना चाहिए। मांसपेशियों और अस्थियों को बल देने के लिए प्रोटीन युक्त आहार का अधिक सेवन करना चाहिए। अंकुरित अन्न, दूध और दूध से बने खाद्य पदार्थ जैसे पनीर, घी आदि का सेवन करना चाहिए। मस्कुलोस्केलेटल तंत्र संबंधी रोगों में लहसुन एवं अलसी का प्रयोग करने से शीघ्र लाभ प्राप्त होता है।

bdkbZxr iz'u&13-3

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

i) एनिमा क्रिया के प्रभाव से शरीर में .... दोष से सम्बन्धित रोग समूल नष्ट होते है।

ii) लघु उपवास करने से सम्पूर्ण शरीर की नाड़ियों में .... तत्व का विस्तार होता है।

iii) मांसपेशियों और अस्थियों को बल देने के लिए .... युक्त आहार का अधिक सेवन करना चाहिए।

iv) प्राकृतिक चिकित्सा में अग्नि तत्व के द्वारा शरीर में .... का सन्तुलन स्थापित किया जाता है।

vkius D;k lh[kk

इस इकाई (यूनिट) का अध्ययन करने के पश्चात् आपने सीखा कि –

- मस्कुलो–स्केलेटल सिस्टम के नाम से स्पष्ट होता है कि इसमें मांसपेशियों और अस्थियों का समावेश होता है। अर्थात् मानव शरीर में पेशियों और अस्थियों के मिलने से मस्कुलो–स्केलेटल सिस्टम का निर्माण होता है। अस्थियां और मासंपेशियां आपस में मिलकर मानव शरीर की मूल संरचना का निर्माण करती हैं और शरीर को गति प्रदान करने में सहायता करती हैं। इन दोनों तंत्रों के सहयोग से मानव शरीर गतिशील बनकर सभी सरल से लेकर जटिल कार्य करने में सक्षम बनता है।

- वर्तमान समय में विकृत आहर–विहार, असंयमित जीवनचर्या, शारीरिक श्रम में कमी, योगाभ्यास की कमी, कम्प्यूटर–टी0वी0 पर अधिक समय बैठना, गलत मुद्राओं में कार्य करने और मानसिक तनाव जैसे कारकों के परिणामस्वरुप समाज में मस्कुलो–स्केलेटल तंत्र के रोगों का प्रभाव बहुत तेजी से बढ़ता जा रहा है।

- सियाटिका, मांसपेशियों में दर्द एवं जकड़न, आर्थाराईटिस, सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस, पीट दर्द और स्लिप डिस्क मस्कुलोस्केलेटल तंत्र के प्रमुख रोग होते हैं। इन रोगों में मांसपेशियों में दर्द एवं वेदना के साथ सूजन आदि लक्षण प्रकट होते हैं और अंग्रेजी पेनकिलर दवाईयों का प्रयोग प्रभावहीन रहता है।

- मस्कुलो–स्केलेटल सिस्टम संबंधी रोगों से ग्रस्त होने पर शरीर की संरचना में विकृति उत्पन्न हो जाती

है और शरीर का सन्तुलन सही प्रकार नहीं रहता है। जिसके परिणामस्वरुप चलने में समस्या उत्पन्न होने लगती है। इसके साथ–साथ मस्कुलो–स्केलेटल सिस्टम का सबसे प्रमुख कार्य शरीर को गतिशील बनाए रखना होता है। इस तंत्र में विकृति उत्पन्न होने के परिणामस्वरुप शरीर की गतिशीलता में बाधा उत्पन्न होने लगती है और हाथों–पैरों की मांसपेशियों में जकड़न के साथ–साथ शरीर कार्य करने में असक्षम होने लगता है।

- पंचमहाभूतों में मिट्टी का प्रयोग करने से मांसपेशियों एवं अस्थियों में उपस्थित विजातीय विषों का अवशोषण होता है और मांसपेशियों व अस्थियों की कार्यक्षमता उन्नत बनने के साथ–साथ सम्बन्धित रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है। जल तत्व शरीर को बाह्य और आन्तरिक रुप में स्वच्छ व निर्मल बनाने का कार्य करता है। जल तत्व के अन्र्तगत उषापान, एनिमा एवं विभिन्न प्रकार के स्नानों का प्रयोग करने से मांसपेशियां एवं अस्थियां सक्रिय एवं रोगमुक्त बनती है।

- अग्नि तत्व के द्वारा शरीर में ऊर्जा का सन्तुलन स्थापित किया जाता है। ऊर्जा का सन्तुलन होने पर मांसपेशियों एवं अस्थियों की कार्यक्षमता और कार्यकुशलता में वृद्धि होती है और रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है। प्राणायाम एवं वैज्ञानिक मालिश से वायु तत्व सन्तुलित बनता है और उपवास से आकाश तत्व सन्तुलित होने के साथ ही सम्पूर्ण आरोग्य की प्राप्ति होती है।

- पचंमहाभूतों के सम्यक प्रयोग से मस्कुलो स्ककेलेटल तंत्र संबंधी रोगों में शीघ्र एवं स्थाई लाभ प्राप्त होता है। इस तंत्र के रोगी को अपथ्य आहार का त्याग करते हुए पथ्य आहार का सेवन करना चाहिए। इससे रोगावस्था समूल नष्ट होती है और पूर्ण आरोग्य की प्राप्ति होती है।

bdkbl dk vUr esa iz'u

1) मस्कुलोस्केलेटल तंत्र के सामान्य रोगों का परिचय देते हुए प्रमुख लक्षणों का उल्लेख कीजिए।

2) वर्तमान काल में बढ़ते मस्कुलोस्केलेटल तंत्र संबंधी रोगों के कारण और उनकी प्राकृतिक चिकित्सा पर प्रकाश डालिए।

3) मस्कुलोस्केलेटल तंत्र के प्रमुख रोगों में प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा प्रबंधन किया जा सकता है। इस तथ्य की विवेचना कीजिए।

bdkbZxr iz'uksa ds mÙkj

13-1

i)	सत्य	ii)	असत्य
iii)	सत्य	iv)	असत्य

fVIi.kh

13-2

i) (a) रात्रि जागरण करना अथवा रात्रि में देर से सोना व प्रातःकाल देर तक सोना।

(b) गलत शारीरिक मुद्राओं में कार्य करना, मोटे गद्दों पर सोना, सोने में मोटे तकिये का प्रयोग करना।

ii) (a) पेशियों में दर्द, ऐंठन के साथ जकड़न उत्पन्न होना।

(b) पेशियों में भारीपन के साथ उस भाग में लालीपन और सूजन आना।

iii) (a) जोड़ों में कठोरता आने के साथ अस्थियों का टेढ़ा हो जाना।

(b) शरीर का तापक्रम बढ़ना एवं शरीर में हल्का बुखार बने रहना।

iv) (a) साइटिका

(b) सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस

13-3

i) वात

ii) प्राण

iii) प्रोटीन

iv) ऊर्जा

fVli.kh

14

तंत्रिका तन्त्र सम्बन्धी प्रमुख रोग एवं प्राकृतिक चिकित्सा

प्रिय शिक्षार्थियों, पूर्व इकाई (यूनिट) में आपने मस्कुलोस्केलेटल तंत्र से सम्बन्धित रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा के विषय में अध्ययन किया और ज्ञान प्राप्त किया कि अस्थियों के साथ–साथ पेशियों के गतिशील होने पर हमारा शरीर विभिन्न कार्यों को करने में सक्षम होता है अथवा दूसरे शब्दों में हमारे शरीर को क्रियाशील एवं गतिमान बनाने में अस्थियों के साथ–साथ मांसपेशियां बहुत महत्वपूर्ण भूमिका वहन करती हैं। मांसपेशियों में विकृति उत्पन्न होने पर शरीर भारी होकर एक गतिहीन पुतला बन जाता है जबकि मांसपेशियों के सही प्रकार क्रियाशील होने पर शरीर हल्का, गतिशील एवं कार्य करने में सक्षम बना रहता है। पूर्व की इकाई (यूनिट) से यह भी स्पष्ट हुआ कि गलत दिनचर्या, विकृत आहार का सेवन, शारीरिक श्रम का अभाव, योगाभ्यास का अभाव और गलत मुद्राओं में कार्य करने के कारण शरीर की अस्थियों और पेशियों में दर्द और जकड़न की समस्या उत्पन्न हो जाती है जिससे शारीरिक कार्यों को करने में बाधा उत्पन्न होने के साथ रोगावस्था उत्पन्न हो जाती है इसी से जोड़ों में दर्द, गठिया, आर्थराईटिस आदि रोग जन्म लेते हैं जबकि प्राकृतिक आहार–विहार करते हुए पंचमहाभूतों के सम्यक प्रयोग करने से हमारे शरीर की पेशियां स्वस्थ्य एवं क्रियाशील बनी रहती हैं। अब यहाँ पर यह तथ्य भी समझने योग्य है कि मानव शरीर की पेशियों का मनुष्य के तंत्रिका तंत्र के साथ भी सीधा सम्बन्ध होता है और शरीर की समस्त ऐच्छिक एवं अनैच्छिक पेशियों पर तंत्रिका तंत्र का नियंत्रण रहता है। अतः प्रस्तुत इकाई (यूनिट) में तंत्रिका तंत्र से सम्बन्धित प्रमुख रोगों एवं उनके प्राकृतिक उपचार पर विचार करते हैं।

मानव शरीर के सभी 11 तंत्रों में तंत्रिका तंत्र का अपना विशिष्ट स्थान होता है क्योंकि तंत्रिका तंत्र ही अन्य सभी तंत्रों पर नियंत्रण करता है। इसलिए तंत्रिका तंत्र के स्वस्थ होने पर शरीर के सभी तंत्र अपना कार्य

fVIi.kh

सुचारू रूप से करने में सक्षम बने रहते हैं जबकि तंत्रिका तंत्र में विकार उत्पन्न होने पर शरीर के अन्य तंत्र भी अपना कार्य सही प्रकार से करने में सक्षम नहीं रह पाते हैं। वास्तव में मानव शरीर में तंत्रिका तंत्र अन्य समस्त प्राणियों की तुलना में अधिक उन्नत और विकसित होता है। इसी विकसित चिन्तन–कल्पना शक्ति के फलस्वरूप मनुष्य इस संसार के सभी जीवों में सबसे श्रेष्ठ माना जाता है। इस प्रकार तंत्रिका तंत्र का मनुष्य के जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान होता है। प्रस्तुत इकाई (यूनिट) में तंत्रिका तंत्र के प्रमुख रोगों माइग्रेन (सिरदर्द), वर्टिगो, अनिद्रा, आत्मकेन्द्रिता, पक्षाघात, पार्किसंस, अल्जाईमर, मेन्जाइटिस और मिर्गी आदि का परिचय और लक्षण समझाते हुए इनकी प्राकृतिक चिकित्सा पर सविस्तार विचार किया गया है।

mÌs';

इस इकाई (यूनिट) के अध्ययन के बाद आप –

- मानव तंत्रिका तंत्र के महत्व को समझाने में सक्षम हो सकेंगे;
- तंत्रिका तंत्र सम्बन्धी रोगों का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे;
- तंत्रिका तंत्र सम्बन्धी रोगों के लक्षणों को वर्णित करने में सक्षम हो सकेंगे;
- तंत्रिका तंत्र सम्बन्धी रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा को जान पाएंगे;
- तंत्रिका तंत्र सम्बन्धी रोगों के विषय में महत्वपूर्ण तथ्यों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

14-1 rf=dk r= dk ie[k jksxksa dk lkekU; ifjp; ,oa dkj.k

प्रिय शिक्षार्थियों, मनुष्य मानव शरीर में अनेक स्थूल एवं सूक्ष्म क्रियाएं प्रतिक्षण चलती रहती हैं। इन क्रियाओं में कुछ ऐच्छिक से सम्पन्न होती हैं तो कुछ क्रियाएं अनैच्छिक रूप से चलती रहती है। शरीर की इन सभी क्रियाओं का नियंत्रण और नियमन तंत्रिका तंत्र के द्वारा किया जाता है। मस्तिष्क और सुषुम्ना तंत्रिका तंत्र के दो प्रमुख अंग होते हैं। इसके साथ–साथ मस्तिष्क और सुषुम्ना से निकलकर अनेक तंत्रिकाएं सम्पूर्ण शरीर में एक अविच्छन्न जाल के रूप में फैली होती है। इन सभी रचनाओं के मिलने से तंत्रिका तंत्र का निर्माण होता है। जिससे शरीर की सभी क्रियाओं का नियंत्रण होता है।

वर्तमान समय में मनुष्य का तनावपूर्ण एवं प्रतिर्स्पधात्मक चिन्तन, गलत जीवनशैली, विकृत आहार का सेवन एवं नकारात्मक सोच–विचार आदि कारक तंत्रिका तंत्र पर नकारात्मक प्रभाव रखते हैं जिनके परिणामस्वरूप तंत्रिका तंत्र से सम्बन्धित रोग उत्पन्न होते हैं। वर्तमान समय में तंत्रिका तंत्र से ग्रसित रोगियों की संख्या बहुत तेज़ी से बढ़ती जा रही है। इन रोगों की उत्पत्ति के प्रमुख कारण निम्नवत् होते हैं–

(1) अधिक तनाव, चिन्ता एवं उग्र वातावरण में रहना।

(2) मनुष्य के आस–पास के वातावरण जैसे घर–परिवार, ऑफिस अथवा समाज आदि स्थानों में समायोजन का अभाव होना।

(3) अत्यधिक कार्य करने का दबाव रहना।

(4) प्राकृतिक खाद्य पदार्थों के स्थान पर सिंथेटिक खाद्य पदार्थों, चाय–कॉफी आदि उत्तेजक पदार्थों का अधिक सेवन करना।

(5) श्रमहीन जीवनशैली को अपनाना एवं दिनचर्या अव्यवस्थित होना।

(6) धूम्रपान, मद्यपान अथवा अन्य नशीले पदार्थों का सेवन करना।

(7) विश्राम की कमी होना एवं रात्रिकाल में पूरी निद्रा नहीं लेना।

(8) अधिक शोकयुक्त घटना, प्रियजन से दूर रहना अथवा परिजन की मृत्यु होना आदि गहरे मानसिक आघात होना।

(9) अधिक समय तक मानसिक संवेगों से ग्रस्त रहना।

(10) नियमित रूप से योगाभ्यास एवं प्रातःकालीन भ्रमण आदि ना करना।

इस प्रकार उपरोक्त कारणों के परिणामस्वरूप तंत्रिका तंत्र संबंधी रोगों की उत्पत्ति होती है। तंत्रिका तंत्र के रोगों में माइग्रेन, वर्टिगो, अनिद्रा, आत्मकेन्द्रिता, पक्षाघात, पार्किंसन, अल्जाइजर, मेनिन्जाइटिस एवं मिर्गी प्रमुख होते हैं।

bdkbZxr iz'u&14-1

सत्य/असत्य बताइये

क) मानव शरीर की पेशियों का मनुष्य के तंत्रिका तंत्र के साथ भी सीधा सम्बन्ध होता है। ( )

ख) मानव शरीर में तंत्रिका तंत्र अन्य सभी तंत्रों पर नियंत्रण करता है। ( )

ग) मानव शरीर में तंत्रिका तंत्र अन्य समस्त प्राणियों की तुलना में निम्न स्तर का होता है। ( )

घ) आधुनिक समय में आपसी समायोजन का अभाव तंत्रिका तंत्र के रोगों का एक प्रमुख कारण है। ( )

14-1-1 ekbxzsu jksx (Migrane)

माइग्रेन तंत्रिका तंत्र का एक जटिल रोग है। माइग्रेन रोग से ग्रस्त होने पर मनुष्य के सिर के आधे भाग में बहुत तीव्र वेदना रहती है इसलिए इसे हिन्दी भाषा में अधपकारी रोग भी कहा जाता है। इस अवस्था

fVIi.kh

चित्र 14.1 माइग्रेन की संकेतात्मक चित्र

में सिर के किसी एक स्थान पर अथवा आधे भाग में बहुत तेज दर्द अथवा छनछनाहट रहता है। यह दर्द 2 घंटे से लेकर 72 घंटों तक लगातार बना रहता है और महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इस अवस्था में दर्द निवारक दवाइयों का प्रयोग भी प्रभावहीन रहता है। कुछ समय यह दर्द रहने के उपरान्त स्वतः ही ठीक हो जाता है, इस अवस्था को माइग्रेन रोग कहा जाता है। इस रोग से ग्रस्त होने पर निश्चित समयावधि पर रोगी व्यक्ति को तीव्र सिरदर्द होने लगता है जो स्वतः ही ठीक होता है।

हमें इस प्रकार समझना चाहिए कि सिर दर्द तंत्रिका तंत्र से सम्बन्धित एक सामान्य (Common Disorder) विकृति है जिससे ग्रसित मनुष्यों की संख्या बहुत अधिक है। वास्तव में यह एक बिमारी अथवा रोग नहीं है अपितु, यह शरीर में हो रही किसी असहज अथवा प्रतिकूल घटना या क्रिया की प्रतिक्रिया होती है जो यह सूचना देती है कि कुछ ऐसा घटित हो रहा है ''जो शरीर अथवा मन के लिये प्रतिकूल, अनपयुक्त, असामान्य एवं अस्वाभाविक है और जिसके प्रभाव से शरीर की सामान्य क्रियाएं बाधित हो रही हैं''। इस अवस्था का परिणाम सिरदर्द के रूप में प्रकट होता है। कभी यह सिरदर्द कम समय के लिए होता है तो कभी यह लम्बे समय तक चलता रहता है जिसे माइग्रेन की संज्ञा दी जाती है। इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

ekbxzu jksx ds i§e[k y{k.k &

1 सिर में भारीपन अथवा तेज दर्द होना।

2 शरीर की चयापचय दर, रक्तचाप, हृदय गति एवं श्वसन दर सामान्य से अधिक होने के साथ बेचैन एवं उग्र रहना।

3 सदैव स्वयं को तनावग्रस्त, समस्याओं एवं कठिनाइयों से घिरा अनुभव करना।

4 स्वभाव असामान्य रूप से चिड़चिड़ा, क्रोधी, परेशान एवं ईर्ष्यायुक्त हो जाना।

5 अधिक समय नकारात्मक चिन्तन, उलझनों और तनाव से ग्रस्त रहने के साथ रात्रि की नींद बाधित हो जाना।

6 समस्याओं के समक्ष स्वयं को असहज एवं असक्षम अनुभव करना और निर्णय क्षमता कमजोर हो जाना।

7 शरीर तेजहीन एवं ऊर्जाहीन होने के साथ शरीर का वजन कम हो जाना।

bl ikdj mijkDr y{k.k ekbxzu jkx d y{k.k gkr gA

14-1-2 ofVxk jkx (Vertigo)

चित्र 14.2 वर्टिगो (सकेतात्मक)

यह तंत्रिका तंत्र से सम्बन्धित एक गंभीर रोग किन्तु सामान्य रोग है। गंभीर से अर्थ है कि, इस रोग से ग्रस्त होने पर मस्तिष्क की क्रियाविधि बाधित हो जाती है और मस्तिष्क का शरीर पर नियंत्रण कम हो जाता है। जबकि, सामान्य से अभिप्राय यह है कि चिकित्सकों की मान्यता के अनुसार लगभग 40 प्रतिशत व्यक्ति अपने जीवन में इस अवस्था को अनुभव करते हैं। इस प्रकार इस रोग की समाज में व्यापकता बहुत है। वर्टिगो लैटिन भाषा का एक शब्द है जिसका अर्थ होता है घूमना अथवा चक्कर आना। अर्थात् वह अवस्था जिसमें रोगी व्यक्ति को चक्कर आने लगते हैं और दिमागी असन्तुलन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, वर्टिगो रोग कहलाता है।

यद्यपि, यह रोग वृद्धावस्था में अधिक पाया है किन्तु वर्तमान समय में अधिक चिन्ता, तनाव, उच्चरक्तचाप, अनिद्रा और तनाव आदि कारकों के फलस्वरूप कम उम्र के व्यक्तियों और विशेष रूप से शिक्षार्थियों में भी यह रोग बहुत तेजी से बढ़ता जा रहा है। इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

ofVxk jkx d ie[k y{k.k %

1 चक्कर आने के साथ मस्तिष्क घूमने लगना और आँखों के सामने अंधेरा छा जाना।

2 शरीर में अचानक बहुत अधिक पसीना आना।

3 मस्तिष्क का सही कार्य नहीं करना और चेतनाहीन हो जाना।

4 व्यक्ति का स्वयं को असन्तुलित एवं अस्थिर अनुभव करना।

5 अचानक भय से ग्रस्त हो जाना।

6 आवाज देने पर भी सुनाई ना देना और प्रतिउत्तर नहीं करना।

bl ikdj mijkDr y{k.k ofVxk jkx dk ldr djr gA

fVIi.kh

14-1-3 vfunk (Insomnia)

निद्रा को मनुष्य के लिए ईश्वर का दिया एक वरदान माना जाता है। रात्रि में भली प्रकार निद्रा का आना एक स्वस्थ्य व्यक्ति की प्रमुख पहचान होती है। निद्रा इस संसार के किसी भी प्राणी के लिए थकान से मुक्ति प्राप्त करने का सबसे सरल किन्तु प्रभावशाली साधन होता है। मनुष्य भी निद्रा के द्वारा दिनभर की समस्याओं और थकान से मुक्ति प्राप्त करते हुए एक नई ऊर्जा प्राप्त करता है। किन्तु अत्यधिक मानसिक तनाव, मन में दबी हुई इच्छाएं, कुंठा अथवा दिनभर के कटु अनुभव के कारण जब रात्रिकाल में मनुष्य गहरी निद्रा से वंचित होने लगता है अथवा उसकी निद्रा में बार–बार बाधा उत्पन्न होती है, वह अवस्था 'अनिद्रा रोग' कहलाती है।

वर्तमान समय में यह रोग बहुत तेजी से समाज में फैलता जा रहा है। इस रोग को उत्पन्न करने में एवं बढ़ाने में उत्तेजक आहार का सेवन, तंत्रिका अथवा तंत्रिका तंत्र की विकृति, प्रतिकूल स्थान जैसे बहुत गर्मी–सर्दी, ध्वनि, दुर्गन्ध आदि, मानसिक तनाव, दबी इच्छाएं एवं कुंठा आदि महत्वपूर्ण कारण होते हैं। इस रोग से ग्रस्त होने पर सिरदर्द, तनाव, थकान, उच्चरक्तचाप और मधुमेह आदि गंभीर रोगों की संभावनाएं बढ जाती है। इस रोग से मुक्ति प्राप्त करने के लिए मनुष्य नशीली दवाईयों अथवा पदार्थों का सेवन भी करने लगता है किन्तु इनके सेवन से समस्या अधिक जटिल और गंभीर हो जाती है।

vfunk d¢ ie[k y{k.k %

1 रात्रिकाल में निश्चित समय पर गहरी निद्रा न आना।

2 एक बार निद्रा आने पर जल्दी ही निद्रा टूट जाना और पुनः प्रयास करने पर भी निद्रा नहीं आना।

3 प्रातःकाल उठने पर ताजगी, स्फूर्ति और ऊर्जा की कमी अनुभव करना।

4 दिनभर थकान, कमजोरी, सुस्ती और आलस्य बने रहना।

5 एकाग्रता का अभाव, सिरदर्द, स्मरण शक्ति कमजोर होना और कार्यों में अरुचि उत्पन्न होना।

bl idkj mijkDr y{k.k vfunk jkx dh vkj ldr djr gA

14-1-4 vkRedfUnzrk] Loyhurk (Autism)

यह तंत्रिका तंत्र से सम्बन्धित एक विकार है जो प्रमुख रूप से विद्यार्थियों और छात्र जीवन में अधिक होता है। इसे आत्मविमोह और स्वपरायणता आदि नामों से भी जाना जाता है। इस अवस्था में व्यक्ति का सामाजिक व्यवहार बहुत सीमित हो जाता है और वह अधिकतर समय स्वयं में ही खोया रहता है। इस रोग से ग्रस्त होने पर मस्तिष्क की रचनात्मक क्रियाविधि बाधित हो जाती है और बुद्धि का रचनात्मक विकास रूक जाता

है। इस रोग के प्रति जागरुकता बढ़ाने के लिए प्रतिवर्ष 2 अप्रैल को विश्व स्वलीनता जागरुकता दिवस मनाया जाता है।

यह रोगावस्था आगे चलकर गंभीर रूप धारण करने लगती है जिसमें व्यक्ति न तो स्वयं की बात दूसरों से कह पाने में सक्षम होता है और ना ही दूसरों की बात सही प्रकार से समझ पाता है। इससे ग्रस्त व्यक्ति दूसरों से सही प्रकार संवाद नहीं कर पाता है और अजीब क्रियाएं करने लगता है। इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

vkRedfUnrk jkx d ie[k y{k.k %

1 अधिक समय तक स्वयं में ही खोया रहना।

2 सामाजिक निष्क्रियता होना।

3 अपनी समस्याओं को दूसरों के साथ साझा नहीं करना।

4 बौद्धिक क्रियाशीलता कम होने के साथ रचनात्मकता का अभाव होना।

5 अर्थहीन क्रियाएं करना और उन्हें दोहराते रहना।

6 आवाज देने पर भी सुनाई ना देना और प्रतिउत्तर नहीं करना।

bl idkj mijkDr y{k.k vkRedfUnrk jkx dk lidr djr gA

14-1-5 i{kk?kkr ;k ydok jkx (Paralysis)

यह तंत्रिका तंत्र और मांसपेशियों से सम्बन्धित रोग है। इस रोग में शरीर के किसी एक भाग अथवा अधिक भागों की मांसपेशियां क्रियाहीन होकर कार्य करने में असमर्थ हो जाती हैं जिसके कारण शरीर का वह भाग कार्य करने अथवा घूमने–फिरने में असमर्थ हो जाता है।

वर्तमान समय में यह रोग समाज में बहुत तेजी से फैल रहा है जिसमें अचानक शरीर के किसी एक भाग अथवा सम्पूर्ण शरीर पर मस्तिष्क का नियंत्रण समाप्त हो जाता है। यद्यपि, कुछ अवस्था एवं कुछ सीमा तक

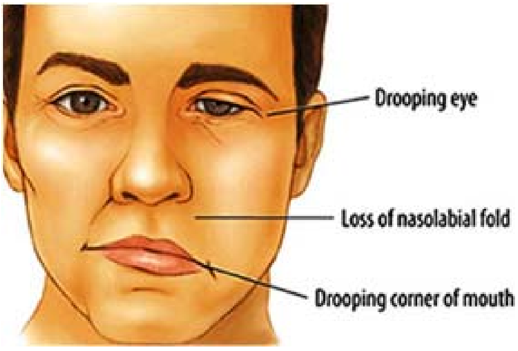

चित्र 14.3 अर्दित (facial paralysis)

fVIi.kh

यह नियंत्रण पुनः प्राप्त भी हो जाता है किन्तु पूर्णरूप से नियंत्रण प्राप्त नहीं होता है, यह रोगावस्था पक्षाघात अथवा लकवा कहलाती है। इस रोग में निम्न लक्षण प्रकट होते हैं–

i{kk?kkr ;k ydok jksx ds iæq[k y{k.k %

1 शरीर के किसी भाग में सुन्नपन होना और उस भाग पर मस्तिष्क का नियंत्रण हट जाना।

2 सिर में तेज दर्द के साथ किसी भाग में अजीब अनुभूति होना।

3 सांस लेने में कठिनाई और मुँह से लार टपकना।

4 सोचने–समझने, पढ़ने–लिखने और देखने–बोलने में कठिनाई होना।

5 व्यवहार में बदलाव के साथ असामान्य व्यवहार करना।

bl izdkj mijksDr y{k.k i{kk?kkr vFkok ydok jksx dk ladsr djrs gSaA

14.1.6 ikfdZalu jksx (Perkinson's Disease)

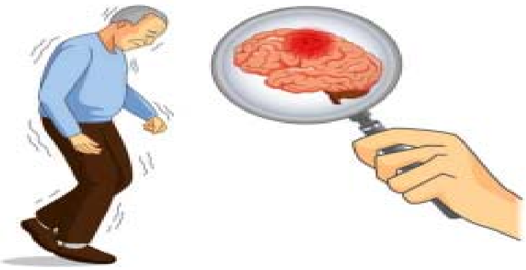

पार्किंसन रोग तंत्रिका और पेशीय तंत्र से जुड़ा एक गंभीर रोग होता है। इस रोग का आरम्भ बहुत धीरे–धीरे होता है जिससे रोगी को यह पता ही नहीं चल पाता है कि कब वह इस रोग की चपेट में आ गया है। जब चिकित्सक रोगी से पूर्व की घटनाओं के विषय में पूछते हैं तो उन्हें लगता है कि रोग के लक्षण उनमें पिछले काफी समय से आ रहें हैं परन्तु इन पर गंभीरता से ध्यान नहीं दिया गया। इसलिए इस रोग को चुपके से आने वाला रोग (Silent Disease) की संज्ञा दी जाती है।

इस रोग का आरम्भ कम्पन से होता है जो पहले यदा–कदा ही होता है और धीरे–धीरे बढ़ता हुआ गंभीर रूप धारण कर लेता है। इस रोग की चपेट में आने के उपरान्त रोगी व्यक्ति का शरीर के अंगों पर नियंत्रण कम हो जाता है और अंगों में प्रतिक्षण तीव्र कम्पन्न बना रहता है। इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

ikfdZalu jksx ds iæq[k y{k.k %

1. इस रोग का सबसे प्रमुख लक्षण हाथों–पैरों व शरीर के अन्य अंगों में सूक्ष्म कम्पन्न होना होता है जो धीरे–धीरे बढ़ता हुआ शरीर के अन्य अंगों में फैलने लगता है।

2. लिखने में कठिनाई होना, सुई में धागा पिरोने में कठिनाई होना और हाथों को स्थिर करने में कठिनाई होना।

3 शरीर के अन्य भागों की मांसपेशियों में सूक्ष्म कम्पन्न प्रारम्भ होने के साथ इन अंगों पर मस्तिष्क का नियंत्रण कम होना।

4. तंत्रिका क्रिया अव्यवस्थित होने के साथ लम्बे समय तक कब्ज रोग से ग्रस्त होना।

5. शरीर की कार्यक्षमता में कमी आने के साथ श्रम करने में श्वास फूलना, चक्कर आना और खड़े होने पर अचानक आँखों के सामने अंधेरा छा जाना।

bl idkj mijkDr y{k.k 'kjhj e ikfdlu jkx dk ldr djr gA

14-1-7 vYtkbtj jkx (Alzhiemer's Disease)

यह तंत्रिका तंत्र से सम्बन्धित एक ऐसी बिमारी जिसमें व्यक्ति की स्मरण शक्ति बहुत कमजोर हो जाती है और उसे कुछ भी स्मरण नहीं रह पाता है, एल्जाइमर रोग कहलाता है। यद्यपि, पूर्वकाल में इसे वृद्धावस्था का लक्षण माना जाता था किन्तु वर्तमान समय में दिनचर्या का अभाव, विकृत खान–पान और तनाव आदि कारकों के फलस्वरूप यह रोग शिक्षार्थियों और युवाओं में भी बहुत तेजी से बढ़ रहा है। इस रोग के प्रमुख लक्षण निम्न होते हैं–

vYekbtj jkx d ie[k y{k.k %

1 स्मरण शक्ति बहुत कमजोर होना, इस रोग का सबसे प्रमुख लक्षण है।

2 समय प्रबंधन का अभाव अर्थात् किसी भी कार्य करने में समय का ध्यान न रहना।

3 किसी भी कार्य के परिणाम का सही अनुमान नहीं कर पाना।

4 बौद्धिक एवं सामाजिक क्रियाशीलता कम हो जाना।

5 नये कार्य को सीख पाने में असमर्थ होना।

6 असामान्य व्यवहार करना जैसे अचानक रोना, हँसना अथवा क्रोधित होना।

bl idkj mijkDr y{k.k vYtkbej jkx dk ldr djr gA

14-1-8 efuUtkbfVl jkx (Meningites)

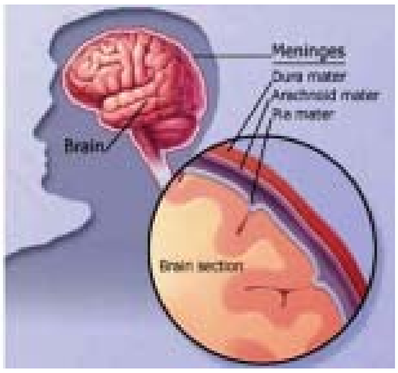

यह तंत्रिका तंत्र से सम्बन्धित एक गंभीर रोग होता है जिसे सामान्य भाषा में दिमागी बुखार या मस्तिष्कावरणशोथ कहा जाता है। चिकित्सकीय मान्यता के अनुसार जब बैक्टीरिया, वायरस अथवा अन्य सूक्ष्म जीवों के संक्रमण के कारण मस्तिष्क एवं मेरुरज्जू को ढकने वाली झिल्लियों में सूजन आरम्भ हो जाती है, वह अवस्था मेनिन्जाइटिस रोग अथवा मस्तिष्कावरण शोथ अथवा दिमागी बुखार कहा जाता है।

fVIi.kh

चूंकि मस्तिष्क मानव शरीर का सबसे महत्वपूर्ण एवं कोमल अंग होता है अतः यह अवस्था शरीर के लिए बहुत गंभीर हाती है। इस अवस्था में व्यक्ति का स्वयं पर नियंत्रण नहीं रह पाता है और ग्रसित मनुष्य के लिए भ्रम की स्थिति उत्पन्न होने लगती है। इस रोग में निम्न लक्षण प्रकट होते हैं–

efuUtkbfVl jkx d iie[k y{k.k %

1 गर्दन में जकड़न के साथ सिर में भारीपन के साथ तेज दर्द होना।

2 शरीर का तापक्रम बढ़ने के साथ बुखार आना।

3 मस्तिष्क का सही कार्य नहीं करना और भ्रम की स्थिति उत्पन्न होना।

4 ऊँची ध्वनि एवं प्रकाश को सहन करने में असक्षम होना।

5 स्वभाव में चिड़चिड़ापन, बेचैनी एवं अनिद्रा उत्पन्न होना।

6 शारीरिक कमजोरी के साथ मानसिक शिथिलता उत्पन्न होना।

bl idkj mijkDr y{k.k efuUtkbfVl jkx dk ldr djr gA

14-3-9 fexh jkx (Epilepsy)

मनुष्य के मस्तिष्क की अनियंत्रित अवस्था मिर्गी रोग कहलाती है जिसमें मनुष्य असामान्य व्यवहार करने लगता है। वास्तव में मस्तिष्क की तंत्रिकाएं, जिन्हें न्यूरॉन कहा जाता है, एक–दूसरे के साथ विद्युत आवेगों से संचार करती हैं किन्तु, जब इन तंत्रिकाओं के विद्युत आवेग बाधित हो जाते हैं तब मस्तिष्क असामान्य एवं अजीब व्यवहार करने लगता है जिसे मिर्गी रोग की संज्ञा दी जाती है। इसमें दौरे पड़ने लगते हैं जो कभी कम समय के लिए होते हैं तो कभी लम्बे समय तक चलते हैं।

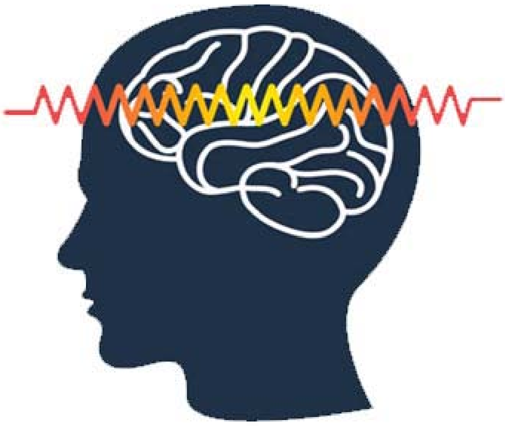

वास्तव में हमारे शरीर के सभी अंगों एवं अंगों की सभी क्रियाओं पर मस्तिष्क का प्रतिक्षण नियंत्रण रहता है। परन्तु वह अवस्था जब शरीर के अंग और क्रियाओं पर मस्तिष्क का नियंत्रण नहीं होता है और मनुष्य की चेतना असन्तुलित होकर वह अजीब व्यवहार करने लगता है, वह अवस्था मिर्गी रोग कहलाती है। इस रोग में निम्न लक्षण प्रकट होते हैं–

fexh jkx d iie[k y{k.k %

1 मनुष्य का कुछ समय के लिए बेसुध अथवा चेतनाहीन हो जाना।

rf=dk rU= lEcU/kh iie[k j¨x ,o ikÑfrd fpfdRlk

2 हाथों–पैरों अथवा सिर को असामान्य रूप से झटकना अथवा पटकना।

3 मस्तिष्क का सही कार्य नहीं करने के कारण मनुष्य के द्वारा असामान्य व्यवहार करना।

4 शरीर की मांसपेशियों का बहुत कड़ा अथवा बिल्कुल ढीला हो जाना और मनुष्य का अचानक गिर पड़ना।

5 स्वभाव में अस्थिरता आ जाना, भय–चिन्ता से ग्रस्त रहना और आत्मविश्वास का अभाव आदि लक्षण प्रकट होना।

bl idkj mijkDr y{k.k fexhl jkx dk lidr djr gA

bdkbZxr iz'u&14-2

i) तंत्रिका तंत्र रोगों के दो प्रमुख कारण लिखिए।

....

....

ii) तंत्रिका तंत्र के दो प्रमुख रोगों के नाम लिखिए।

....

....

iii) तंत्रिका तंत्र के माइग्रेन रोग के दो प्रमुख लक्षण लिखिए।

....

....

iv) तंत्रिका तंत्र के आत्मकेन्द्रिता रोग के दो प्रमुख लक्षण लिखिए।

....

....

14-2 rf=dk r= d jkxk dh ikÑfrd fpfdRlk

तंत्रिका तंत्र के प्रमुख रोगों जैसे माइग्रेन (सिरदर्द), वर्टिगो, अनिद्रा, आत्मकेन्द्रिता, पक्षाघात, पार्किंसंस, अल्जाईमर, मेन्जाइटिस और मिर्गी आदि के उपचार में अंग्रेजी दवाइयों का सेवन करने से विशेष लाभ प्राप्त

नहीं हो पाता है अपितु, कुछ समय के लिए लक्षण कम होने से आराम की अनुभूति होती है किन्तु, रोग से स्थाई मुक्ति प्राप्त नहीं होती है। इसके साथ–साथ अंग्रेजी दवाइयों का तंत्रिका तंत्र के साथ–साथ मनुष्य के मन पर दुष्प्रभाव भी पड़ता है। इसके स्थान पर प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा तंत्रिका तंत्र के इन रोगों का स्थाई उपचार किया जा सकता है। तंत्रिका तंत्र के इन रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा में मन को भी स्वस्थ एवं सकारात्मक बनाया जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा का मूल सिद्धान्त प्रकृति के नियमों का पालन करने से होता है। प्रकृति का सबसे प्रथम नियम और गुण सकारात्मकता को ग्रहण करना होता है। सकारात्मकता का सीधा प्रभाव मनुष्य के मन पर पड़ता है और मनुष्य का मन स्वस्थ बनता है। मन के स्वस्थ और सकारात्मक रहने से तंत्रिका तंत्र भी स्वस्थ एवं सक्रिय रहता है जबकि मन में नकारात्मक विचार एवं भावनाएं उत्पन्न होने से तंत्रिका तंत्र के विभिन्न रोग जैसे माइग्रेन (सिरदर्द), वर्टिगो, अनिद्रा, आत्मकेन्द्रिता, पक्षाघात, पार्किंसंस, अल्जाईमर, मेन्जाइटिस और मिर्गी आदि उत्पन्न हो जाते हैं। वर्तमान काल में इन रोगों की समाज में एक बाढ़ सी आयी हुई है। छोटी उम्र के बच्चों से लेकर व्यस्क और वृद्ध सभी आयु वर्ग के मनुष्यों में ऐसी समस्याएं दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। वर्तमान समय में मन की चंचलता बढ़ने एवं मन में नकारात्मक भाव रखने के साथ मनुष्य में धैर्य का स्तर और भाव–संवेदनाएं समाप्त सी होती जा रही हैं। प्रतिस्पर्धा के कारण आपसी मतभेद दिनोंदिन तेजी से बढ़ते जा रहे हैं और मनुष्य का आपसी सामंजस्य कम होता जा रहा है। यहीं से तंत्रिका तंत्र के रोगों का जन्म होता है। मानवीय गुण जैसे सहानुभूति, क्षमा, दया और सरलता में कमी आने के साथ ही अप्राकृतिक आहार–विहार का सेवन करने से तामसिक वृत्तियां जैसे क्रोध, अहंकार, ईर्ष्या और द्वेष बढ़ते जा रहें हैं। इस क्रम में तंत्रिका तंत्र के रोगों से ग्रस्त होकर नई पीढ़ी अपने अलग सपनों की दुनिया के साथ नशे के जंजाल में भी जकड़ती जा रही है। ऐसी जटिल और गंभीर अवस्था में प्राकृतिक आहार–विहार एवं प्रकृति के समीप वास करना बहुत लाभकारी प्रभाव रखता है। वास्तव में अंग्रेजी दवाइयों के सेवन करने की तुलना में प्राकृतिक आहार–विहार कहीं अधिक गहराई से मनुष्य के मन, मस्तिष्क और सम्पूर्ण तंत्रिका तंत्र को बहुत सकारात्मक रूप से प्रभावित करती हैं।

तंत्रिका तंत्र के रोगों से मुक्ति प्राप्त करने हेतु सर्वप्रथम मनुष्य को प्राकृतिक एवं संयमित आहार का सेवन करना चाहिए। इसके साथ–साथ प्राकृतिक चिकित्सा की उषापान, वमन एवं एनीमा आदि शोधन क्रियाओं का अभ्यास करने से तंत्रिका तंत्र के सिरदर्द, माइग्रेन और मिर्गी रोगों में स्थाई लाभ प्राप्त होता है। तंत्रिका तंत्र के रोगों में प्रातःकाल सूर्योदय पूर्व उठना, प्रातःकालीन भ्रमण एवं प्राणायाम का अभ्यास करने से मन एवं मस्तिष्क की क्रियाशीलता में वृद्धि होती है और तंत्रिका तंत्र के इन गंभीर रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है। तंत्रिका तंत्र के रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा में उपवास एवं प्रार्थना का अभ्यास रोगावस्था से मुक्ति प्राप्त करने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका वहन करता है। तंत्रिका तंत्र के रोगों में उपवास करने पर नकारात्मक ऊर्जा से मुक्ति मिलती है जबकि निष्कपट भाव से प्रार्थना करने पर सकारात्मक ऊर्जा की प्राप्ति होती है। तंत्रिका तंत्र के रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा को इस प्रकार समझ सकते हैं–

¼d½ iFoh rRo fpfdRlk

तंत्रिका तंत्र के रोगों में शरीर एवं विशेष रूप से सिर व चेहरे पर मिट्टी की पट्टी का प्रयोग बहुत लाभकारी

प्रभाव रखता है। मिट्टी की पट्टी के प्रयोग से विजातीय विष शरीर से बाहर निकलते हैं और शरीर व मन स्वस्थ बनता है। मिट्टी की पट्टी शरीर में बढ़ी हुई ऊर्जा के साथ–साथ अन्य विषाक्त पदार्थों को अवशोषित करने का गुण रखती है। उदर पर गीली मिट्टी का प्रयोग करने से विषाक्त पदार्थों का अवशोषण होता है और तंत्रिका तंत्र से सम्बन्धित सिरदर्द, माइग्रेन और मिर्गी आदि रोगों में शीघ्र लाभ प्राप्त होता है। रोगावस्था में नियमित रूप से सिर एवं उदर पर मिट्टी पट्टी देने के अतिरिक्त सप्ताह में एक बार सम्पूर्ण शरीर पर गीली मिट्टी का लेप देने से रोगावस्था में लाभ प्राप्त होता है।

तंत्रिका तंत्र रोगों में रोगी व्यक्ति को प्रातःकाल ओस की बूदों पर चलने से रोगावस्था में लाभ प्राप्त होता है। इसके साथ प्रतिदिन नियमित रूप से नंगे पैर भूमि पर चलने से मन–मस्तिष्क में सकारात्मक ऊर्जा का विस्तार होता है और तंत्रिका तंत्र के सिरदर्द, माइग्रेन, पक्षाघात और मिर्गी आदि रोगों में स्थाई लाभ प्राप्त होता है।

¼[k½ ty rRo fpfdRlk

तंत्रिका तंत्र के रोगों में जल चिकित्सा बहुत लाभकारी प्रभाव रखती है। जल तत्व के प्रयोग मस्तिष्क के साथ–साथ सम्पूर्ण शरीर में फैली नाड़ियों से विषाक्त पदार्थों का निष्कासन होता है और सम्पूर्ण शरीर में ऊर्जा का प्रवाह सन्तुलित रूप से होने लगता है। एक बहुत सामान्य एवं व्यवहारिक उदाहरण हमें प्रायः देखने को मिलता है कि तेज सिरदर्द होने पर एक गिलास शीतल जल का सेवन करने से तुरन्त आराम मिल जाता है और ऐसी अवस्था में जल से स्नान करने पर और भी विशेष लाभ प्राप्त होता है। अथवा दूसरे शब्दों में तंत्रिका तंत्र सम्बन्धी रोगों में जो लाभ अंग्रेजी पेन किलर दवाइयों से प्राप्त नहीं होता है वह जल चिकित्सा से प्राप्त हो जाता है।

सिरदर्द एवं माइग्रेन रोग की स्थिति में प्रातःकाल सूर्योदय पूर्व खालीपेट गुनगुने जल का सेवन करने से विशेष लाभ प्राप्त होता है। जबकि पक्षाधात एवं पार्किन्सन रोग की अवस्था में शरीर पर गर्म जल का प्रयोग (गर्म जल से सिकाई) लाभकारी प्रभाव रखता है। गर्म जल का प्रयोग करने से सम्पूर्ण शरीर की नाड़ियों में प्राण ऊर्जा का प्रवाह सही प्रकार होने लगता है और रोगावस्था में लाभ प्राप्त होता है। मानव शरीर की रीढ़ से निकलकर नाड़ियां सम्पूर्ण शरीर में फैल जाती हैं। अतः गर्म–ठंडा रीढ़ स्नान इन नाड़ियों के विकारों को दूर करता हुआ इन्हें स्वस्थ बनाता है। सम्पूर्ण शरीर का स्नान करने से तंत्रिका तंत्र स्वस्थ बनता है और सम्बन्धित रोग दूर होते हैं। तंत्रिका तंत्र के अनिद्रा रोग में जल चिकित्सा लाभकारी प्रभाव रखती है। रात्रिकाल में सोने से पूर्व गर्म पैर स्नान देने से अनिद्रा रोग दूर होता है।

जल के प्रयोग ये तंत्रिका तत्र के आत्मकेन्द्रिता, पक्षाघात, पार्किंसंस और अल्जाईमर आदि रोगों में भी स्थाई लाभ प्राप्त होता है। जल में स्नान करने से विजातीय विष बहुत सरलता से उत्सर्जित होते हैं और शरीर में नई शक्ति का विस्तार होता है। ठंडे जल से स्नान करने पर न्यूरॉन सैल्स को बल मिलता है जिससे तंत्रिका तंत्र के सभी रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है।

fVIi.kh

¼x½ vfXu rRo fpfdRlk

तंत्रिका तंत्र के रोगों में लाल एवं बैंगनी रंग की किरणों का प्रयोग करने से नाड़ियों में प्राणऊर्जा के स्तर में वृद्धि होती है जिससे पक्षाघात, पार्किसंस, अल्जाईमर आदि रोगों में लाभ प्राप्त होता है जबकि इसके विपरीत नीली एवं आसमानी रंग की किरणों का प्रयोग करने से मस्तिष्क, नाड़ियों एवं शरीर में असामान्य रूप से बड़ी हुई ऊर्जा कम होती है जिसके परिणामस्वरूप माइग्रेन (सिरदर्द), वर्टिगो, अनिद्रा और मिर्गी आदि रोगों में शीघ्र एवं स्थाई लाभ प्राप्त होता है। तंत्रिका तंत्र के पक्षाघात रोग में लाल रंग की किरणों से आवेशित जल का सेवन एवं लाल रंग के तेल से सम्बन्धित अंगों पर हल्की–हल्की मालिश करने से इन रोगों में लाभ प्राप्त होता है।

तंत्रिका तंत्र के रोगों को दूर करने में सूर्य किरणों का 'धूप स्नान' बहुत लाभकारी प्रभाव रखता है। प्रातःकाल सूर्योदय एवं सांयकाल सूर्यास्त काल की किरणों को सम्पूर्ण शरीर पर देने से रोगी के सम्पूर्ण शरीर की तंत्रिकाओं को बल मिलता है और तंत्रिका तंत्र से सम्बन्धित समस्त रोग दूर होते है। अग्नि तत्व चिकित्सा में यह सावधानी भी रखनी चाहिए कि रोगी के शरीर पर अधिक उष्ण जल का प्रयोग नहीं करना चाहिए। विशेष रूप से रोग की तीव्र अवस्था में गर्म जल के प्रयोग से रोगावस्था गंभीर हो जाती है।

¼?k½ ok;q rRo fpfdRlk

प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत वायु तत्व चिकित्सा में प्रमुख रूप से प्रातःकालीन भ्रमण एवं प्राणायाम का वर्णन आता है। प्राणायाम का अभ्यास मनुष्य के तंत्रिका तंत्र को बहुत सकारात्मक रूप में प्रभावित करता है। प्राणायाम का अभ्यास करने से अधिक मात्रा में शुद्ध प्राणवायु अर्थात् ऑक्सीजन शरीर की कोशिकाओं को प्राप्त होती है। नियमित प्रातःकाल प्राणायाम का अभ्यास करने से मस्तिष्क की न्यूरॉन सैल्स को पर्याप्त ऑक्सीजन प्राप्त होती है जिससे एक ओर जहाँ मस्तिष्क की क्रियाशीलता में वृद्धि होती है तो वहीं दूसरी ओर इन महत्वपूर्ण कोशिकाओं की औसत आयु में वृद्धि होती है। सार रूप में स्पष्ट करें तो नियमित प्राणायाम के अभ्यास से मस्तिष्क की कार्यक्षमता एवं कार्यकुशलता में वृद्धि होती है, स्मरण शक्ति तीव्र और दीर्घ बनती है, मानसिक एकाग्रता बढ़ने के साथ कठिन और जटिल विषयों को समझना आसान हो जाता है और सिरदर्द, माइग्रेन, मिर्गी, पक्षाघात और पार्किंसन आदि रोगों में शीघ्र लाभ प्राप्त होता है। प्राणायाम के लाभों को स्पष्ट करते हुए महर्षि पतंजलि योगसूत्र में कहते हैं–

rr% {kh;rs izdk'kkoj.keAA ¼ik0 ;k0 l= 2@52½

अर्थात् प्राणायाम का अभ्यास करने से अज्ञानता का आवरण नष्ट होता है और ज्ञान का प्रकाश उत्पन्न होता है। चूंकि मनुष्य की अधिकांश रोगों, समस्याओं और दुखों की जननी अविद्या के साथ नकारात्मक चिन्तन करना होता है जिससे सिर दर्द, माइग्रेन, मिर्गी और पार्किन्सन जैसे गंभीर रोग उत्पन्न होते हैं। जबकि प्राणायाम का अभ्यास करने से प्राण ऊर्जा में वृद्धि के साथ–साथ अविद्या का नाश और आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है अतः प्राणायाम का अभ्यास इन सभी विकारों में बहुत लाभकारी प्रभाव रखता है। योग ग्रन्थों के अनुसार भस्त्रिका प्राणायाम का नियमित अभ्यास करने से शरीर में स्थित 72 हजार सूक्ष्म नाड़ियों की शुद्धि

होती है और इड़ा–पिगंला नाड़ी में सन्तुलन स्थापित होने के साथ–साथ प्राण का प्रवाह सुषुम्ना नाड़ी में होने लगता है। यह उत्तम स्वास्थ्य के साथ–साथ आध्यात्मिक उन्नति की एक उच्चतम् अवस्था होती है। इसी प्रकार भ्रामरी प्राणायाम का अभ्यास मस्तिष्क में सकारात्मक स्पंदन उत्पन्न करता है। नाड़ी शोधन प्राणायाम का अभ्यास तंत्रिका तंत्र के रोगों में बहुत लाभकारी प्रभाव रखता है। नाड़ी शोधन, अनुलोम–विलोम, शीतली, सीत्कारी, उज्जायी और भ्रामरी आदि प्राणायामों का विधिपूर्वक और नियमित अभ्यास करने से सिरदर्द, माइग्रेन, मिर्गी और पार्किन्सन जैसे रोग जीवन में नहीं आते हैं।

¼3½ vkdk'k rRo fpfdRlk

तंत्रिका तंत्र से संबंधी रोगों में उपवास एवं प्रार्थना का अभ्यास अत्यन्त लाभकारी प्रभाव रखता है। इस तंत्र से संबंधी रोगों में रोगी मनुष्य को लघु उपवास करने चाहिए। लघु उपवास करने से शरीर की तंत्रिकाओं में उपस्थित विजातीय विष नष्ट होता है और रोगावस्था में आराम मिलता है। लघु उपवास करने से सम्पूर्ण शरीर की नाड़ियों में प्राण तत्व का विस्तार होता है और तंत्रिका तंत्र से संबंधी समस्त रोगों में लाभ प्राप्त होता है।

इसके साथ–साथ रोगमुक्ति हेतु ईश्वर से श्रद्धाभाव एवं निष्ठापूर्वक प्रार्थना करनी चाहिए। प्रार्थना के सकारात्मक भावों से रोग की नकारात्मकता का त्याग होता है और सकारात्मक ऊर्जा के प्रभाव से इन रोगों के उपचार में लाभ प्राप्त होता है। प्रार्थना के साथ–साथ सकारात्मक चिन्तन–मनन करने से जीवनी शक्ति और रोग प्रतिरोधक क्षमता उन्नत बनती है और तंत्रिका तंत्र के रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है। प्रार्थना की सकारात्मक अनुभूतियां करने से मन–मस्तिष्क और सम्पूर्ण तंत्रिका तंत्र स्वस्थ एवं ऊर्जावान बनता है और सभी रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है।

इसके साथ–साथ तंत्रिका तंत्र के रोगों में निम्न अपथ्य आहार का त्याग करते हुए पथ्य आहार का सेवन करना चाहिए –

(A) vifF; vkgkj& चाय, कॉफी, चीनी, नमक आदि उत्तेजक एवं तामसिक पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए। मैदा और मैदे से बने सभी खाद्य पदार्थों, कृत्रिम रंगों एवं रसायनों से युक्त बाजार की मिठाइयों व खाद्य पदार्थों का प्रयोग त्याग देना चाहिए। धूम्रपान, मद्यपान और नशीली दवाईयों को संकल्पशक्ति के साथ पूर्णरूप से त्याग देना चाहिए। सभी प्रकार के राजसिक और तामसिक खाद्य पदार्थों का त्याग कर देना चाहिए।

(B) iF; vkgkj& प्रातःकाल उषापान करते हुए प्रातःकालीन भ्रमण और नियमित योगाभ्यास करने के साथ अंकुरित आहार का सेवन, जौ, चना, गेहूँ को मिलाकर चौकर सहित रोटियों का सेवन, गाय का घी, बादाम, अखरोट, अंजीर, मुनक्का, पिस्ता आदि सूखे मेवे, मौसम के अनुसार हरी पत्तेदार सब्जियाँ जैसे मेथी, पालक, लौकी, तुरई, परवल, करैला, नींबू आदि का सेवन करना चाहिए। मौसमी ताजे फलों जैसे मौसमी, सन्तरा, अनार, आम, पपीता, अंगूर आदि का पर्याप्त मात्रा में सेवन करना चाहिए।

bdkbZxr iz'u&14-3

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

i) मानव मस्तिष्क की तंत्रिकाएं .... कहलाती हैं।

ii) तेज सिरदर्द होने पर एक गिलास ....का सेवन करने से तुरन्त आराम मिल जाता है।

iii) रात्रिकाल में सोने से पूर्व .... स्नान देने से अनिद्रा रोग दूर होता है।

iv) प्राणायाम का अभ्यास करने से ....का आवरण नष्ट होता है।

vkius D;k lh[kk

इस इकाई (यूनिट) का अध्ययन करने के पश्चात् आपने सीखा कि –

- मानव शरीर के सभी 11 तंत्रों में तंत्रिका तंत्र का अपना विशिष्ट स्थान होता है क्योंकि तंत्रिका तंत्र ही अन्य सभी तंत्रों पर नियंत्रण करता है। इसलिए तंत्रिका तंत्र के स्वस्थ होने पर शरीर के सभी तंत्र अपना कार्य सुचारु रूप से करने में सक्षम बने रहते हैं जबकि तंत्रिका तंत्र में विकार उत्पन्न होने पर शरीर के अन्य तंत्र भी अपना कार्य सही प्रकार करने में सक्षम नहीं रह पाते हैं।

- वर्तमान समय में मनुष्य का तनावपूर्ण एवं प्रतिस्पर्धात्मक चिन्तन, गलत जीवनशैली, विकृत आहार का सेवन एवं नकारात्मक सोच–विचार आदि कारक तंत्रिका तंत्र पर नकारात्मक प्रभाव रखते हैं जिनके परिणामस्वरूप तंत्रिका तंत्र से सम्बन्धित रोग उत्पन्न होते हैं। वर्तमान समय में तंत्रिका तंत्र से ग्रसित रोगियों की संख्या बहुत तेजी से बढ़ती जा रही है।

- तंत्रिका तंत्र के प्रमुख रोगों जैसे माइग्रेन (सिरदर्द), वर्टिगो, अनिद्रा, आत्मकेन्द्रिता, पक्षाघात, पार्किंसंस, अल्जाईमर, मेन्जाइटिस और मिर्गी आदि के उपचार में अंग्रेजी दवाईयों का सेवन करने से विशेष लाभ प्राप्त नहीं हो पाता है अपितु, कुछ समय के लिए लक्षण कम होने से आराम की अनुभूति होती है किन्तु रोग से स्थाई मुक्ति प्राप्त नहीं होती है।

- प्रकृति का सबसे प्रथम नियम और गुण सकारात्मकता को ग्रहण करना होता है। सकारात्मकता का सीधा प्रभाव मनुष्य के मन पर पड़ता है और मनुष्य का मन स्वस्थ बनता है। मन के स्वस्थ और सकारात्मक रहने से तंत्रिका तंत्र भी स्वस्थ एवं सक्रिय रहता है जबकि मन में नकारात्मक विचार एवं भावनाएं उत्पन्न होने से तंत्रिका तंत्र के विभिन्न रोग जैसे माइग्रेन (सिरदर्द), वर्टिगो, अनिद्रा, आत्मकेन्द्रिता, पक्षाघात, पार्किंसंस, अल्जाईमर, मेन्जाइटिस और मिर्गी आदि उत्पन्न हो जाते हैं।

- तंत्रिका तंत्र के रोगों से मुक्ति प्राप्त करने हेतु सर्वप्रथम मनुष्य को प्राकृतिक एवं संयमित आहार का सेवन

करना चाहिए। इसके साथ–साथ प्राकृतिक चिकित्सा की उषापान, वमन एवं एनिमा आदि शोधन क्रियाओं का अभ्यास करने से तंत्रिका तंत्र के सिरदर्द, माइग्रेन और मिर्गी रोगों में स्थाई लाभ प्राप्त होता है। तंत्रिका तंत्र के रोगों में प्रातःकाल सूर्योदय पूर्व उठना, प्रातःकालीन भ्रमण एवं प्राणायाम का अभ्यास करने से मन एवं मस्तिष्क की क्रियाशीलता में वृद्धि होती है और तंत्रिका तंत्र के इन गंभीर रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है।

- लघु उपवास और प्रार्थना के साथ–साथ सकारात्मक चिन्तन–मनन करने से जीवनी शक्ति और रोग प्रतिरोधक क्षमता उन्नत बनती है और तंत्रिका तंत्र के रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है। प्रार्थना की सकारात्मक अनुभूतियां करने से मन–मस्तिष्क और सम्पूर्ण तंत्रिका तंत्र स्वस्थ एवं ऊर्जावान बनता है और सभी रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है। तंत्रिका तंत्र के रोगों में रोगी व्यक्ति को अपथ्य आहार का त्याग करते हुए शुद्ध–सात्विक एवं प्राकृतिक पथ्य आहार का सेवन करना चाहिए।

bdkbl dk vUr esa iz'u

1. तंत्रिका तंत्र के रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा का सविस्तार वर्णन किजिए।

2. अनिद्रा रोग के प्रमुख लक्षण लिखते हुए इसकी प्राकृतिक चिकित्सा का वर्णन किजिए।

4. पार्किन्सन रोग के प्रमुख लक्षण समझाते हुए इसकी प्राकृतिक चिकित्सा लिखिए।

5. टिप्पणियां लिखिए–

   (क) माइग्रेन की प्राकृतिक चिकित्सा

   (ख) तंत्रिका तंत्र के रोगों में पथ्य–अपथ्य आहार

bdkbxr iz'uksa ds mÙkj

14-1

i). सत्य

ii). सत्य

iii). असत्य

iv). सत्य

fVIi.kh

14-2

i) (a) अधिक तनाव, चिन्ता एवं उग्र वातावरण में रहना।

(b) कार्य करने का बहुत अधिक दबाव होना।

ii) (a) माइग्रेन

(b) अनिद्रा

iii) (a) सिर में भारीपन अथवा तेज दर्द होना।

(b) सदैव स्वयं को तनावग्रस्त, समस्याओं एवं कठिनाइयों से घिरा अनुभव करना।

iv) (a) अधिक समय तक स्वयं में ही खोया रहना।

(b) अपनी समस्याओं को दूसरों के साथ साझा नहीं करना।

14-3

i) न्यूरॉन

ii) शीतल जल

iii) गर्म पैर

iv) अज्ञानता

fVIi.kh

15

जीवनशैली सम्बंधित प्रमुख रोग एवं उनकी प्राकृतिक चिकित्सा

प्रिय शिक्षार्थियों आपने पेपर 1 में जीवनशैली सम्बंधित रोगों की यौगिक चिकित्सा के विषय में पढ़ा। आपने जाना कि जीवनशैली किसे कहते हैं, इसका हमारे जीवन में क्या महत्त्व है। इसके अनियमित होने से हम किन–किन रोगों से ग्रस्त हो सकते हैं। यदि हम नियमित जीवनशैली अपनाएंगे तो हम रोगग्रस्त नहीं होंगे और किन्हीं कारणों से यदि हम रोगग्रस्त हो भी जाते हैं तो यौगिक एवं प्राकृतिक उपचार से अपने को रोगमुक्त करने में सहायक हो सकते हैं।

अभी तक हम जीवनशैली के यौगिक उपचार से परिचित हुए हैं। इस इकाई (यूनिट) में हम इन रोगों के प्राकृतिक उपचार के बारे में जानेंगे।

mí';

इस इकाई (यूनिट) का अध्ययन करने के पश्चात् आप –

- जीवनशैली सम्बंधित प्रमुख विकारों जैसे उच्चरक्तचाप, मोटापा आदि का प्रबंधन प्राकृतिक चिकित्सा के माध्यम से कर सकेंगे ;
- जीवनशैली सम्बधित प्रमुख रोगों में उपयोगी पथ्य–अपथ्य का उल्लेख कर सकेंगे।

fVIi.kh

15-1 thou'kyh lEcf/kr jkxk dh ikÑfrd fpfdRlk

जैसा कि आप जानते ही हैं कि प्राकृतिक चिकित्सा के माध्यम से अनेक रोगों का उपचार किया जा सकता है तथा प्राकृतिक जीवन जीने से रोग मुक्त भी रहा जा सकता है। प्राकृतिक चिकित्सा में पांच तत्व (आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी) सम्मिलित होते हैं जिनके माध्यम से चिकित्सा की जाती है। यही तत्व चिकित्सा का आधार होते हैं, जो कि विभिन्न रूपों में प्रयोग में लाये जाते हैं। इन तत्वों से की जाने वाली विभिन्न चिकित्साओं के विषय में आप पिछली इकाई (यूनिट)ों में पढ़ चुके हैं। आइये इस इकाई (यूनिट) में हम उन चिकित्साओं को सम्मिलित रूप से कैसे एक रोग को ठीक करने में प्रयोग कर सकते हैं अर्थात् चिकित्सा कर सकते हैं, इसे समझें–

15-1-1 mPp jäpki dh çk—frd fpfdRlk

उच्च रक्तचाप के विभिन्न कारणों और लक्षणों को आप पेपर 1 यौगिक चिकित्सा में विस्तार से पढ़ चुके हैं। यहाँ हम आपको इसकी प्राकृतिक चिकित्सा के विषय में बताएँगेः

प्राकृतिक उपचारों से उच्चरक्तचाप के रोगियों को अत्यंत लाभ मिलता है। ये उपचार निम्न प्रकार से किये जा सकते हैंः

iF; & सादा सुपाच्य आहार, कम तेल–घी में बना आहार, मौसमी फल–सब्जियां, मिर्च–मसालों का कम से कम प्रयोग, सैंधा नमक, योगासन, प्राणायाम आदि।

viF; & अधिक तेल–घी युक्त, मिर्च मसालेदार भोजन, तामसिक भोजन, टेबल साल्ट, नमक का अत्यधिक प्रयोग करना, तनाव, शारीरिक श्रम न करना, धूम्रपान, मांस, मदिरा आदि।

vkdk'k rRo fpfdRlk

miokl@Qykgkj fpfdRlk

- रोगी को यदि संभव हो तो कुछ दिन उपवास करवाएं। यदि ऐसा संभव नहीं है तो 5–10 दिनों तक फलाहार या कच्ची और उबली सब्जियों पर ही रखें।

  नोटः यदि रोगी फलाहार पर है तो उसे दिन में केवल तीन बार फल खाने के लिए बोलें एक समय में केवल एक प्रकार का फल खाने के लिए बोलें।

- यदि रोगी सब्जियों पर हो तो पीने के लिए गाजर, खीरे आदि का एक गिलास जूस दिया जाए। दोपहर के भोजन में केवल सलाद तथा शाम के भोजन में केवल उबली हुई सब्जियां खाई जाए।

  ukV% दो सप्ताह तक फल और दूध पर रहने के बाद धीरे–धीरे अन्न का प्रयोग कराना चाहिए। जैसे सुबह–शाम फल, दूध या सब्जियां लेना चाहिए और दोपहर में अन्न का भोजन ग्रहण कराएं।

- मौन धारण कराएं व प्रसन्नचित रहने के उपाय बताएं।

ty rRo fpfdRlk

- गरम पाद स्नान (Hot Foot Bath), रीढ़ स्नान (Spinal Bath) दिया जाता है। विशेष रूप से ठन्डे रीढ़ स्नान का प्रयोग लाभकारी होता है।
- रोगी की अवस्था अनुसार मेहन स्नान, कटि–स्नान देना चाहिए तथा सप्ताह में एक बार एप्सम साल्ट स्नान भी देना चाहिए।
- रीढ़ पर ठंडी पट्टी का प्रयोग भी किया सकता है।
- रोगी को प्रारंभ मे गुनगुने पानी का एनिमा भी देना चाहिए।

ok;q rRo fpfdRlk

- विभिन्न प्रकार के योगासन, प्राणायाम और यौगिक प्रक्रियाएं की जा सकती हैं जिन्हें योग चिकित्सा के अंतर्गत बताया गया है।
- उच्चरक्तचाप व हृदयरोग में रोगियों को सुबह शाम टहलने के लिए बोलना चाहिए तथा गहरी लम्बी श्वास लेने व छोड़ने का अभ्यास करना चाहिए।

vfXu rRo fpfdRlk

हरे रंग की बोतल में तैयार किया गया सूर्यतप्त जल आधा कप खाली पेट सुबह–शाम सेवन भी उच्च रक्तचाप को कम करने में सहायक होता है।

i`Foh rRo fpfdRlk

- सप्ताह में दो से तीन बार पूरे शरीर पर मिट्टी का लेप लगाना चाहिए।
- पेट एवं माथे पर मिट्टी की पट्टी का प्रयोग प्रतिदिन करना चाहिए।

15-1-2 fuEu jäpki dh çk—frd fpfdRlk

निम्न रक्तचाप के विभिन्न कारणों और लक्षणों को आप पेपर 1 यौगिक चिकित्सा में विस्तार से पढ़ चुके हैं। यहाँ हम आपको इसकी प्राकृतिक चिकित्सा के विषय में बताएँगे:

iF; – अंकुरित अन्न, उबली हुई सब्जियां, सब्जियों का सूप, दूध, शहद, दही तथा भिगोई हुई किशमिश, नीबूं पानी, नारियल पानी, लहसुन, टमाटर, गाजर, खजूर, बादाम, छुहारा, आंवला, पालक, बथुआ, मेथी, पोदीना, हींग, चुकुन्दर, काला चना, मट्ठा आदि।

viF; – अधिक उपवास, बासी भोजन, अधिक मिर्च–मसालों का प्रयोग, मैदे से बने उत्पाद, जंक भोजन, तैलीय मसालेदार भोजन, बेकरी उत्पाद आदि।

fVIi.kh

vkdk'k rRo fpfdRlk

- रोगी की अवस्थानुसार उपवास कराना चाहिए। तत्पश्चात् उच्च रक्तचाप में बताए गए नियमों के अनुसार ही फलाहार कराना चाहिए। फिर फल और दूध पर कुछ दिनों तक रहकर धीरे–धीरे रोगी को सादे भोजन पर ले आना चाहिए।
- प्रसन्नचित रहने के उपाय बताएं।

ty rRo fpfdRlk

- उदर स्नान और मेहन स्नान देना चाहिए।
- प्रतिदिन साधारण पानी से स्नान करने का निर्देश देना चाहिए।
- रोगी की कब्ज को तोड़ने के लिए गुनगुने जल का एनिमा देना चाहिए।
- रोगी की अवस्थानुसार सप्ताह में एक बार वाष्प स्नान, गर्म पाद स्नान भी दे सकते हैं। रोगी व्यक्ति की स्नान से पहले कम से कम 15 मिनटों तक सूखी घर्षण क्रिया करनी चाहिए।

vfXu rRo fpfdRlk

- निम्न रक्तचाप के रोगी को नारंगी रंग की बोतल में रखा सूर्यतप्त जल देना चाहिए और तेल की मालिश हथेली व तलवों पर करनी चाहिए।
- नारंगी रंग का रेडिएशन रोगी को देना चाहिए।

iFoh rRo fpfdRlk

- रोगी के पेट पर मिट्टी की गीली पट्टी का लेप करना चाहिए तथा इसके बाद रीढ़ की हड्डी पर मालिश करनी चाहिए और फिर शरीर पर गीली चादर लपेटनी चाहिए।

ok;q rRo fpfdRlk

- रोगी को सारे शरीर की प्रतिदिन मालिश, हल्का व्यायाम या टहलना, विश्राम एवं शिथिलीकरण क्रियाएं करनी चाहिए।
- सुबह के समय हरी घास में नंगे पैर चलना चाहिए।
- प्रतिदिन ककड़ी और खीरे का रस पिलाने से भी निम्न रक्तचाप ठीक करने में सहायता मिलती है।

15-1-3 FkkbjkbM çk—frd fpfdRlk

थाइराइड के विभिन्न कारणों और लक्षणों को आप पेपर 1 यौगिक चिकित्सा में विस्तार से पढ़ चुके हैं। यहाँ

thou'kyh lEcf/kr iue[k j¨x ,o mudh çk—frd fpfdRlk

fVIi.kh

हम आपको इसकी प्राकृतिक चिकित्सा के विषय में बताएँगेः

iF; – सादा सुपाच्य भोजन, मट्ठा, नारियल का पानी, मौसमी फल, ताजा हरी साग–सब्जियां, अंकुरित गेहूं, चोकर सहित आटे की रोटी, सैंधा नमक, धनिया, चौलाई, कचनार, मखाने, सहजन आदि।

viF; – चीनी, खटाई, मैदा, चावल, मिर्च–मसाला, अधिक नमक, तली–भुनी चीजें, मांस, अंडा, सफेद नमक (समुद्री नमक) आदि।

vkdk'k rRo fpfdRlk

- लघु उपवास कराना चाहिए व उस दौरान एनिमा देना चाहिए।
- मट्ठा कल्प कराना चाहिए।

ty rRo fpfdRlk

- प्रतिदिन कटि स्नान या मेहन स्नान 5–10 मिनट के लिए कराना चाहिए।
- गले की गरम–ठंडी सिकाई कराना चाहिए। इसे दिन में 2 बार प्रातः–सांय कर सकते हैं।
- गले की गरम व ठंडी पट्टी का प्रयोग रात्रि में सोने से पहले 45 मिनट के लिए करें।
- सप्ताह में 2 बार एप्सम साल्ट स्नान भी देना चाहिए।
- गुनगुने पानी का एनिमा रोगी की अवस्थानुसार देना चाहिए।
- सम्पूर्ण चादर लपेट सप्ताह में 1–2 बार देना चाहिए। उस दिन गले की गरम–ठंडी सिकाई, कटि व मेहन स्नान न करवाएं।

ok;q rRo fpfdRlk

यह आप योग चिकित्सा के अंतर्गत पढ़ चुके हैं।

vfXu rRo fpfdRlk

- आसमानी रंग की बोतल का सूर्यतप्त जल दो भाग तथा लाल रंग की बोतल का सूर्यतप्त जल एक भाग मिलाकर 30 ग्राम की तीन खुराकें प्रतिदिन पीने के लिए देनी चाहिए।
- यदि गले में सूजन है तो 10–15 मिनट तक नीला प्रकाश डालना चाहिए।

i`Foh rRo fpfdRlk

- गले पर मिट्टी की पट्टी का प्रयोग कराएं। इसे दोपहर में 45 मिनट के लिए करा सकते हैं।
- प्रतिदिन पेडू की मिट्टी की पट्टी का प्रयोग कराएं।

fVIi.kh

- सप्ताह में एक बार सम्पूर्ण मिट्टी लेप लगवाएं तथा उस दिन पेडू व गले पर मिट्टी की पट्टी का प्रयोग न करवाएं।

15-1-4 ekVki dh çk—frd fpfdRlk

मोटापे के विभिन्न कारणों और लक्षणों को आप पेपर 1 यौगिक चिकित्सा में विस्तार से पढ़ चुके हैं। यहाँ हम आपको इसकी प्राकृतिक चिकित्सा के विषय में बताएँगे:

iF; – फल, सब्जियां, सलाद एवं अमृताहार (अंकुरित अन्न – मूंग, मेथी आदि), आंवला, करेला, लौकी, लौकी का जूस, गुनगुना निम्बू पानी, हाई फाइबर वाले पदार्थ, चोकर युक्त आटे का प्रयोग, चना, जौ का आटा एवं दलिया, तरल चीजों का अधिक सेवन, मोटे अनाज का अधिक सेवन, भोजन पूर्व सलाद खाना आदि।

viF; – मिठाई, गरिष्ठ एवं तैलीय पदार्थों का प्रयोग, देर से भोजन करना, देर से सोना एवं उठना, शारीरिक कार्य न करना, बेकरी के उत्पाद, मैदे से बने उत्पाद, जंक फूड, संशोधित खाना (processed food), कोल्ड ड्रिंक्स, अत्यधिक नमक व चीनी का प्रयोग, धूम्रपान, नशा आदि।

çk—frd fpfdRlk

vkdk'k rRo fpfdRlk

- व्यक्ति अथवा रोगी को सर्वप्रथम साप्ताहिक उपवास करायें और फिर धीरे–धीरे लम्बे उपवास करायें, रोगी के दृढ़ निश्चयी होने पर ही उसे पूर्ण उपवास करायें, अन्यथा आंशिक उपवास करायें, वे भी लाभकारी हैं।
- प्रतिदिन उषापान कराना चाहिए।
- दिनचर्या आंवले का पानी पिलाकर शुरू की जा सकती है।
- रस कल्प, मट्ठाकल्प आदि का प्रयोग करवाएँ। इस दौरान मौन धारण का अभ्यास कराएं।

ok;q rRo fpfdRlk

- रोगी को सम्पूर्ण शरीर में मालिश देनी चाहिए। मालिश में थपकी देना, चिऊटी भरना, आटा गूंथना आदि प्रकिया भी करनी चाहिए, ऐसा करने से वसा का दहन होता है। सर्वांग शरीर मालिश के पश्चात् वाष्प स्नान देना चाहिए। वाष्प स्नान द्वारा एडिपोज टिश्यू गलती है और मोटापा दूर होता है।
- गहरी सांस लेते हुए सैर पर जाने और प्रतिदिन 2 मिनट तक ठहाके लगाकर हंसने के लिए कहना चाहिए। इससे भी मोटापे का रोग ठीक होने लगता है।

thou'kSyh lEcfU/kr ie[k j¨x ,o mudh çk—frd fpfdRlk

- व्यायाम करना, तैरना, योग करना, रस्सी कूदना आदि भी मोटापे को कम करने में सहायक होते हैं।

vfXu rRo fpfdRlk

- प्रतिदिन मृदु धूप स्नान कराना भी लाभदायक होता है।
- नांरगी रंग के तेल की मालिश करानी चाहिए।
- रोगी को पीली बोतल से सूर्य तप्त जल को 3 बार 50–50 ग्राम की मात्रा पीने के लिए देना चाहिए।

ty rRo fpfdRlk

- नित्य क्रिया और योग के बाद ठन्डे–गरम पानी से पेट की सिकाई करनी चाहिए।
- मोटापे से ग्रस्त व्यक्ति प्रायः कब्ज से पीड़ित रहते हैं अतः एनिमा देकर आँतों की सफाई करनी चाहिए। एनिमा के बाद गर्म पाद स्नान कराना चाहिए। गर्म पाद स्नान के दौरान सिर पर ठण्डी पट्टी रखनी चाहिए।
- एप्सम साल्ट बाथ भी सप्ताह में दो बार देना चाहिए।
- सम्पूर्ण चादर लपेट सप्ताह में 1–2 बार देना चाहिए।।

i`Foh rRo fpfdRlk

- रोगी को मिट्टी की पट्टी भी लगानी चाहिए। उसके लिए सर्वप्रथम पेट और पेडू पर हल्के हाथों से मसाज करनी चाहिए। तत्पश्चात् ठण्डा–गर्म सेंक करना चाहिए। सेंक के बाद मिट्टी की ठण्डी पट्टी लगानी चाहिए। इससे पेडू में संचित विजातीय द्रव्य अपना स्थान छोड़ने लगते हैं।
- तत्पश्चात् रोगी को कटि स्नान देना लाभ करता है। आवश्यकतानुसार प्रत्येक दूसरे दिन गर्म–ठण्डा कटि स्नान दिया जा सकता है। ऐसा करने से सभी प्रकार की व्याधियाँ दूर होती हैं।
- हफ्ते में 2 बार सम्पूर्ण शरीर में मिट्टी का लेप कर मृतिका स्नान कराना चाहिए। तत्पश्चात् ठण्डे पानी से खूब नहाना चाहिए।
- पंक स्नान सप्ताह में एक बार अवश्य कराएं।

कई बार मोटापे के रोगी मोटापे के साथ कई अन्य विकारों जैसे दमा, मधुमेह, हृदय रोग तथा उच्चरक्तचाप आदि से भी ग्रस्त होते हैं। ऐसी स्थिति में चिकित्सक को उसकी पूरी जाँच करकर सावधानीपूर्वक उसका चिकित्सा एवं आहार क्रम बनाकर उसका पालन सुनिश्चित कराना चाहिए।

15-1-5 e/kqesg dh çk—frd fpfdRlk

मधुमेह के विभिन्न कारणों और लक्षणों को आप पेपर 1 यौगिक चिकित्सा में विस्तार से पढ़ चुके हैं। यहाँ हम आपको इसकी प्राकृतिक चिकित्सा के विषय में बताएँगेः

fVIi.kh

मधुमेह की चिकित्सा का पहला लक्ष्य रक्त में शर्करा के स्तर को यथासम्भव सामान्य या उसके आस–पास बनाए रखना है। दूसरा लक्ष्य मधुमेह की जटिलताओं को कम करना या उनसे यथासंभव बचना है। इस दूसरे लक्ष्य की प्राप्ति पहले लक्ष्य की प्राप्ति पर ही निर्भर करती है।

iF;% जौ, ज्वार, करेला, पटोल, मेथी, सोयाबीन, सेम, शलजम, खीरा, ककड़ी, लहसुन, लौकी, पालक, बथुआ, चौलाई, आंवला, जामुन, बेल आदि।

viF;% मैदा, मैदे से बने खाद्य पदार्थ, चावल, आलू, सभी प्रकार की मीठी चीजें, वनस्पति, अत्यधिक मीठे फल, संरक्षित डिब्बाबंद खाद्य पदार्थ, धूम्रपान आदि।

vkgkj fpfdRlk

मधुमेह के रोगी का आहार नियंत्रित होना चाहिए। आहार निर्धारण के लिए रोगी की आयु, वजन, व्यवसाय तथा मधुमेह के प्रकार को ध्यान में रखना चाहिये मधुमेह के रोगी क्या और कितनी मात्रा में खाएं, इसके लिए उन्हें निम्नलिखित तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है–

1) जिनका भार सामान्य से कम है।

2) जिनका भार सामान्य है।

3) जिनका भार सामान्य से अधिक है।

एक सामान्य भार के व्यक्ति को जो शारीरिक कार्य नहीं करता लगभग 2000 कैलोरी, मध्यम काम करने वालों को लगभग 2500 तथा अधिक काम करने वालों को लगभग 3000 या इससे अधिक कैलोरी के भोजन की आवश्यकता होती है।

रोगी का जैसे–जैसे स्वास्थ्य अच्छा होता जाए और अनाज को सहन करने की रोगी की क्षमता बढ़ती जाए, अनाज की मात्रा बढ़ायी जा सकती है। मधुमेह के रोगी को दही, छाछ, मट्ठा आदि उनके भोजन में स्थान देकर उनकी शक्ति को बनाये रख सकते हैं।

मधुमेह के रोगियों को गेहूं के आटे में चना,सोयाबीन, मेथी, रागी तथा बाजरा–ज्वार मिलाकर उससे बनी 2–3 रोटियां खाने की सलाह दी जाती है। 10 किलो आटे में लगभग 4 किलो गेहूं, 2 किलो चना, 1 किलो सोयाबीन, 1 किलो रागी, 1 किलो बाजरा–ज्वार तथा 1 किलो मेथी के मिश्रण का अनुपात रखा जा सकता है।

çk—frd fpfdRlk

प्राकृतिक उपचारों को साधारणतः दो वर्गों में विभाजित किया जाता हैः एक सामान्य और दूसरा विशिष्ट उपचार।

सामान्य उपचारों में पेट पर गरम ठंडा सेक, आवश्यकता अनुसार एनिमा का प्रयोग तथा कटि स्नान आदि

आते हैं जबकि किसी विशेष स्थान की लपेट, जैसे अग्नाशय के स्थान पर मिट्टी की पट्टी तथा वहां के रक्त संचरण को उन्नत बनाने के लिए वाइब्रेटर का प्रयोग आदि विशिष्ट उपचारों की श्रेणी में आते हैं। इसके अतिरिक्त व्यक्ति के अनुसार योगासनों का अभ्यास तथा प्रातःकालीन भ्रमण आदि भी विशिष्ट उपचारों की श्रेणी में आते हैं।

vkdk'k rRo fpfdRlk

मधुमेह के रोगी को यदि अत्यंत आवश्यक न हो तो किसी भी प्रकार का उपवास नहीं करना या कराना चाहिए। यदि आवश्यक ही हो तो चिकित्सक की देख–रेख में ही उपवास रखे।

ok;q rRo fpfdRlk

- धूप में 30 मिनट तक शरीर की मालिश करना अच्छा होता है।
- व्यायाम – प्रातः काल टहलना (नियमित रूप से लम्बी दूरी तक टहलना मधुमेह रोगियों के लिए लाभकारी होता है।)

ty fpfdRlk

- प्रातः काल शौच जाने के बाद यदि पेट साफ न हुआ हो तो गुनगुने पानी का एनिमा देना चाहिए। पेट पर मिट्टी की पट्टी 20 मिनट तक लेने के पश्चात् 5 से 10 मिनट तक का कटिस्नान लेकर तेजी से टहलना चाहिए। शाम को पुनः कटिस्नान देना चाहिए। थोड़े दिनों के बाद प्रातः मेहन स्नान और शाम को कटिस्नान देना जारी रखें। मेहन स्नान ठंडे जल से दें और कटिस्नान गर्मियों में ताजे जल से तथा सर्दियों में हल्के गुनगुने जल से देना चाहिए। गर्म व ठंडा स्नान सप्ताह में एक–दो बार देना चाहिए।
- स्नान करते समय रीढ़ पर 5 मिनट तक ठंडा पानी डालें। स्नान उपरांत पूरे शरीर की सूखी मालिश करके शरीर का जल सूखा देना चाहिए।
- पेट पर गरम व ठंडा सेंक सप्ताह में एक–दो बार तथा रात को सोते समय पेडू पर गीली लपेट देनी चाहिए।

ukV% यदि रोगी अधिक दुबला हो गया हो तो गीली चादर की लपेट नहीं देनी चाहिए।

vfXu rRo fpfdRlk

- रोगी की अवस्थानुसार सप्ताह में 2–3 बार धूप स्नान 30 मिनट देना चाहिए।
- भूरी बोतल में सूर्य किरणों से कम से कम 8 घंटे तप्त किया गया जल आधा कप भोजनोपरांत 2 बार देना चाहिए।

fVIi.kh

iFoh rRo fpfdRlk

- पेट पर मिट्टी की पट्टी रखनी चाहिए।

मधुमेह के रोगी को अपनी रक्त शर्करा की जाँच नियमित अन्तराल पर कराते रहना चाहिए, ताकि किसी प्रकार की मधुमेह जन्य विकृति से रोगी अपना बचाव कर सके। रक्त शर्करा का सामान्य स्तर खाली पेट – 70–110 mg/dl तथा खाने के बाद 110–150 mg/dl तक हो सकता है।

मधुमेह एक दुसाध्य रोग है किन्तु योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा तथा नियंत्रित आहार की सहायता से उसे प्रभावी रूप से कम समय में ही नियंत्रण में लाया जा सकता है।

15-1-6 ruko dh çk—frd fpfdRlk

तनाव के विभिन्न कारणों और लक्षणों को आप पेपर 1 यौगिक चिकित्सा में विस्तार से पढ़ चुके हैं। यहाँ हम आपको इसकी प्राकृतिक चिकित्सा के विषय में बताएँगे:

iF; – हल्का सुपाच्य आहार, सात्विक आहार, ताजा हरे साग–सब्जियां, मौसमी फल, समय से सोना व उठना, नियमित जीवनचर्या का पालन करना, योगाभ्यास आदि।

viF; – अधिक तेल, मिर्च– मसाले वाला गरिष्ठ भोजन, तामसिक भोजन, देर से सोना व उठना, शारीरिक श्रम न करना, मैदे से बने खाद्य पदार्थों का अधिक सेवन, सामिष भोजन करना आदि।

çk—frd fpfdRlk

vkdk'k rRo fpfdRlk

- सप्ताह में एक बार उपवास अवश्य कराएं, फलाहार भी करा सकते हैं।
- मौन साधना का अभ्यास कराएं।
- शिथिलीकरण व प्रसन्नचित रहने के उपाय बताएं।

ok;q rRo fpfdRlk

- रोगी के अनुसार योगासन, प्राणायाम, ध्यान आदि कराना चाहिए। नियमित रूप से प्रतिदिन व्यायाम कराना चाहिए।
- पूरे शरीर पर मालिश करानी चाहिए।

thou'kyh lEcf/kr ie[k j¨x ,o mudh çk–frd fpfdRlk

ty rRo fpfdRlk

- कम से कम आधे घंटे रीढ़ स्नान देना चाहिए।
- सुबह के समय में गर्म पानी से स्नान कराना चाहिए।

i`Foh rRo fpfdRlk

- रोगी के पेट पर मिट्टी की गीली पट्टी लगानी चाहिए।
- सप्ताह में दो बार पंक स्नान कराएं।

15-1-7 u= jkxk dh çk–frd fpfdRlk

नेत्र रोगों के विभिन्न कारणों और लक्षणों को आप पेपर 1 यौगिक चिकित्सा में विस्तार से पढ़ चुके हैं। यहाँ हम आपको इसकी प्राकृतिक चिकित्सा के विषय में बताएँगे:

iF; – गाजर, अंकुरित आहार, हरी सब्जियाँ, मौसमी, पपीता, आप, सेब, बादाम, हल्का सुपाच्य भोजन, कम तेल का कम मसाले युक्त भोजन, सात्विक आहार, आँखों की क्रियाएं करना, आँखों में ठन्डे पानी के छींटे मारना, त्रिफला के पानी से आखें धोना आदि।

viF; – तामसिक भोजन, अधिक मिर्च मसाले युक्त गरिष्ठ भोजन, बासी खाना, देर रात टीवी देखना, आँखों पर अधिक जोर डालना, अधिक रोना, तनाव, अधिक सम्पूर्ण वाष्प स्नान आदि।

vkdk'k rRo fpfdRlk

- नेत्र ज्योति बढ़ाने के लिए उपवास का बहुत महत्त्व है। उपवास से समस्त विकार नष्ट हो जाते हैं। नेत्र रोगों में लम्बे उपवासों की आवश्यकता नहीं होती, किन्तु उपवास में एनिमा का प्रयोग आवश्यक है।
- उपवास में संतरे या निम्बू का रस अथवा दूध का प्रयोग तथा फलाहार का सेवन लाभप्रद होता है।
- उपवास से रक्त विकार दूर होते हैं और नेत्र के तंतु समूह की मरम्मत और नव निर्माण आरम्भ हो जाता है, जिससे नेत्र रोग दूर होते हैं तथा नेत्रों की ज्योति बढ़ती है।

ok;q rRo fpfdRlk

- आँखों के व्यायाम करने से आँखों में ताजगी आती है, तनाव कम होता है, रक्त संचार बढ़ता है तथा ज्योति भी बढ़ती है।
- नंगे पैर सुबह हरी घास पर टहलना चाहिए।
- त्राटक का अभ्यास कराएं।

vfXu rRo fpfdRlk

- हरे रंग को बोतल में तैयार किये गये सूर्यतप्त जल से नेत्र स्नान कराएं।
- हरे रंग का सूर्यतप्त जल सुबह खाली पेट 100 ml पिलाएं।

ty rRo fpfdRlk

- प्रतिदिन नेत्र स्नान कराएं।
- सप्ताह में तीन दिन कटि स्नान व तीन दिन मेहन स्नान बारी–बारी से कराएं।

iFoh rRo fpfdRlk

- आंखों व पेडू पर मिट्टी की पट्टी का प्रतिदिन प्रयोग कराएं।

bdkbZ iz'u&15-1

सत्य/असत्य बताइए–

1. उच्चरक्त चाप में गरम पाद स्नान लाभकारी है। ( )
2. निम्नरक्त चाप में लाल रंग की बोतल का सूर्यतप्त जल देना चाहिए। ( )
3. थायराइड में गले पर गरम–ठंडी पट्टी का प्रयोग दिन में करना चाहिए। ( )
4. मोटापे में पंक स्नान सप्ताह में चार बार कराना चाहिए। ( )
5. मधुमेह में भूरे रंग की बोतल का सूर्यतप्त जल लाभकारी होता है। ( )
6. तनाव में मौन साधना लाभप्रद है। ( )
7. अधिक रोने से नेत्रों की ज्योति कमजोर होती है। ( )

vkius D;k lh[kk

इस इकाई (यूनिट) में आपने सीखा कि:

- जीवनशैली रोग जीवन में नियमित दिनचर्या का पालन न करने से होते हैं। जीवनशैली रोग एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य में नहीं फैल सकते तथापि इनसे ग्रस्त लोगों की संख्या दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

- यदि हम नियमित दिनचर्या का पालन करें और प्रकृति के बनाये नियमों पर चलें तो इन्हें होने से रोका जा सकता है तथा इनसे बचा जा सकता है।
- उच्चरक्तचाप से ग्रस्त व्यक्ति में प्राकृतिक चिकित्सा से बहुत लाभ देखा जाता है। इसमें सम्मिलित चिकित्सा है : उपवास, एनिमा, गरम पाद स्नान, रीढ़ स्नान, कटि–स्नान, योगासन, प्राणायाम, पूरे शरीर पर मिटटी लेप आदि।
- निम्न रक्तचाप में उपवास, उदर स्नान, मेहन स्नान, वाष्प स्नान, गरम पाद स्नान, एनिमा, शरीर पर गीली चादर लपेट, पूरे शरीर की मालिश, हल्का व्यायाम आदि लाभ करते हैं।
- थाइराइड में उपवास, फलाहार, योगाभ्यास, प्राणायाम, कटि–स्नान, मेहन स्नान, गले की गरम–ठंडी सिकाई, गले पर मिट्टी की पट्टी का प्रयोग आदि लाभकारी हैं।
- मोटापे में साप्ताहिक उपवास से आरम्भ करके, लम्बे उपवास तत्पश्चात् पूर्ण उपवास कराना चाहिए। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण शरीर की मालिश, व्यायाम, तैरना, योगासन में मुख्यतः सूर्यनमस्कार, वाष्प स्नान, पेट की ठन्डे–गरम पानी से सिकाई, एनिमा, कटि–स्नान, एप्सम साल्ट स्नान, हफ्ते में 2 बार सम्पूर्ण शरीर में मिट्टी का लेपकर मृतिका स्नान देने से लाभ होता है।
- मधुमेह की चिकित्सा का पहला लक्ष्य रक्त में शर्करा के स्तर को यथासम्भव सामान्य या उसके आस–पास बनाए रखना है। दूसरा लक्ष्य मधुमेह की जटिलताओं को कम करना या उनसे यथासंभव बचना है।
- मधुमेह के रोगी को अपनी रक्त शर्करा की जाँच नियमित अन्तराल पर कराते रहना चाहिए, ताकि किसी प्रकार की मधुमेह जन्य विकृति से रोगी अपना बचाव कर सके।
- मधुमेह के रोगी को उपवास नहीं कराना चाहिए। रोगी की धूप में मालिश, प्रातःकाल टहलना, योगासन, प्राणायाम, एनिमा, धूप स्नान, कटि–स्नान, पेट पर गरम–ठंडा सेक, पेट पर मिट्टी की पट्टी रखना आदि मधुमेह में लाभ पहुंचाता है।
- तनाव या चिंता मनुष्य के लिए चिता समान है क्योंकि इससे मनुष्य कई प्रकार के रोगों से ग्रस्त हो जाता है। तनाव में सप्ताह में एक बार उपवास अवश्य करना चाहिए। इसमें योगाभ्यास, प्राणायाम, ध्यान, व्यायाम, पूरे शरीर की मालिश, शरीर को दबाना, रीढ़ स्नान, छाती पर मिट्टी की गीली पट्टी से लाभ मिलता है।
- ज्यादातर समय टीवी, मोबाइल, लैपटॉप आदि पर बिताने से नेत्र रोग भी आजकल की जीवनशैली में एक प्रमुख रोग बनता जा रहा है। नेत्र रोगों में उपवास या फलाहार करने से अच्छा लाभ मिलता है। साथ ही नेत्र व्यायाम कराना चाहिए।
- सभी जीवनशैली सम्बंधित रोगों के पथ्य–अपथ्य के विषय में भी अलग–अलग जानकारी प्राप्त की।

fVIi.kh

bdkbZ d vUr esa iz'u

1. उच्च व निम्न रक्तचाप की प्राकृतिक चिकित्सा का वर्णन कीजिए।
2. नेत्र रोगों से बचाव की प्राकृतिक चिकित्सा पर प्रकाश डाले।
3. मधुमेह के कारण व लक्षण बताते हुए आहार चिकित्सा का विस्तृत वर्णन कीजिए।
4. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए –

   क) थायराइड

   ख) मोटापा

   ग) तनाव

bdkbZxr iz'uksa d mÙkj

15-1

1. सत्य
2. सत्य
3. असत्य
4. असत्य
5. सत्य
6. सत्य
7. सत्य

16

कोरोना रोग से बचाव, रोकथाम एवं उपचार

प्रिय शिक्षार्थियों, 21वीं सदी में वायरस के प्रकोप ने मानव जाति के समक्ष बहुत बड़ी चुनौतीयां प्रस्तुत की है। वर्ष 2002–03 में सार्स नामक वायरस ने सम्पूर्ण विश्व में भय का वातावरण बना दिया था और उस समय सैकड़ों मनुष्य इस वायरस के कारण असमय मृत्यु को प्राप्त हो गये थे। इसके अठारह वर्ष बाद पुनः एक कोरोना नामक वायरस ने सम्पूर्ण विश्व के वैज्ञानिकों एवं चिकित्सकों के समक्ष यह चुनौती प्रस्तुत की है। परन्तु इस बार कोरोना वायरस का प्रकोप सार्स की तुलना में अधिक जटिल एवं गंभीर रहा। इस इकाई (यूनिट) में हम विशेष रूप से कोरोना रोग का परिचय प्राप्त करेंगे, और इसके बचाव एवं उपचार पर कौशल प्राप्त करेंगे।

mís';

इस इकाई (यूनिट) का अध्ययन करने के पश्चात् आप –

- कोरोना रोग का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेगें;
- कोरोना रोग के प्रमुख लक्षणों को जान पायेगें;
- कोरोना रोग से बचाव के महत्वपूर्ण बिन्दुओं का ज्ञान प्राप्त कर पायेगें;
- कोरोना रोग की रोकथाम एवं उपचार में यौगिक क्रियाओं के महत्व को समझ पायेगें;
- कोरोना रोग की रोकथाम एवं उपचार में प्राकृतिक चिकित्सा के महत्व को समझ पायेगें।

fVIi.kh

16-1 dkjkuk jkx dk lkekU; ifjp;

प्रिय शिक्षार्थियों, हमारे आस–पास के वातावरण में अनेक वायरस विद्यमान रहते हैं। वायरस को सजीव और निर्जीव के मध्य की कड़ी माना जाता है अर्थात् वायरस में कुछ लक्षण सजीव प्राणी के तथा कुछ लक्षण निर्जीव के होते हैं। वास्तव में वायरस निर्जीव वातावरण में लम्बे समय तक पड़े रहते हैं और जैसे ही इन्हें अनुकूल वातावरण प्राप्त होता है वैसे ही ये सजीव की भांति कार्य करने लगते हैं और प्राणियों को संक्रमित कर देते हैं। वायरस की अनेक प्रजातियों के द्वारा मनुष्यों एवं अन्य पशु–पक्षियों में अनेक संक्रामक रोग फैलते हैं। वायरल सर्दी–जुकाम ऐसा ही सामान्य रोग है जो मौसम परिवर्तन के साथ प्रायः मनुष्यों में बहुत फैलता है

वर्ष 2019 के अन्त में चीन के वुहान शहर में कोरोना वायरस के संक्रमण से होने वाली मौतों ने सम्पूर्ण विश्व का ध्यान आकृष्ट किया। किन्तु उस समय विश्व समुदाय ने इस समाचार को अधिक गंभीरता से नहीं लिया और चीन से सम्पूर्ण विश्व में यह कोरोना वायरस फैलता चला गया। आगे फरवरी 2020 तक जब इस वायरस की भयानकता का पता चला तब तक यह वायरस विश्व के अधिकतर देशों तक पहुंच चुका था। इसके बाद की स्थिति से आप सभी अवगत हैं।

कोराना वायरस का प्रभाव पश्चिमी ठंडे देशों में अधिक रहा है और इस वायरस के चपेट में आने के कारण लाखों मनुष्य असमय ही मृत्यु के ग्रास बन चुके हैं। इस वायरस की जटिलता यह भी है कि इसमें म्यूटेशन की क्षमता बहुत अधिक है और अभी तक इसके 23 प्रकारों का पता लग चुका है। यह वायरस दुनिया भर में करोड़ों लोगों को संक्रमित कर चुका है और अपने रूपों को बदलकर (म्यूटेशन) समस्या को जटिल बना देता है।

कोरोना रोग के बढ़ते प्रकोप को रोकने के लिए विश्वभर के वैज्ञानिक एवं चिकित्सक इसके रोकथाम एवं उपचार के लिए प्रयास कर रहे हैं किन्तु इस रोग के बचाव में सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यही स्पष्ट होता है कि जीवनशैली में सुधार लाते हुए एवं आहार में परिवर्तन करते हुए जीवनी शक्ति को उन्नत बनाकर ही इस गंभीर महामारी से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।

इसके साथ–साथ वर्तमान समय में अचानक उत्पन्न कोरोना महामारी को एक परिवर्तन काल के रूप में देखा जा रहा है और चिकित्सकों के साथ–साथ वैज्ञानिकों का भी मत यह है कि इस महामारी में वही व्यक्ति सुरक्षित रह पायेगें जिनमें इस रोग से लड़ने की जीवनी शक्ति विद्यमान होगी। ऐसे मनुष्य स्वयं को परिस्थिति के अनुकूल समायोजित करते हुए स्वयं का अस्तित्व बनाए रख पाने में सक्षम रह पायेंगे। अब यहां पर यह प्रश्न उत्पन्न होना अत्यन्त स्वाभाविक है कि इस चुनौती का सामना करने के लिए यह समायोजन क्षमता किस प्रकार प्राप्त होगी। किस प्रकार हम वर्तमान समय में बहुत तेजी से फैल रहे कोरोना जैसे गंभीर एवं असाध्य रोगों से स्वयं को मुक्त बना पायेगें। यह अत्यन्त विचारणीय एवं महत्वपूर्ण प्रश्न है। यहां पर भी यह स्पष्ट करना आवश्यक हो जाता है कि जहां पर अंग्रेजी ऐलोपैथी चिकित्सा सीमित हो जाती है वहां पर भी पारम्परिक भारतीय चिकित्सा पद्धतियां बहुत प्रभावशाली भूमिका वहन करती हैं। कोरोना जैसी महामारी के उपचार में योग, आयुर्वेद एवं प्राकृतिक चिकित्सा बहुत लाभकारी प्रभाव रखती है। प्रस्तुत इकाई (यूनिट) का विषय कोरोना रोग से बचाव, रोकथाम एवं उपचार को समझना है। भारतीय पारम्परिक चिकित्सा

पद्धतियों के माध्यम से एक ओर जहां इस रोग को शरीर में आने से रोका जा सकता है तो वहीं दूसरी ओर रोगग्रस्त व्यक्ति का उपचार भी किया जा सकता है। प्रस्तुत इकाई (यूनिट) में कोरोना वायरस नामक गंभीर महामारी के बचाव, रोकथाम एवं उपचार का वर्णन किया गया है।

इस वायरस के कारण विश्व के अधिकांश देशों में लॉकडाऊन की स्थिति उत्पन्न हुई और जर्मनी व अमेरिका जैसे विकसित देशों में लाखों व्यक्ति असमय काल के ग्रास बने। इस वायरस ने सम्पूर्ण विश्व के सम्मुख एक अभूतपूर्व संकट उत्पन्न कर दिया। सम्पूर्ण विश्व के चिकित्सक और वैज्ञानिक मिलकर इस खतरनाक एवं घातक वायरस के संकट से निकलने का प्रयास कर रहे हैं। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान इस वायरस के सम्मुख बहुत असहज हो गया है।

कोरोना लेटिन भाषा का एक शब्द है। लेटिन भाषा में कोरोना शब्द का प्रयोग मुकुट के लिए किया जाता है। आपको स्मरण होगा कि वायरस ऐसी सूक्ष्म रचनाएं होती हैं जो दिखलाई नहीं पडती हैं। उसी प्रकार यह बहुत सूक्ष्म वायरस है जो दिखलाई नहीं पड़ता है किन्तु जब इस वायरस को सूक्ष्मदर्शी के द्वारा देखा जाता है तब इसके समूह में मुकुट के समान उभरी हुई रचनाएं दिखलाई पड़ती हैं जिस कारण इसका नाम 'कोरोना वायरस' रखा है, जो एक प्रकार के वायरस परिवार को दर्शाता है। SARS CoV-2 नाम का वायरस इसी परिवार से है, जिसका पता वर्ष 2019 में चला। अतः चिकित्सकों के द्वारा इसे कोविड–19 अर्थात् Covid Virus Disease-19 का नाम दिया गया है।

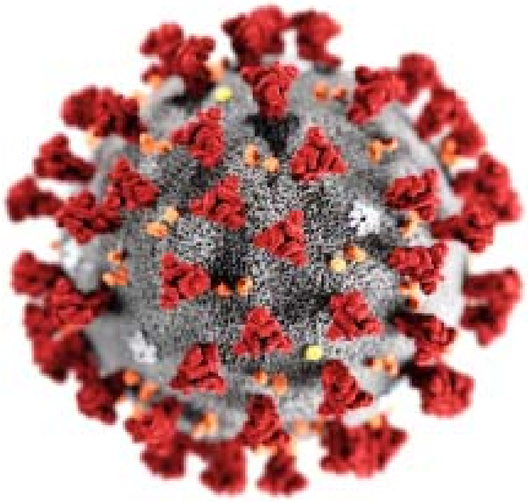

चित्र 16.1: कोरोना वायरस

इस वायरस की उत्पत्ति के विषय में वैज्ञानिकों के अलग–अलग मत हैं। कुछ वैज्ञानिकों के अनुसार यह वायरस चमगादड़ आदि स्तनधारी जीवों में विद्यमान था और इन पक्षियों की प्रतिरोधक क्षमता उन्नत होने के कारण यह वायरस इन पक्षियों को हानि नही पहुंचा पाता था। वर्तमान समय में इस पक्षियों के मांसाहार का सेवन मनुष्य के द्वारा करने के कारण यह वायरस इन पक्षियों से मनुष्य में प्रवेश कर गया। जबकि कुछ वैज्ञानिक इन वायरस की उत्पत्ति लैब से मानते हैं। इनके मत के अनुसार मानव जाति को हानि पहुंचाने

के उद्देश्य से एक जैविक हथियार के रूप में इस वायरस को लैब में तैयार किया गया जिसे युद्ध के समय एक हथियार के रूप में प्रयोग किया जा सके। वास्तव में अनेक वायरस वातावरण में पूर्व से विद्यमान हैं और मनुष्यों को संक्रमित भी करते रहते हैं किन्तु यह वायरस अन्यों की तुलना में भिन्न है क्योंकि एक ओर जहां इसके संक्रमण के परिणाम बहुत गंभीर एवं दूरगामी होते हैं तो वहीं दूसरी ओर इस वायरस में म्यूटेशन अर्थात् रूप बदलने की क्षमता अन्य वायरसों की तुलना में बहुत अधिक है।

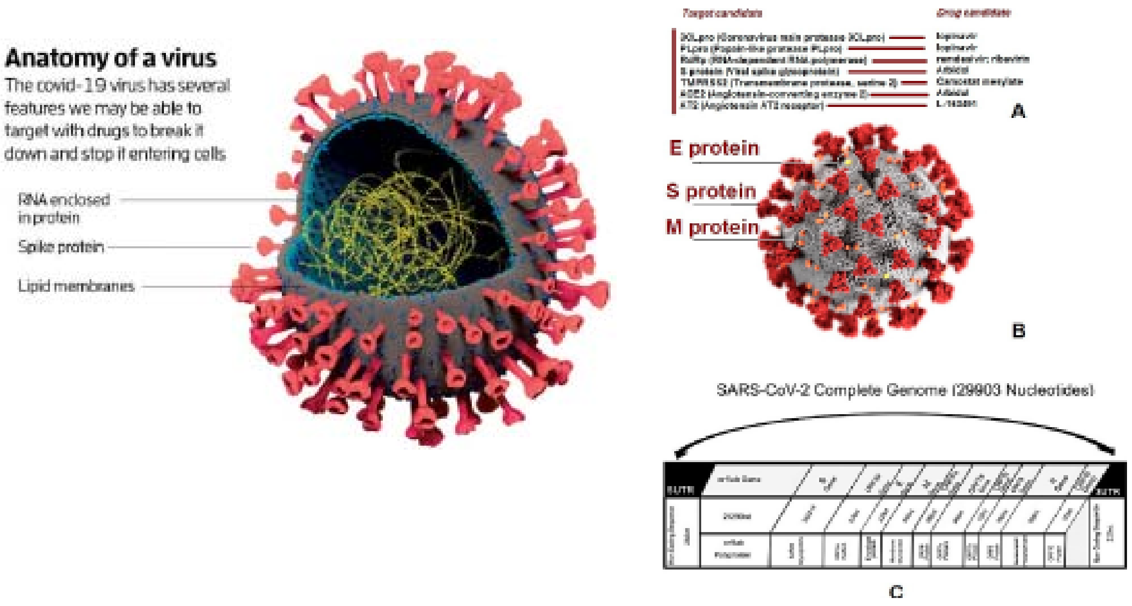

चित्र 16.2: कोरोना वायरस की रचना

16-1-1 dksjksuk ok;jl ls laØe.k ds izeq[k y{k.k

इस वायरस के विषय में जानने के उपरान्त अब आपके मन में इसके संक्रमण से उत्पन्न लक्षणों को जानने

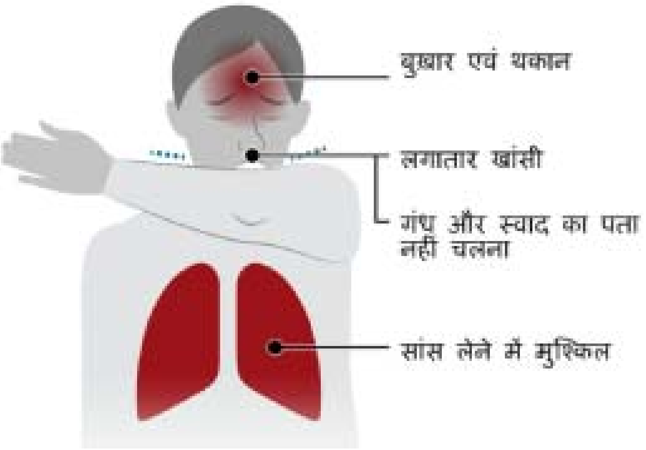

चित्र 16.3: कोरोना वायरस के प्रमुख लक्षण

की जिज्ञासा भी बढ़ गयी होगी। अतः अब कोरोना वायरस से संक्रमण के प्रमुख लक्षणों पर विचार करते हैं–

1- **'kjhj dk rkiØe c<u d lkFk rt c[kkj gkuk ½** कोरोना वायरस से संक्रमण होने पर शरीर का तापक्रम बढ़ जाता है और तेज बुखार हो जाता है। यह इस वायरस से संक्रमण होने का सबसे मूलभूत लक्षण होता है जिसमें व्यक्ति के शरीर का तापक्रम लम्बे समय तक बढ़ा रहता है।

2- **lkl yu e ij'kkuh gkuk ½** कोरोना वायरस से संक्रमण होने पर मनुष्य को सांस लेने में बहुत कठिनाई होने लगती है। संक्रमण गंभीर होने पर यह कठिनाई और अधिक बढ़ती चली जाती है और व्यक्ति का दम घुटने के कारण उसकी मृत्यु भी हो जाती है।

3- **l[kh [kkl h gkuk ½** कोरोना वायरस से संक्रमण होने पर सांस लेने में कठिनाई होने के साथ–साथ खाँसी होती है जिसमें कफ नहीं होता है अपितु संक्रमित व्यक्ति को सूखी खाँसी होने लगती है।

4- **l?ku ,o Lokn yu dh {kerk e deh gkuk ½** कोरोना वायरस से संक्रमण होने पर संक्रमित व्यक्ति की सूंघने एवं स्वाद लेने की क्षमता बहुत कम हो जाती है। अथवा दूसरे शब्दों में व्यक्ति को गंध का ज्ञान नहीं हो पाता है।

5- **Mk;fj;k ,o mYVh gkuk ½** कोरोना वायरस से संक्रमण की कुछ अवस्थाओं में संक्रमित व्यक्ति में डायरिया अथवा उल्टियां प्रारम्भ हो जाती हैं।

6- **'kkjhfjd vkj ekufld Fkdku gkuk ½** इस वायरस से संक्रमण की स्थिति में व्यक्ति की शारीरिक ऊर्जा बहुत क्षीण हो जाती है और उपरोक्त लक्षणों के कारण शारीरिक कार्यक्षमता में कमी आने के साथ–साथ मानसिक रूप से भी थकान अनुभव होती है।

निम्नलिखित चित्र में आप शरीर एवं श्वासनली में होने वाले लक्षण देख सकते हैं –

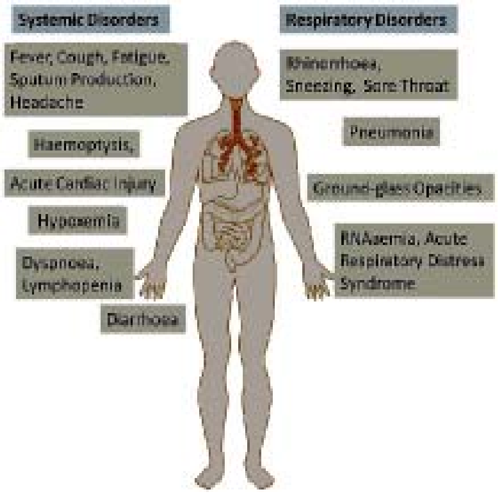

चित्र 16.4: शरीर एवं श्वासनली मे होने वाले लक्षण

कोरोना वायरस के अभी तक 23 प्रकारों का पता लग चुका है। इनके संक्रमण से मनुष्य में अलग–अलग प्रकार के लक्षण प्रकट होते हैं। परन्तु इनमें संक्रमण का सबसे प्रमुख एवं महत्वपूर्ण लक्षण गले में दर्द के साथ शरीर का तापक्रम बढ़ना होता है। इसमें दर्दनिवारक दवाइयों का प्रयोग भी अधिक प्रभावी नहीं होता है अपितु रोगावस्था गंभीर होने के साथ शरीर में संक्रमण की स्थिति गंभीर बनती चली जाती है। इस प्रकार गंभीर कोरोना महामारी के विषय में जानने के उपरान्त इस रोग के बचाव, रोकथाम एवं उपचार पर विचार करते हैं–

bdkbZxr iz'u&16-1

1. वर्ष 2002–03 में .... नामक वायरस ने सम्पूर्ण विश्व में भय का वातावरण बना दिया था।
2. लेटिन भाषा में कोरोना शब्द का प्रयोग .... के लिए किया जाता है।
3. कोविड–19 अर्थात् .... ।
4. .... नाम का वायरस कोविड–19 महामारी के कारण है।

16-2 dkjksuk jksx ls cpko] jksdFkke ,oa mipkj

प्रिय शिक्षार्थियों, कोरोना रोग वर्ष 2019 के अन्त में अस्तित्व में आया और देखते ही देखते इस रोग ने सम्पूर्ण विश्व को बहुत तेजी से प्रभावित किया। रोग के गंभीर परिणामों को देखते हुए सम्पूर्ण विश्व समुदाय इसके प्रति सचेत हुआ और इस दिशा में बहुत तेजी से कार्य किए गये। वैज्ञानिक शोधों में यह स्पष्ट किया गया कि इस रोग से बचने के लिए शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को ही उन्नत बनाना होगा। शरीर में इस वायरस के प्रति प्रतिरोधक क्षमता को उन्नत बनाने के लिए टीकाकरण (वैक्सीनेशन) पर बल दिया गया। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार टीकाकरण (वैक्सीनेशन) होने से शरीर में उत्पन्न एंटीजन कोरोना वायरस से शरीर को सुरक्षित बना सकते हैं। इसलिए सम्पूर्ण विश्व में इस वैक्सीन को बनाने के लिए युद्धस्तर पर प्रयास किये गये।

o"kZ 2021 esa çkjEHk esa Hkkjr esa nks oSDlhu dksofDlu ,oa dksfo'khYM dks rS;kj fd;k x;k] ftls ns'k Hkj esa lHkh dks yxk;k tk jgk gSA

अनेक देशों के वैज्ञानिकों और चिकित्सकों द्वारा मिलकर इस रोग से बचाव हेतु वैक्सीन तैयार किया गया किन्तु मनुष्य पर इस वैक्सीन के प्रयोग (टेस्टिंग) में यह भी पाया कि इसके दुष्प्रभाव दूरगामी एवं गंभीर होते हैं। इस प्रकार टेस्टिंग में वैक्सीन के नकारात्मक प्रभावों ने चिकित्सा विज्ञान के सम्मुख पुनः समस्या को अधिक जटिल रूप में प्रस्तुत किया और आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की परिधि को बहुत सीमित बना दिया। ऐसी जटिल परिस्थिति में पारम्परिक चिकित्सा पद्धतियां मनुष्य को इन रोगों से मुक्त करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका वहन करती हैं।

dkjkuk jkx l cpko] jkdFkke ,o mipkj

पारम्परिक भारतीय चिकित्सा पद्धति प्राकृतिक चिकित्सा का मूल सिद्धान्त है कि ''प्रकृति स्वयं चिकित्सक है।'' (Nature is the best Healer) यहाँ पर प्रकृति से अभिप्रायः शरीर से लिया जाता है अर्थात् हमारा शरीर अपनी चिकित्सा स्वयं कर लेता है। कोरोना वायरस जैसे गंभीर रोग की स्थिति में भी शरीर स्वयं ही अपनी चिकित्सा एवं सुरक्षा करने का प्रयास करता है। शरीर के अन्दर उपस्थिति प्रतिरक्षा तंत्र (Immunity System) सक्रिय होकर रोगाणु को नष्ट करने का प्रयास करता है। ऐसी अवस्था में यदि हम शरीर को चिकित्सा एवं सुरक्षा करने के लिए उपयुक्त साधन (सुव्यवस्थित दिनचर्या, सात्विक आहार–विहार, नियमित योगाभ्यास एवं सकारात्मक मनन–चिन्तन आदि) प्रदान करते हैं तो शरीर स्वतः ही बहुत आसानी एवं शीघ्रता से इन गंभीर और असाध्य रोगों पर विजय प्राप्त कर लेता है। जबकि यदि इसके विपरीत आचरण करते हुए विकृत आहार–विहार करते हुए जहरीली रासायनिक एंटीबायोटिक दवाइयों का सेवन करते हैं तब शरीर की जीवनी शक्ति एवं रोगप्रतिरोधक क्षमता क्षीण पड़ जाती है और आगे चलकर रोगावस्था गंभीर होकर रोग असाध्य हो जाता है।

यहाँ पर अध्ययन का विषय कोरोना रोग में पारम्परिक भारतीय पद्धतियों के अन्तर्गत योग चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा एवं आयुर्वेद के प्रभाव का अध्ययन करना एवं समझना है। अतः विषय का आरम्भ योग चिकित्सा से करते हैं–

16-2-1 dkjkuk jkx l cpko] jkdFkke ,o mipkj e ;kx fpfdRlk

प्रिय शिक्षार्थियों, योग का अर्थ होता है जुड़ना। यहां पर आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़ने के अर्थ में योग शब्द को लिया जाता है। इस प्रकार योग का अर्थ इस सृष्टि के सबसे सकरात्मक तत्व अर्थात् परमात्मा के साथ जुड़ने से होता है। इस सकरात्मक तत्व के साथ जुड़ने का सीधा प्रभाव हमारे शरीर, मन और आत्मा पर पड़ता है। योग में वर्णित क्रियाओं का अभ्यास करने एवं योगांगों का जीवन में पालन करने से शारीरिक कार्यक्षमता एवं मानसिक क्रियाशीलता का अनंत विस्तार होता है और मनुष्य सकारात्मक ऊर्जा से ओत–प्रोत हो जाता है। यह सकारात्मक ऊर्जा मनुष्य की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बहुत उन्नत बनाती है अतः योग के अभ्यास द्वारा इस गंभीर महामारी से बचाव एवं रोकथाम की जा सकती है।

योग में सर्वप्रथम मनुष्य की दिनचर्या एवं आहार–विहार को सुव्यवस्थित एवं नियंत्रित किया जाता है। इसमें प्रातःकाल सूर्योदय पूर्व उठकर रात्रिकाल तांबे के बर्तन में रखे एक से डेढ़ लीटर जल का सेवन (उषापान) करने के साथ मनुष्य की दिनचर्या का आरम्भ होता है। प्रातःकाल शौच आदि दैनिक नित्यकर्मों से निवृत्त होने के उपरान्त क्षमतानुसार भ्रमण करना और यौगिक क्रियाओं का विधिपूर्वक अभ्यास करने से मनुष्य की रोग प्रतिरोधक क्षमता उन्नत बनती है और स्वास्थ्य का स्तर भी अच्छा बनता है। कोरोना रोग से बचाव एवं उपचार में योगाभ्यास की भूमिका को इस प्रकार समझा जा सकता है–

1 "kV~de dh 'kf) fØ;kvk dk iHkko

शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को उन्नत बनाने के लिए शरीर शोधन करना बहुत आवश्यक होता है। शरीर शुद्धि हेतु यौगिक षट्कर्म बहुत लाभकारी होते हैं। शरीर शोधन हेतु प्रातःकाल खाली पेट अपनी क्षमता एवं

fVIi.kh

fVIi.kh

आवश्यकता अनुसार वमन क्रिया का अभ्यास लाभकारी प्रभाव रखता है। इससे पाचन तंत्र का शोधन होता है और विषाक्त तत्व शरीर से बाहर निकलते हैं। बड़ी आंत के शोधन की वस्तिक्रिया का अभ्यास भी शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को उन्नत बनाता है। षट्कर्म की छः शोधन क्रियाओं के अन्तर्गत वर्णित जलनेति क्रिया का अभ्यास प्रतिदिन करना चाहिए। कोरोना वायरस शरीर में नासिकाद्वार से ही प्रविष्ट होता है अतः प्रतिदिन जलनेति का बहुत लाभकारी होता है। नेतिक्रिया के उपरान्त नासिका में गौघृत अथवा सरसों के तेल की बूदें टपकानी चाहिए। इससे नासिका प्रदेश का शोधन होने के साथ–साथ प्रतिरोधक क्षमता का भी विकास होता है।

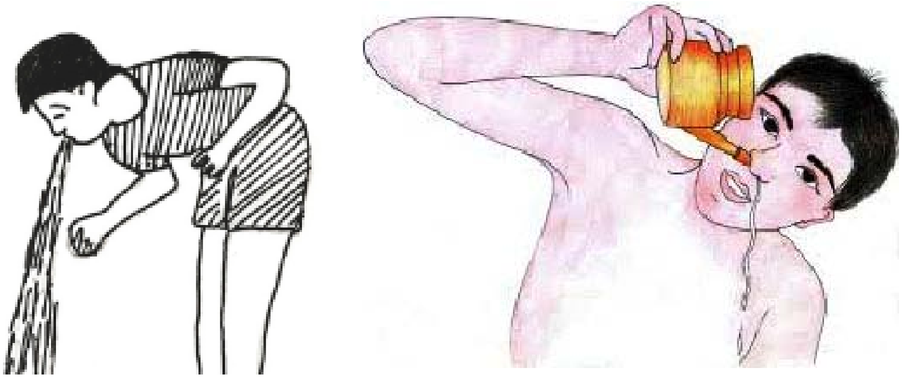

चित्र 16.5: कुंजल एवं जलनेती

शोधन क्रियाओं के अन्तर्गत नौली क्रिया का अभ्यास करने से जठराग्नि प्रदीप्त होती है जिससे पाचन क्रिया सुव्यवस्थित होने के साथ भूख अच्छी प्रकार लगती है और शरीर को सभी पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होते हैं। इसके प्रभाव से शरीर की प्रतिरोधक क्षमता का विकास होता है। त्राटक क्रिया मानसिक स्थिरता और एकाग्रता उत्पन्न करती है। त्राटक क्रिया का अभ्यास करने से तनाव दूर होता है। इसके अभ्यास से हृदय को बल मिलता है और इससे मन में प्रसन्नता एवं उत्साह का विस्तार होता है जिससे शारीरिक क्रियाशीलता एवं मानसिक स्थिरता बढ़ती है। कोरोना रोग से बचाव में कपालभाति का अभ्यास विशेष लाभकारी प्रभाव रखता है। प्रतिदिन पर्याप्त समय तक कपालभाति का अभ्यास करने से शरीर का शोधन होने के साथ रोग प्रतिरोधक क्षमता उन्नत बनती है। इस प्रकार षट्कर्म की शोधन क्रियाओं का अभ्यास कोरोना रोग से बचाव एवं उपचार में बहुत लाभकारी प्रभाव रखता है।

2 vklu dk iHkko

शरीर की रोगप्रतिरोधक क्षमता को उन्नत बनाने में योगासनों का अभ्यास बहुत लाभकारी प्रभाव रखता है। योगासनों का आरम्भ सूक्ष्म अभ्यासों से करना चाहिए। इन अभ्यासों को पैरों से प्रारम्भ करते हुए शरीर की सभी सन्धियों का संचालन के अभ्यास नियमित रूप से करने चाहिए। इन अभ्यासों में पर्याप्त निपुणता प्राप्त होने पर योगासनों का अभ्यास करना चाहिए। ताड़ासन, त्रिकोणासन, वातायनासन, पश्चिमोत्तनासन, उष्ट्रासन, अर्द्धमत्स्येन्द्रासन, शशांकासन, भुजगांसन, धनुरासन, मकरासन और शवासन का अभ्यास रक्त संचार में वृद्धि करता है। योगासनों का नियमित रूप से अभ्यास करने पर शरीर से अनावश्यक चर्बी नष्ट होती है और शरीर का वजन सन्तुलित होने लगता है जिससे प्रतिरोधक क्षमता का भी विकास होता है।

dkjkuk jksx ls cpko] jksdFkke ,oa mipkj

नियमित आसनों का अभ्यास करने से शरीर का भारीपन एवं कठोरता दूर होती है और शरीर हल्का, लचीला एवं स्वस्थ बनता है। आसनों का अभ्यास करने से शरीर की मांसपेशियों एवं शरीर के सभी अंगों पर नियंत्रण क्षमता का विकास होता है और शरीर स्वस्थ बनता है। योगासनों के अभ्यास से शरीर के समस्त बाह्य एवं आन्तरिक अंगों की क्रियाशीलता में वृद्धि होती है और शरीर के सभी अंग–तंत्र अपने–अपने कार्यों को सुचारु एवं सुव्यवस्थित रूप में करने लगते है। इस प्रकार योगासनों नियमित एवं विधिपूर्वक अभ्यास शरीर की प्रतिरोधक क्षमता एवं कार्यक्षमता पर बहुत सकारात्मक प्रभाव प्रदान करता है।

चित्र 16.6: विभिन्न योगासन

3 eqnk vkj c/k dk iHkko

मुद्राओं का अभ्यास करने से आन्तरिक ऊर्जा में वृद्धि होती है जिससे रोग प्रतिरोधक क्षमता और जीवनी शक्ति उन्नत बनती है। विशेष प्रकार की यौगिक मुद्राओं जैसे महाबंध मुद्रा, शाम्भवी मुद्रा, शक्तिचालिनी मुद्रा और विपरीतकरणी मुद्रा आदि का विधिपूर्वक अभ्यास करने से आन्तरिक ऊर्जा में वृद्धि होती है और शरीर ऊर्जावान बनता है। शरीर के ऊर्जावान रहने से रोगप्रतिरोधक क्षमता भी उन्नत बनी रहती है और कोरोना जैसी महामारी से शरीर सुरक्षित रहता है। इसी प्रकार रोगावस्था में भी मुद्राओं का अभ्यास करने से सुप्त ऊर्जा जाग्रत होती है जिससे रोगावस्था में शीघ्र लाभ प्राप्त होने लगता है। इन मुद्राओं का अभ्यास शरीर के साथ–साथ मन को भी सकारात्मकता प्रदान करता है जिससे मन में संकल्पशक्ति दृढ़ बनती है और इसका लाभ रोगावस्था से मुक्त होने में प्राप्त होता है।

4 iR;kgkj ikyu dk iHkko

प्रत्याहार का अर्थ इन्द्रियों पर संयम करना होता है। सामान्यता मनुष्य की समस्त इन्द्रियां अपने–अपने विषयों की ओर सदैव आसक्त बनी रहती हैं तथा विषयभोगों की ओर मनुष्य को आकृष्ट करती रहती हैं

fVIi.kh

किन्तु इस आसक्ति की अधिकता से मनुष्य की दिनचर्या और आहार–विहार आदि अव्यवस्थित हो जाते हैं जिससे मनुष्य के शरीर की प्रतिरोधक क्षमता क्षीण होने लगती है और शरीर में रोगावस्था प्रवेश करने लगती है।

योगमय जीवनशैली मनुष्य को इन्द्रियों पर संयम की शिक्षा प्रदान करती है और इन्द्रियों पर संयम करते हुए सांसारिक विषयभोगों से वैराग्य की ओर लेकर जाती है। इन्द्रियों पर संयम करते हुए मनुष्य अर्न्तमुखी बनता है और आन्तरिक जगत के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है। इस प्रकार प्रत्याहार पालन से इन्द्रियों पर संयम करने से मनुष्य की जीवनी शक्ति और रोग प्रतिरोधक क्षमता बहुत उन्नत बनती है। इन्द्रियों पर संयम करते हुए शरीर के लिए हितकारी आहार का सेवन करने सुव्यवस्थित दिनचर्या–रात्रिचर्या का पालन करने से कोरोना वायरस से उत्पन्न रोग की रोकथाम एवं उपचार में बहुत मदद प्राप्त होती है।

5 izk.kk;ke dk iHkko

प्राणायाम का अर्थ होता है प्राण ऊर्जा में वृद्धि करने वाला अभ्यास। प्राणायाम का अभ्यास कोरोना रोग की रोकथाम एवं बचाव में एक अचूक रसायन का कार्य करता है। कोरोना वायरस का सबसे प्रमुख प्रभाव फेफड़ों की कार्य क्षमता पर पड़ता है अर्थात् कोरोना वायरस से संक्रमण की स्थिति में फेफड़ों की कार्यक्षमता बहुत कम हो जाती है और प्राण ऊर्जा क्षीण हो जाती है। प्राणायाम का अभ्यास करने से फेफड़ों की कार्यक्षमता और कार्यकुशलता में स्वाभाविक रूप से वृद्धि होती है और इस गंभीर रोग से बचाव एवं रोकथाम होती है। कोरोना वायरस से मुक्ति प्राप्त करने के लिए नियमित रूप से एवं पर्याप्त समय तक प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।

सर्वप्रथम दीर्घ श्वास–प्रश्वास का अभ्यास करना चाहिए। इससे फेफडों और हृदय को बल प्राप्त होता है। इस अभ्यास में निपुणता प्राप्त होने पर अनुलोम–विलोम और नाड़ीशोधन प्राणायाम का पर्याप्त समय तक अभ्यास करना चाहिए। तत्पश्चात् सूर्यभेदी, उज्जायी, भस्त्रिका, भ्रामरी और प्रणव जप आदि का अभ्यास करना चाहिए।

यहां पर महत्वपूर्ण बिन्दु है कि कोरोना रोग की रोकथाम एवं उपचार करने हेतु साफ–स्वच्छ स्थान पर पर्याप्त समय तक शान्त एवं स्थिर मन होकर प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए एवं प्राणायाम को दिनचर्या का प्रमुख अंग बनाते हुए इसका अभ्यास नियमित रूप से एवं पर्याप्त समय तक करना चाहिए।

6 /;ku dk iHkko

तनाव में रहने से भूख–प्यास और निद्रा आदि शरीर की जैविक क्रियाएं असन्तुलित एवं अव्यवस्थित हो जाती हैं। तनाव के प्रभाव से भूख और निद्रा का समय अव्यवस्थित एवं कम हो जाता है जिससे शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बहुत क्षीण होने लगती है और कोरोना वायरस की रोगवास्था शरीर एवं मन पर प्रभावी होने लगती है। जबकि ऐसी अवस्था में ध्यान एवं प्रार्थना का अभ्यास शरीर और मन दोनों स्तरों पर बहुत सकारात्मक प्रभाव प्रदान करता है। ध्यान एवं प्रार्थना का अभ्यास करने से अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के स्राव (Hormones)

सुव्यवस्थित होते हैं और चयापचय दर सन्तुलित बनने के साथ ही भूख–निद्रा आदि जैविक क्रियाएं सुव्यवस्थित होने लगती हैं जिससे रोग प्रतिरोधक क्षमता उन्नत बनती है और शरीर निरोगी एवं ऊर्जावान बनता है।

7 lekf/k dk iHkko

योग के शीर्ष सोपान के रूप में समाधि का वर्णन आता है। समाधि की अवस्था में मनुष्य सर्वत्र सभी ओर ईश्वर की सकारात्मक अनुभूति करता हुआ अपने स्वरूप में लीन हो जाता है। सर्वत्र सकारात्मक अनुभति से मनुष्य के समस्त दुख और क्लेश नष्ट होकर आत्मानन्द एवं परमानन्द की प्राप्ति होती हैं। यह योग साधना की उच्चतम अवस्था होती है जिससे मनुष्य की रोग प्रतिरोधक क्षमता और जीवनी शक्ति उन्नत बनने के साथ स्वस्थ एवं निरोगी जीवनी प्राप्त होता है।

इस प्रकार उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि यौगिक क्रियाओं का अभ्यास करने से जीवनी शक्ति और प्रतिरोधक क्षमता बहुत उन्नत बनती है जिससे कोरोना रोग की रोकथाम में उपचार में बहुत सहायता प्राप्त होती है।

bdkbxr i'u&16-2

1. 2021 के शुरुआत में हमारे देश में निर्मित .... एवं .... नाम के दो वेक्सिन उपलब्ध है।

2. .... का अभ्यास करने से फेफड़ों की कार्यक्षमता और कार्यकुशलता में स्वाभाविक रूप से वृद्धि होती है।

3. .... षट्कर्म का अभ्यास करने से अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के स्राव (Hormones) सुव्यवस्थित होते हैं।

16-2-2 dkjkuk l cpko] jkdFkke ,o mipkj e ikÑfrd fpfdRlk ,o vk;oZn

प्रिय शिक्षार्थियों, प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार शरीर अपनी चिकित्सा स्वयं करता है। इसके साथ–साथ प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार सभी रोगों का मूल कारण शरीर में स्थित विजातीय द्रव्य होता है।" अतः प्राकृतिक चिकित्सा में पंचतत्वों का प्रयोग करते हुए शरीर में स्थित विजातीय द्रव्य को बाहर निकाला जाता है। विजातीय द्रव्यों के शरीर से बाहर निकलने पर शरीर की रोग प्रतिरोधक उन्नत बनती है और शरीर स्वयं बहुत आसानी से अपनी चिकित्सा करने में सक्षम बनता है।

प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत कोरोना रोग से बचाव, रोकथाम एवं उपचार हेतु सर्वप्रथम प्रकृति के नियमों का पालन करने पर बल दिया जाता है। इसके उपरान्त पंचमहाभूतों का सम्यक प्रयोग करते हुए शरीर की

fVIi.kh

रोग प्रतिरोधक क्षमता को उन्नत बनाया जाता है। प्रातःकालीन भ्रमण एवं धूप का सेवन करने से रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास होता है और इस रोग की रोकथाम एवं उपचार में सहायता प्राप्त होती है। कोरोना रोग से बचाव एवं उपचार में शरीर की क्षमता एवं रोगावस्था के अनुसार कटि स्नान, रीढ़ स्नान, भाप स्नान, एनीमा एवं आयुर्वेदिक जड़ी–बूटी से युक्त औषध द्रव्यों की भाप का सेवन कराने से शीघ्र लाभ प्राप्त होता है। प्रातःकाल गुनगुने जल का सेवन करते हुए उषापान एवं दिन के समय नियमित अन्तराल पर गर्म अथवा गुनगुने जल का सेवन करना चाहिए।

कोरोना की गंभीर महामारी से बचने के लिए स्वास्थ्य मंत्रालय द्वारा आयुर्वेद की औषधियों से बनाए काढ़े के सेवन को अत्यन्त उपयोगी एवं प्रभावशाली माना है। इस रोग से मुक्त होने के लिए शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को उन्नत बनाने के लिए एक चम्मच मुलेठी, 8 से 10 तुलसी के पत्ते, दो से चार ग्राम दालचीनी एवं काली मिर्च, एक–एक छोटा अदरक और हल्दी का टुकड़ा और गिलोय के पत्तों के साथ छोटी डंडियों को एक लीटर स्वच्छ जल में अच्छी प्रकार उबालना चाहिए। धीमी आंच में पर्याप्त समय तक उबालने के उपरान्त जब एक गिलास (एक चौथाई) शेष रहे तब इसे आंच से उतारकर ठंडा होने देते हैं और अच्छी प्रकार छानकर एक चम्मच शहद मिलाकर गुनगुने तापक्रम पर इसका सेवन करना बहुत लाभकारी प्रभाव रखता है।

चित्र 16.7 : आयुर्वेद औषधि

चित्र 16.8 : आयुर्वेद औषधि से बना काढ़ा

शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को उन्नत बनाने में हल्दी का सेवन बहुत लाभकारी होता है। इसके साथ–साथ आंवला, एलोविरा, नींबू और सन्तरा आदि फलों के सेवन से भी रोग प्रतिरोधक क्षमता उन्नत बनी रहती है। इन प्राकृतिक औषध द्रव्यों का सेवन करने से इस रोग की रोकथाम एवं उपचार में सहायता प्राप्त होती है।

इस प्रकार उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि पारम्परिक भारतीय चिकित्सा पद्धतियों के द्वारा कोरोना नामक गंभीर रोग से बचाव होने के साथ–साथ इसकी रोकथाम भी संभव होती है। इसके अतिरिक्त योग,

dksjksuk jksx ls cpko] jksdFkke ,oa mipkj

fVIi.kh

प्राकृतिक चिकित्सा एवं आयुर्वेद के सम्यक प्रयोग से कोरोना रोग से ग्रस्त रोगी बहुत सरलता से रोग मुक्ति प्राप्त कर लेता है। किन्तु यहाँ पर इस रोग की रोकथाम एवं उपचार में पथ्य–अपथ्य आहार पर विशेष ध्यान देना चाहिए। योग, प्राकृतिक चिकित्सा एवं आयुर्वेद के साथ–साथ निम्न वर्णित पथ्य आहार का सेवन एवं अपथ्य आहार का त्याग करने से रोग प्रतिरोधक क्षमता उन्नत बनती है और इस रोग में विशेश लाभ प्राप्त होता है –

(A) **viF; vkgkj&** मांसाहारी भोजन, धूम्रपान, मद्यपान, शीतल पेय एवं कफदोषवर्द्धक खाद्य पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए। मैदा और मैदे से बने सभी खाद्य पदार्थों, कृत्रिम रंगों एवं रसायनों से युक्त बाजार की मिठाइयां एवं अन्य प्रिजर्वेटिव युक्त खाद्य पदार्थों का प्रयोग त्याग देना चाहिए। फ्रिज का ठंडा जल, आईसक्रीम एवं अन्य कृत्रिम शीतल पेय का पूर्णरूप से त्याग कर देना चाहिए।

(B) **iF; vkgkj&** प्रातःकाल उषापान करते हुए प्रातःकालीन भ्रमण और नियमित योगाभ्यास करने के साथ अंकुरित आहार का सेवन, जौ, चना, गेहूँ को मिलाकर चौकर सहित रोटियों का सेवन, गाय का घी, बादाम, अखरोट, अंजीर, मुनक्का, पिस्ता आदि सूखे मेवे, मौसम के अनुसार हरी पत्तेदार सब्जियाँ जैसे मैथी, पालक, लौकी, तुरई, परवल, करैला, नींबू आदि का सेवन करना चाहिए। सब्जियों में हल्दी, सौंठ, कालीमिर्च, लौंग, अजवायन आदि मसालों का प्रयोग करना चाहिए। मौसमी ताजे फलों जैसे मौसमी, सन्तरा, अनार, आम, पपीता, अंगूर आदि का पर्याप्त सेवन करना चाहिए। गर्म जल का सेवन करने की आदत बनानी चाहिए।

17-3 egRoi.k lq>ko

कोरोना रोग से बचाव एवं उपचार करने के लिए मनुष्य को निम्न महत्वपूर्ण नियमों को अपने आचरण अर्थात् दिन–प्रतिदिन के व्यवहार में अवश्य लाना चाहिए–

1. यह संक्रामक व्याधि है अतः स्वयं को संक्रमण से बचाने के लिए बाहरी वातावरण में हमेशा मुंह पर मास्क पहने और स्वच्छता का विशेष ध्यान दें।
2. हाथों को अच्छी प्रकार से धोएं और खाद्य पदार्थों में भी स्वच्छता का ध्यान रखें।
3. प्रातःकाल सूर्योदय पूर्व निश्चित समय पर जागरण और रात्रिकाल में निश्चित समय पर शयन का नियम बनाना चाहिए।
4. प्रातःकाल नियमित रूप से उषापान अर्थात् खाली पेट पर्याप्त मात्रा में जल का सेवन करना चाहिए। दिनभर में नियमित अन्तराल पर गर्म जल का सेवन करते रहना चाहिए।
5. प्रातःकालीन भ्रमण एवं आसन–प्राणायाम आदि योगाभ्यास को नियमित रूप से अपनी दिनचर्या का अंग बनाना चाहिए।

fVIi.kh

6. स्वयं पर संयम करते हुए निश्चित समय पर शुद्व–सात्विक एवं प्राकृतिक आहार का सेवन करना चाहिए।

7. मानसिक संवेगों जैसे क्रोध, तनाव, ईर्ष्या, घबराहट और बेचैनी आदि से स्वयं को मुक्त रखना चाहिए और सदैव सकारात्मक चिन्तन को अपनाना चहिए।

8. दिनचर्या का प्रबन्धन करते हुए प्रतिदिन कुछ समय रचनात्मक क्रियाओं जैसे सफाई करना, हस्त लेखन करना आदि, मनोरंजन एवं परोपकार में व्यतीत करना चाहिए।

9. जीवन में परिश्रम की आदत बनानी चाहिए एवं पूर्ण परिश्रम के उपरान्त सन्तोष के भावों को ग्रहण करना चाहिए।

10. जीवन में ईश्वर प्रणिधान को अपनाते हुए सदैव सुख–दुख में सम, प्रसन्न और सकारात्मक रहने का प्रयास करना चाहिए।

इस प्रकार उपरोक्त सुझावों का नियमपूर्वक पालन करने मनुष्य कोरोना जैसे घातक एवं गंभीर रोग से मुक्त होकर उत्तम स्वास्थ्य के साथ आनन्द की अनुभूति करता है।

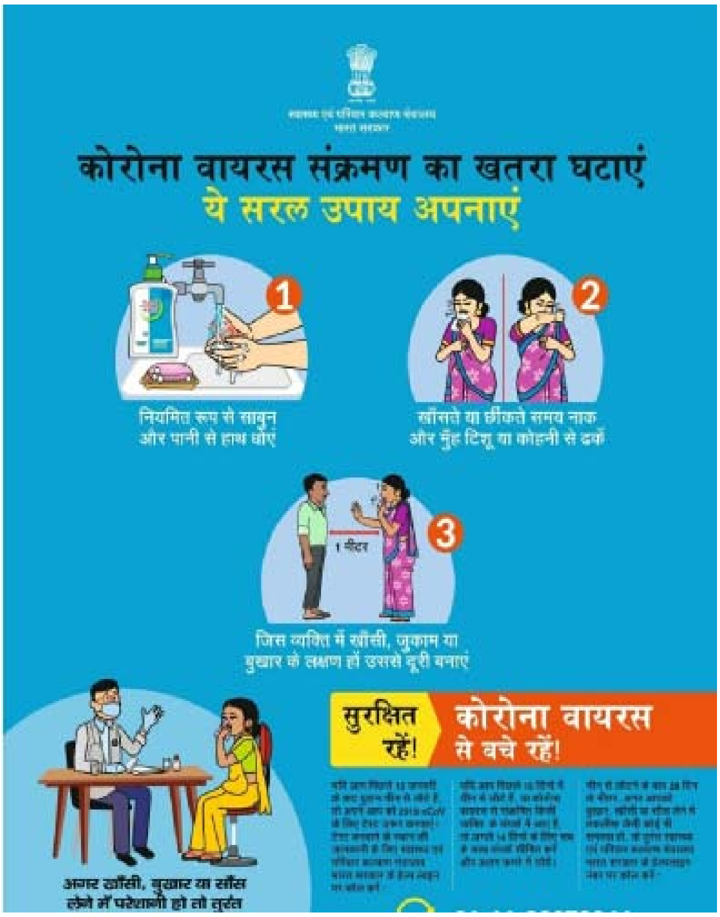

चित्र 16.9: करोना वायरस संक्रमण से बचने का सरल उपाय

bdkbxr i'u&16-3

बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर दीजिए –

1. कोरोना रोग से बचाव एवं उपचार करने के लिए मनुष्य को निम्न महत्वपूर्ण नियम का पालन करना चाहिए–

   (क) मास्क पहनना

   (ख) दो गज दूरी

   (ग) स्वच्छता का पालन

   (घ) उपरोक्त सभी

2. कोरोना की गंभीर महामारी से बचने के लिए स्वास्थ्य मंत्रालय द्वारा आयुर्वेद के औषधियों से बनाए .... सेवन को उपयोगी बताया है।

   (क) काढ़ा

   (ख) चाय

   (ग) धी

   (घ) मक्खन

3. काढ़े को .... शेष रहने तक पकाना चाहिए।

   (क) एक तिहाई

   (ख) एक चौथाई

   (ग) आधा

   (घ) उपरोक्त कोई भी

vkiu D;k lh[kk

इस इकाई (यूनिट) में हमने सीखा कि –

- प्रिय शिक्षार्थियों, प्रस्तुत इकाई (यूनिट) में कोरोना रोग से बचाव एवं रोकथाम को समझाया गया है। इकाई (यूनिट) के प्रारम्भ में इस गंभीर रोग की उत्पत्ति पर प्रकाश डाला गया है। इकाई (यूनिट) में

fVIi.kh

समझाया गया है कि कोराना रोग 2019 के अंत में प्रकाश में आया और बहुत तेजी से सम्पूर्ण विश्व में फैलता चला गया। इकाई (यूनिट) में स्पष्ट किया गया है कि कोरोना लेटिन भाषा का एक शब्द है और इस शब्द का प्रयोग मुकुट के लिए किया जाता है। कोरोना वायरस के समूह को सूक्ष्मदर्शी से देखने पर ऐसी ही रचनाएं दिखलाई पड़ती हैं और यह वायरस वर्ष 2019 में अस्तित्व में आया अतः चिकित्सकों के द्वारा इसे कोविड–19 अर्थात् Covid Virus Disease-19 का नाम दिया गया है।

- इस वायरस की उत्पत्ति के विषय में वैज्ञानिक मतों को इकाई (यूनिट) में समझाया गया है और इस वायरस के संक्रमण के लक्षणों पर प्रकाश डाला गया है। वायरस संक्रमण होने पर शरीर का तापक्रम बढ़ना, गले–सिर में तेज दर्द होना, श्वसन क्रिया में बाधा होना आदि प्रमुख होते हैं। इस संक्रमण में ऐलोपैथिक दवाइयों का प्रयोग अधिक प्रभावशली एवं उपयोगी नहीं होता है अपितु इसके बचाव, रोकथाम एवं उपचार में योगाभ्यास, प्राकृतिक उपचार एवं आयुर्वेद बहुत लाभकारी प्रभाव रखते हैं।

- इकाई (यूनिट) में स्पष्ट किया गया है कि दिनचर्या को अनुशासित और सुव्यवस्थित करते हुए प्रातःकाल सूर्योदयपूर्व उठकर और यौगिक क्रियाओं का अभ्यास करने से इस गंभीर रोग से बचाव, रोकथाम एवं उपचार में बहुत सहायता प्राप्त होती है। इसके साथ–साथ गर्म जल का सेवन, प्रातःकाल उषापान, एनीमा और औषध द्रव्यों की वाष्प का सेवन करने से शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता उन्नत बनती है। इस रोग से बचाव, रोकथाम एवं उपचार में स्वास्थ्य मंत्रालय द्वारा आयुर्वेद की औषधियों से बनाए काढ़े के सेवन को इकाई (यूनिट) में समझाया गया है।

bdkbl dk vUr esa iz'u

1. कोरोना रोग का विस्तार से परिचय दिजिए।
2. कोरोना रोग की उत्पत्ति पर प्रकाश डालते हुए इसके प्रमुख लक्षण लिखिए।
3. कोरोना रोग से बचाव के महत्वपूर्ण बिन्दुओं की व्याख्या किजिए।
4. कोरोना रोग से बचाव एवं रोकथाम में योग, प्राकृतिक चिकित्सा एवं आयुर्वेद की भूमिका पर प्रकाश डालिए।

bdkbZxr iz'uksa ds mÙkj

16-1

1. मुकुट
2. सार्स

3. Covid Virus Disease-19

4. SARS CoV-2

5. उपरोक्त सभी

fVIi.kh

16-2

1. कोवक्सिन एवं कोविशील्ड

2. प्राणायाम

3. ध्यान

16-3

1. (घ) उपरोक्त सभी

2. (क) काढ़ा

3. (ख) एक चौथाई